भविष्य पुराण

(द्वितीय खण्ड)

(मूल एवं सरल हिन्दी भावार्थ)

सम्पादक:

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन,
२० स्मृतियाँ और १८ पुराणों के
प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली

प्रकाशक

संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)

*

सम्पादक

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

*

प्रथम संस्करण

१९६९

*

मुद्रक

दाऊदयाल गुप्त
सस्ता साहित्य प्रेस,
मथुरा

*

मूल्य

सात रुपया

दो शब्द

'भविष्य पुराण' के इस द्वितीय खण्ड मे अधिकांश उन मुख्य घटनाओ का वर्णन मिलता है जो पिछले एक हजार वर्ष मे हमारे देश मे घटित हुई हैं। उनमें पुराणकार ने प्रधान स्थान आल्हा-ऊदल और पृथ्वीराज के युद्धो को दिया है। यद्यपि आजकल भारतवर्ष के कई प्रदेशो मे 'आल्हा' का काफी प्रचार है, पर ढोलक पर गाने वालो ने धीरे-धीरे उसमे परिवर्तन करके एक निराली ही चीज बना दी है। तो भी उसकी मूल कथा 'भविष्य पुराण' के वर्णन से अधिकाश मे मिलती-जुलती ही है।

'भविष्य पुराण' मे इस कथा को इतना अधिक महत्त्व देने से हम यह अनुभव करते हैं कि वास्तव मे आल्हा-ऊदल तथा पृथ्वीराज का सग्राम भारतवर्ष का भाग्य-विधायक था और उसे केवल युद्ध की एक कहानी या लोक-काव्य की तरह पढ लेना पर्याप्त नही। इसमे भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय सन्निहित है और उससे हमको एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा प्राप्त हो सकती है।

एक अध्याय म "कबीर, नरसी, पीपा और नानक" के पूर्व जन्मो का वर्णन देकर उनको प्राचीन युगो के प्रसिद्ध व्यक्तियो से सबन्धित सिद्ध किया है। किसी व्यक्ति के प्राचीन समय मे होने वाले विभिन्न जन्मो का वर्णन तो सच्चे योगी ही जानने मे समर्थ हो सकते है, पर हम इतना कह सकते हैं कि जिस प्रकार 'आल्हा-ऊदल' के सग्राम भारतवर्ष की राजनैतिक परिस्थिति मे परिवर्तन उत्पन्न करने वाले थे, उसी प्रकार कबीर और नानक के प्रचार-कार्य ने भारतवर्ष के सास्कृतिक इतिहास को एक नया मोड दिया। इससे देश मे 'सत-मत' का प्रसार

हुआ जिसके परिणाम स्वरूप प्राचीन ढग के कामनापरक कर्मकाण्डो मे कमी आई और ब्राह्मणो का प्रभाव एक बडे वर्ग पर से हट गया। नरसी और पीपा जी ने विशेष रूप से गुजरात मे भक्तिमार्ग को फैलाया और इसके फल स्वरूप भी कर्मकाण्ड की प्रबलता मे अन्तर पडा।

शकराचार्य, रामानुज और चैतन्य भी भारतीय धार्मिक-जगत की महान विभूतियाँ हैं और हम कह सकते हैं कि वर्तमान समय मे भारतवर्ष के अधिकाश निवासियो मे जो धार्मिक प्रवृत्तियाँ दिखाई पडती हैं वे इन्ही तीनो की देन है। 'भविष्य पुराण' मे इनका जो वर्णन दिया गया है वह पौराणिक ढग का रहस्यमय होने पर भी इनके महत्व को दर्शाने वाला है। शकराचार्य और रामानुज दोनो को भगवान शकर के अश से समुत्पन्न बतलाया है, और दोनो म शास्त्रार्थ होने का वर्णन भी किया है।

चैतन्य महाप्रभु 'यज्ञ भगवान' के अश से थे और उनका आविर्भाव म्लेच्छो द्वारा की जाने वाली धर्म हानि का निवारण करने के निमित्त हुआ था। चैतन्य-चरित्र म जगन्नाथ जी का वर्णन बडा अद्भुत है और उनको भगवान का स्वरूप मानते हुय भी बौद्ध धर्म वालो से मिला जुला दिखाया गया है। पुराणकार के मतानुसार इसी कारण जगन्नाथ जी मे सब वर्णों के मनुष्य वर्ण-भेद का विचार त्याग कर एक साथ खान पान करते हैं। वहाँ वैदिक कर्मों का भी प्रचार नही है। यह सब वहाँ पर किसी समय बौद्ध लोगो की अत्यन्त प्रबलता थी, इस लिये 'भविष्यपुराण' के मतानुसार उनकी सत्ता को मिटाने के उद्देश्य से 'भगवान' ने भी वहाँ वैसा ही भेप और आचार विचार ग्रहण किया है, जो उस देश के निवासियो को प्रभावित करके भारतीय धर्म के भीतर रख सके।

इसमे सन्देह नही कि शकराचार्य, रामानुज, चैतन्य जैसी विभूतियो, जिन्होने उस पैदल यात्रा अथवा बैल गाडी के युग मे समस्त देश की

आत्मा को हिला कर रख दिया, सामान्य श्रेणी की नहीं हो सकती। वे ईश्वर की विशेष दैवी शक्ति से ही सयुक्त होती हैं। भक्तिमार्ग वाले उनको 'अशावतार' के रूप मे मानते हैं और दार्शनिक विचार वाले 'महामानव'—'युग पुरुष' आदि के नाम से उनका स्मरण करते हैं। इस मे तनिक भी सन्देह नही कि भारतवर्ष पर विधर्मियो का जो भयंकर राजनैतिक और सास्कृतिक आक्रमण हुआ उनसे यहाँ के धर्म और सस्कृति की रक्षा इन "दैवी अवतारो" ने ही की। उन्ही के प्रभाव से फिर उत्तर भारत मे रामानन्द, कबीर, नानक, दादूदयाल आदि तथा महाराष्ट्र मे नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास आदि सन्तो की परम्परा आरभ होगई। कई वैष्णव आचार्य भी कर्म क्षेत्र मे आगे बढे। इन सब न नि शस्त्र होते हुये भी केवल अपने आत्मबल और बुद्धिबल से मुसलमान बादशाहो की कट्टरता और अत्याचारो तथा उनके विद्वानो के बौद्धिक आक्षेपो का इस प्रकार मुकाबला किया कि इस्लाम का महान शक्तिशाली विजय रथ, जिसने दो चार सौ वर्ष के भीतर ही पूर्व मे ईरान, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, मगोलिया आदि को पूर्ण रूप से अपना अनुयायी बना लिया और पश्चिम मे मिश्र से लेकर स्पेन तक अपने धर्म का झण्डा गाढ दिया, वह भारतवर्ष में आकर असफल हो गया। उसने इधर-उधर लूटमार और कुछ राज्यो पर सैनिक विजय अवश्य प्राप्त करली, पर वह भारतीय धर्म को न दबा सका वरन् धीरे धीरे स्वय उससे प्रभावित हो गया। इसी पराजय' को याद करके मुसलमानो के सुप्रसिद्ध जातीय नवि हाली' ने लिखा है कि 'दीने हिलाली' का जो महान शक्तिशाली बेडा सातो समन्दरो को पार कर आया, वह गगा के मुहाने मे आकर डूब गया। जिन महामानवो ने अपनी आत्मशक्ति से ससार मे इतना बडा चमत्कार कर दिखाया उनको "लोकोत्तर दैवी शक्ति" मान कर कौन नमस्कार नही करेगा।

इस प्रकार वर्तमान युग का वर्णन करते-करते पुराणकार ने भारत म अगरेजो के आगमन और कलकत्ता म उनकी राजधानी स्थापित होने

तक का उल्लेख कर दिया है। इसके बाद उन्होने यह भी लिख दिया है कि अगरेजो के पश्चात् यहाँ तिब्बत की तरफ से आने वाले चीन वालो का प्रभाव बढ़ेगा (पृष्ठ २८२)। आज परिस्थितियो के फल स्वरूप ऐसी स्थिति पैदा होती जाती है और देश के अनेक भागो मे चीन के पक्षपातियो का जोर बढता जाता है। इन सब दृष्टियो से 'भविष्य पुराण' का महत्व स्वीकार करना ही पडता है, चाहे वह कभी और कैसे भी लिखा गया हो। पाठक इस पुराण का अध्यन करके अनेक महत्वपूर्ण तथ्यो से अवगत हो सकेंगे इसमे सन्देह नही।

—प्रकाशक

विषय-सूची

१	पृथ्वीराज द्वारा गुर्जर राज्य-ग्रहण	६
२	जयन्तावतार वृत्तान्त वर्णन	३०
३	चण्डिका देवी वाक्य वर्णन	३३
४	बलखानि विवाह वृत्तान्त वर्णन	३५
५	ब्रह्मानन्द का विवाह वृत्तात	४७
६	हस का पद्मिनी वर्णन	५८
७	इदुल-पद्मिनी का विवाह	६३
८	चन्द्र भट्ट का भाषा ग्रन्थ	७३
९	महावती का युद्ध वर्णन	९०
१०	कृष्णाशस्य शोभा सवाद	१०७
११	समस्त नृपो का सग्राम और नाश	१२०
१२	व्यास द्वारा भविष्य कथन	१६०
१३	अजमेर के तोमर नरेशो का वर्णन	१६८
१४	शुक्ल वश चरित्र	१७२
१५	परिहर भूप वश वर्णन	१८४
१६	भगवदवतारादि वृत्तात	१९०
१७	दिल्ली के म्लेच्छ राजा	१९६
१८	चैतन्य और शकराचार्य उत्पत्ति	२०६
१९	रामानुजोत्पत्ति वर्णन	२२१
२०	कबीर-नरश्री-पीपा-नानक-वृत्तात	२४०
२१	चैतन्य वर्णन मे जगन्नाथ माहात्म्य	२५५
२२	अकबर बादशाह वर्णन	२६९
२३	किलिकला के शासको का वर्णन	२८४
२४	उत्तर पर्व—मङ्गलाचरण	२९३
२५	ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और वर्णन	२९८
२६	सासारिक जीवन के दोष	३०४

२७ अधर्म और पापो के भेद	३२२
२८ शुभाशुभ गति और यम-यातना	३३०
२९ शकट व्रत का माहात्म्य	३४८
३० तिलक व्रत का माहात्म्य	३५३
३१ अशोक व्रत का माहात्म्य	३५८
३२ बृहत्तपोव्रत का माहात्म्य	३६१
३३ यमद्वितीया व्रत का माहात्म्य	३६२
३४ अशून्यशयन व्रत का माहात्म्य	३६७
३५ गोष्पद तृतीया व्रत का माहात्म्य	३७१
३६ हरिताली तृतीया व्रत का माहात्म्य	३७४
३७ ललिता तृतीया व्रत का माहात्म्य	३७९
३८ अक्षय तृतीया व्रत का माहात्म्य	३८६
३९ विनायक चतुर्थी का व्रत माहात्म्य	३८९
४० शान्ति व्रत का माहात्म्य	३९६
४१ नागपचमी व्रत का माहात्म्य	३९८
४२ श्री पचमी के व्रत का माहात्म्य	४०९
४३ विशोकषष्ठी व्रत का माहात्म्य	४१९
४४ कमलषष्ठी व्रत का माहात्म्य	४२२
४५ विजय सप्तमी माहात्म्य	४२४
४६ आदित्य मडल विधान	४२९
४७ अचला सप्तमी व्रत माहात्म्य	४३१
४८ बुधाष्टमी व्रत माहात्म्य	४३९
४९ जन्माष्टमी व्रत माहात्म्य	४४९
५० दशावतार चरित्र माहात्म्य	४६१
५१ गोवत्स द्वादशी माहात्म्य	४६७
५२ भीष्म पचक व्रत माहात्म्य	४८१
५३ अनन्त चतुर्दशी व्रत माहात्म्य	४८९
५४ ग्रन्थ परिचय और समाप्ति	४९९

॥ ॐ ॥

भविष्य पुराण

(द्वितीय खण्ड)

॥ पृथ्वीराज द्वारा गुर्जर राज्य-ग्रहण ॥

कस्मिन्मास्यभवद्युद्ध तयो कतिदिनानि च ।
तत्पश्चात्स्वपुरी प्राप्य तदा किमभवन्मुने ॥१
पौषमास्यभवद्युद्ध तयो शतदिनानि च ।
ज्येष्ठे मासि गृह प्राप्ता दध्मुर्वाद्यान्यनेकश ॥२
श्रुत्वा परिमलो राजा स्वसुताञ्जयिनो बलीन् ।
ददौ दानानि विप्रेभ्य सुख जात गृहे गृहे ॥३
इति श्रुत्वा महीराजो बलखानि महाबलम् ।
तत्रागत्य नमस्कृत्य वचन प्राह नम्रधी ॥४
अर्द्धकोटिमित द्रव्य मत्त प्राप्त सुखी भव ।
माहिष्मत्याश्च राष्ट्र मे देहि वीर नमोस्तु ते ॥५
वर्षे वर्षे च तद्द्रव्य गृहाण बलवन्प्रभो ।
इति श्रुत्वा तथा मत्वा बलखानिर्गृह ययौ ॥६
वयस्त्रयोदशाब्दे च कृष्णाशे बलवत्तरे ।
यथा जाता हरेर्लीला भृगुश्रेष्ठ तथा शृणु ॥७

इस अध्याय म पृथ्वीराज के द्वारा करके विनिमय से बलखानि से गुर्जर राज्य के ग्रहण करने के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है ।

२७ अधर्म और पापो के भेद ३२२
२८ शुभाशुभ गति और यम-यातना ३३०
२९ शक्ट व्रत का माहात्म्य ३४८
३० तिलक व्रत का माहात्म्य ३५३
३१ अशोक व्रत का माहात्म्य ३५८
३२ वृहत्तपोव्रत का माहात्म्य ३६१
३३ यमद्वितीया व्रत का माहात्म्य ३६२
३४ अशून्यशयन व्रत का माहात्म्य ३६७
३५ गोष्पद तृतीया व्रत का माहात्म्य ३७१
३६ हरितालो तृतीया व्रत का माहात्म्य ३७४
३७ ललिता तृतीया व्रत का माहात्म्य ३७९
३८ अक्षय तृतीया व्रत का माहात्म्य ३८६
३९ विनायक चतुर्थी का व्रत माहात्म्य ३८९
४० शान्ति व्रत का माहात्म्य ३९६
४१ नागपचमी व्रत का माहात्म्य ३९८
४२ श्री पचमी के व्रत का माहात्म्य ४०९
४३ विशोकषष्ठी व्रत का माहात्म्य ४१९
४४ कमलषष्ठी व्रत का माहात्म्य ४२२
४५ विजय सप्तमी माहात्म्य ४२४
४६ आदित्य मडल विधान ४२९
४७ अचला सप्तमी व्रत माहात्म्य ४३१
४८ बुधाष्टमी व्रत माहात्म्य ४३९
४९ जन्माष्टमी व्रत माहात्म्य ४४९
५० दशावतार चरित्र माहात्म्य ४६१
५१ गोवत्स द्वादशी माहात्म्य ४६७
५२ भीष्म पचक व्रत माहात्म्य ४८१
५३ अनन्त चतुर्दशी व्रत माहात्म्य ४८६
५४ ग्रन्थ परिचय और समाप्ति ४९९

राका चद्रे तु सप्राप्ते राहुग्रस्ते तमोमये ।
काश्या समागता भूपा नानादेश्या. कुलैः सह ॥१४

भाद्रपद मास की त्रयोदशी तिथि के दिन आह्लाद अपने छोटे ाई के सहित हाथी-रथ और अश्वो से सकुल धन लेकर गया के लिये ाया था ॥८॥ कृष्णाश बिन्दुल पर आरूढ हुआ—वत्सज ने हरिणी पर ामारोहण किया—देव ने पपीहक पर सवारी की और सुखखानि ःरालक पर समारूढ हुआ था ॥९॥ ये चारो दो दिन के अन्त मे गया के क्षेत्र मे पहुँच गये थे। पूर्णिमा के अन्त मे पुरस्कृत करके पोडशश्राद्ध करने लगे ॥१०॥ सौ-सौ हाथियो को—समलकृत रथो को—सहस्र अश्वो को जोकि हेम की मालाओ से सुभूषित थे—बहुत सी धेनु—सुवर्ण-रत्न-वस्त्र-जो अनेक प्रकार के थे, इन सब का वहाँ दान किया था। सुफल वाले होकर उन्होंने स्वर्ग के लिये मन मे विचार किया था ॥११-१२॥ लाक्षावर्त्ति नाम धारिणी जो वेश्या थी वह बदरिकाश्रम मे चली गई थी। उसने अपने प्राणो का वहा पर ही परित्याग कर दिया था और फिर वह अप्सरात्व को प्राप्त होगई थी ॥१३॥ चन्द्रमा के राका तिथि मे राहु द्वारा ग्रस्त हो जाने पर तमोमय समय मे वे अनेक देशो के राजा लोग अपने कुलो के सहित काशी मे आगये थे ॥१४॥

हिमालयगिरौ रम्ये नानाधातुविचित्रिते ।
तत्र शार्दूलवशीयोनेत्रसिंहो महीपति ॥१५
रत्नभानौ हते शूरे नेत्र सिंहो भयातुर ।
भवतु गे समासाद्य तोपयामास वासवम् ॥१६
द्वादशाव्दान्तरे देवो ददौ ढक्कामृत मुदा ।
पार्वत्या निर्मित यत्तु वासवाय स्वसेविने ॥१७
ददौ ढक्कामृत राज्ञे पुनः प्राह शुभ वच ।
अस्य शब्देन भूपाल त्व सैन्य जीवयिष्यसि ॥१८
क्षय शीघ्र गमिष्यति शत्रवस्ते महाभटा. ।
प्राप्ते ढक्कामृते तस्मिन्नेत्रसिंहो महाबलः ॥१९

ऋषियो ने कहा—उन दोनो का किस मास मे युद्ध हुआ था और कितने दिन तक हुआ था। उसके पीछे अपनी पुरी म प्राप्त होकर फिर उस समय मे क्या हुआ था ? हे मुने ! यह बतलाइये ॥१॥ सूतजी ने कहा-उन दोनो का युद्ध पौष मास मे हुआ था और वह सौ दिनरात बराबर होता रहा था। ज्येष्ठ मास मे वे घर मे पहुचें थे और वहा अनेक प्रकार के वाद्य बजाये थे ॥२॥ राजा परिमल ने अपने बलवान् पुत्रो को जय वाले श्रवण करके उसने ब्राह्मणो को दान दिया था और उस समय मे घर-घर मे बडा सुख उत्पन्न होगया था ॥३॥ यह सुन कर महीराज महान् बलवान् बलखानि के यहा आया और उसको नमस्कार करके नम्रबुद्धि वाले उसने यह वचन कहा—आधा करोड धन आप मुझ से प्राप्त करके सुख होजाइये। हे वीर ! माहिष्मती का राष्ट्र मुझे दे दो। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥४ ५॥ हे प्रभो ! आप वर्ष वर्ष मे वह द्रव्य ग्रहण करें। यह सुन कर और उसको उसी प्रकार से मान करके बलखानि गृह मे चला गया था ॥६॥ तेरह वर्ष की आयु मे अधिक बलवान् कृष्णाश के होने पर हे भृगु श्रेष्ठ ! हरि की जिस प्रकार से लीला हुई थी उसका उस प्रकार से अब श्रवण करो ॥७॥

भाद्रे शुक्ले त्रयोदश्या चाह्लाद सानुजो ययौ ।
गयार्थे धनमादाय हस्त्यश्वरथसकुलम् ॥८
कृष्णाशो विन्दुलारूढो वत्सजो हरिणीस्थित ।
देव पपीहकारूढ सुखखानि करालके ॥९
चत्वारो द्विदिनान्ते च गयाक्षेत्र समाययु ।
पूर्णिमाते पुरस्कृत्य षोडशश्राद्धकारिण ॥१०
शत शत गजाश्चैव भूषिताश्च रथास्तथा ।
ददुर्हयान्सहस्र च हेममालाविभूषितान् ॥११
धेनूर्हिरण्यरत्नानि वासासि विविधानि च ।
दत्त्वा त सुफलीभूय स्वर्गे हाय ददुर्मन ॥१२
लक्षावर्तिस्तु या वेश्या ययौ वदरिकाश्रमम् ।
प्राणास्तत्र परित्यज्य साप्सरस्त्वमुपागता ॥१३

राका चन्द्रे तु सम्प्राप्ते राहुग्रस्ते तमोमये ।
काश्या समागता भूपा नानादेश्याः कुलैः सह ॥१४

भाद्रपद मास की त्रयोदशी तिथि के दिन आह्लाद अपने छोटे ाई के सहित हाथी-रथ और अश्वो से सकुल घन लेकर गया के लिये या था ।।८।। कृष्णाश बिन्दुल पर आरूढ़ हुआ—वत्सज ने हरिणी पर मारोहण किया—देव ने पपीहक पर सवारी की और सुखखानि रालक पर समारूढ हुआ था ।।९।। ये चारो दो दिन के अन्त मे गया ; क्षेत्र मे पहुँच गये थे। पूर्णिमा के अन्त मे पुरस्कृत करके षोडशश्राद्ध रने लगे ।।१०।। सौ-सौ हाथियो को—समलकृत रथो को—सहस्र श्वो को जोकि हेम की मालाओ से सुभूषित थे—बहुत सी धेनु—सुवर्ण-त्न-वस्त्र-जो अनेक प्रकार के थे, इन सब का वहाँ दान किया था । पुफल वाले होकर उन्होने स्वर्ग के लिये मन मे विचार किया था ।११-१२।। लक्षावर्त्ति नाम धारिणी जो वेश्या थी वह वर्दरिकाश्रम ो चली गई थी । उसने अपने प्राणो का वहा पर ही परित्याग कर दिया था और फिर वह अप्सरात्व को प्राप्त होगई थी ।।१३।। चन्द्रमा राका तिथि मे राहु द्वारा ग्रस्त हो जाने पर तमोमय समय मे वे अनेक देशो के राजा लोग अपने कुलो के सहित काशी मे आगये थे ।।१४।।

हिमालयगिरौ रम्ये नानाधातुविचित्रिते ।
तत्र शार्दूलवशीयोनेत्रसिंहो महीपति ॥१५
रत्नभानौ हते शूरे नेत्र सिंहो भयातुरः ।
नवतुंगे समासाद्य तोषयामास वासवम् ॥१६
द्वादशाब्दान्तरे देवो ददौ ढक्काभृत मुदा ।
पार्वत्या निर्मित यत्तु वासवाय स्वसेविने ॥१७
ददौ ढक्कामृत राज्ञे पुनः प्राह शुभ वच. ।
अस्य शब्देन भूपाल त्व सैन्य जीवयिष्यसि ॥१८
क्षय शीघ्रं गमिष्यति शत्रवस्ते महाभटा. ।
प्राप्ते ढक्कामृतं तस्मिन्नेत्रसिंहो महाबलः ॥१९

नगर कारयामास तत्र सर्वजनैर्युतम् ।
योजनान्त चतुर्द्वार दुराधर्षं परं सदा ।।२०
नेत्रसिहगढ नाम्ना विख्यात भारत भुवि ।
काश्मीरान्ते कृत राज्ये तेन शृगसम तत ।।२१

हिमालय पर्वत मे जोकि परम रमणीक और अनेक प्रकार की धातुओ से चित्रित है वहाँ पर शार्दूल वश मे होने वाला नेत्रसिह नाम का राजा था ।।१५।। रत्नभानु शूरवीर के ह्रास हो जाने पर नेत्रसिंह भय से आतुर होगया था । वह नवतुङ्ग स्थान मे जाकर वहा उसने इन्द्र को सन्तुष्ट किया था ।।१६।। बारह वर्ष के अन्त मे उस देव ने प्रसन्नता से ढक्कामृत दिया था जो कि पार्वती ने अपनी सेवा करने वाले वासव (इन्द्र) के लिए निर्मित किया था ।।१७।। इन्द्र ने राजा को वह ढक्कामृत देकर फिर यह शुभ वचन कहा—हे भूपाल ! इसमे यह विशेषता है कि इसके वादन करने पर इस के शब्द से तुम मृत सेना को जीवित कर लोगे ।।१८।। महान्भट भी तेरे यदि कोई शत्रु होगे तो वे शीघ्र ही क्षय को प्राप्त हो जायगे । महान् बलवान् नेत्रसिंह ने उस ढक्कामृत को प्राप्त करके वहा पर समस्त जनो से युक्त एक नगर निर्माण कराया था जो एक योजन के अन्त तक विस्तार वाला था, जिसमे चार बड़े द्वार थ और सदा शत्रुओ को वह दुराधर्ष था ।।१९ २०।। भारत मे इस पृथ्वी पर वह नेत्रसिंह गढ—इस नाम से प्रसिद्ध होगया था । उसने फिर शृग समान काश्मीर के अन्त मे राज्य किया था ।।२१।।

पालित नेत्रसिहेन तत्पुर पुत्रवन्मुने ।
नेत्रपाल इति ख्यातो ग्रामोऽसौ दुगम परं ।।२२
सोऽपि राजा समायातो नेत्रसिहो महाबल ।
कन्या स्वर्णवती तस्य रेवतयशसमन्विता ।
मायाख्या वरदानेन सर्वमायाविशारदा ।।२३
दृष्ट्वा ता सुन्दरी कन्या बाले दुसदृशाननाम् ।
मूर्च्छिताश्चाभवन्भूपा रूपयौवनमोहिता ।।२४

दृष्ट्वा ता च तथाह्लादः सर्वरत्नविभूपिताम् ।
पोडशाब्दवयोयुक्ता कामिनी रतिरूपिणीम् ।
मूर्च्छितश्चापतद्भूमौ सा त दृष्ट्वा मुमोह वै ॥२५
दोलामारुह्य तत्सन्यौ नृपान्तिकमुपाययु ।
आह्लादस्तु समुत्थाय महामोहत्वमागतः ॥२६
दृष्ट्वा तथाविध बधु कृष्णाशः प्राह दुखितः ।
किमयं मोहमायातो भवांस्तत्वविशारदः ॥२७
रजो रागात्मक विद्धि प्रमाद मोहजं तथा ।
ज्ञानासिना शिरस्तस्य छिधि त्वमजिनः सदा ॥२८

इति श्रुत्वा वचो भ्रातुस्त्यक्त्वा मोह ययौ गृहम् ।
भोजयित्वा द्विजश्रेष्ठान्सहस्र वेदतत्परान् ।।२९
दुर्गामाराधयामास जप्त्वा मध्यचरित्रकम् ।
मासान्ते च तदा देवी दत्त्वाभीष्ट हृदि स्थितम् ।।३०
मोहयामास ता कन्या विवाहार्थमनिन्दिता ।
स्वप्ने ददर्श सा बाला रामाश देवकीसुतम् ।।३१
प्रातर्बुद्धा तु सचिंत्य महामोहमुपाययौ ।
तदा ध्यात्वा च कामाक्षी सर्वाभीष्टप्रदायिनीम् ।।३२
पौषमासे तु सप्राप्ते शुककठे सुपत्रिकाम् ।
बद्धा त प्रेषयामास शुक पत्रस्थित प्रियम् ।।३३
स गत्वा पुष्पविपिन महावतिपुरीस्थितम् ।
नरशब्देन वचन कृष्णाशाय शुकोऽब्रवीत् ।।३४
वीर तेऽस्वरजो बधुर्नाम्नाह्लादो महाबल ।
तस्मै हि प्रेषिता पत्री स्वर्णवत्या हितप्रदा ।।३५
ता ज्ञात्वा च पुनस्तस्या उत्तर देहि मत्प्रियम् ।
अथ वा पत्रमालिख्य तत्त्व मे कुरु कठके ।।३६

अपने भाई कृष्णाश के यह वचन श्रवण करके, उसने उस मोह का त्याग कर दिया और फिर गृह को चला गया था। वेदो मे तत्पर श्रेष्ठ एक सहस्र ब्राह्मणो को भोजन कराकर मध्यम चरित्र का जप करके उसने दुर्गा की आराधना की थी। एक मास के अन्त मे उस समय देवी ने जो हृदय म स्थित अभीष्ट था उसे देकर उस कन्या को देवी ने जोकि अनिन्दित थी विवाह करने के लिये मोहित कर दिया था। उस बाला ने स्वप्न मे रामाश देवकी के पुत्र को देखा था ।।२९-३१।। प्रातःकाल मे जाग कर चिंतन किया तो बडा भारी मोह होगया था। तब समस्त अभीष्टो के प्रदान करने वाली कामाक्षी देवी का ध्यान किया और पौष मास क प्राप्त होने पर एक तोता के कण्ठ म पत्रिका को बाधकर पत्र स्थित प्रिय शुक को भेजा था ।।३२-३३।। वह महावती पुरी मे स्थित जो एक पुष्प विपिन था वहा पहुचा और मनुष्य की

वाणी से वृत्तान्त के लिये शुक ने कहना चाहा ॥३४॥ उस शुक ने कहा—हे वीर ! तुम्हारे छोटे भाई आह्लाद ने जोकि महान् बलवान् है स्वर्णवती के हित अपना करने वाली पत्रिका भेजी है। सो अब आप समझकर फिर उसका उत्तर मेरे हित के लिए मुझे दे दो। अपना एक पत्र लिख कर उसे आप मेरे गले में बांधो ॥३५-३६॥

इति श्रुत्वोदयो वीरो गृहीत्वा पत्रमुत्तमम् ।
ज्ञातवान्स वृत्तांतमाह्लादाय पुनर्ददौ ॥३७
जम्बुकश्च नृपो वीरो रुद्रदत्तवरो बली ।
अजेयोऽन्यनृपैर्वीर त्वया युधि निपातितः ॥३८
तथाविध मत्पितरमिन्द्रदत्तवरं रिपुम् ।
तमेवं जहि संग्रामे मम पाणिग्रह कुरु ॥३९
इति ज्ञात्वा स आह्लादस्तामाश्वास्य हृदि स्थिताम् ।
शुककंठे बबंधाशु लिखित्वा पत्रमुत्तमम् ॥४०
स शुकः पन्नगः पूर्वं पुंडरीकेन शापितः ।
श्वेतयशस्य कार्यं च कृत्वा मोक्षत्वमागतः ॥४१
मृते तस्मिन्छुके रम्ये देवी स्वर्णवती तदा ।
दाहयित्वा ददौदानं विप्रेभ्यस्तस्य तृप्तये ॥४२

यह सुन कर उदयवीर ने उस उत्तम पत्र को ग्रहण करके उसमे जो वृत्तान्त था उसे जान लिया और आह्लाद के लिये फिर देदिया था ॥३७॥ जम्बुक राजा वीर था और बलवान् तथा रुद्र का दत्त वर-दानी था जोकि अन्य नृपो के द्वारा अजेय था, हे वीर ! उसे तुम ने युद्ध मे गिरा दिया था ॥३८॥ उसी प्रकार के मेरे पिता को जो इन्द्र का दत्त वरदानी एव रिपु है। उसे सग्राम मे इसी प्रकार से मारकर मेरा पाणिग्रहण करो ॥३९॥ यह जानकर उस आह्लाद ने हृदय मे स्थित उसको आश्वासन दिया था। और एक उत्तम पत्र लिखकर शीघ्र ही शुक के कण्ठ मे बाँध दिया ॥४०॥ वह शुक पहिले पन्नग था जोकि पुण्डरीक के द्वारा शापित था। उसने श्वेतयश का कार्य करके मोक्षत्व प्राप्त किया था ॥४१॥ उस रम्य शुक के मर जाने पर तब देवी स्वर्ण-

वती ने उसका दाह कराकर उसकी तृप्ति के लिए ब्राह्मणों को दान दिया था ॥४२॥

माघमासि च सम्प्राप्ते पचम्या कृष्णपक्षके ।
आह्लाद सप्तलक्षैश्च सैन्यैः सार्द्धं ययौ मुदा ॥४३
तालनाद्याश्च ते शूरा स्वस्व वाहनमाश्रिता ।
आह्लाद रक्षयन्तस्ते ययु पचदशाहकम् ॥४४
वगदेश समुल्लघ्य शीघ्र प्राप्ता हिमालयम् ।
रूपण पत्रकर्त्तार बलखानिरुवाच तम् ॥४५
गच्छ त्व वीर कवचो करालाश्व समास्थित ।
पचशस्त्रसमायुक्तो राजान शीघ्रमावह ॥४६
युद्धचिह्न तनौ कृत्वा मामागच्छ त्वरान्वित ।
तथा मत्वा शिखण्ड्यशो ययौ शीघ्र स रूपण ॥४७
स ददर्श सभा राज्ञो बहुशूरसमन्विताम् ।
पार्वतीयैर्नृपै सार्द्धं सहस्रैर्बलवत्तरै ॥४८
स उवाच नृपश्रेष्ठ नेत्रसिंह महाबलम् ।
स्वसुताया विवाहाय बलखानिमहाबल ।
सप्तलक्षबलैर्गुप्त सम्प्राप्तस्तव राष्ट्रक ॥४९

माघ मास के आने पर कृष्ण पक्ष की पचमी में आह्लाद सात लाख सेना के साथ बड़े ही आनन्द से गया था ॥४३॥ और तालन आदि जो शूर थे वे भी अपने२ वाहनों पर सवार होगये थे । वे सब आह्लाद की रक्षा करते हुए पन्द्रह दिन में गये थे ॥४४॥ वगदेश को लांघकर शीघ्र ही हिमालय में पहुँच गये थे । उस पत्र कर्त्ता रूपण से बलखानि ने कहा ॥४५॥ हे वीर ! तू कवच धारी कराल अश्व पर समारूढ होकर जा और पच शस्त्र समायुक्त होकर राजा को शीघ्र बुलाले ॥४६॥ शरीर में युद्ध का चिह्न कर के शीघ्रता से युक्त होकर मेरे पास आजा । ऐसा ही मानकर वह शिखण्डी का अश रूपण शीघ्र चला गया था ॥४७॥ उसने बहुत से शूर वीरों से युक्त राजा की सभा को वहाँ देखा था । वहाँ राजा पर्वतों के अधिक बलवान

सहस्रों राजाओं के साथ सभा में स्थित था ॥४८॥ वह वहाँ पहुँचकर महाबलवान् नेत्रसिंह राजा से बोला—तुम्हारी पुत्री के साथ विवाह करने के लिये महान् बलखानि नाम वाला सेना के सहित तुम्हारे राज्य में आगया है ॥४९॥

तस्मात्त्वं स्वसुतां शीघ्रमाह्लादाय समर्पय ।
शुल्कं मे देहि नृपते युद्धरूपं सुदारुणम् ॥५०
इति श्रुत्वा वचस्तस्य स राजा कोपमूर्छितः ।
पट्टनाधिपमाज्ञाय भूप पूर्णबलं रुषा ।
अवरोध कपाटं च तस्य बन्धनहेतवे ॥५१
पाशहस्तान्छूरशतं पट्टनाधिपरक्षिताम् ।
दृष्ट्वा स रूपणो वीरः खड्गयुद्धमचीकरत् ॥५२
हत्वा तन्मुकुटं राज्ञो गृहीत्वाकाशगो बली ।
बलखानिं तु सम्प्राप्य चिह्नं तस्मै न्यवेदयत् ॥५३
इति श्रुत्वा प्रसन्नात्मा सप्त लक्षदलैर्युतः ।
अग्निनगरीं सर्वां नेत्रसिंहेन रक्षिताम् ॥५४
नेत्रसिंहस्तु बलवान्पार्वतीयैर्नृपैः सह ।
हिमतुंगतलं प्राप्य युद्धार्थी तान्समाह्वयत् ॥५५
सहस्रं च गजास्तस्य हया लक्षं महाबलाः ।
सहस्रं च नृपाः शूराश्चतुर्लक्षं पदातिभिः ॥५६

इसलिए तुम बहुत ही शीघ्र अपनी सुता को आह्लाद के लिये समर्पित करदो । हे नृपते ! युद्ध रूप सुदारुण शुल्क मुझे दे दो ॥५०॥ इस प्रकार के उसके वचन को श्रवण कर राजा क्रोध से मूर्च्छित होगया और पट्टन के अधिप राजा को जो कि पूर्ण बल वाला था क्रोध से आज्ञा दी कि उसके बन्धन के लिये किवाड बन्द करदो ॥५१॥ हाथ में पाश लेने वाले पट्टनाधिप के द्वारा रक्षित एक सौ शूरों को देखकर उस रूपण वीर ने खग से युद्ध किया था ५२॥ राजा के उस मुकुट का हनन करके और ग्रहण करके वह बली आकाश गामी होकर बलखानि के पास पहुँच गया और वह चिन्ह उसे दे दिया था ॥५३॥ यह सुनकर

परम प्रसन्न चित्त उसने सात लाख दल से युक्त होकर नेत्रसिंह के द्वारा सुरक्षित समस्त नगरी को घेर लिया था ॥५४॥ नेत्रसिंह भी बलवान् था उसने पर्वतीय नृपों के साथ हिमतुंगतल में जाकर युद्धार्थी होते हुए उनको बुलाया था ॥५५॥ एक सहस्र उनके हाथी थे एक लक्ष महाबली अश्व–एक सहस्र नृप जो बड़े शूर थे और चार लाख पदाति थे। इनके साथ वह आया था ॥५६॥

योगसिंहो गजैः सार्द्धं बलखानि समाह्वयत ।
भोगसिंहो हयैः सार्द्धं कृष्णांशं च समाह्वयत् ॥५७
विजयो नृपपुत्रश्च सर्वभूपतिभिः सह ।
देवसिंहस्तथा म्लेच्छे रूपणं च समाह्वयत ॥५८
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोस्तत्र दारुणम् ।
निर्भयाश्चैव ते शूराः पार्वतीयाः समंततः ।
जघ्नुस्ते शात्रवीं सेनां द्विलक्षां वीरपालिताम् ॥५९
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा चत्वारो मदमत्तकाः ।
दिव्यानश्वान्समारुह्य चक्रुः शत्रोर्महावधम् ।
पुनरुज्जीवितं सर्वं ढक्कामृतरवाद्बलम् ॥६०
युद्धाय संमुखं प्राप भृगुश्रेष्ठ पुनः पुनः ।
अहोरात्रं रणश्चासीत्तेषां तत्रैव दारुणः ॥६१
एवं सप्ताह्नि संजाते युद्धे भीरुभयंकरे ।
उपायैर्बहुभिर्वीराश्चक्रुश्चैव रणं बहुम् ॥६२
पुनस्ते जीवमापन्ना जघ्नुस्तान्रिपुसैन्यपान् ।
तालनाद्यास्तु ते शूरा दुःखितास्तत्र चाभवन् ।
निराशां विजये प्राप्य कृष्णांशं शरणं ययुः ॥६३

योगसिंह ने हाथियों के साथ बलखानि को बुलाया था। भोगसिंह ने अश्वों के साथ होकर कृष्णांश को टेर दी थी। विजय और नृप के पुत्र समस्त भूपतियों के साथ थे। देवसिंह ने म्लेच्छों के साथ होकर रूपण को युद्ध के लिए ललकार दी थी ॥५८॥ उन दोनों की सेनाओं का वहाँ बड़ा ही दारुण युद्ध हुआ था। वे पर्वतीय शूर सभी ओर से

बड़े निर्भय थे। उन्होंने शत्रु की वीर पालित दो लाख सेना का हनन किया था। अपने बल को प्रभग्न देखकर चारों मदमत्तक अपने दिव्य अश्वों पर समारूढ होकर शत्रु का महावध करने लगे थे। किन्तु वे ढक्कामृत की ध्वनि से पुन जीवित हो जाते थे ॥५९-६०॥ हे भृगुश्रेष्ठ! उसका बल बार-बार युद्ध करने के लिये सम्मुख हो जाता था। इस तरह उनका एक अहोरात्र वहां पर ही बड़ा दारुण युद्ध हुआ था ॥६१॥ इस तरह सात दिन भीरुओं को महान् भयकर युद्ध के होने पर वीरों ने बहुत से उपायों के द्वारा बहुत कुछ युद्ध किया था ॥६२॥ जिन शत्रु के सैन्यपों को वे मार देते थे वे फिर जीवित हो जाया करते थे। वहा पर तालन आदि जो महाशूर थे वे बहुत ही अधिक दुःखित होगये थे। उस युद्ध में विजय की सर्वथा निराशा देखकर सब कृष्णांश की शरण में गये थे ॥६३॥

तानाश्वास्य स कृष्णांशस्तत्र दिव्यहये स्थित ।
नभोमार्गेण बलवान्स्वर्णवत्यतिक ययौ ॥६४

हर्म्योपरि स्थिता देवी सर्वशोभासमन्विताम् ।
नत्वोवाच वच श्लक्ष्ण किंकरोहमिहोदय ।
शरण्या त्वामुपागच्छ कामाक्षीमिव भामिनि ॥६५

वृत्तान्त कथयामास यथासीच्च महारण ।
श्रमेण कर्शिता वीरा निराशा जीवनेऽगमन् ॥६६
साह चोदयसिंह त्व कामाक्ष्या मंदिर व्रज ।
अह च स्वालिभि सार्धं नवम्या पूजने रता ॥६७

ढक्कामृतस्य वाद्येन पूजये सर्वकामदाम् ।
इति श्रुत्वा स बलवान्स्वसैन्य प्रति चागमत् ॥६८

अर्धशेषा रणात्सेना पराजाप्य च दुद्रुवु ।
पट्टनाख्यपुरे प्राप्ता जय प्राप्य महाबला ॥६९

पराजिते रिपौ तस्मिन्नेत्रसिंहसुते सह ।
गृहमागत्य बल्वान्विप्रेभ्यो गोधन ददौ ॥७०

उस कृष्णांश ने उन सबको आश्वासन देकर वह अपने दिव्य अश्व पर समास्थित हुए और नभो मार्ग से वह बलवान् स्वर्णवती के समीप में गया था ॥६४॥ अपने महल के ऊपर स्थित सब प्रकार की शोभा से समन्वित उस देवी को प्रणाम करके यहाँ मैं उदय नामक किंकर हूँ यह परम श्लक्ष्ण वचन उस देवी से कहे थे। हे भामिनि! कामाक्षी देवी की भांति शरण्या आपके पास आया हूं। उसने समस्त वृत्तान्त वह सुनाया था जिस तरह वह महायुद्ध हो रहा था। श्रम से कर्षित हुए वीर अपने जीवन में निराश होगये हैं ॥६५-६६॥ उस देवी ने कहा हे उदयसिंह! तुम कामाक्षी देवी के मन्दिर में चले जाओ और मैं भी अपनी सहेलियों के साथ नवमी तिथि के दिन देवी के पूजन में रत होकर डक्कामृत के वाद्य से समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाली कामाक्षी का पूजन करती हूँ। यह सुनकर वह बलवान् अपनी सेना में आगया था ॥६७-६८॥ रण से अर्ध शेष सेना को पराजित करके वे भाग गये और पट्टनाख्यपुर में महायनवान् जय प्राप्त करके पहुँच गये थे ॥६९॥ नेत्रसिंह के पुत्रों के साथ रिपु के पराजित हो जाने पर बलवान् ने ग्रह में आकर ब्राह्मणों को गौ और धन का दान दिया था ॥७०॥

नवम्यां पितरं प्राह देवी स्वर्णवती तदा ।
कामाक्षीमिवनेनाशु कुरु यागोत्सवं मम ।
यत्प्रसादाद्य विजयी दुर्जयेभ्योऽभवद्भवान् ॥७१
इति श्रुत्वा पिता प्राह स्वप्नो दृष्टस्तथा मया ।
पूजनान्मंगलं राज्ञां नो चेद्विघ्नो हि शोभने ॥७२
पित्रोक्तापि निशायां तु सा सुता पितुराज्ञया ।
डक्कामृतस्य वाद्येन कामाक्षीमंदिरं ययौ ॥७३
कृष्णांशो मातुराज्ञस्य वधूभूरा समागता ।
डक्कामृत च नारीभ्यो मृगीरसा स्त्ररिणो ययौ ॥७४

तानागतान्स बलवान्दृष्ट्वा खड्गं गृहीतवान् ।
पचपचाशतः शूराननयद्यमसादनम् ॥७६
कृष्णाशस्त्वरितो गत्वा रूपणो यत्र तिष्ठति ।
ढक्कामृत च सप्राप्य हयारूढो ययौ सभाम् ॥७७
हृते ढक्कामृते दिव्ये नेत्रसिंहो भयातुर ।
ऐन्द्र यज्ञ तथा कृत्वा हवनाय परोऽभवत् ॥७८

नवमी तिथि मे उस समय स्वर्णवती ने पिता से कहा था कि कामाक्षी के सेवन के द्वारा शीघ्र मेरा यागोत्सव करिये । जिसके प्रसाद से आप दुर्जयो से विजयी हुए हैं ॥७१॥ यह सुन कर पिता ने कहा कि आज मैंने इस प्रकार का स्वप्न देखा है कि पूजन से राजाओ का मगल होता है और किसी भी शोभनकार्य मे विघ्न नही होता है,यदि ऐसा नही किया जाता है तो अवश्य ही विघ्न होता है ॥७२॥ इस प्रकार से पिता के द्वारा कही गई उस सुता ने रात्रि मे पिता की आज्ञा से ढक्कामृत के वाद्य के साथ कामाक्षी के मन्दिर मे गमन किया था ॥७३॥ वहाँ कृष्णाश मालाकार की वधू होकर आगया था । वह ढक्कामृत वाद्य को स्त्रियो से लेकर तुरन्त ही चला गया था ॥७४॥ इसी अन्तर मे वाहनो से सयुत साठ वीर ढक्का के लिए शीघ्र गये थे जोकि समस्त शस्त्रो से समुद्यत थे ॥७५॥ उनको आते हुए देख कर उस बलवान् ने खग ग्रहण कर लिया था । पचपन शूरो को उसने यमराज के घर पहुँचा दिया था ॥७६॥ कृष्णाश शीघ्रवह! गया जहाँ रूपण स्थित था और उस ढक्कामृत को प्राप्त करके हया रूढ होकर सभा मे गया ॥७७॥ उस दिव्य ढक्कामृत के हृत होने पर नेत्रसिंह भय से आतुर होगया और उसने ऐन्द्र यज्ञ किया तथा हवन करने के लिए तत्पर होगया था ॥७८॥

प्रभाते समनुप्राप्ते ते वीरा स्वबलैः सह ।
तरसा प्रययु सर्वे गजोष्ट्रहयसंस्थिता. ।
दिनान्ते प्राप्तवतश्च यत्राभूत्समहारण ॥७९
कृष्णाश पूजयित्वा त दध्मौ ढक्कामृत वली ।
तच्छब्देन मृता वीरा पुनरुज्जीवितास्तदा ॥८०

राजन्नय स वलवानाह्लाद सानुजं सह ।
मत्पक्तौ न स्थितो वीर कुले हीनत्वमागत ॥८८
आर्याभीरी स्मृता तेषा किं त्वया विदित न हि ।
यदि देया त्वया कन्या तर्हि त्व हीनता व्रज ॥८९
अतस्त्व वचन चेद कुलयोग्य शृणुष्व भो ।
चतुरो वालकान्नीचास्तालनेन समन्वितान् ॥९०
वञ्चयित्वा विवाहार्थे शिरास्येषा समाहर ।
मडपाते मख कृत्वा चामुण्डायै समर्पय ॥९१

यह कह कर स्वय देव ने उमा का परम प्रिय ढक्कामृत का हरण करके वह्नि मे समाक्षिप्त करके दुर्गा को सन्निवेदित कर दिया था॥८५॥ उस सुरो के स्वामी के चले जाने पर उस राजा ने ब्राह्मणो के साथ मेल करने के लिये वहा महीपति की ओर गमन किया था ॥८६॥ उस तरह आये हुए राजा को देखकर कृष्णाश और महीपति ने आह्लाद से कहा—सब बलो के साथ सदा मान करने के योग्य है ॥८७॥ हे राजन् ! यह परम बलवान् आह्लाद अपने अनुजो के साथ कुल मे हीनता को प्राप्त होकर मेरी पक्ति म स्थित नही है ॥८८॥ उनको आर्या आभीरी स्मृत है क्या यह आपको विदित नही है ? यदि आपको कन्या देनी है तो तुम भी हीनता को प्राप्त हो जाओ ॥८९॥ इसलिये तुम इस वचन के योग्य हो, सुनिये चारो नीच बालको को तालन के साथ वञ्चित करके विवाह के लिये इनके शिरो को समाहृत करो और मण्डप के अन्त मे मख करके उन्हे चामुण्डा के लिये समर्पित कर दो ॥९० ९१॥

त्वत्कन्यया समाहूता वीरा वै रेवती हि सा ।
पश्चात्कन्या स्वय हत्वा कुलकल्याणमावह ॥९२
नो चेद्भवा क्षय यायात्सकुलो जवुको यथा ।
इत्युक्त्वा स ययौ सार्द्ध यत्राह्लादस्य वाधव ॥९३
इति श्रुत्वा स शल्याश सुयोधनमुखेरितम् ।
तथेत्युक्त्वोत्सव वृत्वा मडपाते विधानत ।

आह्लादस्य समीप स गत्वैद्वतचनाय हि ।
तमाह दडवत्पादौ गृहीत्वा नृपतिस्स्वयम् ॥८४
भवन्तोशावताराश्च मया ज्ञाताः सुरोत्तमात् ।
निरस्त्रान्पश्च युष्माश्च पूजयित्वा यथाविधि ।
रामाशाय स्वकन्या चदास्यामि कुलरीतित. ॥८५
इत्याह्लाद समादिश्य स नृपश्छलमाश्रित ।
दुर्गोत्सवे ययौ गेह तद्वधाय समुद्यत ॥८६
सहस्र मडपे भूपान्सस्थाप्य स्वबलै सह ।
तालनाद्याश्च पट् शूरान्मडपाते समाह्वयत् ॥८७
विवाहप्रथमावर्ते योगसिंहोऽसिमुत्तमम् ।
वरमाहत्य शिरसि जगर्ज बलवान्रुषा ॥८८

तुम्हारी कन्या के द्वारा वीर समाहृत हैं वह कन्या रेवती है । इसके पीछे स्वय कन्या का हनन करके अपने कुल के कल्याण को प्राप्त करो ॥८२॥ नही तो आप राजा जम्बुक की भाँति सकुल क्षय को प्राप्त हो जायेंगे । इतना कह कर जहाँ आह्लाद के बान्धव थे वहाँ साथ चला गया था ॥८३॥ ऐसा ही होगा—यह कह कर वह शल्यांश सुयोधन के मुख से कथित को सुन कर मण्डपान्त मे उत्सव करके वचन करने के लिये आह्लाद के समीप मे गया और राजा ने स्वय उसके चरणों मे दण्ड की भाँति पड कर उसक चरण ग्रहण करके कहा—॥८४॥ आप सब अ शावतार हैं, यह मैंने सुरोत्तम से ज्ञान प्राप्त कर लिया है । इसलिये अब आप सबकी, जबकि आप निरस्त्र हो जावें, यथाविधि पूजा करके मैं अपनी कुल की रीति से रामांश के लिये अपनी कन्या का दान करूँगा ॥८५॥ वह राजा छल का आश्रय लेकर इस तरह आह्लाद को समादेश करके दुर्गा के उत्सव मे उसके वध के लिये समुद्यत होकर गृह को चला गया था ॥८६॥ अपने दलो के साथ एक सहस्र भूपो को मण्डप मे बिठा कर तालन आदि को वहाँ बुलाया था ॥८७॥ विवाह प्रथमावर्त्त मे योगसिंह ने अपना उत्तम खड्ग ले कर वर के माथे में प्रहार कर क्रोध से बलवान् ने गर्जन किया था ॥८८॥

तमाह तालनो धीमान्न योग्य भवता कृतम् ।
श्रुत्वाह नेत्रसिंहस्त कुलरीतिरिय बलिन् ।
निरायुधं. परं. सार्द्धं शस्त्रिणा सगरो हि नः ॥९९
इति श्रुत्वा योगसिंह कृष्णाशस्त समारुधत् ।
भोगसिंह तथाकृष्य वलखानिर्गृहीतवान् ॥१००
विजय तृतीयावर्ते सुखखानिर्न्यरुद्ध वै ।
चतुर्थावर्तके शत्रुं नृप पूर्णवल शठम् ।
रूपणस्त गृहीत्वाशु युयुधे तद्बलैं सह ॥१०१
पचमे वहुराजान तालनश्च समारुधत् ।
षष्ठावर्त्ते नेत्रसिंह तथाह्लादो गृहीतवान् ॥१०२
सप्राप्ते तुमले युद्धे बहुशूराः क्षय गता ।
निरायुधा. षड् बलिनः सक्षम्य व्रणमुत्तमम् ।
निरायुधान्रिपून्स्वान्स्वाश्चक्रु: शक्तिप्रपूजकाः ॥१०३
एतस्मिन्नन्तरे देवः कालदर्शी समागतः ।
नभोमार्गेण तानश्वास्तेभ्य आगत्य सददौ ॥१०४
बिन्दुल चैव कृष्णाशो देवस्तत्र मनोरथम् ।
रूपणश्च करालाश्व चाह्लादस्तु पपीहकम् ॥१०५
हरिणी वलखानिश्च तद्भ्राता हरिनागरम् ।
सिंहिनी तालन शूर समारुह्य रणोद्यतः ॥१०६

उस समय धीमान तालन ने उससे कहा—आपने यह कार्य नही किया है । यह सुन कर नेत्रसिंह ने उससे कहा—हे बलिन्! यह तो हमारे कुल की रीति है कि निरायुध वरो के साथ शस्त्रधारियो का हमारा युद्ध होता है ॥९९॥ यह श्रवण कर कृष्णाश ने उस योग सिंह को समारुद्ध किया था और उसी प्रकार से बलखानि ने भोगसिंह को खींच कर ग्रहण कर लिया था ॥१००॥ तृतीयावर्त्त मे सुखखानि ने निरुद्ध कर लिया था और चौथे आवर्त्त मे पूर्ण बल वाले शत्रु शठ नृप को रूपण ने ग्रहण कर उसके बल के साथ शीघ्र ही समारुद्ध कर लिया था । पाँचवें आवर्त्त म बहुराजा को तालन ने समारुद्ध कर लिया था ।

षष्ठ आवर्त्त में नेत्रसिंह को आह्लाद ने ग्रहण कर लिया था ॥१०१-१०२॥ उस समय तुमुल संग्राम के सम्प्राप्त होने पर बहुत से शूर क्षय को प्राप्त हो गये थे। बिना आयुध वाले इन छै बलियो ने उत्तम व्रण को सहन कर शक्ति के प्रपूजकों ने अपने-अपने शत्रुओं को बिना आयुधो वाला कर दिया था ॥१०३॥ इसी अन्तर में काल का दर्शी देव वहाँ आ गया था। नभो मार्ग से आ कर उनके लिये उन अश्वो को दे दिया था ॥१०४॥ कृष्णाश ने बिन्दुल को देव ने मनोरथ नाम वाले को, रूपण ने करालाश्व को और आह्लाद ने पपीहक को प्राप्त किया था ॥१०५॥ बलखानि ने हरिणि को और उसके भाई ने हरिनागर को, तालन ने सिंहनी को प्राप्त किया था। ये शूर समारूढ हो कर रण के लिये उद्यत हो गये थे ॥१०६॥

रात्रौ तन्नृपते सेना हृत्वा बद्ध्वा च तत्पतिम् ।
दोला गेहाच्च निष्काश्य सप्तभ्रमरकारिताम् ॥१०७
स्वसैन्य ते समाजग्मुर्निर्भया बलवत्तरा ।
तान्सर्वान्नेत्रसिंहादीन्दृष्ट्वा पाहीति जल्पित ॥१०८
निगडैरेकत कृत्वा पञ्च भूपान्हि वचकान् ।
कारागारे महाघोरे तत्र तान्सन्यवासयन् ॥१०९
नेत्रसिंहो वरी भ्राता सुन्दरारण्यभूमिप ।
हेतु ज्ञात्वाऽथयौ शीघ्र मायावी लक्षसैन्यक ॥११०
तत्रागत्य हरानन्दो नाम्ना तानयुधद्बली ।
नेत्रसिंहस्य सैन्य च चतुर्लक्ष तदागमत् ॥१११
पञ्चलक्षं रणो घोर सप्तलक्षयुतैरभूत् ।
पञ्चाहोरात्रमात्र च तयोश्चासीत्स सकुल ।
अर्द्धसैन्य रिपोस्तत्र हतशेषमदुद्रुवत् ॥११२
विस्मित स हरानन्दो रुद्रमायाविशारद ।
बलाधिवयुतान्ज्ञात्वा शिवध्यानपरोऽभवत् ॥११३
रचित्वा शावरी माया नानारूपविधारिणीम् ।
पापाणभूता सबला कृत्वा भूपा समाययौ ॥११४

रात्रि मे उस नृपति की सेना का हनन करके और उसके पति को बाँध करके तथा दोला को घर से निकलवा करके जोकि सात भाँवरकारि तथा वे बलवान् निर्भय हो कर अपनी सेना मे आ गये थे। उन सब नेत्रसिंहादि को देख कर 'रक्षा करो'—इस प्रकार से कहा गया था ॥१०७-१०८॥ इन पाँचो वचक भूपो को निगडो से एकत्रित करके महान् घोर कारागार मे वहाँ पर उन्हे रख दिया था ॥१०९॥ नेत्रसिंह वर भ्राता, जो सुन्दर अरण्य भूमि का स्वामी था, इसका हेतु जान कर वहाँ वह मायावी एक लाख सेना लेकर शीघ्र ही आ गया था ॥११०॥ वहाँ आकर बलवान् हरानन्द नाम वाले ने उनसे युद्ध किया था और नेत्रसिंह को चार लाख सेना उस समय वहाँ आ गई थी ॥१११॥ सात लाख सयुक्तो के साथ पाँच लाख सेना के साथ घोर युद्ध हुआ था। पाँच अहोरात्र पर्यंत उन दोनो का बडा ही सकुल वहाँ हुआ था। वहाँ पर रिपु की आधी सेना, जो हतशेप थी, वहाँ से भाग खडी हुई थी ॥११२॥ रुद्रमाया का विशारद वह हरानन्द बडा ही विस्मित हुआ था। अधिक बल से युक्तो को जान कर वह शिव के ध्यान मे तत्पर हो गया था ॥११३॥ वहाँ नाना रूपो के विधारण करने वाली शावरी माया की रचना करके उन सब भूपो को पाषाण भूत बना कर वहाँ आ गया था ॥११४॥

ससुत भ्रातर ज्येष्ठ नृप पूर्णबल तत ।
मोचयित्वा ययौ गेह कृतकृत्यो महाबली ॥११५
आह्लाद निगडैर्बद्धा मायया जडता गतम् ।
नेत्रसिंह स बलवान्ययौ स्व दुर्गमुद्यत ।
त प्रशस्यानुज वीरो विप्रेभ्यश्चददौ धनम् ॥११६
तदा स्वर्णवती दीना बद्ध ज्ञात्वा पति निजम् ।
कृष्णाशाद्यान्मोहिताश्च शभुमायावशानुगान् ॥११७
रुरोदोच्चैस्तदा देवी ध्यायती कामरूपिणीम् ।
तदा तुष्टा जगद्धात्री मूर्च्छितास्तानबोधयत् ॥११८

ते सर्वे चेतना प्राप्ताः प्राहुः स्वर्णवती मुदा।
क्वास्थितो बधुराह्लादो देवि त्व कारण वद ॥११६

यथा बद्धः स्वय स्वामी कथयामास सा तथा ।
अह शुकी भवाम्यद्य भवान्बिदुलसस्थितः ॥१२०

इसके पश्चात् उसने पुत्र के सहित राजा को, ज्येष्ठ भाई को और पूर्ण बल को छुड़वा कर महाबली कृतकृत्य होकर अपने घर को चला गया था ॥११५॥ माया स जडता को प्राप्त हो जाने वाले आह्लाद को निगडो से बाँध कर वह बलवान् नेत्रसिंह उद्यत हो कर अपने दुर्ग को चला गया था। उस वीर ने अपने छोटे भाई की बहुत प्रशसा की और विप्रो को धन का दान दिया था ॥११६॥ तब वह दीन स्वर्णवती अपने पति को बद्ध जान कर तथा कृष्णाशादि सबको शम्भु-माया के वशानुग एव मोहित जान कर कामरूपिणी देवी का ध्यान करती हुई बहुत ऊँचे स्वर से वह रोने लगी। उस समय वह जगत् की धात्री देवी प्रसन्न हो गई थी और उसने उन सब मूर्छितो को बोधित कर देने की कृपा की थी ॥११८॥ वे सब चेतना को प्राप्त होकर बड़ी प्रसन्नता से स्वर्णवती से बोले—बन्धु आह्लाद कहाँ आस्थित है ? हे देवि ! तू इसका कारण बतला दे ॥११६॥ जिस प्रकार से उसका स्वामी स्वय बद्ध हो गया था, उसने वह सभी वृत्तात कह दिया था। मैं आज शुकी होती हूँ, आप विन्दुल पर सस्थित हो जाइये ॥१२०॥

इत्युक्त्वा सा शुकी भूत्वा कृष्णाशेन समन्विता ।
यत्रास्ते तत्पतिर्बद्धस्तत्र सा कामिनी ययौ ॥१२१

कृष्णाशोऽपि हयारूढो नभोमार्गेण चाप्तवान् ।
अभीरी मूर्तिमासाद्य स्वामिन प्रति सा ययौ ॥१२२

आश्वास्य त यथायोग्य कृष्णाश प्रत्यवर्णयत् ।
कृष्णाशस्तत्र बलवान्हत्वा दुर्ग निवासिन ॥१२३

रक्षकाञ्छतसाहस्रान्हत्वा भ्रातरमाययौ ।
पौर्णिमा मधुयुक्ता च ज्ञात्वा सर्वे स्वरान्विता. ॥१२४

अयोध्या शीघ्रमागम्य स्नात्वा वै सरयू नदीम् ।
होलिकादाहसमये शीघ्र वेण्या समागता. ॥१२५
स्नानध्यानादिका निष्ठाः कृत्वा गेहमुपाययु. ।
सागरस्य तट प्राप्य कृत्वा ते च महोत्सवम् ।
चैत्रस्य कृष्णपञ्चम्या स्वगेह पुनराययु ॥१२६
दूता उष्ट्रसमारूढास्तत्क्षेमकरणोत्सुकाः ।
वैशाखे शुक्लपचम्या स्वगेह पुनराययु ॥१२७
मलना भूपतिश्चैव गेहे गेहे महोत्सवम् ।
कारयित्वा विधानेन ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ॥१२८

यह कह कर वह झुकी हो गई और कृष्णांश से समन्वित होकर जहाँ उसका पति वद्ध था वहाँ वह कामिनी चली गई थी ॥१२१॥ कृष्णांश भी हय पर आरूढ होकर आकाश मार्ग से वहाँ प्राप्त हो गया। वह आभीरी मूर्ति को प्राप्त कर स्वामी के पास चली गई थी ॥१२२॥ उसका यथोचित रूप से आश्वासन करके कृष्णांश के प्रति वर्णन किया था, बलवान् कृष्णांश ने वहाँ पर दुर्ग के निवास करने वाले सौ सहस्र रक्षको का हनन करके भाई को ले आया था। मधुयुक्ता पूर्णिमा को जान कर सब त्वरान्वित होकर शीघ्र अयोध्या मे आ गये और वहाँ सरयू नदी मे स्नान किया था। फिर होलिका के दाह के समय मे शीघ्र वेणी मे आ पहुँचे थे ॥१२३-१२५॥ वहाँ भी स्नान, ध्यान आदि समस्त निष्ठाओ को पूर्ण कर अपने घर मे प्राप्त हो गये थे। सागर के तट पर जाकर उन्होंने एक महोत्सव किया था। चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की पचमी में पुन. वे अपन गृह को प्राप्त हो गये थे ॥१२६॥ दूत ऊँटो पर बैठे हुए उनके क्षेमकरण के लिये बहुत उत्सुक थे। वैशाख मास की शुक्ल पक्ष की पचमी मे पुन अपने घर म आ गये थे ॥१२७॥ मलना और भूपति के यहाँ तथा घर-घर मे बडा महोत्सव हुआ था। इस तरह महान् उत्सव सम्पन्न करा कर ब्राह्मणो को धन का दान दिया था ॥१२८॥

॥ जयंतावतारवृत्तांतवर्णन ॥

चतुर्दशाब्दे कृष्णांशे यथा जातं तथा शृणु ।
जयन्तः शक्रपुत्रश्च जानकीशापमोहितः ।
कलौ जन्मत्वमापन्नः स्वर्णवत्युदरेऽवसत् ॥१
चैत्रशुक्ल नवम्यां च मध्याह्ने गुरुवासरे ।
स जातश्चन्द्रवदनो राजलक्षणलक्षितः ॥२
जाते तस्मिन्सुतश्रेष्ठे देवाः सर्षिगणास्तदा ।
इन्दुलोयं महीं जातो जयन्तो वासवात्मजः ।
इत्यूचुर्वचनं तस्मादिन्दुलो नाम चाभवत् ॥३
आह्लादो जातकर्मादीन्कारयित्वा शिशोर्मुदा ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ स्वर्णधेनुवृन्दं हयान्गजान् ॥४
इन्दुले तनये जाते द्विमासांते महीतले ।
योगसिंहस्तदागत्य स्वर्णवर्षं ददौ धनम् ॥५
नेत्रसिंह सुतं दृष्ट्वा मलनास्नेहसंयुता ।
पप्रच्छ कुशलप्रश्नं भोजयित्वा विधानतः ॥६
शतवृन्दाश्च नर्तक्यो नानारागेण संयुताः ।
तत्रागत्यैव ननृतुर्यत्र भूपसुतः स्थितः ॥७

इस अध्याय मे जयन्त के अवतार के वृत्तान्त का वर्णन तथा उस की इन्दुल नाम से ख्याति और इन्दुल के चरण का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—जब कृष्णांश की अवस्था का चौदहवाँ वर्ष हुआ था उस समय जो जिस प्रकार से हुआ था उसका अब श्रवण करो। जयन्त इन्द्र का पुत्र था और वह जानकीजी के शाप से मोहित होगया था। इसी से उसने कलियुग में जन्म ग्रहण किया था और वह स्वर्णवती के उदर में आकर वस गया था अर्थात् गर्भ में आगया था ॥१॥ चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि और गुरुवार के दिन मध्याह्न में वह चन्द्रमा के समान मुख वाला समुत्पन्न हुआ था जोकि राजा के समस्त लक्षणों से लक्षित था ॥२॥ उस श्रेष्ठ सुत के समुत्पन्न होने पर

उस समय मे ऋषिगणो के सहित देवगण ने यह इन्द्र का पुत्र जयन्त इन्दुल इस नाम से यहाँ भूमि पर उत्पन्न हुआ है ऐसा कहा था इसी से उसका इन्दुल नाम होगया था ॥३॥ आह्लाद ने बडी प्रसन्नता के साथ उसका जातकर्म आदि सस्कार कराकर ब्राह्मणो को स्वर्ण,धेनु अश्व और हाथियो का दान दिया था ॥४॥ इन्दुल पुत्र के उत्पन्न होने पर इस महीतल म दो मास के अन्त मे योगसिह ने वहा आकर स्वर्णवती को धन दिया था ॥५॥ नेत्रसिह के पुत्र को देखकर मलना स्नेह से परिपूर्ण होगई थी और उसे विधान पूर्वक भोजन कराकर उससे कुशल पूछा ॥६॥(एक सौ नर्त्तकियो के समूह ने नाना प्रकार के रागो से युक्त होकर वहा आकर नृत्य किया था जहा पर वह राजा का पुत्र स्थित था ॥७॥)

सप्तरात्रमुपित्वा स योगसिंहो ययौ गृहम् ।
षण्मासे च सुते जाते देवेन्द्र स्नेहकातर ॥८
पुत्रस्नेहेन त पुत्र स जहार स्वमायया ।
सहृत्य बालक श्रेष्ठमिन्द्राण्यै च समर्पयत् ॥९
स्नेहप्लुता शची देवी स्वस्तनौ तमपाययत् ।
देव्या दुग्ध स वै पीत्वा षोडशाब्दासमोभवत् ॥१०
इन्दु पीयूषभवनं गृह्णाति वपुषा स्वयम् ।
अत स इन्दुलो नाम जयन्तश्च प्रकीर्तित ।
स बाल स्वपितुर्विद्या पठित्वा श्रेष्टतामगात् ॥११
विनष्टे बालके तस्मिन्देवी स्वर्णवती तदा ।
रुरोदोच्चैस्तदा दीना हा पुत्र क्व गतोऽसि भो ॥१२
ज्ञात्वाह्लाद तया भूत दशग्रामे तथाविधे ।
रौद्र कालाहलो जातो रुदना च नृणा मुने ॥१३
आह्लाद स्वकुलं सार्द्ध निराहारो यतेंद्रिय ।
शारदा शरण प्राप्य स्त्रिरात्र तत्र चावसत् ॥१४

सात रात्रि पर्यन्त योगसिंह वहा पर निवास करके अपने घर को चला गया था। जब छै मास का पुत्र होगया तो देवेन्द्र स्नेह से कातर होगया था और अपने पुत्र के स्नेह के कारण माया

कर के उसने उस इन्दल का हरण कर लिया था। उस श्रेष्ठ बालक को सहृत करके वहाँ इन्द्राणी के लिये समर्पित कर दिया था ॥८-९॥ स्नेह से लुप्त होकर शची ने उसे अपने स्तनों को पिला दिया था। देवी शची के दुग्ध को पीकर वह बालक सोलह वर्ष के बालक के समान परिपुष्ट हो गया था।१०।वह स्वय वपु के द्वारा पीयूष के भवन इन्दु को ग्रहण करता है इसलिए जयन्त इन्दुल इस नाम से कहा गया है। वह बालक पिता की विद्या पढकर श्रेष्ठता को प्राप्त हो गया था ॥११॥ उस बालक के विनष्ट हो जाने पर उस समय देवी स्वर्णवती अत्यन्त दीन होकर उच्च स्वर से रो उठी थी—हा पुत्र ! तू कहा चला गया है ? ॥१२॥ उस प्रकार के दशग्राम मे ऐसा होगया—यह जान कर आह्लाद भी रोने लगा। इस तरह रोने वाले मनुष्यों का वहा पर अत्यन्त रौद्ररूप वाला हे मुने ! कोलाहल उत्पन्न होगया था ॥१३॥ आह्लाद अपने कुल के लोगों के साथ निराहार होकर यतेन्द्रिय होगया था और वह शारदा देवी के शरण मे गया तथा तीन रात्रि तक वहाँ पर ही निवास किया था ॥१४॥

तदा तुष्टा स्वय देवी वागुवाचाशरीरिणी ।
हे पुत्र स्वकुलैः सार्द्धं मा शुचस्त्व सुत प्रति ॥१५
इन्द्रपुत्रो जयन्तश्च स्वर्गलोकमुपागत ।
दिव्यविद्यां पठित्वा स त्रिवर्षान्ते गमिष्यति ॥१६
यावत्त्व भूतलेऽवात्सीस्तावत्स भूतले वसेत् ।
तत्पश्चात्स्वर्गति प्राप्य जयन्तो हि भविष्यति ॥१७
इत्युक्ते वचने देव्या निश्शोकास्ते तदाभवन् ।
दशग्रामपुर प्राप्य समूपुर्ज्ञान तत्परा ॥१८

तब देवी शारदा प्रसन्न हुई और बिना शरीर वाली वाणी ने कहा—हे पुत्र ! तू अपने कुल वालों के साथ सुत के लिये शोक मत कर ॥१५॥ यह इन्द्र का पुत्र जयन्त था जो इस समय मे स्वर्गलोक मे प्राप्त होगया है। वहा वह दिव्य विद्या को पढकर तीन वर्ष के अन्त मे जायगा ॥१६॥ इसके पश्चात् जब तक तू इस भूतल मे रहेगा तभी तक वह

भी भूतल में वास करेगा। इसके अनन्तर वह स्वर्गति प्राप्त कर पुन जयन्त के रूप में इन्द्र का पुत्र हो जायगा ॥१७॥ शारदा देवी के द्वारा कहे गये इन वचनों का श्रवण कर वे सब फिर शोक से रहित होगये थे। फिर दशग्रामपुर में जाकर सब ज्ञान में तत्पर होकर रहने लगे थे ॥१८॥

॥ चण्डिकादेवीवाक्यवर्णन ॥

इन्दुले स्वर्गसप्राप्ते ते वीरा शोककातरा ।
शारदा पूजयामासु सर्वलोकनिवासिनीम् ॥१
जप्त्वा सप्तशती स्तोत्र निसन्ध्य प्रेमभक्तित ।
ध्यानेनानन्दमापन्नास्तदा सप्तशतेहनि ॥२
सामन्तद्विजपुत्रश्च चामुण्डो नाम विश्रुत ।
सोऽष्टवर्षवया भूत्वा पूजयामास चण्डिकाम् ॥३
द्वादशाब्दे ततो जाते निर्चारजस्य पाठत ।
परीक्षार्थं तु भक्ताना साक्षान्मूर्तित्वमागता ॥४
कुण्डकेय च भो भक्ता पूरयामि च तामहम् ।
यूय तु मनसोपायैः कुरुध्व पूरणे मतिम् ॥५
सुखखानिस्तु वलवान्मधुपुष्पैस्तया फलै ।
कुण्डिका पूरयामास न पूर्णत्वमुपागता ।
वलखानिस्तथा मासैमूंलशर्मा तु रक्तकै ॥६

इस अध्याय में चण्डिका देवी के वाक्यों का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—इन्दुल के स्वर्ग में चले जाने पर वे समस्त वीर शोक से कातर होकर शारदा भगवती देवी की जोकि समस्त लोकों में ही निवास करने वाली है, पूजा करने लगे थे ॥१॥ तीनों सन्ध्यों में प्रेम और भक्ति के भाव से युत होकर सप्तशती स्तोत्र का जप करके ध्यान में वे आनन्द को प्राप्त होगये । तब सप्तम दिन में सामन्त द्विज का पुत्र चामुण्ड—इस नाम से विश्रुत था वह आठ वर्ष की अवस्था वाला होकर चण्डिका का पूजन करता था ॥२-३॥ जब

बारह वर्ष की अवस्था होगई तो तीनों चरित्रों के पाठ से भक्तों की परीक्षा के साक्षात् मूर्तित्व को प्राप्त होगई थी ।।४।। यह कुण्डिका है। हे भक्तगण ! मैं उसको पूरित करती हूँ। तुम लोग भी मनसोपायों के द्वारा इसके पूरण करने में मति करो ।।५।। बलवान् सुखखानि ने मधुपुष्पों से और फलों से इसको पूरित किया था किन्तु यह पूर्णत्व को प्राप्त नहीं हुई थी। बलखानि ने मांस से और मूल शर्मा ने रक्त से पूरित किया था तो भी यह पूर्णत्व को प्राप्त नही हुई थी ।।६।।

देवकी च तदा हव्यैश्चन्दनादिभिरर्चनैः ।
कुंडिकां पूरयामास न पूर्णत्वमुपगता ।।७
आह्लादश्चैव सर्वांगैरुदयः शिरसा स्वयम् ।
कुंडिकां पूरयामास तदा पूर्णत्वमागता ।।८
उवाच वचनं देवी स्वभक्तान्भक्तवत्सला ।
सुखखाने,भवान्वीरो भविष्यति सुरप्रियः ।।९
बलखानिमहावीरो दीर्घे काले स मृत्युभाक् ।
मूलशर्मा तु बलवान्रक्तबीजो भविष्यति ।।१०
देवकी च भवेद्देवी चिरकालं स्वलोकगा ।
आह्लादश्चैव कृष्णांशस्तयोर्मध्ये द्वयं वरम् ।
एकस्तुदे ववरंप्रोक्तोवलाधिक्यो द्वितीयकः ।।११
निष्कामोऽयं देवसिंहो मृतो मोक्षत्वमाप्नुयात् ।
इत्युक्त्वान्तर्दधे माता ते सर्वे तृप्तिमागताः ।।१२

देवकी ने उस समय हव्यों से—चन्दन आदि अर्चन की वस्तुओं से इस कुण्डिका को पूरित किया था किन्तु तब भी यह पूर्ण नहीं हुई थी।।७।। और आह्लाद ने अपने समस्त अंगों से और उदयसिंह ने स्वयं शिर से कुण्डिका को पूर्ण किया था और उस समय में यह पूर्णत्व को प्राप्त होगई थी ।।८।। अपने भक्तों पर प्यार करने वाली देवी ने भक्तों से कहा—हे सुखखानि ! आप सुरों के प्रिय वीर होंगे ।।९।। महान्वीर बलखानि दीर्घ समय में मृत्यु को प्राप्त होने वाला होगा। मूलशर्मा बलवान् रक्त बीज होगा ।।१०।। देवकी देवी होगी और चिरकाल तक

अपने लोक में गमन करने वाली होगी । आल्हाद और कृष्णांश उन दोनो के मध्य में दोनो ही श्रेष्ठ हैं । इनमें एक तो देव के समान कहा गया है और दूसरा बलाधिक्य वाला था ॥११॥ यह देवसिंह निष्काम था जो मृत होकर मोक्षत्व को प्राप्त हो गया था । यह कह कर वह माता अन्तर्धान होगई और वे सब तृप्ति को प्राप्त होगये थे ॥१२॥

॥ बलखानिविवाहवृत्तान्तवर्णन ॥

प्राप्ते सप्तदशाब्दे च कृष्णांशे तत्र चाभवत् ।
शृणु त्व मुनिशार्दूल दृष्ट यद्योगदर्शनात् ॥१
रत्नभानौ मृते राज्ञि मरुधन्वमहीपति ।
गजसेन स्तदा विप्र पृथ्वीराजभयातुर ॥२
आराध्य पावक देव यज्ञध्यानव्रतार्चनै ।
द्वादशाब्द सदाचार प्रेमभक्त्या ह्यतोषयत् ॥३
तदा प्रसन्नो भगवान्पावकीय हय शुभम् ।
ददौ तस्मै सुतौ चोभौ कन्या च गजमुक्तिकाम् ॥४
पावकास्ते हि चत्वार. समुद्भूता महीतले ।
अग्निवर्णा महावीरा सर्वलक्षणलक्षिता ॥५
अष्टादशवयोभूता: सर्वे ते मुनिपु गव ।
जातमात्रा देवसमा सर्वविद्याविशारदा. ॥६
अष्टादशाब्दवयसा सा कन्या वरवर्णिनी ।
दुर्गायाश्च वर प्राप्ता धर्मांशस्त्वा वरिष्यति ॥७

इस अध्याय में कृष्णांश की सत्रह वर्ष की अवस्था में बलखानि के विवाह के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । श्री सूतजी ने कहा—कृष्णांश की सत्रह वर्ष की अवस्था प्राप्त हो जाने पर वहां पर जो कुछ भी हुआ था उसको अब श्रवण करो । हे मुनि शार्दूल ! जो योग दर्शन से देखा था ॥१॥ रत्नभानु राजा के मृत हो जाने पर मरुधन्व का राजा गजसेन उस समय हुआ था । हे विप्र ! वह पृथ्वीराज के भय से बहुत

आतुर रहता था ।।२।। उसने पावक (अग्नि) देव की यज्ञ-ध्यान व्रत और अर्चनो के द्वारा आराधना की थी और बारह वर्ष पर्यन्त सदाचार से युक्त रह कर प्रेम एव भक्ति के भाव से उस देव को प्रसन्न कर लिया था ।।३।। उस समय पावक भगवान् ने उस पर प्रसन्न होकर एक पावकीय शुभ अश्व उसको दिया या तथा दो पुत्र और एक गज मुक्तिका कन्या दी थी ।।४।। वे चारो ही पावक थे जोकि इस महीतल मे समुत्पन्न हुए थे । ये अग्नि के समान वर्ण वाले—महान् वीर और समस्त शुभ लक्षणो से लक्षित थे ।।५।। हे मुनि श्रेष्ठ ! ये सब अठारह वर्ष की अवस्था वाले थे और उत्पन्न होते ही देवता सदृश एव समस्त विद्याओ के महापण्डित थे ।।६।। वह वर वर्णिनी कन्या अठारह वर्ष की अवस्था वाली थी । उसने दुर्गा देवी से यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि धर्मांश तेरा वरण करेगा ।।७।।

शार्दूलवशी स नृप कृतवान्वै स्वयवरम् ।
नानादेश्या नृपा प्राप्ता सुतायां रूपमोहिता ।।८
मार्गशीर्षे सिते पक्षे चाष्टम्या चद्रवासरे ।
तस्या स्वयवरश्चासीत्सानृपान्प्रति चाययौ ।।९
विद्युद्वर्णं मुख तस्याश्चचलायास्तथागतम् ।
दृष्ट्वा मुमोह धर्माशो बलखानिर्महीपति ।।१०
सापि दृष्ट्वा च त वीर मुमोह गजमुक्तिका ।
बुद्धा तस्मै ददौ माला वैजयती शुभानना ।।११
तारकाद्याश्च भूपाला सर्वशस्त्रास्त्रसयुता ।
ररधु सर्वतो वीर ते बलात्कन्यार्काथिनः ।।१२
तथाविधान्नृपान्दृष्ट्वा भूपान्पचशतान्बली ।
स शीघ्र खड्गमुत्सृज्य शतभूपशिरास्यहन् ।।१३
सर्वतो वध्यमान त बलखानि स तारक ।
तद्भुजाभ्या ददौ खड्ग स तदग्रे द्विधाभवत् ।।१४

शार्दूल वश मे होने वाले उस राजा ने स्वयवर किया था । उस समय उस सुता के रूपलावण्य से मोहित होकर अनेक देशो के राजा

वहा प्राप्त हुए थे ॥८॥ मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष मे अष्टमी तिथि मे चन्द्रवार के दिन उस कन्या का स्वयम्वर हुआ था और वह समस्त राजाओ की ओर वरण करने के लिये वहा आई थी ॥९॥ उस चंचला का मुख विद्युत के वर्ण के समान था । उस का आगमन देख कर ही धर्मांश महीपति बलखानि मोहित होगया था ॥१०॥ उस गजमुक्ता ने भी बलखानि को देखा और उस वीर पर वह भी मोहित होगई थी । उस शुभानना ने उसे समझ कर वैजयन्ती माला जोकि वरण करने के लिए वहा वह लेकर आई थी उसके गले मे डालदी थी॥११॥तारक आदि जो भूपाल वहा थे जोकि समस्त शस्त्र और अस्त्रो से सयुक्त थे उन्होने उस वीर को सभी ओर से रोक लिया था क्योकि वे सब बलपूर्वक उस कन्या को लेने की इच्छा वाले होरहे थे ॥१२॥ उस बली ने जब देखा कि ये पाँच सौ राजा मुझ से इस गजमुक्ति को बलात् छीन लेने के इच्छुक हो रहे हैं तो उसने शीघ्र ही अपना खग निकालकर एक सौ राजाओ के मस्तक काट डाले थे ॥१३॥ सब ओर से बध्यमान उस बलखानि को उस तारक ने उसकी भुजाओ मे खग देदिया था और वह उसके अ ग मे दो होगया था ॥१४॥

महीराजसुतो ज्येष्ठो दृष्ट्वा खड्गं तथा गतम् ।
अपोवाह रणाच्छूरस्तत्पश्चात्ते नृपा ययुः ॥१५
पराजिते नृपबले बलखानिर्महाबल ।
ता कन्या शिविकारूढा स्वगेह सोऽनयद्बली ॥१६
ता गच्छती सुता दृष्ट्वा गजसेनो महीपति. ।
महीपत्याज्ञया प्राप्तो ज्ञात्वा त क्षत्रियाधमम् ॥१७
जघुकघ्न महावीरं मायया तममोहयत् ।
जाते निद्रातुरे वीरे दुर्गायाः शापमोहिते ॥१८
निगडैस्त बबधाशु दृढैर्लोहमयै रुषा ।
लोहदुर्गं च संप्राप्य ग्रामरूपं महीपतिः ॥१९
चाडालाश्च समाहूय कठिनास्तत्रवासिनः ।
वधायाज्ञापयामास तस्य दंडरुजेश्वदा ॥२०

ते रौद्रास्तं समाबध्य ताडयामासुरूर्जिताः ।
तत्ताडनात्तदा निद्रा तत्रैव विलयं गता ॥२१

महीराज के पुत्र ने जोकि ज्येष्ठ था उस प्रकार से गये हुए खंग को देखकर रण से वह शूर अपोवाहित होगया था और इसके पश्चात् वे राजा भी चले गये थे ॥१५॥ समस्त नृपों के बल के पराजित हो जाने पर महान् बलवान् बलखानि ने उस कन्या को शिविका में आरूढ़ कराकर अपने घर में ले गया था ॥१६॥ उस कन्या को जाती हुई देख कर महीपति गजसेन महीपति की आज्ञा से उसे क्षत्रियों में अधम जान कर वहा आया था ॥१७॥ जम्बुक के मारने वाले उस महावीर को माया से मोहित कर दिया था। दुर्गा के शाप से मोहित उस वीर के निद्रा से आतुर हो जाने पर क्रोध से लोहे की निगड़ों से उसे शीघ्र ही बाँध दिया था। महीपति ने ग्रामरूप लोहदुर्ग को उसे पहुँचा दिया था ॥१८-१९॥ और वहा पर रहने वाले कठिन चाण्डालों को बुलाकर अनेक प्रकार के दण्डों के साथ उसके वध करने की आज्ञा देदी थी ॥२०॥ उन महारौद्र ऊर्जितों ने उसे अच्छी तरह से बाँधकर पीटना शुरु कर दिया था। उनके उस ताड़न करने से उस समय वह निद्राविलीन होगई थी ॥२१॥

दृष्ट्वा ततस्तु चंडालान्बलखानिरताडयत् ।
तलमुष्टिप्रहारेण चांडाला मरणं गताः ॥२२
मृते पंचशते रौद्रे तच्छेषा दुद्रुवुर्भयात् ।
कपाटं सुदृढं कृत्वा नृपांतिकमुपाययुः ॥२३
स नृपः कारणं ज्ञात्वा हस्तवद्धो महावली ।
उवाच तत्र गत्वासौ वचनं कार्यतत्परः ॥२४
भवान्महाबलो वीर चांडालैर्बंधनं गतः ।
दस्युभिर्लुंठितस्तत्र निद्रावश्यो वनं गतः ॥२५
मत्सुता भवने प्राप्ता दिष्ट्या त्वं जीवितं गतः ।
उद्वाह्य मत्सुतां शीघ्रं स्वगेहं यातुमर्हसि ।
इति श्रुत्वा प्रियं वाक्यं तं प्रशस्य तथाकरोत् ॥२६

मडपे वेदकर्माणि विवाहार्थं चकार स ।
जाताया मडपार्चाया पत्रमाह्लादहेतवे ॥२७
तदाज्ञया लिखित्वासौ गजसेनोऽग्निसेवक ।
उष्ट्रारूढ समाहूय शीघ्र पत्रमचोदयत् ॥२८

इसके पश्चात् वलखानि ने उन चाण्डालो को देख कर उन्हे पीटा था । मुष्टि के तल प्रहारो से ही वे चाण्डाल मर गये थे ॥२२॥ पाँच सौ रौद्रो के मरने पर जो शेप रह गये थे वे सब भय से भाग गये थे, किवाडो को दृढ बन्द करके राजा के पास पहुच गये थे ॥२३॥ उस राजा ने कारण को जान कर उस महान् बली ने हस्त बद्ध होकर काय मे तत्पर वहाँ जाकर यह वचन बोला—हे वीर ! आप महान् बल वाले हैं चाण्डालो के द्वारा बन्धन को प्राप्त हुए थे दस्युओ के द्वारा लूटे भी गये थे और निद्रावश्य होकर वन मे गये थे । मेरी पुत्री तो भवन मे प्राप्त हो गई, बडी प्रसन्नता की बात है कि आप जीवित हैं । अब आप मेरी पुत्री से शीघ्र विवाह करके अपने घर मे जाने के योग्य होते हैं । इस प्रकार के इन परम प्रिय वचनो को सुन कर उसकी प्रशसा कर वैसा ही किया था ॥२४ २६॥ उसने एक मण्डप का निर्माण करा के उसमे विधिवत् विवाह के समस्त कम किये थे । मण्डप की अर्चा हो जाने पर आह्लाद के लिये उसकी आज्ञा से एक पत्र लिख कर इस अग्नि के सेवक गजसेन ने एक उष्ट्रारूढ को बुला कर शीघ्र ही उस पत्र को प्रेरित कर दिया था ॥२७ २८॥

वलखानेर्विवाहोऽत्र भवासैं यसमन्वित ।
सप्राप्य योग्यद्रव्याणि भुक्त्वा त्व तृप्तिमावह ॥२९
इत्युक्ते निशि जाताया वलखानिमहाबल ।
भोजन कृतवास्तत्र विषजुष्ट नृपार्पितम् ॥३०
गरल तेन सभुक्त न ममार वराच्छुभात् ।
तत काले च सप्राप्ते दृष्टवा मोहत्वमागतम् ।
पनबवध निगडैस्ताडयामास वेतस ॥३१

विपदोषमसृग्द्वारान्निस्सृतं सर्वदेहतः ।
तदा बुबोधबलवान्भूपतिं प्राह नम्रधीः ॥३२
राजन्किमीदृशं जातं त्वत्सैन्यं ताडने रतम् ।
स आह भो महावीर मत्कुले रीतिरीदृशी ।
यातनां प्रथमं प्राप्य तदनूद्वाहितो भवेत् ॥३३
इत्युक्ते सति भूपाले गजमुक्ता समागता ।
पितरं प्राह वचनं कोऽयं तत्ताडने गतः ॥३४
नृपः प्राह सुते शीघ्रं याहि त्वं निजमंदिरे ।
कृपिकरोयमायातो द्रव्यार्थं ताडने गतः ॥३५

यह बलखानि का विवाह है अतः आप सैन्य से युक्त होकर यहाँ प्राप्त होवें और द्रव्यों का उपभोग करके आप तृप्ति को प्राप्त करें ॥२९॥ इस प्रकार कहने पर रात्रि हो जाने पर बलखानि ने भोजन वहाँ किया था जो राजा के द्वारा समर्पित किया गया था और विष से जुष्ट था ॥३०॥ उसने गरल को भी खा लिया था किन्तु शुभ वर के होने के कारण से वह मरा नही था । इसके पश्चात् काल के आने पर मोहत्व को प्राप्त हुए उसको देख कर पुनः निगड़ों से उसे बाँध लिया था और बेतों से पीटा था ॥३१॥ वह जो खिलाये हुए विष का शेष था वह रक्त के द्वारा समस्त शरीर से निकल गया था। तब वह बलवान् ज्ञान वाला हो गया और नम्र बुद्धि वाला होकर राजा से बोला ॥३२॥ हे राजन् ! यह इस तरह कैसे हुआ कि तुम्हारे सैनिक मुझे ताड़न करने में रत हो रहे थे ? उसने कहा—हे महावीर ! मेरे कुल में इसी तरह की रीति होती है । पहिले पूर्ण यातना प्राप्त करके ही पीछे उद्वाहित हुआ करता है ॥३३॥ भूपाल के इस प्रकार से कहने पर वहाँ गजमुक्ता आ गई थी और वह अपने पिता से बोली—यह कौन था, जो उसके ताड़न करने में गया था ? राजा ने कहा—हे सुते ! तुम शीघ्र अपने मन्दिर में जाओ । यह कृपिकर आया था जो कि द्रव्य के लिये ताड़न मे गया था ॥३५॥

इति श्रुत्वा वचो घोर बलखानिर्महाबलः ।
छित्वा तद्व घन घोर खड्गहस्तः समाययौ ॥३६
शूरान्पचशत त च रुद्ध्वा शस्त्रै. समतत. ।
प्रजघ्नतस्तु तान्सर्वान्बलखानिर्व्यनाशयत् ॥३७
गजसेन सुतो ज्येष्ठ सूर्यद्युतिरुपागतः ।
बद्ध्वा पुनस्त बलिन गर्तमध्ये समाक्षिपत् ॥३८
तथा गत पति दृष्ट्वा गजमुक्ता सुदु.खिता ।
निशि तत्र गता देवी दत्त्वा द्रव्य तु रक्षकान् ॥३९
पति निष्काश्य रुदती व्यजन पतये ददौ ।
रात्रौरात्रौ तथा प्राप्ता व्यतीत पक्षमानकम् ॥४०
एतस्मिन्न तरे वीरआह्लाद सप्तलक्षकै. ।
सैन्यै सहाययौ शीघ्र श्रुत्वा तत्रैव कारणम् ॥४१
बलखानिर्गतो गर्ते रुरोध नगरी तदा ।
गजै षोडशाहस्त्रैर्गजसेनो रण ययौ ॥४२

इस प्रकार के घोर वचन को महाबली बलखानि ने सुना और उसके उस घोर बन्धन को काट कर वह हाथ मे खड्ग ले कर वहाँ आ गया था ॥३६॥ फिर पाँच सौ शूरो ने उसे अवरुद्ध किया जो कि चारो ओर से शस्त्रो से युक्त थे तब बलखानि ने उन्हे मारते हुए सबको विनष्ट कर दिया था ॥३७॥ गजसेना का ज्येष्ठ पुत्र सूर्यद्युति आ गया था। उस बली को बाँध कर फिर एक गर्त्त के मध्य मे डाल दिया था ॥३८॥ उस प्रकार की दशा मे रहने वाले अपने पति को देख कर गजमुक्ता अत्यन्त दु खित हुई थी। यह देवी रात्रि मे वहाँ पहुँची और रक्षको को द्रव्य देकर रोती हुई उसने अपने पति को निकाल कर उसे एक व्यजन दिया था। इस तरह वह रात-रात मे वहाँ प्राप्त हो जाया करती थी। उसे इस प्रकार से एक पक्ष व्यतीत हो गया था ॥३९-४०॥ इस बीच मे आह्लाद सात लाख सेना के साथ वहाँ उस कारण को सुन कर शीघ्र आगया था ॥४१॥ उसने यह सुनाकि बलखानि गर्त्त मे पड़ा है

तो उस नगरी को उसी समय घेर लिया था। सोलह सहस्र गजों की सेना को लेकर गजसेन युद्ध करने गया था ॥४२॥

त्रिलक्षैश्च हयैः सार्द्धं सूर्यद्युतिरुपाययौ ।
कांतामलस्तदा प्राप्तस्त्रिलक्षैश्च पदातिभिः ॥४३
तयोश्चासीन्महद्युद्धमहोरात्रं हि सैन्ययोः ।
रक्षिते तालनाद्ये च गजसेनाद्यके तदा ॥४४
द्वितीयेऽह्नि समायाते गजसेनो महाबलः ।
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा पावकीयं समारुहत् ।
दाहयामास तत्सैन्यं तालनाद्यैश्च पालितम् ॥४५
भस्मीभूतं बलं दृष्ट्वा तालनः शत्रुसम्मुखे ।
गत्वा भल्लेन भूपालं ताडयामास वेगतः ॥४६
मूर्छितं नृपमाज्ञाय सूर्यद्युतिरुपाययौ ।
पावकीयं समारुह्य दाहयामास तालनम् ॥४७
एतस्मिन्नंतरे शूरौ देवौ चाह्लादकृष्णकौ ।
बबन्धतू रुपाविष्टौ सूर्यद्युतिमरिंदमम् ॥४८
सुबद्धं भ्रातरं ज्ञात्वा हयं कांतामलोऽरुहत् ।
देवसिंहं च संमोह्यकृष्णांशं प्रति सोऽगमत् ।
गृहीत्वा त स कृष्णांशं तस्य तेजः समाहरत् ॥४९

तीन लाख अश्वों के साथ वहाँ सूर्यद्युति भी आ गया था। उसी समय में कान्तामल भी तीन लाख पदातियों को लेकर प्राप्त हो गया था ॥४३॥ उन दोनों सेनाओं का एक अहोरात्र तक महान् युद्ध हुआ था। तालनादि के और गजसेनादि के रक्षित रहने पर वह ... युद्ध था ॥४४॥ द्वितीय दिन के होने पर महाबलवान् गजसेन ने अपनी सेना को भग्न देख कर पावकीय पर समारोहण किया था। तालनादि के द्वारा जो रक्षित सेना थी, उसको उन्होंने जला दिया था ॥४५॥ शत्रु के सम्मुख में भस्मीभूत सेना को देख कर तालन ने जाकर भाले से भूप पर प्रहार किया था। राजा को मूर्छित जान कर वहाँ सूर्यद्युति आ गया था। इसने पावकीय पर समारूढ़ होकर तालन को दग्ध किया

ा। इसी बीच में देवशूर आह्लाद कृष्णांश ने रोष से आविष्ठ होकर
रिदम नृपद्युति को बाँध लिया था। भाई को सुबद्ध जान कर चाम्ता
न हय पर समारूढ हो गया था। उसने देवसिंह को सम्मोहित करके
र वह कृष्णांश के प्रति गया था। उसने उस कृष्णांश को पकड़ कर
का तेज समाहृत कर लिया था ॥४६-४९॥

सप्तलक्षबलं सर्वं वह्निभूतमभूत्तदा ।
अमरत्वात्सआह्लादस्तदा तु समजीवयत् ॥५०
गजसेनस्यार्द्धसैन्यं तैश्च सर्वविनाशितम् ।
विजयं नृपतिः प्राप्य हर्षितो गृहमाययौ ॥५१
वह्निभूतं च कृष्णांशं दृष्ट्वाह्लादः सुदुःखितः ।
दुर्गां देवीं स तुष्टाव मनसा रणमूर्द्धनि ॥५२
तदा देवी वचः प्राह वत्स ते पुत्र एव च ।
स्वर्गादागत्य सर्वाणि पुनरुज्जीवयिष्यति ॥५३
इत्युक्ते वचने देव्या इन्दुलो वासवाज्ञया ।
[illegible] ब्दसमं रूपं धृत्वा विद्याविशारदः ।
तमारुह्य हयं तत्र समागतः ॥५४
वध[illegible]दुद्धृता वाहा मेघा इव समन्ततः ।
पावकं शमयामासुस्त्रयस्ते देवतोपमाः ॥५५
शमीभूते तदा वह्नौ स्वमुखात्सहयो मुदा ।
लालामुद्वाहयामास तया ते जीवितास्तत ॥५६

इस समय में वह जो सात लाख सेना थी वह सब वह्निभूत हो गई
। तब अमरत्व से उस आह्लाद ने जीवित किया था ॥५०॥ गजसेन
आधी सेना उन्होंने विनाशित कर दी थी। नृपति विजय पाकर
र्षित होकर घर में आ गया था ॥५१॥ कृष्णांश को वह्निभूत देख कर
ह्लाद अत्यन्त दुःखित हुआ था। उसने रण के मूर्द्धा में ही मन से
दुर्गा देवी की स्तुति की थी ॥५२॥ तब देवी ने यह वचन कहा—हे पुत्र !
रा पुत्र स्वर्ग से आकर इनको फिर जीवित कर देगा ॥५३॥ देवी के
रा इतना कहने पर इन्द्र की आज्ञा से वह इन्दुल बारह वर्ष की

अवस्था वाले के समान रूप धारण कर विद्याओं मे विशारद वह बडवामृत अश्व पर सवार होकर वहाँ आ गया था ॥५४॥ उसके अङ्ग से वाह मेघो के समान चारो ओर से उद्धृत हुए थे। उन तीनो देवो मे समान ने पावक को एकदम शान्त कर दिया था ॥५५॥ उस समय में पावक के शमन हो जाने पर उस अश्व ने अपने मुख से लार निकाली थी उससे वे सब मृत हुए जीवित हो गये थे ॥५६॥

जीविते सप्तलक्षे तु शमीभूते हि पावके ।
गजसेनः सुताभ्यां च प्रयातः सर्वतोदिशम् ॥५७
लक्ष सैन्य तु ये शिष्टास्ते सर्वेऽपि भयातुरा ।
दुद्रु वुर्भार्गवश्रेष्ठदिव्य रूपत्व धारिण. ॥५८
येचित्सन्यासिनो भूत्वा केचिद्वै ब्रह्मचारिण· ।
जीवत्व प्राप्तवन्तस्ते तथान्ये सक्षय गता ॥५९
बद्ध्वा तान्गजसेनादीस्त्रीञ्छूरान्स च तालन ।
कृष्णांशेन समायुक्त इन्द्रदुर्गं समाययौ ॥६०
बलखानि च निष्कास्य तालनस्तदनतरम् ।
पृष्टवान्कारण सर्वं श्रुत्वा तन्मुखतो वच. ।
तान्वीरांस्ताडयामास वेतसै. स्तम्भबन्धनै. ॥६१
गजमुक्ताज्ञया विप्र सेनापतिरुदारधी· ।
तालनस्तान्समुत्सृज्य विवाहार्थं समाययौ ।
बलखानिर्मयारूढो गजमुक्ताच मडपे ॥६२
गजसेनस्तदादि यैर्भोजनै स्तानभोजयत् ।
निवास्य सोऽद्दुर्गं तानापाट. सुहृद्धरा ।
स्वागारान्स सम्प्राप्य स्वय स्वपुर ययौ ॥६३

रूप धारण करके उन्होने प्राण बचाये थे। अन्य जो थे वे सब क्षय को प्राप्त हो गये थे ॥५९॥ तब तालन ने उन गजसेन आदि तीन शूरों को बाँध कर कृष्णांश से समायुक्त होकर इन्द्र दुर्ग में आ गये थे। बलखानि को निकाल कर उसके बाद में समस्त कारण पूछा और उसे उसके मुख से सुनकर उन वीरों को स्तम्भो से बाँध कर बेतो से पीटा था। हे विप्र ! गजमुक्ता की आज्ञा से उदारधी सेनापति ने उनको छोड़ कर विवाह के लिये वह आ गया थे। बलखानि अश्व पर समारूढ था और *गजमुक्ता मण्डप में थी ॥६०-६२॥ गजसेन ने फिर दिव्य भोजनों से* उनको भोजन कराया था और लोह दुर्ग में उनको ठहरा कर सुदृढ किवाड़ लगवा दिये थे। एक लाख शूरों को वहाँ संस्थापित करके स्वयं रुद्रपुर को चला गया था ॥६३॥

ते रात्रौ लोहदुर्गेषु हृ पित्वा यत्नतोबलात् ।
प्रभाते च कपाटे न द्वार दृष्ट्वा तदाब्रवीत् ।
द्वारमुद्घाटयाशु त्व नो चेत्प्राणास्त्यजिष्यसि ॥६४
इति सेनापति श्रुत्वा लक्षशूरान्समादिशत् ।
नानायत्नैश्च हन्तव्या शत्रवो भयकारिण ॥६५
इति श्रुत्वा तु ते शूरा शतघ्न्यस्तै सुरोपिता ।
एकैक क्रमशो जघ्नुर्वृंद ते वैरतत्परा ॥६६
हते दशसहस्रे तु कृष्णांशो बिंदुल हयम् ।
समारुह्य जघानाशु स्वखड्गे महद्बलम् ॥६७
हतशेषा भयार्ताश्च सहस्राशीतिसम्मिता ।
इन्द्रदुर्गं प्रति प्राहुर्यथा जातो बलक्षय ॥६८
श्रुत्वा भयातुरो राजा स्वसुताभ्या समन्वित ।
गजमुक्ता पुरस्कृत्य बहुद्रव्यसमन्विताम् ।
स्वपाप क्षालयामास दत्त्वा कन्या विधानत ॥६९
षोडशोष्ट्राणि स्वर्णानि गृहीत्वाल्हाद एवस ।
ययौ स्वगेह महित पुत्रभ्रातृसमन्वित ॥७०

वे रात्रि मे उस लोह-दुर्ग मे रहकर यत्न बल से प्रभात होने पर द्वार को कपाट से रुद्ध देख कर उस समय बोले—जल्दी से द्वार को खोल दो नही तो प्राणो को त्याग देगा ॥६४॥ सेनापति ने यह सुन कर एक लाख सेना को आज्ञा दी, अनेक प्रकार के यत्नो से ये भयकारी शत्रु मार देने चाहिये ॥६५॥ यह सुन कर उन शूरो ने तोपें वहाँ लगा दी थी। उन्होने एक एक वृन्द को क्रम से मार डाला था, क्योकि वे वैर मे पूर्णतया तत्पर थे ॥६६॥ जब दस सहस्र हत हो गये तो कृष्णांश विन्दुल अश्व पर समारूढ होकर उसने अपने खड्ग से उस विशाल सेना का हनन शीघ्र ही कर दिया था ॥६७॥ जो मरने से बच गये थे, सहस्र अशीति प्रमाण वाले इन्द्र-दुर्ग के प्रति चले गये और वहाँ सब कहा कि कैसे इतनी बडी सेना का क्षय हो गया था ॥६८॥ यह सुन कर राजा भय से आतुर हो गया था, अपने दोनों पुत्रो के साथ समन्वित होकर बहुत से धन से युक्त गजमुक्ता को आगे करके विधानपूर्वक कन्या का दान करके उसने अपने किये हुए पाप का क्षालन किया था ॥६९॥ उस आह्लाद ने सोलह ऊँट सुवर्ण ग्रहण किया था और फिर पुत्र-भाई से सर्व वश होकर पूजित हो अपने घर को चला गया था ॥७०॥

सम्प्राप्ते गेहमाह्लादे देवी स्वर्णवती स्वयम् ।
इन्दुलं स्वाङ्कमारोप्य ललाप करुणं बहु ॥७१
मृताहं च त्वया पुत्र पुनरुज्जीविता खलु ।
धन्याहं कृतकृत्यास्मि जयन्त तव दर्शनात् ॥७२
इति श्रुत्वेन्दुलो वीरो नत्वाह जननीं मुदा ।
अनृणं नाभिगच्छामि त्वत्तो मातः कदाचन ॥७३
सम्प्राप्तागतमाह्लादं राजा परिमलः सुधीः ।
यानानि वाहनादीनि विप्रेभ्यश्च ददौ धनम् ॥७४

आज सुफल हो गई हूं ॥७२॥ यह सुन कर वीर इन्दुल ने अपनी माता को सानन्द प्रणाम किया और कहा—हे माता ! मैं तुमसे अनृण कभी भी नहीं होऊँगा ॥७३॥ आह्लाद के घर पर आ जाने पर सुधी राजा परिमल ने बहुत से वाद्यों को बजवाया था और ब्राह्मणों को धन का दान दिया था ॥७४॥

॥ ब्रह्मानन्द का विवाह वृत्तान्त ॥

कृष्णांशेऽष्टादशाब्दे तु यथाजातं तथा शृणु ।
मृते कृष्णमुरारे तु भूपतौ रत्नभानुना ॥१
महीराजः सुदुःखार्तो लक्षचंडीमकारयत् ।
होमान्ते तु तदा देवी वागुवाच नृपं प्रति ॥२
वर्षेवर्षे तु ते सप्त भविष्यत्यगसम्भवाः ।
कुमाराः कौरवांशाश्च द्रौपद्यंशा सुता नृप ॥३
इत्युक्ते वचने तस्मिन्राज्ञी गर्भमथो दधौ ।
कर्णांशश्च सुतो जातस्तारको बलवत्तरः ॥४
द्वितीयाब्दे तथा जाते दुश्शासनशुभांशतः ।
नृहरिरिति विख्यातस्तृतीयाब्दे तु चाभवत् ॥५
उद्धर्षांशः सरदनो दुर्मुखांशस्तु मर्दनः ।
विकर्णांशः सूर्य्यकर्मा भीमश्चांशो विविंशते ॥६
वर्द्धनश्चित्रवाणांशो वेला तदनु चाभवत् ।
यथा कृष्णा तथासैव रूपचेष्टागुणैर्मुने ॥७

इस अध्याय में पृथ्वीराज के सप्त कौरवांश पुत्र की प्राप्ति के वृत्तान्त का वर्णन तथा ब्रह्मानन्द के विवाह का वर्णन किया जाता है । श्रीसूतजी ने कहा—अब उस कृष्णांश के अठारहवें वर्ष के होने पर जो कुछ हुआ था उसका श्रवण करो । रत्नभानु के द्वारा कृष्ण कुमार भूपति के मृत हो जाने पर सुदुःखार्त महीराज ने लक्ष चण्डी का अनुष्ठान कराया था । होम हो जाने के अन्त में उस समय राजा से देवी ने यह

वचन कहे थे। देवी ने कहा—वर्ष-वर्ष में सात अंश से सम्भूत कुमार होंगे। हे नृप! वे कौरवांश और द्रौपद्यंश पुत्र होंगे ॥१-३॥ उस के इस वचन के कहने के बाद रानी ने गर्भ को धारण किया था। अधिक बलशाली कर्णांश पुत्र तारक समुत्पन्न हुआ था ॥४॥ द्वितीय वर्ष के होने पर दुश्शासन के शुभांश से नृहरि इस नाम से विख्यात हुआ था। तृतीय वर्ष के होने पर उद्धर्षांश सरदन—दुर्मखांश मर्दन—विकर्णांश सूर्य वर्मा—और भीमांश विविंशत उत्पन्न हुए ॥५-६॥ चित्रवाणांश विवर्द्धन और इसके पीछे वेला समुत्पन्न हुई थी। जैसी कृष्णा थी बिल्कुल उसी तरह की। हे मुने! रुप लावण्य—चेष्टा और गुण गण से यह हुई थी ॥७॥

भुवि तस्या च जाताया भूकम्पो दारुणोऽभवत् ।
अट्टाट्टहासमशिव चामुंडा खे चकार ह ।
रक्तवृष्टि पुरे चासीद स्थिशर्करया युता ॥८
ब्राह्मणाश्च समागत्य जातकर्मादिका क्रियाम् ।
कृत्वा नाम तथा चक्रे शृणु भूमिप साक्षरम् ॥९
इला च शशिनो माता विकल्पेताऽभवद्भुवि ।
तस्माद्वेलेति विख्याता कन्येय रूपशालिनी ॥१०
जाताया सुताया स पिता विप्रेभ्य उत्तमम् ।
ददौ दान मुदा युक्तो वासासि विविधानि च ॥११
द्वादशाब्दवय प्राप्ते सा सुता वरवर्णिनी ।
उवाच पितर नम्रा शृणु त्व पृथिवीपते ॥१२
मडपे रक्तधाराभिर्यो मा सस्नापयिष्यति ।
द्रौपद्या भूषण दाता स मे भर्ता भविष्यति ॥१३
स्वर्णपत्रे तदा राजा पत्र वेलामखोद्भवम् ।
लिखित्वा तारक प्राह त्वमन्वेषय तत्पतिम् ॥१४

इस भूमण्डल में जब उसने जन्म ग्रहण किया था उस समय में एक महादारुण भूकम्प हुआ था और चामुण्डा देवी ने आकाश में अशिव अट्टाट्टहास किया था। पुर में रक्त की वृष्टि हुई थी जोकि अस्थियों की

शकरा से युक्त थी ॥१८॥ ब्राह्मणा न आकर उसकी जाति कर्म आदि क्रिया को सम्पन्न करके उसका नामकरण किया था। हे भूमिप ! इस का अक्षरो स सहित श्रवण करो। इला शची की माता थी जो विकल्प से भूमि स हुई थी इसलिये वेला इस नाम से विख्यात हुई है। यह रूप शालिनी तुम्हारी कन्या वेला नाम धारिणी है ॥८-१०॥ उस सुता के समुत्पन्न होन पर पिता ने ब्राह्मणो को बहुत उत्तमदान बडी प्रसन्नता क साथ दिया और अनेक प्रकार के वस्त्र दिये ॥११॥ जब उस वर-वर्णिनी कन्या की बारह वर्ष की अवस्था हो गई थी उसने विनम्र होकर पिता से कहा—हे पृथिवीपते ! सुनिये मण्डप म रक्त की धाराओ स जो मुझे सस्नापन करायेगा वह द्रौपदी के वस्त्रो को देन वाला मेरा स्वामी होगा ॥१२-१३॥ तब राजा ने सुवर्ण के पत्र पर वेला के मुख स निकला हुआ पद्य लिखवा कर तारक से कहा—इसका पति तुम ही खोजो ॥१४॥

साद्धं लक्षत्रय द्रव्य गृहीत्वा लक्षसैन्यक ।
नृपान्तर ययौ शीघ्र तारक पितुराज्ञया ॥१५
सिंधुस्थाने चार्यदेशे भूप भूप ययौ बली ।
न गृहीत नृपै कश्चित्तद्वाक्य घोरमुल्वणम् ।
महीपति स सम्प्राप्य मातुल तद्वचोऽब्रवीत् ॥१६
श्रुत्वा स आह भो वीर ब्रह्मानन्दो महाबल ।
स च वाक्य प्रगृह्णीयादाह्लादर्य सुरक्षित ॥१७
किं त्वया विदित नैव चरित्त तस्य विश्रुतम् ।
भवान्पड्वधु सहित कृष्णाशार्यैविवाहित ॥१८
त सर्वे वशगास्तस्य ब्रह्मानदस्य धीमत ।
नास्ति भूमडले कश्चित्तद्बलेन समो नृप ॥१९
इति श्रुत्वा ययौ तूर्ण तारक स्वबलै सह ।
तत्पद्य पर्ययित्वाग्र हस्तबद्धस्तदाभवत् ॥२०
कृष्णाशस्तु गृहीत्वाशु पद्य वाक्यमुवाच ह ।
अह विवाहयिष्यामि ब्रह्मानद नृपात्मजम् ॥२१

साथ मे तीन लाख धन और एक लाख सेना लेकर पिता की आज्ञा से तारक दूसरे राजाओ के पास शीघ्र चला गया था । वह बली सिन्धु देश मे और आर्य देश मे एक-एक राजा के पास गया था किन्तु राजाओ मे से किसी ने भी उसके परम घोर इस उल्बण वाक्य को ग्रहण नहीं किया था । वह फिर मातुल महीपति के पास प्राप्त होकर उस वचन को बोला था ।।१५-१६।। वह सुन कर बोला—हे वीर ब्रह्मानन्द महान् बलवान् है । वह इस वाक्य को ग्रहण कर लेगा क्योकि वह आह्लाद आदि से पूर्णतया सुरक्षित है ।।१७।। क्या आपको उसका विषय मे प्रसिद्ध चरित विदित नही है ? आप छै बन्धुओ के सहित कृष्णांशादि के द्वारा विवाहित हैं ।।१८।। वे सब धीमान् ब्रह्मानन्द के वश मे रहने वाले हैं,इस भूमण्डल मे उसके बल के समान कोई भी नृप नही है।।१९।। यह श्रवण कर तारक अपनी सेना के साथ तुरन्त ही गया था । उस पत्र को उसके आगे वह कर हाथ बाँधकर वहाँ उपस्थित हो गया था ।।२०।। कृष्णांश ने ग्रहण करके पत्र को पढ़ा और शीघ्र ही यह वचन बोला—मैं नृपोत्तम ब्रह्मानन्द को विवाहूँगा।।२ १।।

सैन्यैर्द्वादशलक्षैश्च सहितस्तालनो बली ।
आययौ देहलीग्रामे महीराजानुपालिते ॥२८

उस समय सभी चुप होगये थे, उस तारक ने द्विजो के साथ अभिषेक करके अपने घर को फिर वापिस लौट आया था ॥२२॥ माघ मास के शुक्ल पक्ष मे त्रयोदशी तिथि मे सुवासर के दिन मे वर और कन्या दोनो को शुभ लग्न विवाह की निश्चित हुई थी । लालन के साथ लक्षण सात लाख वल के सहित बली परिमल आदि के साथ महावती पुरी को प्राप्त होगया था ॥२३-२४॥ एक लाख सेना से युक्त और कृष्णाश से समन्वित आह्लाद, एक लाख सेना से युक्त सुरखानि के सहित बलखानि, लाख सेना से समन्वित और योग तथा भोग से युक्त नेत्रसिंह और रण को जीतने वाला वली बाल जिसके साथ दो लक्ष सेना थी—इन सबको मिलाकर बारह लाख सेना का स्वामी बलवान् तालन महाराज के द्वारा भली भांति सुरक्षित देहली नगर मे आकर प्राप्त हो गया था ॥२५-२७॥ तालन सिहिनी नाम की वडवा पर सस्थित था और इस प्रकार से बारह लाख सेना से वह सहित होकर आया था ॥२८॥

देवो मनोरथारूढोविदुलस्थ स कृष्णक ।
वडवामृतमासाद्य स्वर्णवत्या. सुतो गत ॥२९
रूपणश्च मरालस्थ आह्लादश्च पपीहके ।
बलखानि कपोतस्थो हरिणस्थोऽनुजस्तत. ॥३०
रणजिन्मलनापुत्र. सस्थितो हरिनागरे ।
पञ्चशब्दगजारूढो महावत्यधिपो गतः ॥३१
विमानवरमारुह्य षोवरैः शतवाहिकै ।
मणिमुक्तास्वर्णमय महस्र वाद्यकैर्युतम् ॥३२
अयुतश्च पताकैश्च वेत्रपाणिसहस्रकै. ।
सहस्रं शिविकाभिश्च पञ्चसाहस्रकै रथै ॥३३
शार्दूलैर्महिषोष्ट्रैस्तु तथा पञ्चसहस्रकै ।
सर्वतोऽम्वृत रम्य ब्रह्मानन्द समागत. ॥३४

श्रुत्वा कोलाहलं तेषां महीराजो नृपोत्तम ।
विस्मितः स बभूवात्र शिबिराणि मुदा ददौ ॥३५

मनोरथ नामक अश्वपर देव समारूढ था और कृष्णांश अपने बिन्दुल नामधारी अश्व पर समारोहण किये हुआ था। स्वर्णवती का पुत्र वडवामृत को प्राप्त करके वहां गया था ॥२९॥ रूपण करान नाम वाले अश्व पर सवार था और आह्लाद पपीहव पर संस्थित था—बलखानि कपोतक नाम वाले दिव्य वाहन पर था और उसका अनुज हरिण पर संस्थित था। मनना का पुत्र रणजित् हरिनागर नामक वाहन पर स्थित था। महावली का स्वामी पञ्च शब्द नामक गज पर समारूढ़ हो कर गया था ॥३०-३१॥ शतवाहिक धीवरों के सहित श्रेष्ठ विमान पर आरोहण करके जो कि मणि—मुक्ता और सुवर्ण से परिपूर्ण था तथा सहस्रों वाद्यों से युक्त था। दश सहस्र पताकाओं से एवं सहस्र वेत्र पाणियों से और एक सहस्र शिविकाओं से तथा पांच सहस्र रथों से युक्त था। महियों के द्वारा समूढ़ शकटों से युक्त जो कि पांच सहस्र संख्या में थे बहुत ही सब प्रकार से सुसंस्कृत एवं रमणीक विमान था उस पर ब्रह्मानन्द आया था। उनका सबका कोलाहल सुन कर नृपोत्तम महीराज बहुत ही विस्मित हुआ था और उसने बड़ी प्रसन्नता से उनको रहने के लिये वहां शिविर प्रदान किये थे ॥३२-३५॥

दुर्गद्वारि क्रियां रम्यां कृत्वा विधिविधानतः ।
द्रौपद्या भूषणं देहि वेलायै स तमब्रवीत् ॥३६
इन्दुलस्तु ययौ स्वर्गं वासवं प्रति चाब्रवीत् ।
द्रौपद्या भूषणं सर्वं देहि मह्यं सुरोत्तम ॥३७
कुबेरात्स समानीय दिव्यमाभूषणं ददौ ।
इन्दुलः प्रहरान्ते च प्राप्तः पित्रे न्यवेदयत् ॥३८
आह्लादस्तु स्वयं गत्वा वेलायै भूषणं ददौ ।
प्राप्ते ब्राह्मे मुहूर्ते तु विवाहस्तत्र चाभवत् ॥३९
सम्प्राप्ते प्रथमावर्ते तारकः खड्गमाददौ ।
आह्लादस्तं समासाद्य युयुधे बहुलीलया ॥४०

नृहरिस्तु द्वितीये च कृष्णांश प्रति चारुधत् ।
तथा सरदन वीर वलखानिरुपाययौ ॥४१
मर्दन सुखखानिस्तु चतुर्थावर्तकेऽरुधत् ।
रणजित्सूर्यवर्माण स भीम रूपणो बली ।
देवस्तुवर्धन वीर सप्तावर्ते क्रमाद्ययौ ॥४२

दुर्ग के द्वार पर पूर्ण विधि-विधान के साथ परम रम्य क्रिया को सम्पन्न करके उसने उससे कहा कि बेला के लिये द्रौपदी का भूषण दीजिए। उस समय इन्दुल स्वर्ग म गया और वहा इन्द्र से बोला कि हे सुरोत्तम ! द्रौपदी के समस्त भूषण मुझे प्रदान कीजिए ॥३६-३७॥ उस समय इन्द्र ने कुबेर से लाकर समस्त द्रौपदी के भूषण जो कि परम दिव्य थे प्रदान कर दिये। इन्दुल एक ही प्रहर के अन्त तक वहा से वापिस आ गया और वे समस्त आभूषण पिता को लाकर दे दिये थे ॥३८॥ आह्लाद ने स्वय जाकर बेला के लिये वे भूषण दिये थे। फिर ब्रह्म मुहूर्त प्राप्त होने पर वहा विवाह हुआ था ॥३६॥ प्रथम आवर्त अर्थात् फेरा समाप्त होने पर तारक ने अपना खड्ग ग्रहण किया था। उस समय आह्लाद उसके समीप म पहुँच गया और बहुत प्रकार से उसन युद्ध किया था ॥४०॥ द्वितीय आवर्त के होने पर नृहरि न कृष्णांश स युद्ध आरम्भ कर दिया। फिर बलखानि वीर सरदन स युद्ध करन लगा ॥४१॥ चतुर्थ आवर्त के समय म सुखखानि मर्दन से युद्ध कर रहा था। इस प्रकार से रणजित् सूर्यवर्मा से और बली रूपण भीम से तथा देव वीरवर्धन से क्रम से सप्त आवर्त म युद्ध के लिए गये थे ॥४२॥

घृतभूपाश्च घराशनसेनादिकास्तदा ।
लक्षणाद्या समाजग्मुर्मंडपे बहुविस्तृत ॥४३
भग्नभूत नृपवल राजा दृष्ट्वा रुषान्वित ।
महीराजो ययौ रुद्रो गज चारिभयकरम् ॥४४
शिरसा तान्नमिहार्दाश्छब्दवेधी नृपोत्तम ।
लक्षण प्रययौ शीघ्र वोढिनी हस्तिनी स्थितम् ॥४५

शिव मनसि सस्थाप्य जित्वा बद्ध्वा रुषान्वित ।
अगमत्तमुपगृह्य दर्शयामास त नृपम् ॥४६
श्रुत्वा परिमलो राजा कृष्णाश भीरुको ययौ ।
वृत्तान्त कथयामास चाह्लादादिपराजयम् ॥४७
अजित स च कृष्णाशो नभोमार्गेण मदिरम् ।
गत्वा जगर्ज बलवान्योगिन्यानददायक ॥४८
तदा स लक्षणो वीरस्त्यक्त्वा ब्रघनमुत्तमम् ।
विष्णु मनसि सस्थाप्य महीराज समाययौ ॥४९

इस प्रकार से लक्षणादि ने गजसेनादिक शतखड्गधारी भूपो को उस बहुत विस्तृत मण्डप मे आकर घेर लिया और युद्ध करने लगे ॥४३॥ राजा ने अपने बल को भग्न होता हुआ देखा तो रोष युक्त होकर वह अरियो के लिये महान् भयङ्कर हाथी पर आरूढ होकर महीराज स्वय गया था ॥४४॥ वह राजा शतभेदी था उसने नेत्रसिंह आदि को जीतकर वह बौद्धिनी नामक हस्तिनी पर स्थित लक्षण के पास शीघ्र ही पहुच गया था ॥४५॥ मन मे भगवान् शिव का ध्यान करके रोष से अन्वित हो उसे जीत कर बाध दिया और उसे पकड कर उस नृप को जाकर दिखा दिया था ॥४६॥ राजा परिमल ने सुनकर भीरुक हो कृष्णाश के पास गया था। वहा आह्लादि के पराजय का समस्त वृत्तात कह दिया था ॥४७॥ वह अजित कृष्णाश आकाश माग से मदिर मे आकर योगिनीयो को आनन्द का देने वाला वह बलवान् गर्जा था ॥४८॥ उस समय मे वीर लक्षण ने उत्तम ब धन को त्याग कर मन म विष्णु को सस्थापित करके महाराज के पास गमन किया था ॥४९॥

गृहीत्वा चागमा दोला स्वय शिविरमाप्तवान् ॥५०
एतस्मिन्न तरे सर्वे त्यक्त्वा मूर्च्छा समतत ।
खड्गयुद्धेन ताञ्जित्वा बद्ध्वा ताश्निगडैर्दृढै ॥५१
सान्वयाञ्छतभूपाश्च हृत्वा तद्रु धिरावहे ।
द्रौपदी स्नापयामासुर्वेलारूपा कलोत्तमाम् ॥५२

विवाहान्ते च ते सर्वे शिविराणि समाययुः ।
समुत्सृज्य सुतान्सप्त सुभोज्यैस्ते ह्यभोजयन् ॥५३
भुक्तवत्सु सुवीरेषु साहस्रास्ते सुतै सह ।
रुरुधुः सर्वतो जघ्नुरस्त्रशस्त्रैः समततः ॥५४
सहस्रशूरास्तान्हत्वा पुनर्बद्धा महाबलान् ।
शिविराणि समाजग्मुस्तेषां हास्यविशारदाः ॥५५
दशलक्षसुवर्णानि गृहीत्वा नृपतिर्बली ।
वेला नवोढामादाय गत्वा नत्वा तमब्रवीत् ॥५६

वहा उस अगम दोला का ग्रहण कर स्वय शिविर मे प्राप्त हो गया था ॥५०॥ इस बीच मे सब सभी ओर से मूर्च्छा का त्याग कर के खड्ग युद्ध से उन्हें जीत कर निगडो से दृढता से बाँधकर वर्गों के सहित वहा सौ भूपो को मारकर उनके रुधिर की धाराओ से कला मे उत्तम वेला के स्वरूप मे समास्थित उस द्रौपदी का स्नपन करा दिया ॥५२॥ विवाह हो जाने के अन्त मे वे सब अपने शिविरो मे आ गये थे । सात सुतो को वहाँ पर ही छोड आये जिनको कि सुभोज्यों से भोजन कराया गया था ॥५३॥ उन सुवीरों के भोजन कर लेने पर उन सुतो के साथ साहस्रो ने उन्हें रोक लिया था और सब ओर से शस्त्र-अस्त्रो के द्वारा उन्हें मारा था । उन सहस्र शूरो को मारकर और फिर महाबलो को बाँधकर उनके हास्य विशारद शिविरो मे चले आये थे ॥५४-५५॥ बली नृपति ने दशलाख सुवर्ण की मुद्रा ग्रहण करके और नवोढा वेला को लेकर जाकर नमस्कार करके उनसे कहा ॥५६॥

प्रद्योनसुत हे राजॅल्लक्षणोऽसौ महाबलः ।
मम पत्नीं समादाय दासीं कर्तुं मिमिच्छति ॥५७
इति श्रुत्वा परिमलः सर्वं भूपसमन्वितः ।
बहुधा बोधितश्चैव न बुबोध तदा नृपः ॥५८
तदा महाग्नौ वेला विललाप भृशं मुहुः ।
तच्छुत्वा च कृष्णांशः सहितो यक्षाग्निना ।
तामाश्वास्य तदा वेला नभोमार्गेण चाययौ ॥५९

लक्षण तर्जयित्वासौ गृहीत्वा चागमन्मुदा ।
नभोमार्गेण गेह त कृष्णाश समर्पयत् ॥६०
पुनस्त्यक्त्वा सप्त सुतान्सहितान्नृपतेस्तु ते ।
शपथ कारयामासुर्दंभ प्रति महाबला ।
उषित्वा दशरात्राते दध्युर्गंतुमनो मुने ॥६१
महीराजस्तु बलवान्गृहीत्वा भूपते पदौ ।
स उवाचाश्रुपूर्णाक्षस्तदा परिमल नृपम् ॥६२
महाराज वधूस्ते च वेलेय द्वादशाब्दिका ।
पितृमातृवियोग च न क्षमती तु बालिका ॥६३

हे प्रद्योत सुत ! हे राजन् ! यह लक्षण महान्बल वाला है। मेरी पत्नी लाकर यह दासी करना चाहता है ॥५७॥ यह सुनकर समस्त भूपो से समन्वित परिमल ने बहुत प्रकार से समझाया था किन्तु उस समय नृपति उसे समझ नही आई थी ॥५८॥ तब महासती बेला ने बहुत ही अधिक विलाप बार बार किया था। यह सुन कर बल खानि के साथ कृष्णाश ने उस बेला का समाश्वासन करके वह आकाश मार्ग से आया था ॥५९॥ इस ने लक्षण को डाटकर उसे लेकर वह प्रसन्नता से नभामाग से घर मे आगया था और फिर कृष्णाश ने उसे घर मे भेज दिया था ॥६०॥ फिर नृपति के सहित सात सुतो का त्याग करके महाबली दम्भ के प्रति शपथ कराई थी। दशरात्रि के पश्चात् वहाँ रह कर हे मुने ! उन्होने जाने का मन किया था ॥६१॥ बलवान महीराज ने भूपति के चरणो को ग्रहण कर आँसुओ से आखो को भर कर उस समय राजा परिमल से कहा ॥६२॥ हे महाराज ! यह आपकी वधू बेला केवल बारह वर्ष की है यह बच्ची माता पिता के वियोग को सहन करने म असमर्थ है ॥६३॥

तस्मात्ता त्व परित्यज्य गच्छ गेह सुखी भव ।
पतिर्योग्दा यदा भूतास्तदा त्वा पुनरेष्यति ॥६४
इत्युक्त्वा च वचो राजा स स्नेहादवमस्पृशत् ।

चूर्णीभूते परिमले चाह्लादस्तत्र दु खित ।
महीराज स पस्पर्श स राजा चूर्णतागतः ॥६५
भग्नास्थी भूपती चोभौ पावकीयैश्चिकित्सकै ।
सुखवतौ गृह प्राप्य कृतकृत्यत्वमागतौ ॥६६
मलना स्वसुत दृष्ट्वा प्राप्तमुद्वाहित गृहे ।
कृत्वोत्सव वहुविध विप्रेभ्यश्च ददौ धनम् ।
होम वै कारयामास चडिकाया प्रसादत ॥६७
सभाया लक्षणो वीरो यात्राकाले तमब्रवीत् ।
अगमा जयचन्द्राय मत्वाजित्वा हृता तु ताम् ।
नभोमार्गेण सप्राप्तौ योगिनौ च शिवाज्ञया ॥६८
जहतुस्तौ च माजित्वा तत्तीक्ष्णभयमोहितम् ।
अद्याह धात गच्छामि चिरजीव नृपोत्तम ।
इत्युक्तवत त नत्वा ययुर्भू पा स्वमालयम् ॥६९

इस लिए आप इसको यही छोड कर घर पधारें और सुखी रहे । जब पति के योग्य हो जायगी तब इसे तुम्हारे पास मे भेज देंगे ॥६४॥ राजा ने यह वचन कह कर स्नेह से उसे अपनी गोद मे स्पर्श किया था। परिमल के चूर्णीभूत होने पर वहाँ आह्लाद अत्यन्त दु खित हुआ था । उसने महीराज का स्पर्श किया तो वह राजा भी चूर्णता को प्राप्त हो गया था ॥६५॥ भग्न अस्थि वाले दोनो भूपो को पावकीय चिकित्सको के द्वारा सुख वाले किया गया था। वे घर जाकर कृत-कृत्यत्व को प्राप्त हुए। मलना ने अपने पुत्र को उद्वाहित और घर मे प्राप्त हुआ देख कर बडा उत्सव किया था और उसने बहुत धन विप्रो को दान मे दिया था । चण्डिका के प्रसाद से उसने होम भी कराया था ॥६६-६७॥ यात्रा काल मे सभा मे वीर लक्षण ने उससे कहा— जयचन्द्र के लिए अगमा मानकर हृता उस को जीतकर शिव की आज्ञा से योगी दोनो नभो मार्ग से सप्राप्त हुए थे उसके अत्यन्त तीक्ष्ण भय से मोहित मुझ को जीत कर उन दोनो ने त्याग दिया । हे धात ! आज मैं जाता हूँ हे नृपोत्तम ! आप चिर काल तक

जीवित रहें। इस प्रकार से कहने वाले उस को प्रणाम करके भूप अपने घर को चले गये थे ॥६८ ६६॥

॥ हंस का पद्मिनी वर्णन ॥

विंशाब्दे चैव कृष्णांशेयथा जातं तथा शृणु ।
सागराख्यसरस्तीरे कदाचिदिंदुलो बली ।
जप्त्वा सप्तशतीस्तोत्रं तत्र ध्यानान्वितोऽभवत् ॥१
एतस्मिन्नतरे हंसा आकाशाद्भूमिमागता ।
तेषां च रुतशब्दैश्च स ध्यानादुत्थितोऽभवत् ॥२
वक्ष्यमाणं वचः प्राहुधन्योऽयं दिव्यविग्रहः ।
पर्वतानां हिमगिरियंन वृन्दावनं तथा ॥३
महावती पुरीणां च सागरः सरसामपि ।
नारीणां पद्मिनी नारी नृणां श्रेष्ठस्त्वमिंदुल ॥४
भो इन्दुल महाप्राज्ञ मानसे सरसि स्थिता ।
वयं श्रुत्वा प्रियो वाक्यं नलिनी सागरं गताः ॥५
दृष्ट्वा तत्र शुभा नारी सर्वाभरणभूषिताम् ।
सप्तालिभिर्युता रम्या गीतनाट्य विशारदाम् ॥६
दृष्ट्वा मोहत्वमापन्ना वयं देशान्तरं गता ।
विलोकिता नराः सर्वेऽनास्माभिर्जगतीतले ।
त्वत्समो न हि कोऽप्यत्र पद्मिनी सदृशो वरः ॥७

इस अध्याय में इन्दुल के प्रति हंसों के द्वारा पद्मिनी का वृत्तान्त कहने के अनन्तर उसके लिये सिंहल देश में जाकर युद्ध आदि के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। सूतजी बोले—जब कृष्णांश की अवस्था का बीसवाँ वर्ष हुआ तो उस समय में जिस प्रकार से जो कुछ हुआ था अब तुम लोग उसका श्रवण करो। सागर नामक सरोवर के तट पर किसी समय में बलवान् इन्दुल था। उसने वहाँ पर सप्तशती के स्तोत्र का जाप किया और ध्यान में युक्त होगया था ॥१॥ इसी बीच में कुछ हंस आकाश से उड़कर भूमि में आगये थे। उनकी जो रुत ध्वनि सुनाई

दी तो वह ध्यान् स उठ बैठा था॥२॥उन्होंने यह आगे कहा जाने वाला वचन कहा–यह दिव्य शरीर वाला परम धन्य है,पर्वतो के मध्य मे हिमगिरि तथा वृन्दावन वन है पुरियो मे महाव्रती पुरी और सरो मे सागर जैसे उत्तम है वैस ही नारियो मे पद्मिनी नारी है और नरो मे इन्दुल ही सर्व श्रेष्ठ है॥३-४॥ हे महाप्राज्ञ ! हे इन्दुल ! हम लोग मानस सरोवर में स्थित ये थी के वाक्य सुनकर नलिनी सागर को गये थे॥५॥वहा पर हम लोगो ने समस्त आभूषणों से सुभूषित शुभ नारी को देखा था जो सात सहेलियों से युक्त थी–परम रम्य और गीत एव नाट्य की पण्डिता थी ॥६॥ उसे देख कर हम मोहत्व को प्राप्त होगये थे और फिर अन्य देश को चले गये थे । इस जगती तल मे हमने नर तो बहुत से देखे थे किन्तु पद्मिनी का तुल्य वर अन्य कोई भी तुम्हारे समान नही है । उस पद्मिनी के एकमात्र तुमही योग्य वर हो ॥७॥

तस्मात्त्व न समारुह्य ता देवी द्रष्टुमर्हसि ।
तथेत्युक्त्वा शक्रसुतो हसराज समारुहत् ॥८
सिंहलद्वीपके रम्ये ह्यार्यसिंहो नृप. स्थित ।
तत्सुता पद्मिनी नाम्ना रूपयौवनशालिनी ।
रागिण्य.सप्त विख्यातास्तत्सख्य. प्रमदोत्तमा. ॥९
नलिनीसागरे रम्ये गिरिजामदिर शुभम् ।
तत्र स्थितां च ता देवीमिन्दुल स ददर्श ह ॥१०
सापि त सुन्दर दृष्ट्वा हसदेहे समास्थितम् ।
समोह्याहूय त देव तेन सार्द्ध मरीरमत् ॥११
यर्पमेक ययौ तत्र नानालीलासु मोहित ।
नक्त दिव न बुबुधे रममाणस्तया सह ॥१२
भतिगर्वत्वमापन्ने चाह्लादे जगदम्बिका ।
दृष्ट्वा चान्तर्दधे देवो गर्वाचरणकुण्ठिता ॥१३
तस्य प्राप्त महद्दु खमाह्लादस्य जयैषिण ।
स कैलासपुरे वीर कीर्तितोऽमृतस्य मंदिरे ॥१४

इसलिए आप हम पर समारोहण करके उस देवी को देखने के योग्य होते है। ऐसा ही होगा—यह कह कर वह इ दुल का पुत्र हस राज पर समारूढ होगया था॥८॥सिंहल द्वीप मे जो अत्य त रमणीक है वहा आय-सिंह नृप स्थित है उसकी पुत्री पद्मिनी नाम वाली है जो रूपलावण्य से युक्त है। उसकी सात सखिया राग गान करने वाली जो प्रमदाओमे अति उत्तम हैं परम विख्यात थी ॥६॥ परम रम्य नालिनी सागर मे एक शुभ गिरजा का मन्दिर है। वहा पर स्थित उस देवी को इन्दुल ने देखा था ॥१०॥ उसने भी उस अति सु दर और हस के शरीर पर स्थित देखा था। फिर उसने उसे सम्मोहित कर के और बुलाकर उसके साथ रमण किया था ॥११॥ अनेक प्रकार की लीलाओ मे मोहित होकर वहा एक वर्ष बीत गया था। उस पद्मिनी के साथ रमण करने वाले इसको रात दिन का कुछ भी ज्ञान नही रहा था ॥१२॥ आह्लाद को भक्ति करने का जब गर्व होगया तो उस पर जगदम्बिका यह देखकर अ तर्धान न हो गई थी क्योकि वह देवी गर्व पूर्ण आचरण से कुण्ठित होगई थी ॥१३॥ उस जय की इच्छा रखने वाले आह्लाद को बहुत अधिक दु ख हुआ था। उससे अपने मन्दिर मे किन्ही पुरुषो के द्वारा कहा गया था ॥१४॥

इन्दुल रूपसपन्न लङ्कापुरनिवासिन ।
राक्षसास्त समाहृत्य स्वगेह शीघ्रमाययु ॥१५
इति श्रुत्वा वचो घोर सकुलो विललाप ह ।
हाहाशब्दो महाश्चासीत्तया तु रुदता मुने ॥१६
कृष्णाशो रुदित प्राहाह्लाद ज्येष्ठ शृणुष्व भो ।
जित्वाह राक्षसान्सर्वांस्तालनाद्यै समन्वित ।
इ दुल त्वा समेष्यामि भवा धैर्यपरो भवेत् ॥१७
बलखानिश्च कृष्णाशो देवसिहश्च तालन ।
सप्तलक्षवलै सार्द्ध लका प्रतिययुर्मुदा ॥१८
मागप्राप्ताश्च ये भूपा ग्रामपा राष्ट्रपास्तथा ।
यथायोग्य वलि रम्य प्राप्य तस्मै न्यवदयन् ॥१९

ये भूपा मदमत्ताश्च जित्वा तास्तालनो बली ।
बद्धा तैश्च समागच्छत्सेतुबंध शिवस्थलम् ॥२०
पूजयित्वा च रामेश रामेण स्थापित शिवम् ।
सिंहलद्वीपमगमन्षण्मासाभ्यतरे तदा ॥२१

रूप से सम्पन्न इन्दुल को लकापुर के निवास करने वाले राक्षस समाहृत करके अपने घर मे शीघ्र आगये हैं ॥१५॥ इस घोर वचन को सुन कर वह समस्त कुल के सहित विलाप करने लगा था । हे मुने ! उन सबके होने पर महान् हाहाकार शब्द वहा होगया था ॥१६॥ कृष्णाश ज्येष्ठ आह्लाद को रोते हुए देख कर उससे बोला—सुनो, मैं तालन आदि से समन्वित होकर उन समस्त राक्षसो को जीत कर तुमको इन्दुल लादूगा आप धीरज धारण करने वाले होजावें ॥१७॥ बलखानि—कृष्णांश – देवसिंह और तालन सात लाख सेना के साथ बडी प्रसन्नता से लका की ओर चले गये थे ॥१८॥ मार्ग म प्राप्त होने वाले जो राजा ग्रामप तथा राष्ट्रप थे उन सबसे यथायोग्य बलि प्राप्त करके जारहे थे । उन्होने उसको बलि को निवेदन किया था ॥१९॥ जो राजा मद मे मत्त होरहे थे उनको बली तालन ने जीत लिया था । उन्हें बाँध कर उनके साथ शिवस्थल जो सेतुबन्ध था वहाँ आगया था ॥२०॥ श्रीराम क द्वारा स्थापित शिव श्री रामेश्वर की पूजा करके सब छै मास क अन्दर सिंहल द्वीप मे चला गया था ॥२१॥

नन्दिनीनगर प्राप्य तत्र वासमकारयन् ।
पत्र सप्रेषयामास बलखानिर्नृपाय च ॥२२
आर्यसिंह महाभाग स्वपोतान् देहि तीर्णवान् ।
भवांश्च स्वबलं गाढं लका प्रति व्रजाधुना ।
ना चेत्त्वा भवन जित्वा राष्ट्रभग करोम्यहम् ॥२३
इति श्रुत्वा पत्रवचो भूपतिर्बलवत्तर ।
रक्षित स्वपुत्रेण युद्धाय समुपाययौ ॥२४
इन्दुल स्वभवन मध्य मस्थाप्य घर उत्तम ।
स्तभरामाग तत्रै य तालनार्थ सुरक्षितम् ॥२५

दिवसे सुखशर्मा च त्रिलक्षैः स्वदलैः सह ।
आर्य्यसिंहस्य तनयो महद्युद्धमचीकरत् ॥२६
निशामुखे च सम्प्राप्ते शक्रपुत्रो महाबलः ।
शतपुत्रैः क्षत्रियाणां सार्द्धं युद्धाय चाययौ ॥२७
तेषां हया हरिद्वर्णा योगिवेषधरा बलात् ।
महतीं ते सहस्रं च रिपोः सेनां व्यनाशयन् ।
तत्पश्चाद्गेहमासाद्य तदा तैः सुखितोऽवसत् ॥२८
एवं जाताश्च षण्मासास्तयोर्युद्धं हि सेनयोः ।
क्रमेण सक्षयं प्राप्तं बलखानेर्महद्बलम् ॥२९

यहां पर नलिनी सागर पर पहुँच कर सब ने अपना निवास स्थान किया था। और बलखानि ने यहां से राजा के लिये एक पत्र भेजा था ॥२२॥ हे महाभाग ! आर्यसिंह ! आप अपने तीर्णक अर्थात् तैर जाने वाले जहाजों को हमको दो और आप भी अपनी सेना के साथ अब सभा को चलो। नहीं तो सेना के सहित तुमको जीत कर मैं तुम्हारे राष्ट्र का भंग कर दूंगा ॥२३॥ यह पत्र में लिखित वचनों को सुनकर अधिक बलवान् भूपति जो सिंहल के पुत्र के द्वारा रक्षित था युद्ध के लिये आगया ॥२४॥ इन्दुल ने स्तम्भन मन्त्र को उत्तम कर के सम्पादित करके तासन आदि के द्वारा जो सुक्षित सेना थी उसे स्तम्भित कर दिया था ॥२५॥ और सुखशर्मा ने जो कि आर्यसिंह का पुत्र था तीन लाख अपनी सेना के साथ दिन में महान् युद्ध किया था ॥२६॥ रात्रि के आरम्भ में इन्द्र का पुत्र महान् बलवान् क्षत्रियों के शत पुत्रों के साथ युद्ध के लिये आया था ॥२७॥ उनके अश्व हरे वर्ण के थे और योगी के वेष धारण करने वाले थे उन्होंने शत्रुओं की भारी एक लाख सेना को बल से विनष्ट कर दिया था। इसके पश्चात् घर में आकर उन्होंने सुख से निवास किया था ॥२८॥ इस प्रकार से उन दोनों सेनाओं का छै मास पर्यन्त युद्ध हुआ था। क्रम से बलखानि की जो बहुत बड़ी भारी थी सेना धीरे धीरे क्षय को प्राप्त हो गई थी ॥२९॥

॥ इ दुल-पद्मिनी का विवाह ॥

दृष्ट्वा सैन्यनिपात च बलखानिर्महाबल ।
सप्राप्य मानसी पीडा युद्धार्थं विमुखोऽभवत् ॥१
देवसिह समाहूय त्रिकालज्ञ महामतिम् ।
त मन्त्र मन्त्रयामास कार्यसिद्धिर्यथा भवेत् ।
श्रुत्वोवाच महायोगी देवसिहो महाबल ॥२
महेद्रतनय कश्चित्सर्वशस्त्रास्त्रकोविद ।
स्वत्सैन्य रोधयित्वा वै दिव्यास्त्रेण दिवामुखे ।
रात्रौ स्वय समागम्य करोति बलसक्षयम् ।
अतस्त्वं मत्सहायेन तालनेन समन्वित ।
कृष्णांशेन समागम्य शक्रपुत्र शुभाननम् ।
विजयी भव शीघ्र हि नो चेद्याया यमक्षयम् ॥४
इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवसिहस्य भाषितम् ।
यत्न चकार बलवान्भ्रातृभिनसमन्वित ॥५
एकविंशाब्दकृष्णांशे सप्राप्ते युद्धकोविदे ।
सेना निवेशयामास पोतेषु हयवाहन ॥६
अर्द्धं सैन्य च तत्रैव स्थापयित्वा महाबल ।
अर्द्धं सैन्यन कृष्णांशो दक्षिणा दिशमागमत् ॥७

इस अध्याय म पद्मिनी के जन्म और उसके साथ इन्दुल के विवाह के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—बलखानि ने अपनी सेना का निपातन देख कर मानसी पीडा की प्राप्ति की थी और वह फिर युद्ध से विमुख हो गया ॥१॥ तीनो काल की बातो को जानने वाले महान् मतिमान् देवसिह को बुला कर उस मन्त्र की मन्त्रणा की थी जिससे कार्य की सिद्धि हो सके। महान् बलवान् देवसिह यह सुनकर बोला, जो कि एक महान् योगी भी था ॥२॥ कोई महेन्द्र का पुत्र है जो समस्त शस्त्र एव अस्त्र की विद्या का बडा पण्डित है। उसने तुम्हारी सना को अवरुद्ध करके रक्खा है और दिवामुख म किसी दिव्य

स्त्र के द्वारा ही यह स्तभन किया गया है। वह रात्रि मे स्वय यहाँ आकर सेना का सक्षय किया करता है ॥३॥ इसलिये तुम मेरी सहायता। तालन से मिल कर कृष्णाश के द्वारा शुभानन शक्र के पुत्र के पास जाकर शीघ्र ही विजयी बनो, अन्यथा यमक्षय को प्राप्त हो जाओगे ॥४॥ इस प्रकार का देवसिंह का कहा हुआ वचन सुन कर बलवान् ने भाई-मित्र आदि से सम्बन्धित होकर यत्न किया ॥५॥ युद्ध मे परम प्रवीण पण्डित कृष्णाश के इक्कीसवें वर्ष के प्राप्त हो जाने पर हय वाहन ने पोतो मे सेना को निवेशित किया ॥६॥ उस महान् बलवान् ने आधी सेना वही पर स्थापित की थी। उस आधी सेना के साथ वह कृष्णाश दक्षिण दिशा को गया ॥७॥

हयारूढाश्च ते शूरा. सर्वे युद्धसमन्विताः ।
कपाट दृढमुद्घाट्य नगरान्तमुपाययुः ॥८
हत्वा ते रक्षिण. सर्वाल्लुंठयित्वा पुर शुभम् ।
रिपोर्दुर्गं समासाद्य चक्रुः शत्रोर्महाक्षयम् ॥९
राज्ञोऽन्तः पुरमागत्य कृष्णाशो बलवन्नरः ।
ददर्श सुन्दरी बाला पद्मिनी पद्मलोचनाम् ।
सप्तालिभिर्युता रम्या गीतनृत्यविशारदाम् ॥१०
बलाद्दोला समारोप्य लुंठयित्वा रिपोर्गृहम् ।
जगाम शिविरे तस्मिन्यत्र जातो महारण ॥११
बलखानिस्तु बलवान्देवतालनसयुत. ।
जघान शात्रवी सेनामिन्दुलास्त्रेण पालिताम् ॥१२
सुवर्णवर्माणमागत्य सेनाध्यक्ष रिपो. सुतम् ।
सर्वतस्त स्वकीयास्त्रैर्जघ्नुस्ते मदविह्वला. ॥१३
हते तस्मिन्महावीर्ये जयन्तः क्रोधमूर्च्छित. ।
सेनामुज्जीवयाचक्रे शक्रपुत्र. प्रतापवान् ॥१४

इयों पर जो भी शूर वीर थे वे सभी युद्ध समन्वित थे। उन्होंने दृढ़ कपाट को खोल कर वे फिर नगर के अन्त में प्राप्त हो गये थे ॥८॥ उन्होंने वहीं के समस्त रक्षिओं को मार कर उस शुभपुर को

लूट कर रिपु के दुर्ग मे पहुँच गये और फिर उन्होने शत्रु का महान् क्षय किया ॥६॥ बलवान् कृष्णाश राजा के अन्त पुर मे पहुँच कर वहाँ उसने परम सु दरी पद्म के समान नेत्रो वाली बाला पद्मिनी को देखा, जो कि अपनी सात सहेलियो से युक्त थी, अत्यन्त ही रम्य और गीत एव नृत्य की विशारद थी ॥१०॥ उसको बलपूर्वक दोला मे समारोपित करके और शत्रु के घर को खूब अच्छी तरह लूट कर उस शिविर मे चला गया जहाँ यह महायुद्ध हो रहा था ॥११॥ बलवान् बलखानि ने देवसिंह और तालन से युक्त होकर इन्दुल के अस्त्र के द्वारा जो पालित सेना थी, उस शत्रु की सेना का हनन कर दिया ॥१२॥ सेना का अध्यक्ष शत्रु का पुत्र, जो सुखवर्मा था उसके पास जाकर सब ओर से उन मद से विह्वलो ने अपन अस्त्रो के द्वारा उसका भी हनन कर दिया। उस महान् वीर्य वाले के हत हो जाने पर जयन्त क्रोध से मूर्छित हो गया और उस प्रताप वाले शक्र के पुत्र ने सेना को उज्जीवित कर दिया ॥१४॥

ययाल च सुखवर्माण सजीव्य स्वगृह ययौ ।
तत्र दृष्ट्वा जनान्सर्वा वहुरोदनतत्परान् ॥१५
विस्मित स ययौ गेह यथा पूर्व तथाविध ।
न ददर्श प्रिया तत्र सखीभि सहिता मुने ॥१६
आर्य्यसिंहगृह गत्वा पृष्टवान्सर्वकारणम् ।
ज्ञात्वा सलुठित गेह शत्रुभि शास्त्रकोविदै ॥१७
रुरोद सुभृश वीरो हा प्रिये मदविह्वले ।
दर्शयाद्य मुख रम्य त्वत्पतिस्त्वा समुत्सुक ॥१८
इत्यव रोदन कृत्वा वडवोपरि सस्थित ।
धनुस्तूणीरमादाय खड्ग शत्रुविमोहनम् ।
एकाकी स ययौ क्रुद्धो निशि यत्र स्थितो रिपु ॥१९
एतस्मिन्समय वीरो बलखानिमहाबल ।
दृष्ट्वा ता सुन्दरी वाला विललाप भृश मुहु ॥२०

हा इन्दुल महावीर हा मद्व घो प्रियकर।
त्वद्योग्येय शुभा नारी रूपयौवनशालिनी ॥२१

उसने अपने साले सुखवर्मा को संजीवित करके वह अपने गृह को चला गया । वहाँ उसने समस्तजनो को अत्यधिक रुदन करने मे तत्पर देखा । तब उसे बडा विस्मय हो गया और वह पूव की भाँति ही घर के अन्दर गया तो वहां उसने हे मुने ! अपनी प्रिया को सखियो के सहित नही देखा ॥१५ १६॥ आर्यसिंह के घर मे जाकर उसने समस्त कारण पूछा और शत्रुओ के द्वारा जो कि शस्त्र चलाने के बडे पण्डित थे, घर को लूटा हुआ जान कर वह रुदन करने लगा—हा मदविह्वले ! हा प्रिये ! आज तू अपना वह सुरम्य मुख मुझे दिखला दे, यह तेरा पति तेरे मिलने के लिये अत्यधिक उत्सुक हो रहा है ॥१७ १८॥ इस प्रकार से रुदन करके वह अपनी बडवा पर सस्थित हो गया और उसने शत्रु के विमोहन करने वाला खड्ग तथा धनुष और तूणीर ग्रहण किया । वह एकाकी ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर निशा के समय में वहाँ पहुचा जहाँ कि शत्रु स्थित था ॥१६॥ इसी समय मे महान् बलवान् वीर बलखानि उस सुन्दरी बाला को देखकर बार बार बहुत विलाप करने लगा ॥२०॥ हा इन्दुल ! हा महावीर ! हा मेरे बन्धो ! हे प्रिय कर ! तेरे योग्य यह शुभ नारी रूप लावण्य से युक्त है ॥२१॥

दर्शन देहि मे शीघ्र गृहाणाद्य शुभाननाम् ।
इत्युक्त्वा मूच्छितो भूत्वा मानसे पूजयञ्छिवाम् ॥२२
तस्मिन्काले च सप्राप्त शक्रपुत्रो महाबल ।
जघान शात्रवी सेना कृष्णाशेनैव पालिताम् ॥२३
दृष्ट्वा सैन्यनिपात च तालननो वाहिनीपति ।
सिंहनाद ननादोच्चै सिंहयुपरि सस्थित ॥२४
न जय सैन्यनाशेन तव वीर भविष्यति ।
मा हत्वा जहि मत्सैन्य योगि बालस्वरूपक ॥२५
इति श्रुत्वा वचस्तस्य शक्रपुत्रो भयकर ।

जघान हृदये वाणान्स तु खड्गेन चाच्छिनत् ।
स्वभल्लेन पुनर्वीरो दशयामास वक्षसि ॥२६
इ दुले मूर्च्छिते तस्मिन्वडवा दिव्यरूपिणी ।
आकाशोपरि सप्राप्य जयन्त समबोधयत् ॥२७
तदा स वालस्त्वरित. कालास्त्रं चाप आदधे ।
तेन जातो महाञ्छब्दस्तालन. स ममार ह ॥२८

तुम यहाँ आकर मुझे अपना दर्शन शीघ्र ही दो और आज शुभ मुख वाली को ग्रहण करो। यह विलाप भरे शब्दो को कह कर वह मूर्छित होगया और मन मे शिवा की अर्चना भी कह कर रहा था ॥२२॥ उसी समय मे महा बलवान् शक्र (इन्द्र) का पुत्र भी वहा पहुँच गया था। उसने कृष्णाश के द्वारा सुरक्षित सेना का हनन कर दिया था ॥२३॥ अपनी सेना का निपात देख कर सेनापति तालन ने बडे ऊँचे स्वर से सिंह नाद किया था जोकि उस समय मे सिंहिनी के ऊपर सस्थित था ॥ २४ ॥ उसने कहा—हे वीर ! इस सैन्य के नाश कर देने से तेरा जय कभी भी नही होगा। हे योगिन ! हे बाल स्वरूप वाले ! मुझको पहिले मारकर तभी मेरी सेना का हनन करा२५। इन्द्र के पुत्र ने जोकि बहुत ही भयकर था इस प्रकार क उसके वचन को सुन कर हृदय मे वाणो को मारा था किन्तु उसने अपने खग से उन को काट दिया था। फिर वीर ने अपने भाले से वक्ष स्थल मे चोट-मारी थी ॥२६॥ तब इन्दुल के मूर्छित हो जाने पर वह दिव्य रूप वाली वडवा आकाश मे ऊपर जाकर पहुच गई और उसने जयन्त को सम्बोधित किया था। तब उस बालक ने शीघ्र गामी होकर चाप में कालास्त्र को धारण किया था। उससे महान् शब्द समुत्पन्न हुआ और वह तालन मर गया था ॥२७-२८॥

मृते सेनापतौ तस्मिन्कृष्णाशो मदविह्वल ।
नभोमार्गेण सप्राप्य जगर्ज च मुहुर्मुहु ॥२९
इन्दुल क्रोधताम्राक्षस्त्वाग्नेय शरमाददे ।
वह्निभूत नभस्तत्र स्वयोगेन महाबल ।

कृत्वा शीघ्रं ययौ शत्रुं स तु वायव्यमादधे ।।३०
स्वयो गेनैव कृष्णांशः पीत्वा वायव्यमुत्तमम् ।
पुनर्जगाम तत्पार्श्वं कलंकः स हरेः स्वयम् ।।३१
तथाविधं रिपुं दृष्ट्वा शक्रपुत्रो महाबलः ।
गंधर्वास्त्रं समादाय मोहनायोपचक्रमे ।।३२
पुनर्योगबलेनैव तदस्त्रं संक्षयं गतम् ।
वारुणं शरमादाय तस्योपरि सदाक्षिपत् ।।३३
स्वयोगेनैव कृष्णांशो जलं सर्वं मुखेऽकरोत् ।
एवं सर्वाणि चास्त्राणि पीत्वा पीत्वा पुनःपुनः ।।३४
ययौ शीघ्रं प्रसन्नात्मा बाहुशाली यतेन्द्रियः ।
इंदुलस्तु तदाक्रुद्धोऽश्विनी त्यक्त्वा भुवि स्थितः ।
चर्म खड्गं गृहीत्वाशु खड्गयुद्धमचीकरत् ।।३५

सेनापति उस तालन के मृत हो जाने पर कृष्णांश मद-विह्वल हो गया और वह आकाश के मार्ग से जाकर बार-बार गर्जने लगा था ।।२९।। क्रोध से लाल नेत्र वाले इन्दुल ने आग्नेय अस्त्र का आधान किया था । उस महान् बलवान् ने अपने योग से वहां समस्त आकाश को वह्निभूत करके शीघ्र ही शत्रु के पास गया था और फिर उसने वायव्य अस्त्र का आधान किया था ।।३०।। कृष्णांश ने अपने योग से ही वायव्य का पान कर लिया था जोकि एक उत्तम अस्त्र था । तब हरि की ही एक कला स्वरूप था स्वयं पुनः उसके पास गया था ।।३१।। महा बलवान् इन्द्र के पुत्र ने उस प्रकार के शत्रु को देख कर गन्धर्वास्त्र लिया जोकि मोहन के लिए उपयोग किया ।।३२।। फिर योग के बल से ही उसका अस्त्र संक्षय को प्राप्त होगया । फिर वारुण शर लेकर उसके ऊपर फेंका था ।।३३।। कृष्णांश ने अपने योग से ही उस सम्पूर्ण जल को मुख में कर दिया था । इस प्रकार उसके समस्त अस्त्रों को बार-बार पी-पी करके समाप्त कर कर दिया ।।३४।। फिर वह बाहुशाली प्रसन्न आत्मा वाला और यतेन्द्रिय इन्दुल उस समय क्रुद्ध होगया और उसने

अश्विनी का त्याग कर वह भूमि मे स्थित होगया था। उसने शीघ्र ही चर्म और खग को ग्रहण करके खग को युद्ध किया था ॥३५॥

एतस्मिन्न तरे प्राप्ता देवाद्याः सर्वभूमिपाः ।
ददृशुस्तन्महद्युद्धं सर्वविस्मयकारणम् ॥३६
प्रातःकाले च सप्राप्ते बलखानिर्महाबलः ।
ददर्श बालक रम्य जटाजिनसमन्वितम् ॥३७
श्रमेण कर्शितो वीरः शक्रपुत्र प्रतापवान् ।
बलखानेः पितुर्बन्धो शपथ कृतवान्स्वयम् ॥३८
स्वखङ्गेनैव कृष्णाश शिरस्तव हराम्यहम् ।
नो चेन्मे दूषिता माता नाम्ना स्वर्णवती सती ।
इत्युक्त्वा खङ्गमादाय ययौ शीघ्रं रुषान्वितः ॥३९
बलखानिस्तु त ज्ञात्वा त्यक्त्वास्त्रं प्रेमकातरः ।
पुत्रातिक मुपागम्य वचन चेदमब्रवीत् ॥४०
हे इ दुल महाभाग पितृमातृयशस्कर ।
आह्लादप्राणसदृश स्वर्णवत्यगमानस ॥४१
पूर्वं हत्वा च मा वीर स्वपितृव्य ततः पुनः ।
तथैवोदयसिंहं च देवसिंह तथा कुलम् ।
सुखी भव महावीर गेहे वै सुखवर्मण ॥४२
इति श्रुत्वा वचस्तस्य ज्ञात्वा च स्वकुल शिशु. ।
त्यक्त्वा खङ्गं पतित्वा च स्वपितृव्यस्य पादयो ।
कृतवान्रोदनं गाढमपराधनिवृत्तये ॥४३

इसी बीच मे देवादि समस्त भूमिपाल वहा प्राप्त हो गये थे। उन्होने वह महान् सबको विस्मय का कारण स्वरूप युद्ध देखा था ॥३६॥ प्रात. काल के सम्प्राप्त होने पर महान् बली बलखानि ने जटा और अजिन (मृगचर्म) से युक्त एव रम्य बालक को देखा था ॥३७॥ श्रम से अत्यन्त कर्शित वीर एव प्रतापवान् इन्द्र का पुत्र हो गया। उसने पिता के बन्धु बलखानि की स्वय शपथ की थी ॥३८॥ उसने कहा–हे कृष्णाश ! मैं अपने ही खग स तेरा सिर काटूँगा नहीं तो नाम

से सती स्वणवती माता दूषित हो जायगी । इस तरह कह कर खग लेकर शीघ्र ही रुषान्वित होकर चला गया था ॥३९॥ बलखानि ने उसे जान कर प्रेम से कातर हो कर अस्त्र त्याग दिया और पुत्र के समीप मे जाकर वह यह वचन बोला—॥४०॥ हे इन्दुल ! हे महाभाग ! हे पिता और माता यश को करने वाले ! तुम आल्हाद के प्राण सदृश हो और स्वर्णवती के अ ग के मानस हो ॥४१॥ पहिले तुम मुझ मारदो और फिर अपने पितृव्य कृष्णाश का वध करना। उसी प्रकार से उदयसिह और देवसिह तथा समस्त कुल का हनन करना। हे महावीर ! तुम वहा सुख वर्मा के घर मे ही सुखमय जीवन बिताना। यह उसके वचन सुन कर उस शिशु ने अपने सम्पूर्ण कुल को समझ कर अपना हाथ का खग त्याग दिया था और वह फिर अपने चाचा के चरणो मे गिर गया था। उसने अपने किए हुए अपराध की निवृत्ति के लिये बहुत अधिक रुदन किया था ॥४२ ४३॥

उवाच मधुर वाक्य शृणु तात मम प्रिय ।
नारीय दूषिता वेदैर्नृणा मोहप्रदायिनी ॥४४
देवो वा मानुषो वापि पन्नगो वापि दानव ।
आर्य्यं नारीमये जलिबन्धनाय समुद्यत ॥४५
सोहमाजमशुद्धस्य पितुराह्लादकस्य च ।
गेहे जातो जयतश्च शक्रपुत्र स्वय विभो ॥४६
पद्मिन्या जनित मोह गृहीत्वा ज्ञातवान्न हि ।
क्षमस्व मम मन्दस्य शेषमज्ञानज पितु ॥४७
इत्युक्त्वा स पुनर्बालो रुरोद स्नेहकातर ।
सेनामुज्जीवयामास तालन च महाबलम् ॥४८
इति श्रुत्वा वचस्तस्य कृष्णाशे वचन शिशो ।
परमानन्दमागम्य हृदये तमरोपयत् ।
उत्सव कारयामास तत्र देशे जनेजने ॥४९

फिर वह मधुर वचन बोला—हे मेरे प्रिय तात ! मेरे वचन श्रवण कीजिए। इस नारी को वेदो ने दूषित बताया है। यह नरो को मोह

के प्रदान करने वाली होती है ॥४४॥ चाहे कोई देव हो या मनुष्य हो अथवा पन्नग हो किम्वा दानव हो, हे आर्य ! नारीमय जालो से तुरन्त वन्धन मे आने के लिये समुद्यत हो जाया करते हैं। ॥४५॥ वह मैं जन्म से लेकर परम शुद्ध पिता आह्लाद के गेह मे समुत्पन्न शक्र का पुत्र जयन्त भी हे विभो ! स्वय पद्मिनी के द्वारा जनित मोह मे फँसकर सब कुछ भूल गया और मैंने यह कुछ भी नही जाना था। पिता के विषय मे जो कुछ मैंने अज्ञान वश होकर मन्द वुद्धि से किया उस सबको अब क्षमा कर दीजिएगा। ॥४६-४७॥ इतना कह कर वह वालक फिर स्नेह से कातर हो कर बडे जोर से रो उठा। उसने सम्पूर्ण सेना को और महान् वलवान तालन को उज्जीवित कर दिया ॥४८॥ इस प्रकार के उस शिशु के वचन को कृष्णांश ने सुन कर परम आनन्द को प्राप्त कर उसे अपने हृदय से लगा लिया। फिर इस देश मे और घर-घर तथा जन-जन मे उत्सव कराया ॥४९॥

आर्य्यसिंहस्तु तच्छ्रुत्वा नापाद्रव्यहसन्वितः।
ददौ कन्या विधानेन पद्मिनीमिदुलाय वै ॥५०
शत हयास्तथा नागान्मुक्तामणि विभूपितान्।
कन्यार्थे तान्ददौ राजा जामात्रे वहुभूषणम् ॥५१
प्रस्थानमकरोत्तेपा स प्रेम्णा वाक्यगद्गद.।
ते तु सर्वे मुदा युक्ता. स्वगेह शीघ्रमाययु. ॥५२
उषित्वा मासमेक तु तस्मिन्मार्गे भयानके।
कीर्तिसागरमासाद्य चक्रुस्ते वहुधोत्सवम् ॥५३
आह्लादस्तु प्रसन्नात्मा सुत पत्नी समन्वितम्।
दृष्ट्वा विप्रान्समाहूय ददौ दानान्यनेकश. ॥५४
दशहाराख्यनगर सप्राप्त. स्वकुलैस्सह।
कृष्णांशस्य महाकीर्तिर्जाता लोके जने जने ॥५५
पृथ्वीराजस्तु तच्छ्रुत्वा विस्मय परम ययौ।
सा तु वै पद्मिनी नारी दुर्लभा: शापमोहिता ॥५६

अप्सरस्त्व स्वय त्यक्त्वाभूमौ नारीत्वमागता ।
द्वादशाब्दप्रमाणेन सोषित्वा जगतीले ॥ ५७
यक्ष्मणा मरण प्राप्य स्वर्गलोकमुपाययौ ।
नव मासान्कृतो वासस्तयाचाह्लादमदिरे ॥५८

राजा आर्यसिह ने यह समस्त वृत्तान्त श्रवण करके अनेक भाँति के द्रव्यो से समान्वित होकर उस पद्मिनी कन्या का विधि-विधान के साथ इन्दुल को दान कर दिया ॥५०॥ सौ अश्व तथा हाथी जो कि मुक्ता और मणियो से समङ्कृत थे राजा ने कन्या के अर्थ मे उनका दान कर दिया और जामाता के लिए बहुत-से भूषण दिये थे। ॥५१॥ फिर उसने प्रेम से गद्गद् वाक्य वाला होकर उनका प्रस्थान अर्थात् बिदाई की। वे सब भी आनन्द से युक्त होकर शीघ्र अपने घर को आ गये थे ॥५२॥ एक मास के समय तक उस परम भयानक मार्ग मे निवास करते-करते कीर्ति सागर मे आकर उन्होने बहुत बड़ा एक उत्सव किया ॥५३॥ आह्लाद बहुत ही प्रसन्न मन वाला जबकि उसने अपने पुत्र इन्दुल को पत्नी से युक्त देखा था। फिर उसने सुयोग्य ब्राह्मणो को बुलाकर उन्हें अनेक प्रकार के बहुत से दान दिये थे ॥५४॥ इसके पश्चात् वह अपने दशहाराख्य नगर को अपने कुल के साथ प्राप्त हुआ था। तब से जो कृष्णाश था उसकी कीर्त्ति बहुत अधिक लोक म जन-जन म छागई थी ॥५५॥ जब राजा पृथ्वीराज ने यह समाचार सुना तो उसको इसका अति अधिक विस्मय हुआ था। वह पद्मिनी नारी जो थी दुर्वासा के शाप से मोहित होगई थी और उसन उस शाप के कारण से ही अपने अप्सरापन का स्वय त्याग करके इस भूमण्डल मे नारीत्व का रूप धारण किया था। दशवर्ष के प्रमाण पय त वह इस जगती तल म निवास करके राजयक्ष्मा रोग से मृत्यु प्राप्त करके फिर स्वर्ग लोक को चली गई थी। उसने उस आह्लाद के घर म केवल नौ ही माग पर्यन्त निवास किया था ॥ ५६ ५८॥

।। चन्द्र भट्ट का भाषा ग्रन्थ ।।

कृष्णांशे च गृह प्राप्ते चेन्दुले च विवाहिते ।
महीपतिस्सदा दुःखी देहली प्रति चागमत् ।।१
वृत्तांत च नृपस्याग्रे कथयित्वा स तारकः ।
परं विस्मयमापन्न. कृष्णांशचरित प्रति ।।२
एतस्मिन्नंतरे मन्त्री चन्द्रभट्ट उदारधी ।
भूमिराज वचः प्राह शृणु पार्थिवसत्तम ।।३
मया चाराधिता देवी वैष्णवी विश्वकारिणीः ।
त्रिवर्षांते च तुष्टाभूद्वरदा भयहारिणी ।।४
तया दत्त शुभ ज्ञान कुमतिध्वंसकारकम् ।
ततोऽह ज्ञानवान्भूत्वा कृष्णांश प्रति भूपते ।
चरित्र वर्णयामास तस्य कल्मषनाशनम् ।।५
इत्युक्त्वा स च शुद्धात्मा ग्रंथ भाषामयं शुभम् ।
माहात्म्य देविभक्तानां श्रावयामास वै सभाम् ।।६
तच्छ्रुत्वा भूमिराजस्तु विस्मितश्चाभवत्क्षणात् ।
महीपतिस्तदा प्राह दिव्याश्वबलदर्पितः ।
उदयो नाम बलवान्यस्यैवं वर्णिता कथा ।।७

इस अध्याय मे राजा पृथ्वीराज के समक्ष मे चन्द्रभट्ट के द्वारा भाषा ग्रन्थ का वर्णन किया गया है । श्री सूतजी ने कहा—कृष्णांश के घर में प्राप्त हो जाने पर तथा इन्दुल के विवाहित हो जाने पर महीपति सदा दुःखी होकर देहली के प्रति आया था ।।१।। उस तारक ने सब वृत्तांत नृप के आगे कह कर कृष्णांश के चरित्र के प्रति परम विस्मय को प्राप्त हुआ था ।।२।। इसी बीच मे मन्त्री उदार बुद्धि वाला चन्द्रभट्ट ने भूमिराज के प्रति यह वचन कहा—हे पार्थिवों मे परम श्रेष्ठ ! सुनिये ।।३।। मैंने इस विश्व की रचना करने वाली वैष्णवी देवी की आराधना की है । वह देवी तीन वर्ष के अन्त मे वरदान देने वाली और समस्त भयों का हरण करने वाली प्रसन्न हुई थी ।।४।। उसने मुझे

कुमति के ध्वस करने वाला शुभ ज्ञान प्रदान किया । हे भूपते ! तभी से मैं उस कृष्णाश के विषय मे ज्ञान रखने वाला हुआ हूँ। उसने सम्पूर्ण कल्मषो का विनाश कर देने वाला उसके चरित्र का वर्णन किया था ॥५॥ इतना कह कर परम शुद्ध आत्मा वाले उसने एक भाषामय शुभ ग्रन्थ उस सभा को देवी के भक्तो का माहात्म्य सुनाया था ॥६॥ यह श्रवण करके भूमिराज क्षण भर के लिये परम विस्मय से युक्त हो गया। उस समय महीपति ने कहा—दिव्य अश्व केवल अत्यन्त दर्प वाला, उदय नाम वाला बहुत ही बलवान् था जिसकी यह इस प्रकार की कथा वर्णित की गई है ॥७॥

चत्वारो वाजिनो दिव्या जलस्थलखगाश्च ते ।
शीघ्र ताश्च समाहूय स्वय भूप वली भव ॥८
इति श्रुत्वा स नृपति श्रुतवाक्यविशारदम् ।
आहूय कुन्दनमल प्रेषयामास सत्वरम् ॥९
महावती समागत्य स दूतो भूपति प्रति ।
उवाच वचन प्रेम्णा महीराजस्य भूपते ॥१०
वाजिनस्ते हि चत्वारो दिव्यरूपा शुभप्रभा ।
दर्शनार्थे तव वधूर्वेला नाम ममात्मजा ॥११
तमाहूतान्हयान्भूप देहि मे विस्मय त्यज ।
नो चद्वेलाग्निना सर्वे क्षय यास्यति सैन्यपा ॥१२
इति श्रुत्वा वचो घोर स भूपो भयकातर ।
आह्लादादीन्समाहूय वचन प्राह नम्रधी ।
हया स्वान्स्वान्मुदा देहि मदीय वचन कुरु ॥१३
इति श्रुत्वा स आह्लादोध्यात्वा सवमयी शिवाम् ।
उवाच मधुर वाक्य शृणु भूप शिवप्रिय ॥१४

चार अश्व बहुत ही दिव्य थे जो जल-स्थल और आकाश मे गमन करने वाली शक्ति रखते हैं। हे भूप ! आप शीघ्र ही उनको लाकर स्वय एक बलवान् हो जाओ ॥८॥ इतना सुनकर वह राजा ने श्रुत-वाक्य के परम प्रवीण पण्डित कुन्दनमल को बुला कर शीघ्र ही भेज

दिया ॥६॥ महावती मे पहुँच कर दूत ने भूपति के प्रति महाराज भूपति के वचन बडे ही प्रेम के साथ कहे थे ॥१०॥ चार अश्व दिव्य रूप वाले और शुभ कान्ति वाले हैं । उनका दर्शन करने के लिये आपकी वधू और मेरी पुत्री बेला नाम वाली ने उन्हे बुलवाया है। उसके द्वारा आहूत उन अश्वो को हे भूप ! मुझे प्रदान कर दीजिये और इसमे कुछ भी विस्मय न करें। यदि आप ऐसा नही करेंगे तो बेला की अग्नि से समस्त सेनापति क्षय को प्राप्त हो जायेंगे ॥११-१२॥ इस प्रकार के उस दूत के द्वारा कहे हुए वचनो को सुनकर, जो कि अत्यन्त ही घोर थे, राजा भय से कातर हो गया था और आह्लाद आदि सबको बुला कर नम्र बुद्धि वाला होकर कहा—आप लोग अपने-अपने अश्वो को आनन्दपूर्वक दे दो और यह मेरा वचन इस समय मान लो ॥१३॥ इस प्रकार के भूप के आज्ञा से युक्त वचनों को सुन कर आह्लाद ने सर्वमयी शिवा का ध्यान किया था और कहा—हे शिवप्रिय राजन् ! आप यह वाक्य श्रवण कर लीजिए ॥१४॥

यत्र न.सस्थिताःप्राणास्तत्र ते वा जिनःस्थिताः ।
न दास्यामो वय राजन्सत्यं सत्य न चान्यथा ॥१५
इति श्रुत्वा वचस्तस्य राजा परिमलो वली ॥१६
शपथं कृतवान्घोर शृण्वतां वलशालिनाम् ।
भोजन ब्रह्ममासस्य पानीय गोऽसृजोपमम् ॥१७
शय्या स्वमातृसदृशी ब्रह्महत्योपमा सभा ।
मम राष्ट्रे च युष्माभिर्वासः पापमयो महान् ॥१८
इति श्रुत्वा तु शपथ देवकी शोकतत्परा ।
चकार रोदनं गाढ सगेहजनविग्रहा ॥१९
पचविंशाब्दके प्राप्ते कृष्णाशे योगतत्परे ।
भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां तद्गेहाद्धर्मतत्पराः ॥२०
निर्ययुः कान्यकुब्जं ते जयचन्द्रे ण पालितम् ।
स्वर्णवत्या पुष्पवत्या सहिताश्चित्ररेखया ॥२१

आह्लाद ने कहा—जहाँ पर हमारे प्राण हैं वहाँ पर ही वे अश्व भी स्थित हैं। हे राजन्! हम उन्हे नही देंगे। यह बिल्कुल सत्य है और पूर्ण सत्य है इस मे अन्यथा कुछ भी नही होगा ।।१५।। इस प्रकार का आह्लाद का दिया हुआ उत्तर वचन सुन कर बलवान् राजा परिमल ने समस्त बलशालियो के श्रवण करते हुए एक परम घोर शपथ की थी कि आप लोगो का मेरे राष्ट्र मे रह कर भोजन करना ब्राह्मण के मांस के तुल्य है और जल पान करना गौ के रक्त के पान के समान है, शयन करना माता की शय्या पर शयन करने की भाँति है और सभा ब्रह्म हत्या के सदृश है, सभी प्रकार से मेरे राज्य मे तुम लोगो के द्वारा किया गया वास महान् पाप से परिपूर्ण होगा ।।१६ १८।। यह घोर परिमल के द्वारा दिखाई हुई शपथ का श्रवण करके देवकी शोक मे तत्पर होगई और गेह तथा जन विग्रह के साथ गहरा रुदन करने लगी थी ।।१९।। योग मे तत्पर कृष्णांश के पच्चीस वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर भाद्रपद मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी मे उसके घर से अपने तत्पर ये सभी निकल गये थे और वे कान्य कुब्ज देश में जयचन्द्र के द्वारा रक्षा की गई थी। स्वर्णवती पुष्पवती और चित्ररेखा के सहित सब ये ।।२०-२१।।

इन्दुल प्रययौ शीघ्रमयुताश्वबलैस्सह ।
कराल हयमारुह्य पचशब्द च तत्पिता ।
कृष्णांशो विदुलारूढो देवकीमनुसययौ ।।२२
त्यक्त्वा ते भूपतेर्ग्राम सर्वसपत्समन्वितम् ।
पथि त्र्यहमुषित्वा ते जयचन्द्रमुपाययु ।।२३
नत्वा त भूपति प्रेम्णा गदित्वा सर्वकारणम् ।
उषित्वा शीतलास्थाने पूजयामासुरम्बिकाम् ।।२४
जयचन्द्रस्तु भूपालो देवसिंहेन वर्णित ।
सैन्यश्च न ददौ वृत्ति भूमा परिमलाज्ञया ।।२५
मु ठिनो देवसिंहस्तु गत्वा कृष्णाशमुत्तमम् ।
उदित्वा कारण सर्व म श्रुत्वा रोषमादधौ ।।२६

त्वरित विंदुलारूढो हयपंचशतावृतः ।
लुठयामास नगरं पालितं लक्षणेन तत् ॥२७
दृष्ट्वा त लक्षणो वीरो हस्तिनः पृष्ठमास्थितः ।
शरेण ताडयामासकृष्णांशं हृदये दृढम् ॥२८

इन्दुल भी दश सहस्र अश्वों के बल के साथ शीघ्र कराल नामक अश्व पर समारूढ होकर तथा उसके पिता यत्न शब्द पर सवार होकर चले गये थे। कृष्णांश अपने बिन्दुल घोड़े पर समारोहण कर देवकी पीछे २ चला गया था ॥२२॥ उन सबने उस परिमल भूपति के ग्राम को जोकि सब प्रकार की सम्पत्तियों से समन्वित था त्याग करके मार्ग में तीन दिन निवास करके वे सब राजा जयचन्द्र के समीप में प्राप्त हो गये थे ॥२३॥ उन्होंने प्रेम के साथ उस राजा को प्रणाम करके त्याग करने का समस्त कारण बता दिया था। वहां पर शीतलादेवी के स्थान में निवास करते हुए उन्होंने अम्बिकादेवी की पूजा की थी ॥२४॥ देवसिंह के द्वारा राजा जयचन्द्र का स्तवन किया गया था। राजा परिमल की आज्ञा में उनके लिए उसने कोई भी वृत्ति नहीं दी थी ॥२५॥ देवसिंह बहुत ही कुण्ठित होकर कृष्णांश के समीप में पहुँचा था जोकि अति उत्तम था। उसने सब कारण बताया तो उसे सुनकर उसे बहुत ही क्रोध आगया था ॥२६॥ शीघ्र ही वह बिन्दुल पर समारूढ होकर और पांच सौ अश्वों से युक्त होकर लक्षण के द्वारा पालित नगर को उसने लूट लिया था ॥२७॥ वीर लक्षण ने वहां उसको देखकर वह हाथी की पीठ पर सवार होकर आया और उसने अपने शर से कृष्णांश के हृदय में दृढ़ता के साथ ताडन किया था ॥२८॥

निष्फलत्वं गतो बाणो विष्णुमंत्रेण प्रेरितः ।
विस्मितः स तु भूपालो वाहनाद्भूमिमागतः ॥२९
नत्वा तच्चरणौ दिव्यौ कुलिशादिभिरन्वितौ ।
तुष्टाव दंडवद्भूत्वा लक्षणो गद्गदं गिरा ॥३०
वैष्णवं विद्धि मां स्वामिन्विष्णुपूजनतत्परम् ।
जानेऽहं त्वां महाबाहो कृष्णांशकवतारकम् ॥३१

त्वदृते को हि मे दाणं निष्फलं कुरुते भुवि ।
क्षमस्व मम दौरात्म्यं नाथ ते मायया कृतम् ॥३२
इत्युक्त्वा तेन सहितो जयचन्द्र महीपतिम् ।
गत्वा त कथयामास यथा प्राप्त. पराजयम् ॥३३
नृपस्तयोः परीक्षार्थं यौ तु छायाविमोहितौ ।
गजौ कुवलयापीडौ त्यक्त्वाञ्छीतलास्थले ॥३४
तदाह्लादोदयौ वीरौ गृहीत्वा तौ स्वलीलया ।
चकृषतुर्बलात्पुच्छे क्रोशमात्रं पुन पुन. ॥३५

किन्तु वह विष्णु मन्त्र के द्वारा उसका प्रेरित किया हुआ बाण बिल्कुल ही निष्फलता को प्राप्त होगया था। तब तो वह भूपाल अत्यन्त विस्मित होकर भूमि पर वाहन से उतर आया था ॥२६॥ फिर उसने कुलिश आदि दिव्य लक्षणो से समन्वित उसके चरणो मे प्रणाम किया और भूमि मे दण्ड की भाँति पडकर अपनी गदगद वाणी के द्वारा लक्षण ने उसकी स्तुति की थी ॥३०॥ लक्षण ने कहा—हे स्वामिन् ! आप मुझ को भी सर्वदा भगवान् विष्णु के पूजा मे तत्पर रहने वाला वैष्णव ही जानें। हे महाबाहुओ वाले ! मैं अब आपको पहिचान गया हूँ कि आप कृष्ण शक्ति के ही अवतार वाले देव हैं ॥३१॥ आपके बिना इस भूमण्डल मे अन्य कोई भी नहीं है जो मेरे इस बाण को निष्फल कर देवे। हे नाथ ! मेरी इस दुरात्मता को अब आप क्षमा कर देवें जोकि मैंने आपकी ही माया से मोहित होकर आपके साथ की है ॥३२॥ इतना कह कर वह उसी कृष्णांश के साथ राजा जयचन्द्र के पास गया और उससे सब वृत्तान्त कह सुनाया था कि किस प्रकार से उसकी पराजय वहा युद्ध मे हुई थी ॥३३॥ राजा ने उन दोनों की परीक्षा करने के लिय उस शीतला के स्थल में दो कुवलयापीड हाथियो को जोकि छाया से विमोहित थे छोड दिया था ॥३४॥ उस समय आह्लाद और उदय आदि वीरो ने उन दोनो को अपनी लीला से ही ग्रहण कर लिया था और बलपूर्वक बार-बार एक कोश पर्यन्त पूँछ पकड कर उन्हें खींच लिया था ॥३५॥

मृतौ कुवलयापीडौ दृष्ट्वा राजा भयातुर ।
ददौ राजगृह ग्राम तयोरर्थे प्रसन्नधी ॥३६
इपशुल्के तु सप्राप्ते लक्षणो नाम वै बली ।
नृपाज्ञया ययौ शीघ्र तैश्च दिग्विजय प्रति ॥३७
सप्तलक्षबलैस्साढ्ढ तालनाद्यैश्च सयुत ।
वाराणसी पुरी प्राप्य रुरोध नगरी तदा ॥३८
रुद्रवर्मा च भूपालो गौडवशयशस्कर ।
पचायुतं स्वसैन्यैश्च साढ्ढं युद्धार्थमाप्तवान् ॥३९
याममात्रेण त जित्वा षोडशाब्दस्य वै करम् ।
कोटिमुद्रामथ प्राप्य जयचद्राय चार्पयत् ॥४०
मागधेश पुनर्जित्वा नाम्ना विजयकारिणम् ।
विंशत्यब्दकर प्राप्य स्वभूपाय समर्पयत् ॥४१
पचकोटीश्च वै मुद्रा राजतस्य पुत्रययौ ।
अ ग देशपतिं भूप मायावर्माणमुत्तमम् ॥४२
सैन्यायुतयुत जित्वा विंशत्यब्दस्य वै करम् ।
कोटिमुद्राश्च सप्राप्य स्वभूपाय समार्पयत् ॥४३

व दोनो कुवलयापीडा हाथी मर ही गये थे। इसे देखकर राजा बहुत अधिक भय स आतुर होगया था। तब तो राजा ने परम प्रसन्न होकर उन दोनों के लिय राजगृह नामक ग्राम दे दिया था। ॥३६॥ आश्विनमासके शुक्ल पक्ष क सम्प्राप्त होनेपर लक्षण नाम धारी बलवान् ने राजा की आज्ञा से उनको साथ लेकर दिग्विजय करने के लिये शीघ्र प्रस्थान किया था ॥३७॥ सात लाख सेना के साथ और तालन आदि स सयुत होकर वे वाराणसी पुरी म पहुँचे और वहाँ जाकर समस्त पुरी को अवरुद्ध कर लिया अर्थात् घर लिया था ॥३८॥ यहाँ पर रुद्र वर्मा नाम वाला राजा था जो कि गौड वश के यश के करने वाला था । वह पचास हजार अपनी सना क साथ युद्ध करने क लिय प्राप्त हुआ था। ॥३९॥ उसको एक ही प्रहर म उन्होंने जीत कर सोलह वर्ष का कर एक करोड मुद्रा के रूप मे प्राप्त करके राजा

जयचन्द्र के अर्पण कर दिया था। ॥४०॥ और पाँच करोड़ मुद्रा फिर राजा से गई थीं। इसके अनन्तर अङ्ग देश के स्वामी परम श्रेष्ठ मायार वर्मा भूप को जोकि दश सहस्र सेना से युक्त था, जीतकर उससे बीस वर्ष का कर एक करोड़ मुद्राएँ प्राप्त की थीं और वे सब भी अपने राजा के लिये लाकर समर्पित करदी थी ॥४२-४३॥

वंगदेशपतिं वीरो लक्षणो वै युतश्च तैः ।
लक्षसैन्ययुतं भूपं कालीवर्माणमुत्तमम् ।
अहोरात्रेण तं जित्वा महायुद्धेन लक्षणः ॥४४
विंशत्यब्दकरं प्राप्य कोटिं स्वर्णमयं तदा ।
प्रेषयामास भूपाय जयचंद्राय वै मुदा ॥४५
उष्ट्रदेशं ययौ वीरः पालितं तैर्महःबलैः ।
धोयीकविस्तत्रनृपो लक्षसैन्यसमन्वितः ॥४६
जगन्नाथाज्ञया प्राप्तस्तैश्च सार्द्धं रणोन्मुखे ।
तयोश्चासीन्महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
अहोरात्रप्रमाणेन कृष्णांशेन जितो नृपः ॥४७
विंशत्यब्दकरं सर्वं कोटिस्वर्णसमन्वितम् ।
संप्राप्य प्रेषयामास कान्यकुब्जाधिपाय वै ॥४८
पुंड्रदेशं ययौ वीरो लक्षणो बलवत्तरः ।
नृपं नागपतिं नाम पंचायुतबलैर्युतम् ।
दिनमात्रेण तं जित्वा कोटिमुद्रा गृहीतवान् ॥४९

फिर वीर लक्षण उन सबके साथ वङ्ग देश के पति राजा काली वर्मा के पास पहुँच गये जोकि एक उत्तम भूप था और एक लाख सेना से समन्वित था। लक्षण ने उसके साथ महा युद्ध किया था और एक अहोरात्र में उसको जीत लिया था ॥४४॥ उस समय वहाँ से भी बीस वर्ष का इकट्ठा कर जोकि एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ थी प्राप्त करलीं और बड़ी प्रसन्नता से वे सभी राजा जयचन्द्र के पास भेज दी गई थीं ॥४५॥ फिर वह वीर उष्ट्र देश अर्थात् आन्ध्र या उत्कल देश में गया था जोकि महान् बलवानों के द्वारा सुरक्षित था। वहाँ पर धोयी कवि

नाम धारी भूप था और वह एक लाख सेना से समन्वित था ।।४६।। वह जगनाथ स्वामी की आज्ञा से उन सबके साथ युद्ध में सम्मुख प्राप्त हुआ था। उन दोनों का बड़ा भयानक तुमुल युद्ध हुआ था जोकि अत्यन्त रोमाञ्चकारी था। उस राजा को भी कृष्णांश ने सिर्फ एक ही अहोरात्र में जीत लिया था ।।४७।। उससे भी बीस वर्ष का एक करोड़ स्वर्ण समन्वित धन प्राप्त किया था उसे भी कान्यकुब्ज देश के स्वामी राजा जयचन्द्र के लिये प्रेषित कर दिया था ।।४८।। फिर अधिक बलवान् लक्षण वीर पुण्ड्र देश में पहुँचा था। वहाँ पर नागपति नाम वाला राजा था जोकि पचास हजार सेना की शक्ति से समन्वित था। उसे एक ही दिन में पराजित करके एक करोड़ का कर उससे भी ग्रहण किया था ।।४९।।

महेंद्रगिरिमागत्य नत्वा तं भार्गवं मुनिम् ।
ततो निवृत्य ते सर्वे नेत्रपालपुरं ययुः ।।५०
योगसिंहस्तदागत्य कृष्णांशं प्रति भार्गव।
कोटिमुद्रां ददौ तस्मै सप्तरात्रमवासयत् ।।५१
वीरसिंहपुरं जग्मुस्ते वीरा मदवत्तराः ।
रुरुर्नगरी सर्वा हिमतुंगोपरि स्थिताम् ।
पालिता गोरखाख्येन योगिना भक्तकारणात् ।।५२
भूपानुजः प्रवीरश्च सैन्यायुतसमन्वितः ।
तत्राऽयान्दारुणं युद्धं लक्षणस्यैव सेनया ।।५३
प्रत्यहं बलवान्शूरो हत्वा शूरसहस्रकम् ।
सायंकाले गृहं प्राप्य योगिनं तमपूजयत् ।।५४
पूजनात्स प्रसन्नात्मा सैन्यमुज्जीव्य भूपते ।
ददौ गजबलं तेभ्यः पुनर्योगं करोति वै ।।५५
सार्द्धं मासा गतस्तत्र युद्धतां बलशालिनाम् ।
तदा ते तु निम्नाद्या देवसिंह तमब्रुवन् ।।५६
विजयो न त्वयं भूप ब्रूहि नस्तत्त्वमग्रज ।
इति श्रुत्वा स होवाच शृणु कृष्णांश मे वचः ।।५७

योगिन गोरख नाम पराजित्य स्वनृत्यत ।
पुनर्युद्ध कुरु त्व वै ततो जय मवाप्स्यसि ॥५८

इसके अनन्तर वे सब महेन्द्र गिरिपर आगये थे। वहा उन्होने भार्गव मुनि को प्रणाम किया था और वहा से लौटकर वे सब नेत्रपाल के पुर को चले गये थ ॥५०॥ हे भार्गव ! उस समय योग सिहने आकर कृष्णाश को एक करोड मुद्राएँ दी थी और सात रात्रि तक वहा उनका निवास भी कराया था ॥५१॥ इसके पश्चात् अधिक मद से पूर्ण वे सब वीर वीरसिह पुर को चल गय थे।वहा हिमतुङ्ग पर स्थित समस्त नगरी को उन्होने घेर लिया था जोकि गोरखाख्य योगी के द्वारा सुरक्षित थी और उसका कारण भक्त का होना ही था ॥५२॥ वहाँ के राजा का छोटा भाई प्रवीर था जो दश सहस्त्र सना से समन्वित था। उसने लक्षण की ही सेना के साथ बहुत ही दारुण युद्ध किया। उस बलवान शूर न प्रतिदिन एक सहस्र शूरो का हनन किया। वह सायक न म घर पर आकर उस योगी की पूजा करता ॥५३ ५४॥ उस पूजन करने से वह परम प्रसन्न होकर राजा की मृत सना को पुन उज्जीवित कर देता और उन्हें एक हाथी का बल भी प्रदान करता। इस तरह वह पुनर्योग किया करता ॥५५॥ इस तरह वहा बलशालियो को युद्ध करते हुए डेढ मास का समय व्यतीत हो गया था। तब तो वे अरन निरत्साह हाकर दर्वसिह से कहने लग ॥५६॥ हे भूप ! आप ही बतलाइये और तत्व से समझाइय कि इस युद्ध म हमारा विजय कैसे हो सकता है। इसको सुन कर उसन कहा—हे कृष्णाश ! हमारी बात सुनो, तुम अपने नृत्य को कला स योगी गोरख को पराजित करो और फिर युद्ध करो तब तो तुम जय प्राप्त कर सकोगे ॥५७-५८॥

इत्युक्तमात्रे कृष्णाद्या कृत्वा योगमय वपु ।
स्थापयित्वा रणे सेना पालिता लक्षणेन वै ॥५९
प्राप्त रात्रे ययुस्त वै मदिर तस्य योगिन ।
कृष्णाशो नर्तकश्चासीदुदैः पुराद्यविशारद ॥६०

देवसिंहो मृदगाढ्यो वीणाधारी च तालन ।
कास्यधारो तदाह्लादो जनौ गीता सनातनीम् ॥६१
तदर्थं हृदये कृत्वा गोरखस्सवयोगवान् ।
वर वृणुत तानाह ते तच्छ्रुत्वाऽब्रुवन्वच ॥६२
नमस्यामो वय तुभ्य यदि देयो वरस्त्वया ।
देहि सजीविनी विद्यामाह्लादाय महात्मने ॥६३

इस प्रकार से वे सब कृष्णाश आदि कहे गये थे और इस कहने के पश्चात् उन सबने योगमय वपु धारण किया था। युद्ध स्थल मे सेना को स्थापित कर दिया जो कि लक्षण के द्वारा पूर्णत रक्षित की गई ॥५९॥ प्रात काल मे वे सब उस योगी के मदिर मे गये। कृष्णाश नृत्य करने वाला था तथा वह वेणु वाद्य का विशारद भी था अर्थात् वशी बहुत ही अच्छी बजाने वाला था ॥६०॥ देवसिंह मृदङ्ग से युक्त और तालन वीणा के धारण करने वाला था। आह्लाद कांस्य बजाने वाला था और उसने सनातनी गीता का गान किया था ॥६१॥ सब प्रकार के योग का ज्ञाता जो गोरख योगी था, वह उस सनातनी गीता के अर्थ को अपने हृदय मे समझता जाता था। वह परम प्रसन्न हो गया और उनसे बोला—वरदान माँग लो। यह उसका वचन सुन कर उन्होने कहा—हम सब आपको नमस्कार करते हैं। यदि आप प्रसन्न होकर हमको वरदान देना चाहते हैं तो इस महान् आत्मा वाले आह्लाद के लिये सञ्जीवनी विद्या प्रदान कर दीजिये ॥६२ ६३॥

इति श्रुत्वा हृदि ध्यात्वा तानुवाच प्रसन्नधी ।
विद्या सजीविनी तुभ्य वर्षमात्र भविष्यति ।
तत्पश्चान्निष्फलीभूयागमिष्यति मदतिकम् ॥६४
अद्यप्रभृति भो वीर मया त्यक्तमिद जगत् ।
यत्र भर्तृहरि शिष्यस्तत्र गत्वा शये ह्यहम् ॥६५
इत्युक्त्वा सहिता यागी अन्तर्दधे रणपूर्द्धनि ।
जित्वा प्रवीरसिंह च वीरसिंह तथैव च ॥६६

हत्वा तस्यायुत सैं य लुण्ठयित्वा च तद्गृहम् ।
कृत्वा दासमय भूप लक्षण प्रययौ मुदा ॥६७
कोशल देशमागत्य जित्वा तस्य महीपतिम् ।
सैन्यायुत सूयधर करयोग्यमचीकरत् ॥६८
षोडशाब्दक र प्राप्य मुद्राकोट्यायुत मुदा ।
नैमिषारण्यमागम्य तत्रोषु स्नानतत्परा ॥६९
होलिकाया दिने रम्ये लक्षणो बलवत्तर ।
दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यो महोत्सवमकारयत् ॥७०

यह श्रवण करके और हृदय म ध्यान करके वह प्रसन्न बुद्धि वाला गोरख उनसे बोला—यह सजीवनी विद्या तुमको एक वष भर को होगी इसके पश्चात् यह निष्फल हो जायगी और फिर यह मेरे पास ही लौट कर आ जायगी ॥६४॥ हे वीर ! आज स मैंने इस जगत् का त्याग कर दिया है । अब जहाँ पर मरा शिष्य भतृहरि है वहाँ जाकर मैं शयन करूँगा ॥६५॥ इतना उन सबसे वह कर वह योगी अन्तर्धान हो गया और व सब रण स्थल म आ पहुँचे थे । फिर उन्होने अघोरसिंह और वीरसिंह को जीतकर उसकी दस हजार सेना का वध कर दिया और उसक सम्पूण घर को लूट लिया । उस राजाको अपना पूण दास बना कर लक्षण वहाँ स बडा प्रसन्नता के साथ रवाना हो गया ॥६६ ६७॥ फिर इसके पश्चात् कोशल नामक देश म गया और वहाँ के महीपति को जीतकर एक अयुत सना से युक्त सूयधर को कर देन क योग्य बना दिया । ॥६८॥ वहाँ स सोलह वष का इकट्ठा कर दस सहस्र मुद्रा प्रसन्नता स प्राप्त की । फिर नैमिषारण्य म आकर वहाँ स्नान म तत्पर होकर निवास करन लग गये ॥६९॥ होला क सुन्दर दिन म बलवान् लक्षण न महोत्सव कराया और ब्राह्मणों को बहुत स दान दिये थ ॥७०॥

तदा वय च मुनय ममाधिस्तात्र भूपनि ।
यदा स लक्षण प्राप्ता नैमिषारण्यमुत्तमम् ॥७१
स्नात्वा सर्वाणि तीर्थानि सनप्य द्विजवना ।
पा मयूरजपुर जग्मुस्त्वत्कृष्णाष्टमीदिने ॥७२

इति ते कथित विप्र यथा दिग्विजयोभवत् ।
श्रृणु विप्र कथा रम्या बलखानिर्यथा मृत ॥७३
मार्गकृष्णस्य सप्तम्या भूमिराजो महाबल ।
महीपतेश्च वाक्येन सामत प्राह निर्भय ॥७४
मया श्रुतस्ते तनय शारदावरदर्पित ।
रक्तबीजत्वमापन्नस्त मे देहि कृपा कुरु ॥७५
इत्युक्तस्स तु सामन्तस्तेन गजेंव सत्कृत ।
चामु ड नाम तनय समाहूयाब्रवीदिदम् ॥७६
पुन त्व नृपते कार्यं सदा कुरु रणप्रिय ।
इति श्रुत्वा पितुर्वाक्य स वै राजानमब्रवीत् ॥७७
देहाज्ञा भूपते मह्य शीघ्र जयमवाप्स्यसि ।
इति श्रुत्वा स होवाच बलखानिमहाबल ॥७८
मच्छिरीषवन छित्वा गृहीत्वा राष्ट्रमुत्तमम् ।
सुस्थितो निर्भयो गेहे बहुशाली यतेंद्रिय ॥७९

उस समय मे हम सब और मुनिगण सब समाधि मे स्थित हो गये, जिस समय राजा लक्षण उस उत्तम नैमिषारण्य मे प्राप्त हुआ था ॥७१॥ वहाँ पर समस्त तीर्थों मे स्नान करके और द्विजों तथा देवो का सम्यक् प्रकार से तृप्त करके चैत्र माम की अष्टमी तिथि मे फिर वापिस कान्य-कुब्ज देश को चले गये ॥७२॥ हे विप्र ! यह समस्त वृत्तात हमने तुमको सुना दिया है जैसे कि वह दिग्विजय हुआ था। हे विप्र ! अब तुम एक परम सुन्दर कथा का श्रवण करो, जिसम यह बताया जायगा कि बलखानि को मृत्यु किस प्रकार से हुई ॥७३॥ मार्गशीर्ष मास की कृष्ण पक्ष की सप्तमी म महान् बलवान् भूमिराज महीपति के वाक्य स निर्भय होकर सामत से बोला ॥७४॥ मैंने सुना है कि आपका पुत्र शारदा देवी के वरदान पाने स बडा घमण्डी है और रक्त-बीजत्व को प्राप्त हो गया है, आप उसको मुझे दे दो ऐसी कृपा अवश्य ही करिए ॥७५॥ इस प्रकार से कहा गया वह साम त उसके द्वारा राजा की ही भाति सत्कार किया गया। चामुण्ड नाम का जो पुत्र था, उसे बुला

कर उससे यह बोला—॥७६॥ हे पुत्र ! तू नृपति का कार्य सर्वदा निडर होकर कर, क्योंकि तू तो बहुत रणप्रिय वीर है। इस प्रकार के पिता के वाक्य सुन कर वह राजा से बोला ॥७७॥ हे भूपते ! आप मुझे आज्ञा प्रदान करें तो बहुत ही शीघ्र जय को प्राप्त हो जायँगे। यह सुनकर वह बोला कि बलखानि महान् बलवान् है। उसने मेरा शिरीष वन काट कर और उत्तम राष्ट्र ग्रहण करके वह बहुशाली एवं यतेन्द्रिय घर में निभय होकर सुस्थित हो रहा है ॥७८ ७९॥

यदि त्वं बलखानिं च जित्वा मे ह्यर्पयिष्यसि।
हत्वा वा तस्य सकलं राष्ट्रं त्वयि भविष्यति ॥८०
इत्युक्त्वा रक्तबीजं तं समाहूय स्वकं बलम्।
सप्तलक्षं ददौ तस्मै स तत्प्राप्य मुदा ययौ ॥८१
उपित्वा त्रिदिनं मार्गे शिरीषाख्यमुपागतः।
रुरोध नगरीं सर्वां बलखानेर्महात्मनः ॥८२
चामुण्डागमनं श्रुत्वा बलखानिर्महाबलः।
पूजयित्वा महामायां दत्त्वा दानान्यनेकशः।
लक्षसैन्येन सहितः प्रययौ नगराद्बहिः ॥८३
तस्यानुजो महावीरस्सुखखानिर्बलैः सह।
हरिणीं तां समारुह्य शत्रुसैन्यमचिक्षपत् ॥८४

यदि तुम उस महाबली बलखानि को जीत कर मुझे सौंप देगा अथवा उसे मार देगा तो उसका समस्त राष्ट्र तेरा ही हो जायगा अर्थात् तुझे दे दिया जायगा। उस रक्तबीज से यह कह कर अपनी सात लाख सेना उसको दे दी थी। वह भी उस सेना को प्राप्त करके प्रसन्नता से चल दिया था ॥८० ८१॥ वह तीन दिन तक मार्ग में पडाव डाल कर शिरीषाख्यपुर में पहुँच गया। उसने फिर महात्मा बलखानि की जो पुरी थी, उसका सब ओर से घेरा डाल दिया था ॥८२॥ चामण्ड का आगमन सुन कर महान् बल वाले बलखानि ने महामाया देवी का पूजन किया और अनेक प्रकार के दान विप्रों को दिये थे। फिर वह एक लाख सेना लेकर नगर से बाहिर आया था ॥८३॥ उस बलखानि का छोटा

भाई सुखखानि था, वह भी एक महान् वीर था। वह सेना के साथ हरिणी पर समारूढ होकर वहां पहुँचा और शत्रु की सेना पर टूट पड़ा ॥८४॥

वलखानि कपोतस्थो नाशयित्वा रिपोर्वलम् ।
लक्षसैन्य मुदा युक्तश्चामुण्ड प्रति चागमत् ॥८५
तयोश्चासीन्महद्युद्ध स्वस्वसैन्यक्षयकरम् ।
अहोरात्रप्रमाणेन निहता क्षत्रिया रणे ॥८६
प्रात काले तु सम्प्राप्ते कृत्वा स्नानादिका क्रिया ।
जग्मतुस्तौ रणे वीरौ धनुर्बाणविशारदौ ॥८७
रथस्थो वलखानिश्च चामुण्डो गजपृष्ठग ।
चक्रतुस्तुमुल घोर नरविस्मयकारकम् ॥८८
वाणैर्वाणाश्च सछिद्य देवीभक्तौ च तौ मुदा ।
अन्योन्य वाहने हत्वा भूतलत्वमुपागतौ ।
खड्गचर्मधरौ वीरौ युयुधाते परस्परम् ॥८९
यावन्तो रक्तबीजागात्सजाता रक्तविंदव ।
तावन्त पुरुषा जाता रक्तबीजपराक्रमा ॥९०
तैश्च वीरैर्मदोन्मत्तैर्वलखानिस्समतत ।
सरुद्धोऽभूद्भृगुश्रेष्ठ शारदा शरण ययौ ॥९१

वलखानि कपोत नामक वाहन पर समास्थित था। उसने शत्रु की सेना का नाश किया, जो कि एक लाख थी। फिर प्रसन्नता से वह चामुण्ड की ओर आया ॥८५॥ उन दोनो का महान् युद्ध हुआ, जो अपनी अपनी सेनाओ के क्षय का करने वाला था। वह युद्ध एक अहोरात्र पर्यन्त हुआ और उस रण मे क्षत्रिय बहुत से मारे गये थे ॥८६॥ प्रातःकाल के सम्प्राप्त होने पर स्नान आदि की क्रिया समाप्त करके धनुर्वाण के चलाने की विद्या के परम पण्डित वे दोनो वीर युद्ध-स्थल मे गये थे ॥८७॥ बलखानि तो अपने एक रथ मे बैठा हुआ था और चामुण्ड हाथी की पीठ पर समारूढ था। उन दोनो ने फिर ऐसा घोर तुमुल युद्ध किया कि वह मनुष्यो को एकदम विस्मय मे डाल देने वाला था ॥८८॥ वे दोनो ही देवी के परम भक्त थे। उनने बाणों से बाणो को काट कर

बडे ही आनन्द से एक दूसरे के वाहनो को मार डाला और फिर वे इस भूमि पर उतर आये थे। दोनो ही वीर खड्ग और चर्म (ढाल) के धारण करने वाले थे और दोनो आपस मे युद्ध कर रहे थे॥८६॥ रक्तबीज के अ ग से जितनी ही रक्त की बूंदे निकली थी, उतने पुरुष वही उत्पन्न हो गये थे जो कि रक्तबीज के तुल्य ही पराक्रम वाले थे ॥६०॥ उन मद से उन्मत्त वीरो ने बलखानि को चारो ओर से सरुद्ध कर लिया। हे भृगु-श्रेष्ठ! तब वह बलखानि शारदा देवी की शरण म गया था ॥६१॥

एतस्मिन्नन्तरे वीर सुखखानिस्ततोऽनुज ।
आग्नेय शरमादाय रक्तबीजानदाहयत् ॥६२
पुरा तु सुखखानिश्च हव्यैर्देव च पावकम् ।
पचाब्दान्पूजयामास तदा तुष्टस्वय प्रभु ॥६३
पावकीय शर रम्य शत्रुसहारकारकम् ।
ददौ तस्मै प्रसन्नात्मा तेनासावभवज्जयी ॥६४
बलखानिस्तु बलवानदृष्ट्वा शत्रुविनाशनम् ।
पराजित च चामुण्ड बद्ध्वा गेहमुपागतम् ॥६५
कृत्वा नारीमय वेप स भीतो ब्रह्महत्यया ।
डोलामारोप्य बलवान्प्रेषयामास मन्दिरे ॥६६
हतशेष पचलक्ष सैन्य गत्वा च देहलीम् ।
वृत्तान्त कथयामास यथा जातो महारण ॥६७
नारीवेप च चामुण्ड स दृष्ट्वा पृथिवीपति ।
क्रोधाविष्टश्च बलवान्महीपतिमुवाच ह ॥६८

इस बीच मे वीर सुखखानि ने जो कि बलखानि का छोटा भाई था, आग्नेय अस्त्र ग्रहण किया और जो भी रक्तबीज वहाँ पर थे उनको उससे जला दिया था ॥६२॥ पहिले सुखखानि ने द्रव्यो के द्वारा पावक देव की पांच वर्ष पर्यन्त पूजा की, तब वह देव प्रभु स्वय प्रसन्न हुए थे ॥६३॥ उनने परम प्रसन्न होकर एक अत्यन्त सुन्दर पावकीय शर उसको प्रदान किया, जो कि शत्रुओ का सहार करने वाला था, उससे ही यह जयी हो गया ॥६४॥ बलवान् बलखानि ने शत्रु के विनाश को देखकर घर म प्राप्त पराजित चामुण्ड को बाँध कर उसका नारीमय

वेष करके, ब्रह्महत्या से भीत होकर उसको एक दोला में बिठा कर बलवान् ने शत्रु के पास ही भेज दिया ॥९५-९६॥ मरने से बची हुई सेना के सैनिकों ने देहली समस्त वृत्तांत कह सुनाया, जिस तरह से वह युद्ध वहां पर हुआ था ॥९७॥ पृथ्वीपति ने नारी के वेष वाले चामुण्ड को देख कर वह बहुत ही क्रोध में आविष्ट हो गया। फिर वह महीपति से बोला ॥९८॥

कथं जयो मे भविता सुखखानौ च जीविते ।
श्रुत्वा महीपतिः प्राह च्छद्मना कार्यमाकुरु ॥९९
ब्राह्मी माता तयोर्ज्ञेया शुद्धा सैव पतिव्रता ।
दूतीभिः कारणं ज्ञात्वा पुनर्युद्धं कुरुष्व भो ॥१००
इति श्रुत्वा महीराजो दूतीस्ताश्छलकोविदाः ।
आहूय प्रेषयामास बलखानिगृहं प्रति ॥१०१
ब्राह्मण्यस्तास्तदा भूत्वा बलखानिगृहं ययुः ।
ससुता तां प्रशस्याशु पप्रच्छुर्विनयान्विताः ॥१०२
तव पुत्रौ महावीरौ दिष्ट्या शत्रुक्षयकरौ ।
तयोर्मृत्युः कथं भूयाज्जीवतां शरदां शतम् ॥१०३
तदा ब्राह्मी वचः प्राह पावकीयः शरः शुभः ।
सुखखानेर्जीवकरो बलखानेः पदाह्वकः ॥१०४
इति ज्ञात्वा तु ता दूत्यः प्रययुर्देहलीं प्रति ।
कथयित्वा नृपस्याग्रे धनं प्राप्य गृहं ययुः ॥१०५
महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा महादेवमुमापतिम् ।
पार्थिवैः पूजनं चक्रे सहस्रदिवसान्मुदा ॥१०६

सुखखानि जब तक जीवित है मेरा जय कैसे हो सकता है। महीपति ने यह सुन कर कहा—छल से कार्य करना चाहिये ॥९९॥ उन दोनों की माता ब्राह्मी है जो परम शुद्ध पतिव्रता जाननी चाहिए। दूतियों के द्वारा कारण को जान कर फिर युद्ध करो ॥१००॥ यह सुन कर महीराज ने उन दूतियों को जो कि छल के कार्य करने में बहुत ही प्रवीण थीं बुलाया और उन्हें बलखानि के घर की ओर के प्रेषित कर

दिया ॥१०१॥ वे उस समय ब्राह्मणी बन कर ही बलखानि के घर में गयी। उन्होंने सुता के साथ उसकी प्रशंसा करके विनय से युक्त होकर पूछा था ॥१०२॥ आपके दोनों पुत्र महान् वीर हैं, जो कि शत्रुओं का क्षय करने वाले हैं, यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। सैंकड़ों वर्ष तक जीवित रहते हुए उन दोनों की मृत्यु फिर किस तरह होगी ? ॥१०३॥ तब उस ब्राह्मी ने यह वचन कहा—पावकीय बड़ा ही शुभ हार है, जो कि सुखखानि के जीवन का करने या रखने वाला है और बलखानि का पदाह्वक है ॥१०४॥ इस प्रकार से यह सब बातें जान कर वे दूतियाँ देहली के प्रति वापिस चल दीं। उन्होंने नृप के समक्ष में सब कह दिया और बहुत-सा धन प्राप्त करके वे अपने घरों में चली गई थीं ॥१०५॥ महीराज ने यह सुन कर उमा के पति महादेव का पार्थिवों के द्वारा एक सहस्र दिन तक प्रसन्नता से पूजन किया था अर्थात् शिव का पार्थिव पूजन किया था ॥१०६॥

॥ महावती का युद्ध वर्णन ॥

श्रावणे मासि संप्राप्ते देहलीं च महीपतिः ।
नागोत्सवाय प्रययौ सदैव कलहप्रियः ॥१
दृष्ट्वा नागोत्सवं तत्र गीतनृत्यसमन्वितम् ।
महीराज्यं नमस्कृत्य वचनं प्राह नम्रधीः ॥२
राजन्महावतीग्रामे कीर्तिसागरमध्यगे ।
वामनोत्सवमत्यं तं यवव्रीहिसमन्वितः ।
पश्य त्वं तत्र गत्वा च ममैव वचनं कुरु ॥३
इति श्रुत्वा महीराजो धुंधुकारेण संयुतः ।
सप्तलक्षबलैर्युक्तश्चामुण्डेन समन्वितः ।
प्राप्तः शिरीषविपिने तत्र वासमकारयत् ॥४
महीपतिस्तु नृपतिं नत्वा वै चन्द्रवंशिनम् ।
उवाच वचनं दुःखी धूर्तो मायाविशारदः ॥५

राजन्प्राप्तो महीराजो युद्धार्थी त्वामुपस्थित ।
चन्द्रावली च तनया ब्रह्मानद तवात्मजम् ।
दिव्यलिंग स सपूज्य बलात्काराद्‌गृहीष्यति ॥६
तस्मात्त्व स्वबलै सार्द्धं मया सह महामते ।
छद्मना त पराजित्य नगरेऽस्मिन्सुखी भव ॥७

इस अध्याय म महावती पुरी म युद्ध के वृत्तात का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—श्रावण मास के प्राप्त हो जाने पर सदा ही कलह से प्यार करने वाला महीपति नागोत्सव के देखने के लिये देहली चला गया था ॥१॥ वहाँ पर नागोत्सव को देख कर जो कि गीत और नृत्य से युक्त सम्पन्न हुआ, फिर उस महीपति ने महीराज को नमस्कार करके नम्रता के साथ यह वचन कहा था ॥२॥ हे राजन् कीर्त्तिसागर के मध्य मे रहने वाले महीवती ग्राम मे जो वामनोत्सव होता है वह अत्यन्त ही अच्छा है। यवग्रीहि समन्वित होकर आप वहाँ जाकर उसे देखें। यह मेरा वचन आप अवश्य ही करें ॥३॥ यह सुन कर महाराज धुन्धुकार से युक्त होकर सात लाख सेना लेकर और चामुण्ड से समन्वित होकर शिरीष वन मे प्राप्त हो गया था। वहाँ पर उसने निवास कराया था ॥४॥ वहाँ पर भी महीपति पहुँच गया और चन्द्रवशी राजा को प्रणाम करके उसने उससे कहा—जो बहुत ही दुखी, धूर्त और माया का पण्डित था ॥५॥ हे राजन् ! महीराज युद्ध करने की इच्छा लेकर यहाँ तुम्हारे पास आ गया है। यह अब आपकी चन्द्रावली कन्या को तथा आपके पुत्र ब्रह्मानन्द को दिव्य लिंग की पूजा करके बलात्कार पूवक छीन कर ले जायगा ॥६॥ इसलिए हे महामते ! आप अपनी सेना के साथ मेरे सहयोग के द्वारा छल से उसे पराजित कर दो और फिर अपने इस नगर मे परम सुख के साथ निवास करियेगा ॥७॥

इति श्रुत्वा दैववशो राजा परिमलो बली ।
चतुर्लक्षबलैस्सार्द्धं निशीथे च समागत ॥८

शयितान्क्षत्रियाञ्छूरान्हत्वा पचसहस्रकान् ।
शतघ्नी रोपणी चक्र बहुशूरविनाशिनीम् ॥९

तदोत्थाय महीराज कटिमावध्य सभ्रमात् ।
वैरिण परम मत्वा महद्युद्धमचीकरत् ॥१०

युद्धघ त्यो सेनयोस्तत्र मलना पुत्र गृद्धिनी ।
शारदामादराद्गत्वा पूजयामास भक्तित ॥११

देविदेवि महादेवि सवदु खविनाशिनि ।
हर मे सकला बाधा कृष्णाश वोधयाशु च ॥१२

जप्त्वायुतमिम मन्त्र हुत्वा तर्पणमाजने ।
कृत्वा सुष्वाप तद्देशमस्तदा तुष्टा स्वय शिवा ॥१३

मलने महती बाधा क्षय यास्यति मा शुच ॥१४

यह सुनकर देव के वशीभूत बली परिमल राजा अपनी चार लाख सेना के साथ आधी रात में वहा आगया ॥८॥ वहा सोते हुए पाच सहस्र क्षत्रियो को मार दिया था। फिर बहुत से शत्रुओ का विनाश करने वाली शतघ्नी को रोपणी किया अर्थात् तोप चलाई। तब महीराज ने सम्भ्रम से उठकर कटि को बाधकर उसे परम वैरी मान कर उस से महान युद्ध किया था ॥६ १०॥ वहा पर दोनो सेनाओ के युद्ध करने पर मलना विचारी पुत्र की दुखिया ने शारदा के पास जाकर बड़े ही आन्दर से और भक्ति के भाव से उसका पूजन किया ॥११॥ हे देवि ! हे महादेवि ! तू सबके दु खो का विनाश करने वाला है। इस समय मेरी सम्पूर्ण बाधा का हरण करो और शीघ्र ही कृष्णाश को यह बात जतलादे ॥१२॥ उसने इस मन्त्र को दस हजार बार जप करके फिर हवन किया और यथाविधि तपण तथा माजन भी किया। वहा उस रात्रि मे वही पर सो गई। तब शिवा प्रसन्न हुई और स्वय आकर कहा—हे मलन ! तेरी महती बाधा क्षय को प्राप्त हो जायगी तू इसकी चिन्ता मत करे ॥१३ १४॥

इत्युक्त्वा शारदा देवी कृष्णांश प्रति चागमत् ।
पुत्र ते जननी भूमिर्महीराजेन पीडिता ।
क्षय यास्यति शीघ्र च तस्मात्त्व ता समुद्धर ॥१५
इति श्रुत्वा वचो देव्यास्स वीरा विस्मयान्वित ।
देवकी प्रति सप्राप्त कथयामास कारणम् ॥१६
सा तु श्रुत्वा वचो घोर स्वर्णवत्या समन्विता ।
रुरोद भृशमुद्विग्ना विलप्य बहुधा सती ॥१७
कृष्णांशस्तु तदा दु खी देवसिंहमुवाच ह ।
किं कर्तव्य मया वीर देह्याज्ञा दारुणे भये ॥१८
तच्छ्रुत्वा तन सहितो लक्षणेन समन्वित ।
ययौ दिग्विजयार्थेन व्याजेन च महावतीम् ॥१९
तालनो भीमसेनाद्य सेनापतिरुदारधी ।
सप्तलक्षबलैस्सार्द्ध विनाह्लादेन सययौ ॥२०
कल्पक्षेत्र मुपागम्य योगिनस्ते तदाभवन् ।
सेना निवेशयामास विपिन तत्र दारुणे ॥२१

मनना से इतना कहकर वह शारदा देवी कृष्णांश के प्रति गई वह उसने कृष्णांश से कहा—हे पुत्र ! तेरी जननी भूमि इस समय और महीराज के द्वारा सताई हुई है। वह शीघ्र ही क्षय को प्राप्त हो जायगी। इसलिये तू शीघ्र ही उसका उद्धार कर ॥१५॥ देवी के इस तरह के वचनों को सुन कर वह वीर अत्यन्त ही विस्मित हो गया और देवकी के पास जाकर समस्त कारण उसने कह सुनाया ॥१६॥ उसने इस घोर वचन को सुनकर स्वर्णवती से समन्वित होकर अत्यन्त उद्विग्न होती हुई रुदन करने लगी और सती ने बहुत सा विलाप करके बड़ी ही पीड़ा प्राप्त की थी ॥१७॥ कृष्णांश भी उस समय बहुत दुःखित हुआ और देवसिंह से बोला—हे वीर ! मुझे इस समय क्या करना चाहिए। यह बड़ा ही दारुण भय उपस्थित है इस विषय में मुझे आप ही आज्ञा दें। ॥१८॥ यह सुनकर उसके साथ और लक्षण से समन्वित होकर दिग्विजय के करने के बहाने से वह महावती को गया ॥१९॥

भीम सेनाश तालन जो कि अत्यन्त उदार बुद्धि वाला सेनापति था सात लाख सेना के साथ आह्लाद के बिना वहां गया ।।२०।। कल्प क्षेत्र मे पहुंच कर उस समय वे योगी हो गये थे अर्थात् योगियो का वेष धारण कर लिया । वहां उस दारुण विपिन मे जो सेना थी उसमे निवेश किया ।।२१।।

कृष्णाशस्तालनो देवो लक्षणो बलवत्तर ।
गृहीत्वा लास्यवस्तूनि युद्धभूमिमुपागमन् ।।२२
सप्ताह च तयोर्युद्ध जात मृत्युविवर्द्धनम् ।
सप्तमेऽहनि ते वीरास्सम्प्राप्ता रणमूर्द्धनि ।।२३
तस्मिन्दिने महाभाग मह द्धमवर्त्तत ।।२४
दृष्ट्वा पराजित सैन्य राजा परिमलो बली ।
रथस्थश्चापमादाय महीराजमुपाययौ ।।२५
यादवश्च गजारूढस्तदा चन्द्रावलीपति ।
धु धुकार समाहूय धनुयु द्धमचीकरत् ।।२६
हरिनागरमारुह्य ब्रह्मानदो महाबल ।
तारक शत्रुमाहूय धनुर्युद्ध चकार ह ।।२७
मदन राजपुत्र च रणजिद्गजसस्थित ।
स्वशरैस्ताडयामास सत्सुत च जघान ह ।।२८

कृष्णाश तालन देवसिंह और बलवान लक्षण इन सबने लास्य की वस्तुएं ग्रहण कर युद्ध भूमि मे फिर ये सब पहुच गये थे ।।२२।। सातदिन तक उन दोनो का मौतो का बढाने वाला महान् युद्ध हुआ था । सातवे दिन मे वे वीर रण के माथ पर सम्प्राप्त हो गये थ ।।२३।। हे महाभाग ! उसदिन मे महान् युद्ध हुआ ।।२४।। राजा परिमल सैन्य को पराजित देखकर रथ मे स्थित हो कर धनुष लेकर महीराज के समीप में प्राप्त होगया ।।२५।। उस समय चन्द्रावली का पति यादव हाथी पर आरूढ था । धुधुकार को बुलाकर धनुयुद्ध किया था ।।२६।। महान् बलवान ब्रह्मानन्द ने हरि नागर पर स्थित होकर तारक शत्रु को बुला कर उससे धनुयुद्ध किया था ।।२७।। गजपर सस्थित रणजित

ने मर्दन राजपुत्र को बुला कर उसके साथ धनुर्युद्ध किया। उसने अपने शरो के द्वारा प्रहार किये और उसके पुत्र का हनन कर दिया ।।२८।।

रूपणो वै सरदन हयारूढो जगाम ह ।
आभीरीतनयो जातो मदनो नाम वै बली ।
नृहर राजपुत्र च शस्त्राशस्त्र जगाम ह ।।२६
तेषु सग्राममेतेषु चामुण्डोऽयुतसैन्यप ।
महीपतेश्च वचन मत्वा नगरमाययौ ।।३०
ददर्श नगरी रम्या चतुर्वर्णसमन्विताम् ।
धनधान्ययुता वीरो देवीभक्तिपरायण ।।३१
महीपतिस्तु वै धूर्तो दुर्गद्वारि समागत ।
चामुण्डेन युत पापी राजगेहमुपाययौ ।।३२
मलना भ्रातर दृष्ट्वा वचन प्राह दु खिता ।
भाद्रकृष्णाष्टमी चाद्य यवश्रीहि गृहे स्थितम् ।।३३
न प्राप्त जलसस्थाने सुपुण्ये कीर्तिसागरे ।
महीराजो महापापी वामनोत्सवमागत ।।३४
विनाह्लाद च कृष्णाश महद्दु खमुपागतम् ।
इत्युक्तस्स विहस्याह ब्राह्मणोऽय महाबली ।
कान्यकुब्जात्समायात कृष्णाशेन प्रयोजित ।।३५

रूपण हय पर आरूढ होकर सरदन पर गया। आमीरी का तनय, मदन नाम वाला बली उत्पन्न हुआ। राजपुत्र नृहरे के समीप युद्ध करने के लिये शस्त्रास्त्र गया ।।२६।। इन सबके सग्राम में व्यग्र रहने पर एक अयुत सेना का स्वामी चामुण्ड महीपति के वचन मानकर नगर में आगया था ।।३०।। उसने चारो वर्णों के लोगो से समन्वित रम्य नगरी को देखा था जो कि धन धान्य से परिपूर्ण थी। वहा देवी भक्ति में परायण वीर था ।।३१।। धूर्त महीपति तो दुर्ग के द्वार पर आगया था और चामुण्डा से युक्त वह पापी राज गृह में आ गया था ।।३२।। मलना ने जब भाई को देखा तो वह

अत्यन्त दुःखित होकर उससे बोली—आज भाद्रपद की कृष्णाष्टमी है और सब सखियाँ घर में स्थित हैं ॥३३॥ मृत्युञ्जय का संस्थान कीर्ति सागर है, उसमें यह प्राप्त नहीं हुए । महान् पापी महीराज कामाग्नि में आ गया है ॥३४॥ आह्लाद और कृष्णांश के बिना यह महान् दुःख उपस्थित हो गया है । इस प्रकार से कहे जाने वाला यह [illegible] यह ब्राह्मण महान् बलवान् है और [illegible] से आया है जिसे कृष्णांश ने ही भेजा है ॥३५॥

देवीदत्तश्च नाम्नाऽयं स ते कार्यं करिष्यति ।
श्रुत्वा चन्द्रावली देवी सर्वभूषणभूषिता ॥३६
कामाग्निपीडितं विप्रं चामुण्डं च ददर्श ह ।
मातरं प्रति चागम्य वचनं प्राह निर्भरम् ॥३७
धूर्तोऽयं ब्राह्मणो मातर्निश्चयं मां हरिष्यति ।
कोऽयं वीरो न जानामि क्व यामि पतिव्रता ॥३८
इति श्रुत्वा वचस्तस्या लज्जितस्स महीपतिः ।
चामुण्डेन युतः प्राप्तो यत्राभूत्स महारणः ॥३९
एतस्मिन्नन्तरे ते वै ब्रह्माद्यास्ते पराजिताः ।
त्यक्त्वा युद्धं गृहं प्राप्ताखिलक्षबलसंयुताः ॥४०
कपाटं सुदृढं कृत्वा महाचिंतामुपाययुः ।
महीराजस्तु बलवान्महीपत्यनुमोदितः ॥४१
प्रमदावनमागत्य षष्टिलक्षबलान्वितः ।
जुगोप तत्र बलवान्माननोत्सवहेतवे ॥४२

इसका नाम देवीदत्त है और यह तेरा कार्य कर देगा । चन्द्रावली देवी ने यह सुन कर समस्त भूषणों से वह संयुक्त हो गई थी ॥३६॥ उसने देखा कि वह विप्र चामुण्ड कामाग्नि से पीडित हो रहा है । उसने अपनी माता से कहा कि यह ब्राह्मण तो बहुत बडा धूर्त है और निश्चय ही यह मेरा हरण कर लेगा । यह वास्तव में कौन वीर है, यह भी मैं नहीं जानती हूं । मैं पतिव्रता नारी इसके साथ कैसे जा सकती हूँ ॥३८॥ उसके इस वचन को सुन कर महीपति अत्यन्त लज्जित

हो गया था और वह चामुण्ड के साथ वहाँ पर आ गया था जहाँ पर यह महारण हुआ था ॥३९॥ इसी बीच मे उनके द्वारा पराजित ब्रह्मादि युद्ध को छोड कर तीन लाख सेना से सयुत घर मे प्राप्त हो गये थे ॥४०॥ किवाडो को खूब दृढता से बन्द करके वे सब महाचिन्ता को प्राप्त हुए थे। महीपति के द्वारा अनुमोदन प्राप्त कर बलवान् महीराज प्रमदावन मे आकर साठ लाख सेना से युक्त होकर वहाँ मानोत्सव हेतु के लिए रक्षा करता था ॥४१-४२॥

तालनाद्याश्च चत्वार. शिरीषाख्यपुर ययु ।
स्थलीभूत च त ग्राम दृष्ट्वा ते विस्मयान्विता. ।
प्रययुस्ते सुखभ्रष्टा ददर्शुर्हिमद मुनिम् ॥४३
प्रणम्योचु शुचाविष्टा बलखानिर्मुने बली ।
क्व गत: समरश्लाघी स च कुनागरैर्युत ॥४४
श्रुत्वाह हिमदो योगी महीराजेन नाशित: ।
छद्मना बलखानिश्च तस्येय सुन्दरी चिता ॥४५
इति श्रुत्वा वचो घोर कृष्णाश: शोकतत्पर: ॥४६
विललाप भृश तत्र हा बन्धो धर्मजाशव ।
त्वदृते भूतले वासो ममातीव भयकर' ॥४७
दर्शन देहि मे क्षिप्रं नो चेत्प्राणास्त्यजाम्यहम् ॥४८
इत्युक्त' स तु तद्भ्राता बलखानि. पिशाचग' ।
सपत्नीकस्समायातो रोदन कृतवान्बहु ।
कथयित्वा सर्ववृत्तान्त यथाजात स्ववैशसम् ॥४९

तालन आदि जो चार थे वे सब शिरीषाख्यपुर को चले गये थे। उस ग्राम को स्थलीभूत देख कर वे बहुत ही अधिक विस्मय को प्राप्त हुए थे। वे सब सुख से भ्रष्ट होकर चले गये थे और उन्होने हिमद मुनि का दर्शन किया ॥४३॥ शोक से आविष्ट वे प्रणाम करते बोले—हे मुने! बली बलखानि, जो समरश्लाघी था, कहाँ चला गया है? क्योंकि वह कुनागरों से युक्त था ॥४४॥ यह सुन कर हिमद योगी ने कहा, बलखानि को तो महाराज ने छल से नाशित कर दिया है और

उसको सुन्दरी चिता है ॥४५॥ इस प्रकार के उसके अतिघोर वचन श्रवण कर कृष्णांश शोक से तत्पर होगया था ॥४६॥ कृष्णांश वहाँ बहुत अधिक विलाप करने लगा—हा बन्धो ! हे धर्म जानक ! तुम्हारे बिना तो अब इस भूतल में मेरा वास अत्यन्त ही भयंकर होगया है ॥४७॥ आप मुझे शीघ्र ही दर्शन दो अथवा मैं भी अपने प्राणों को त्याग देता हूँ ॥४८॥ ऐसा कहा गया वह उसका भाई बलखानि पिशाच के रूप वाला पत्नी के सहित वहाँ आगया और उसने बहुत रुदन किया था। उसने अपना समस्त वृत्तान्त वह सुनाया था जिस तरह वह अपने वैशस को प्राप्त हुआ था ॥४९॥

दिव्य विमानमारुह्य गतो नाक मनोरमम् ।
युधिष्ठिर तस्य कला बलाखानलयं गता ॥५०
तदा तु मोहकृष्णांश श्रुत्वा भ्रातुस्तिलाजलिम् ।
महावती समागत्य राजगृहमुपाययौ ॥५१
वेणुवादक कृष्णांशो ननर्त जनमोहन ।
वीणाप्रवाद्य च जगौ तालनो यागिरूपधृक् ॥५२
मृदगध्वनिना दवो लक्षण वास्यवाद्यक ।
सुस्वर न जगौ तत्र श्रुत्वा राजा विमोहित ॥५३
तदा तु मलना राणी दृष्ट्वा तद्रागमोत्सवम् ।
रुदित्वा वचन प्राह क गता मे प्रियकर ॥५४
कृष्णांशो च पुनस्त्यक्त्वा मा मन्दभागिनाम् ।
त्वया विरहिता दशो महाराजेन तु ठिन ॥५५
दृष्ट्वा मलना दृष्ट्वा कृष्णांश रोदनातर ।

तिलाञ्जलि दी थी। और फिर महावती मे पहुँच कर राजगृह मे प्राप्त हुआ था ॥५१॥ वहाँ कृष्णाश वेणु के शब्द के साथ नाचने लगा था जोकि समस्त जगत् का मोहन करने वाला था। वेणु प्रवाद्य को तालन ने गाया था जोकि एक योगी के रूप को धारण किये था ॥५२॥ मृदङ्ग की ध्वनि से देवसिंह तत्पर था और लक्षण कास्य वाद्य को बजा रहा था। इस तरह से वहा सुस्वर से गान किया था कि उसे सुन कर राजा विमोहित हो गया था ॥५३॥ उस समय रानी मलना उस वामनोत्सव को देखकर रोदन करके यह वचन बोली—मेरा प्रियकर कहा चलागया है। वह कृष्णाश अपने भाई के सहित मुझ मन्द भागिनी का त्याग कर कहा चला गया है ? हे पुत्र ! आज तेरे द्वारा विरहित यह देश महीराज के द्वारा लूट लिया गया ॥५४ ५५॥ इस प्रकार से कहने वाली मलना को देख कर कृष्णाश स्नेह से अत्यन्तकातर हो उठा और नम्रात्मा होकर यह वचन बोला—हे देवि ! तू वचन करदे ॥५६॥ हे राज्ञि ! यद्यपि हम सब योगी लोग हैं किन्तु सभी युद्ध की विद्या के महा पण्डित हैं। तरे इस समस्त कार्य का करके ही हम नैमिषारण्य को जायग ॥५७॥

ये यवग्रीहयश्चैव तव सद्मनि सस्थिता ।
गृहीत्वा योषितम्सर्वा गच्छ तु सागरान्तिकम् ।
वय तु योगसैन्येन तव रक्षा च कुर्महे ॥५८
इति श्रुत्वा वचस्तस्य तत्सुता च पतिव्रता ।
मातर वचन प्राह कृष्णाशोऽय न नर्तक ॥५९
पुण्डरीकनिभे नत्रे श्यामाग तस्य सुन्दरम् ।
कृष्णाशेन विना मात को रक्षार्थं क्षमो भुवि ।
दुजयश्च महीराज कृष्णाशेन विनिर्जित ॥६०
इति तद्वचन श्रुत्वा मलना प्रेमविह्वला ।
यवग्रीहयो निष्कास्य योषिता स्यानिरा वरे ॥६१
जगुस्ता योषितस्सर्वा कृष्णाशचरित शुभम् ।
लक्षण शीघ्रमागम्य योनिवपास्वसैनिका ।

सज्जीकृत्य स्थितस्तत्र तालनाद्यै सुरक्षित ॥६२
कीर्तिसागरमागम्य ते वीरा बलदर्पिता ।
रुरुधु सर्वतो नारीर्दोलायुतमितस्थिता ॥६३

जो ये यव व्रीहि तेरे घर मे सस्थित हैं उन्हें समस्त स्त्रिया लेकर सागर के समीप म जावें। हम योग की सेना से तुम्हारी रक्षा करते हैं ॥५८॥ इस तरह के उसके वचन को सुन कर पतिव्रता उसकी पुत्री अपनी माता से बोली—यह कृष्णाश ही है नाचने वाला नर्तक नही है। ॥५९॥ इसके पुण्डरीक के सदृश नेत्र है और श्याम अग है। जोकि अत्य त सुन्दर दिखाई दे रहा है। हे माता! कृष्णाश के बिना इस भूमण्डल म कौन है जो रक्षा करने के काय मे समर्थ हो सके। कृष्णाश के द्वारा विनिर्जित महीराज दुजय है ॥६०॥ उसके इस वचन को सुन कर मलना प्रेम स विह्वल होगई थी। उसन यवव्रीहि निकाल कर योषितो के हाथो म स्थापित कर दिया था ॥६१॥ उन समस्त स्त्रियो ने कृष्णाश के शुभ चरित का गान करने लगी थी लक्षण न शीघ्र आकर योगिवेष वाले सैनिको को तैयार करके तालन आदि के द्वारा सुरक्षित होता हुआ वहा पर स्थित हो गया था। वे समस्त वीर बलसेदर्पित होकर कीर्ति सागर पर आकर स्थित हो गय और उन्होने दोलायुत मित स्थित होकर नारियो को सब ओर स अवरुद्ध कर लिया था ॥६३॥

महीपतिस्तुन्मुल्हा ज्ञात्वा कृष्णांशमागतम् ।
चन्द्रवशिनमागम्य सपुत्रश्च रुरोद ह ॥६४
योगभिस्तैर्महाराज लु ठिता सर्वयोपित ।
मलना सहिता तत्र तथा चन्द्रावली सुता ॥६५
महीराजस्य त सैन्या योगिवपा स्समागता ।
तारयाय सुता प्रादा महीराजाय मत्स्वगाम् ॥६६
इति श्रुत्वा वचो घोर ब्रह्मानन्दो महाबल ।
लक्षतं याविनस्तत्र ययौ गोपमर्मा विन ॥६७
महीराजस्तु बलहीं में या युत मन्तात्मज ।
रक्षिन्तं रामगरा तथा रणजिता ययौ ॥६८

तयोश्चासीन्महद्युद्ध सेनयोरुभयोर्भु वि ।
तालनो योगिवेषश्च ब्रह्मानदमुपाययौ ॥६८
लक्षणश्चाभय शूर देवसिहो महीपतिम् ।
जित्वा वद्ध्वा च मुदितौ कामसेनस्समागत: ॥७०

कुल के हनन करने वाले महीपाति ने यह जान कर कि कृष्णांश आगया है चन्द्रव शी के पास आकर वह पुत्र के सहित रोने लगा था ।६४॥ हे महाराज ! उन योगियो ने समस्त स्त्रियो को लूट लिया है । उनमे मलना और उसकी पुत्री चन्द्रावली भी सहृत होगई हैं ॥६५॥ वे सब महीराज के ही सैनिक हैं जो योगियो के वेष मे आये हुए हैं । तारक के लिये तो सुता को दे दिया है और मेरी वहिन को महीराज के लिये दे दिया ॥६६॥ इस प्रकार के घोर वचन सुन कर महान् बल-वान् ब्रह्मानन्द एक लाख सेना से समन्वित होकर वहाँ पर क्रोध मे पूर्णतया भरकर गया था ॥६७॥ महीराज तो कलही था ही एक अयुत सैन्य से कामसेन के द्वारा रक्षित और रणजित् गया था । भूमि पर उन दोनो सेनाओ मे उन दोनो का महान् युद्ध हुआ था । योगी के वेष वाला तालन ब्रह्मानन्द पर युद्ध करने के लिए आगया था ॥६८-६९॥ लक्षण अभय शूर से और देवसिंह महीपति से युद्ध करके उन्हे जीत कर तथा बाँधकर आनन्दित हुए थे । फिर कामसेन आगया था ॥७०॥

लक्षण: कामसेन च देवो रणजित तदा ।
बद्धा तत्र स्थितौ वीरौ शत्रुसैन्यक्षयकरौ ॥७१
एतस्मिन्नतरे ब्रह्मा बद्धा वै तालन वली ।
लक्षणान्तमुपागम्य धनुर्युद्धमचीकरत् ॥७२
लक्षण छिन्नधन्वान पुनर्वद्धा महावल. ।
देवसिहमुपागम्य मूर्छित त चकार ह ॥७३
हाहाभूते योगि सैन्ये प्रद्रुते सर्वतो दिशम् ।
कृष्णाशो योषितस्सर्वा वचन प्राह नम्रधी. ॥७४
ब्रह्मानन्दोऽयमायातो मम सैन्य क्षयकर ।
तस्मात्यूय मया सार्द्ध गच्छताशु च त प्रति ॥७५

इत्युक्त्वा तास्समादाय ब्रह्मानन्दमुपाययौ ।
तयोश्चासीन्महद्युद्धं नर नारायणांशयोः ॥७६
कृष्णांशस्तत्र बलवान्नमोमार्गेण तं प्रति ।
रथस्थं च समागम्य मोहयामास सोऽसिना ॥७७

लक्षण ने कामसेन को और देव ने रणजित् को बाँधकर ये दोनों वीर शत्रु की सेना के क्षय करने वाले वहीं पर स्थित हो गये थे ॥७१॥ इसी बीच में बली ब्रह्मा ने तालन को बद्ध कर लिया था और फिर लक्षण के पास आकर धर्म युद्ध किया था ॥७२॥ महा बलवान् ने धनुष काटे हुए लक्षण को फिर बाँध लिया था। फिर देवसिंह के पास आकर उसे मूर्च्छित कर दिया था ॥७३॥ उसयोगियों की सेना में सभी दिशाओं में हाहा कार मच कर भगने पर नभ्रधी वाले कृष्णांश ने समस्त नारियों से कहा ॥७४॥ यह मेरी सेना के क्षय को करने वाले ब्रह्मानन्द आ गया है इससे आप लोग मेरे साथ शीघ्र उसके पास चलो ॥७५॥ यह कह कर उन सबको लेकर ब्रह्मानन्द के पास गया था। फिर उन दोनों नर और नारायणांशों को महान् युद्ध हुआ ॥७६॥ वहाँ पर बलवान् कृष्णांश नमोमार्ग से रथपर स्थित उस को उसने पहुँच कर असि के द्वारा मोहित कर दिया था ॥७७॥

तदा तु मूर्छिते तस्मिन्मोचयित्वा च ता मुदा ।
योगी सैन्याग्वितो युद्धात्पलायन परोऽभवत् ॥७८
पराजिते योगिसैन्ये ब्रह्मानंदो महाबलः ।
योषितस्ताः समादाय स्वगेहाय दधौ मनः ॥७९
महीराजस्तु सप्राप्तो महीमत्यनुमोदितः ।
रुरोध सर्वतो नारीः शिवदत्तवरो बली ॥८०
नृहरश्चाभयं शूर मर्दनश्चैव रूपणम् ।
मदनं वै सरदनो ब्रह्मानंदं च तारकः ॥८१
चामुण्डः कामसेनं च धनुर्युद्धमचीकरत् ।
तदाभयो महावीरो घुन्वंतं नृहरं रिपुम् ॥८२

छित्वा धनुस्तमागत्य खड्गयुद्धमचीकरत् ।
नृहर खड्गरहितोऽभवद्युद्धपराङ्मुख ।
तमाह वचन क्रुद्धोऽभयो युद्धार्थ मुद्यत ॥८३

उसके मूच्छित होजान पर प्रसन्नता से उन सब को छुडाकर सेना से अन्वित वह योगी युद्ध स्थल से पलायन परायण हो गया था ॥७८॥ योगिसैन्य के पराजित होने पर महावली ब्रह्मानन्द ने उन नारियो को लेकर अपने घर की ओर मन लगाया था ॥७६॥ महीमति से अनुमोदन प्राप्त कर महीराज वहा आगया था और उसने सब ओर से स्त्रियो को घेर लिया था क्योकि वह बली शिवका दत्तवरदानी था ॥८०॥ नृहर ने अभय को, मदन ने शूर रूपण को सरदन ने मदन को और तारक न ब्रह्मान द को तथा चामुण्ड ने काम सबको घेर कर वहा घर्म युद्ध किया था । उस समय महावीर अभय ने धनुषधारी नृहर शत्रु को घेर कर उसका धनुष काट दिया था और उसके पास आकर खग युद्ध किया था । नृहर खग रहित होकर युद्ध से पराङ्मुख हो गया था । तब युद्ध के लिए उद्यत अभय क्रुद्ध होकर उससे वचन बोला ॥८१-८३॥

भवान्वै मातृष्वस्रीयो महीराजस्य चात्मज ॥८४
क्षत्रियाणा पर धर्मं कथ सहतु मिच्छति ।
इतिश्रुत्वा तु नृहरो गृहीत्वा परिघ रुषा ॥८५
जघान त च शिरसि स हत स्वगमाययौ ।
स च वै कृतवर्मांशो विलीन कृतवर्मणि ॥८६
मदन गोपजात च हत्वा सरदनो बली ।
जयशब्द चकारोच्चैंपु नर्हत्वा रिपोर्बलम् ।
उत्तराशभ्र स शं यो मदनश्चोत्तरे लय ॥८७
रूपणश्च समागत्य मूर्छयित्वा च मर्दनम् ।
पुनस्सरदन प्राप्य खड्गयुद्ध चकार ह ॥८८
ब्रह्मानन्दश्च बलवान्वशा तारक रुषा ।
महीराजान्तमागम्य धनुर्युद्ध चकार ह ॥८९

नृहर रणजित्प्राप्य स्वभल्लेन तदा रुषा ।
जघान समरश्लाघी महीराजसुत शुभम् ॥९०
स वै दुश्शासनाशश्च मृतस्तस्मिन्समागत ॥९१

मेरे आप मौसी के पुत्र और महीराज के आत्मज हैं । यह क्षत्रिय का परम धर्म है कि सामने डटकर युद्ध करे इस आप क्यों मिटाना चाहते हैं ? यह सुनकर नृहर को इसे परिघ को ग्रहण करना पड़ा था ॥८४-८५॥ और उसने उसके मस्तक मे प्रहार किया जिससे वह हत होकर स्वर्ग को चला गया था । वह कृत वर्मा का अ श था अतएव कृत वमा म ही विलीन होगया था ॥८६॥ गोप से उत्पन्न मदन को नली सरदन ने मार दिया था । और फिर रिपु के बल को मारकर बड़ी ऊँची आवाज से जय शब्द किया था । वह उत्तराश था इसलिये मदन उत्तर मे लय होगया था ॥८७॥ रूपण ने आकर मर्दन को मूच्छित करके फिर सरदन के पास आकर उसने खग युद्ध किया था ॥८८॥ बलवान् ब्रह्मानन्द ने तारक को क्रोध से बाँध दिया था और फिर उसने महीराज के समीप मे आकर धनुर्युद्ध किया था ॥८९॥ रणजित् ने नृहर के पास पहुँचकर क्रोध से अपने भाले के द्वारा उस समरश्लाघी ने महीराज के शुभ पुत्र का हनन कर दिया था ॥९०॥ वह दुश्शासन का अ श था मर कर उसी म समागत होगया था ॥९१॥

निहते नृपुरे वधौ मर्दन क्रोधतत्पर ।
स्वशरै शस्ताडयामास सात्यकेरशमुत्तमम् ॥९२
छित्वा ताश्रणाजिच्छूरस्स वै परिमलोद्भव ।
स्वभल्लेन शिर कायान्मर्दनस्य स चाहरत् ॥९३
मृतेऽस्मिन्मर्दने वीरे तदा सरदनो बली ।
ताडयामास त वीर स्वभल्लेनैव वक्षसि ॥९४
महलत्पमुपागम्य रणजिन्मलनोद्भव ।
स्वखड्गे न शिर कायादपाहरत वैरिण ॥९५
त्रिवधौ निहते युद्धे तारक क्रोधमूर्छित ।
रथस्थश्च रथस्य च ताडयामास वै शरै ॥९६

छित्वा वाण च रणजित्तथैव च रिपोर्द्धनु ।
त्रिशरैस्ताडयामास कर्णांश तारक हृदि ॥९७
अमर्षवशमापन्नो यथाथडैर्भुजगम ।
ध्यात्वा च शकर देव विषधौत शर पुनः ॥९८
सधाय तर्जयित्वा च शत्रुकठमताडयत् ।
तेन वाणेन रणजित्यक्त्वा देह दिवगत ॥९९

गृहर बन्धु के मर जाने पर मर्दन क्रोध मे भर कर उसने सात्यकि के उत्तम य श को अपने बाणो से ताडित करने लगा था ॥९२॥ परिमल से उद्भव वाले शूर रणजित् ने उन सब शरो का छेदन करके फिर अपने भाले से मर्दन के शरीर से मस्तक को अलग कर दिया था ॥९३॥ इस मर्दन वीर के मृत हो जाने पर उस समय बली सरदन उस वीर के वक्ष-स्थल मे अपने भाले से ही प्रहार करने लगा था ॥९४॥ मलना से जन्म ग्रहण करने वाले रणजित् ने बड़े भारी कष्ट से अपने खग के द्वारा उस शत्रु के शरीर से शिर को अलग किया था ॥९५॥ तीनों बन्धुओं के युद्ध मे मर जाने पर तारक क्रोध से मूच्छित होकर रथ में स्थित होता हुआ रथ मे सवार पर शरो के द्वारा प्रहार करने लगा था ॥९६॥ रणजित् ने उसके धनुष और उसी प्रकार से बाण का छेदन करके अपने तीन शरो के द्वारा कर्णांश तारक के हृदय मे प्रहार किया था। वह अमर्ष वश मे प्राप्त होगया था जैसे सर्प दण्डों के द्वारा होता है। उसने शकर देव का ध्यान कर विष से धौत शर फिर सन्धान किया और गर्जकर शत्रु के कण्ठ मे मारा था उस बाण से रणजित् भी शरीर का त्याग कर दिवङ्गत हो गया था ॥९७-९९॥

हते तस्मिन्महावीर्ये ब्रह्मानन्दश्च दु.खितः ।
महीराजभयाद्ब्रह्मापुरस्त्य च योषितः ।
सध्याकाले तु सप्राप्ते भाद्रकृष्णाष्टमीदिने ॥१००
कपाट सुदृढ कृत्वा सैन्यैः षष्टिसहस्रकैः ।
सार्द्ध गेहमुपागम्य शारदा शरण ययौ ॥१०१

महीराजस्तु वलवा पुत्रशोकेन दु खित ।
सकल्प कृतवान्घोर शृण्वता सवभूभृताम् ॥१०२
शिरीपाप्यपुर रम्य यथा शून्य मया कृतम् ।
तथा महावती सर्वा ब्रह्मानदादिभिस्सह ।
क्षय यास्यति मद्वाणे सर्वे ते चद्रवशिन ॥१०३
इत्युक्त्वा धु धुकार वै चाह्वयामास भूपति ।
पचलक्षबलैस्साद्धं शीघ्रमागम्यता प्रिय ॥१०४
इति श्रुत्वा धु धुकारो गत्वा शीघ्र च देहलीम् ।
उपित्वा सप्त दिवसान्युद्धभूमिमुपागमत् ॥
तदाष्टलक्षणसहितो महीराजो महाबल ।
तारकेण च सयुक्तो युद्धाय समुपाययौ ॥१०६

उस महान् वीर के हत हो जाने पर ब्रह्मानन्द अत्यन्त दु खित हुआ था। महीराज के भय से उसने स्त्रियो को आगे करके भाद्र कृष्णाष्टमी के दिन सन्ध्याकाल मे प्राप्त होने पर कपाट को सुदृढ करके साठ सहस्र सेना के साथ घर म आकर शारदा के शरण म गया था ॥१०१॥ बलवान् महीराज पुत्र के शोक से अत्य त दु खित होकर उसने समस्त राजाओ के सुनते हुए घोर सकल्प किया था ॥१०२॥ रम्य शिरीपाख्यपुर जैसे मैंने शून्य कर दिया था उसी भाँति ब्रह्मानन्द आदि के साथ यह समस्त महावती और वे समस्त चन्द्रवश म होने वाले लोग मेरे ही बाणो के द्वारा क्षय को प्राप्त होगे ॥१०३॥ यह कह कर उस भूपति ने धुन्धुकार बुलाया था। हे प्रिय पाच लाख सेना के साथ तुम बहुत ही शीघ्र यहा आजाओ ॥१०४॥ यह सुनकर धुन्धुकार शीघ्र ही देहली जाकर वहाँ सात दिन तक ठहर कर पुन उस युद्ध स्थल पर आगया था। उस समय अष्ट लक्षणो न सहित महान् बलवाला महीराज तारक के साथ सयुक्त होकर वहाँ युद्ध करने के लिये आगया था ॥१०६॥

———

॥ कृष्णांशस्य–शोभा संवाद ॥

अष्टाविंशाब्दके प्राप्ते कृष्णाशे बलवत्तरे ।
कार्तिक्यामिंदुवारे च कृत्तिकाव्यतिपातभे ॥१
कृष्णांशोऽयुतसेनाढ्यः स्वर्णवत्या समन्वितः ।
विवाह मुकटस्यैव संत्यागाय ययौ मुदा ॥२
पवित्रमुत्पलारण्यं वाल्मीकिमुनि सेवितम् ।
गंगाकूले ब्रह्ममयं लोहकीलकमुत्तमम् ॥३
तत्र गत्वा स शुद्धात्मा पुष्पवत्या समन्वितः ।
गोसहस्र च विप्रेभ्यो ददौ स्नाने प्रसन्नधीः ॥४
एतस्मिन्नतरे प्राप्ता म्लेच्छजातिसमुद्भवा ।
शोभा नाम महारम्या वेश्या परमसुन्दरी ॥५
सा ददर्श परं रम्यं कृष्णाशं पुरुषोत्तमम् ।
तद्दृष्टिमोहमापन्ना व्याकुला चाभवत्क्षणात् ॥६
मूर्च्छिता ता समालोक्य कृष्णाशः सर्वमोहनः ।
स्वनिवासमुपागम्य विप्रानाहूय पृष्टवान् ॥७

इस अध्याय मे कृष्णांश का शोभा नाम वाली वेश्या के समागम के सम्वाद के साथ पुराणाचार्य और पुराणो के भेद का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—अधिक बलवान् कृष्णांश के अट्ठाईस वर्ष के प्राप्त होने पर कार्तिकी पूर्णिमा मे इन्दुवार के दिन तथा कृत्तिका व्यति-पात नक्षत्र में कृष्णांश दशसहस्र सेना से युक्त स्वर्णवती के साथ विवाह मुकुट के सम्यक् प्रकार से त्याग (विसर्जन) करने के लिये प्रसन्नता के साथ गया था ॥१-२॥ वाल्मीकि मुनि के द्वारा सेवित परम पवित्र उत्पलारण्य था । वहाँ गंगा के तट पर उत्तम लोह कीलक स्थान था वहा पर उस शुद्ध आत्मा वाले ने पुष्पवती से समन्वित होकर प्रसन्न बुद्धि वाले स्नान किया और उस स्नान के समय में ब्राह्मणों के लिये एक सहस्र गौओं के दान दिये थे ॥३-४॥ इसी बीच मे म्लेच्छ जाति में जन्म ग्रहण करने वाली महा सुन्दरी और अत्यन्त रम्य शोभा नाम वाली वेश्या वहाँ पर प्राप्त हो गई थी ॥५॥ उसने अत्यन्त सुन्दर

पुरुषो मे उत्तम कृष्णाश का दशन किया था। उसकी दृष्टि से मोह को प्राप्त हो जाने वाली वह उसी क्षण म व्याकुल होगई थी ॥६॥ सबको मोहन करने वाले कृष्णाशने उसे मूच्छित देख कर अपने निवास स्थान मे उसे लाकर विप्रो को बुलाकर पूछा था ॥७॥

अष्टादश पुराणानि केन प्रोक्तानि किं फलम् ।
ब्रूत मे विदुपा श्रेष्ठा वेदशास्त्रपरायणा ॥८
इति श्रुत्वा वचो रम्य विद्वास शास्त्रकोविदा ।
अब्रु व वचन रम्य कृष्णाश सर्वंधमगम् ॥९
पराशरेण रचित पुराण विष्णुदैवतम् ।
शिवेन रचित स्काद पद्म ब्रह्ममुखोद्भवम् ॥१०
शुक्रप्रोक्त भागवत ब्राह्म वै ब्रह्मणा कृतम् ।
गारुड हरिणा प्रोक्त षड् वै सात्त्विकसभवा ॥११
मत्स्य कूर्मो नृसिहश्च वामन शिव एव च ।
वायुरेतत्पुराणानि व्यासेन रचितानि वै ॥१२
राजसा षट स्मृता वीर कर्मकाडमया भुवि ।
मार्कंडेय च वाराह मार्कंडेयेन निर्मितम् ॥१३
आग्नेयमगिराश्चैव जनयामास चोत्तमम् ।
लिंगब्रह्माडके चापि तडिना रचिते शुभे ।
महादेवेन लोकार्थे भविष्य रचित शुभम् ॥१४

हे विद्वानों में श्रेष्ठो ! आप सब वेद और शास्त्रो मे परायण हैं आप मुझे बतलाइए। इस रम्य वचन को सुन कर वेद शास्त्र के पण्डितों एव परमाधिक विद्वानो न समस्तधम के ज्ञाता रम्य कृष्णाश से यह वचन कहा था ॥८ ९॥ जिसके विष्णु देवता हैं उस पुराणकी पराशर मुनिने रचना की है। शिवने स्कन्द पुराण की रचना की है और पाद्मपुराण ब्रह्म के मुख से उत्पन्न हुआ है॥१०॥भागवत महापुराण शुक मुनि ने कहा है। ब्राह्मपुराण की रचना ब्रह्माजी के द्वारा हुई है। गारुड पुराण हरि के द्वारा कहा गया है ये छँ सात्त्विक सम्भव पुराण हैं।११॥मत्स्य-कूर्म-नृसिंह-

वामन-शिव और वायु ये पुराण श्री व्यास मुनिके द्वारा विरचित हुए हैं ॥१२॥ ये छै पुराण राजस कहे जाते हैं। हे वीर! ये भूमण्डल मे कमकाण्ड से परिपूर्ण हैं। माकण्डेय और वाराह मार्कण्डेय के द्वारा निर्मित हैं ॥१३॥ अङ्गिरा मुनि ने आग्नेय उत्तम पुराण उत्पन्न किया था। लिंग और ब्रह्माण्डक तण्डिके द्वारा निर्मित हैं और लोक के लिये महादेव ने भविष्य पुराण की रचना की है ॥१४॥

सामसा षट् स्मृता प्राज्ञै. शक्तिधर्मपरायणा ।
सर्वेषा च पुराणाना श्रेष्ठ भागवत स्मृतम् ॥१५
घोरे भुवि यलौ प्राप्ते विक्रमो नाम भूपति ।
कैलासाद्भुवमागत्य मुनीन्सर्वान्समाह्वयत् ॥१६
तदा ते मुनयसर्वे नैमिषारण्यवासिन ।
सूत सञ्चोदयामासुस्तेषा तच्छ्रवणाय च ।
प्रोक्तान्युपपुराणानि सूतनाष्टादशैव च ॥१७
इति श्रुत्वा तु वचन कृष्णाशो धर्मतत्पर ।
श्रुत्वा भागवत शास्त्र सप्तमेऽह्नि महोत्तमम् ॥१८
ददौ दानानिविप्रेभ्यो गोसुवर्णमयानि च ।
ब्राह्मणान्भोजयामास सहस्र वेदतत्परान् ॥१९
तदा तु भिक्षुकी भूत्वा शोभा नाम मदातुरा ।
माया कृतवती प्राप्य कृष्णाशो यत्र वै स्थित ॥२०
ख्याता महामद वीर पैशाच दुर्द्धकिपरम् ।
माया सा जनयामास सर्वपापार्णवारिणीम् ॥२१

विद्वानों ने ये छै पुराण तामस बताये हैं जो कि शक्ति धर्म में परायण हैं। इन समस्त पुराणों में भागवत परमश्रेष्ठ पुराण है ॥१५॥ भूमण्डल में घोर कलियुग के प्राप्त होने पर विक्रम नाम वाला राजा कैलाश से भूमि पर आकर उसने समस्त मुनिगणों को बुलाया था ॥१६॥ उस समय वे समस्त मुनिगण ने जो कि नैमिषारण्य के निवास कर रहे थे श्रीसूतजी को प्रेरित किया था कि वे उनका श्रवण करावें सूत जी ने अट्ठारह ही उप पुराण भी बताये थे ॥१७॥ इस प्रकार से

सुन कर धर्म मे तत्पर कृष्णाश ने महान् उत्तम भागवत शास्त्र सात दिन मे श्रवण किया था और विप्रो को गौ तथा सुवर्ण मय दान दिये थे। वेद मे तत्पर एक सहस्र ब्राह्मणो को भोजन कराया था ॥१८-॥१९॥ उस समय मदातुरा शोभा नाम वाली वेश्या भिक्षु की होकर वहाँ आकर माया करने लगी थी जहाँ कृष्णाश स्थित थे ॥२०॥ उसने पैशाच वीर महामद को जो कि रुद्र का किङ्कर था ध्यान मे लाकर सब को पाषाण कारिणी माया को उत्पन्न किया था ॥२१॥

दृष्ट्वा स्वर्णवती देवी ता माया शोभयोद्भवाम् ।
छित्त्वा चाह्लाद्य वामागी स्वगेह गतुमुद्यता ॥२२
सा वेश्या तु शुचाविष्टा तस्या शृ गारमुत्तमम् ।
स्वर्णयत्रस्थित रम्य लक्षद्रव्योपमूल्यकम् ।
सहृत्य मायया धूर्ता देश बाह्लीकमाययौ ॥२३
कल्पक्षत्रमुपागम्य नेत्रसिंहसमुद्भवा ।
वेश्यया मम शृ गार हृत ज्ञात्वा सुदु खिता ॥२४
कृष्णाश वचन प्राह गच्छगच्छ महाबल ।
गृहीत्वा मम शृंगार शीघ्रमागच्छ मा प्रति ॥२५
गुटिकेय मया वीर रचिता ता मुखेन च ।
धूर्तमायाविनाशाय तव मगलहेतवे ॥२६
इति श्रुत्वा तया कृत्वाकृष्णाशस्सर्वं मोहन ।
शूकर क्षत्रमागम्य यत्र वेश्या ददर्श ह ॥२७
सा तु वेश्या च त वीर दृष्ट्वा कन्दर्पकारिणम् ।
रचयित्वा पुनर्माया तदतिकमुपागता ॥२८

स्वर्णवती देवी ने शोभा के द्वारा समुत्पन्न उस माया को देख कर उसका छेदन कर दिया था और प्रसन्न होकर उस वामाङ्गी को अपने घर को जाने को उद्यत होगई थी ॥२२॥ वह वेश्या तो शोक से अविष्ट हुई उस स्वर्णवती के स्वर्ण यन्त्र म स्थित उत्तम एव रम्य तथा एक लाख द्रव्य के मूल्य वाले शृङ्गार का माया से ही सहरण करके वह धूर्त्ता बाह्लीक देश म चली आई थी ॥२३॥ जब वह कल्प

क्षेत्र मे आगई थी तब उस नेत्रसिंह की पुत्री ने वेश्या के द्वारा मेरा श्रृङ्गार हृत होगया है यह जाना था और वह अत्यन्त ही दु खित होगई थी ॥२३-२४॥ उसने कृष्णाश से यह वचन कहा—हे महा बलवान् ! तुम शीघ्र ही चले जाओ और मेरे श्रृङ्गार को लेकर शीघ्र ही वापिस मेरे पास आ जाओ ॥२५॥ हे वीर ! मैंने एक यह गुटिका की रचना की है उसे मुख मे धारण करलो जो कि तुम्हारे मङ्गल के लिये धूर्ता की माया के विनाश के हेतु ही बनाई गई है ॥२६॥ यह स्वर्णवती के वचन सुन कर तथा वैसा ही गर्व मोहन कृष्णाश ने किया था। उसने शूकर क्षेत्र मे आकर उस वेश्या को देखा था ॥२७॥ उस वेश्या ने उस कन्दर्प उत्पन्न कर देने वाले उस वीर को देखा था और फिर अपनी माया की रचना करके उसी के समीप मे वह आगई थी ॥२८॥

तदा सा निष्फली भूय रुरोद करुण बहु ।
रुदती ता समालोक्य दयालुस्स प्रसन्नधी ॥२९
गृहीत्वा सर्वश्रृ गार वचन प्राह निर्भय ।
किं रोदिषि महाभागे सत्य कथय मा चिरम् ॥३०
साह मे सहरो नाम भ्राता प्राणसमप्रिय ।
नाटर्थं श्व पञ्चसाहस्त्रै सहितो मरण गत ॥३१
अतो रौमि महा भागसप्राप्ता शरण त्वयि ।
इत्युक्त्वा मायया धूर्ता कृत्वा शवमयान्त्यजान् ॥३२
तस्मै प्रदर्शयामास निजकार्यपरायणा ।
रुदित्वा च पुनस्तत्र प्राणास्त्यक्तु समुद्यता ॥३३
दयालुस्स च कृष्णाशस्तामाह करुण वच ।
कथ ते जीवयिष्यन्ति शोभने कथयाशु मे ॥३४
साह वीर तवास्ये तु सस्थिता गुटिका शुभा ।
देहि मे कृपया वीर जीवयिष्यन्ति ते तया ॥३५

उस समय वह निष्फल होकर करुणा के साथ बहुत रुदन करने लगी थी। उसका रोदन करती हुई देख कर दयालु वह प्रसन्न बुद्धि वाला वहाँ आया और स्वर्णवती का समस्त श्रृङ्गार ग्रहण करके

निभय हो उससे यह वचन बोला—हे महाभागे ! क्यो तू रुदन कर रही है मुझे सत्य २ बतला दे विलम्ब मत करा ॥२६ ३०॥ वह बोली—मेरा सहर नामका भाई था जोकि मेरे प्राणो के समान प्रिय था। पाँच सहस्र नाटचो के साथ वह मरण को प्राप्त होगया था ॥३१॥ हे महाभाग ! इसीलिये मैं रुदन करती हू। अब मैं तेरी शरण मे प्राप्त होगई हूँ। यह कह कर उस धूर्त्ता ने माया के द्वारा शव मयात्यजो को करक अपने काय मे परायण ने उस कृष्णाश को दिखला दिया था। और फिर वह रुदन करके अपने प्राणो को त्याग करने के लिये प्रस्तुत होगई ॥३२ ३३॥ दयालु वह कृष्णाश उससे करुणा से भरे हुए वचन कहने लगा—हे शोभने ! मुझे शीघ्र यह बतादे कि वे सब कैसे जीवित होगे ॥३४॥ वह बोली—हे वीर ! तुम्हारे मुख मे एक शुभ गुटिका सस्थित है। हे वीर ! वह आप मुझ दे देवें। उसी के द्वारा मे जीवित हो जायगे ॥३५॥

इत्युक्तस्तु तया वीरो ददौ तस्यै च तद्वसु ।
तदा प्रसन्ना धूर्ता कृत्वा शुकमय वपु ।
पचरत्स्यमुपादाय कृष्णाश कामविह्वला ॥३६
वाह्लीकदेशमागम्य सारटठनगर शुभम् ।
उवास च स्वय गेहे कृत्वा दिव्यमय वपु ॥३७
निशीथे समनुप्राप्ते कृत्वा त नररूपिणम् ।
आलिलिग ह कामार्ता कृष्णाशं धर्मकोविदम् ॥३८
दृष्ट्वा ता स तथाभूता कृष्णाशो जगदबिकाम् ।
तुष्टाव मनसा वीरो रात्रिसूक्तेन नम्रधी ॥३९
तदा सा स्वेडिनी भूत्वा त्यक्त्वा कृष्णाशमुत्तमम् ।
पुन शुकमय कृत्वा चिचिणीवृक्षमारुहत् ॥४०
तदा स्वणवती देवी बोधिता विष्णुमायया ।
धृत्वा श्यनी मय रूप तत्र गत्वा मुदान्विता ।
ददश शुकभूत च कृष्णाश योगतत्परम् ॥४१

ऐसा कहने पर उस वीर ने उस वेश्या के लिये वह धन दे दिया। उस समय वह परम प्रसन्न होती हुई धूर्ता ने उसका शुकमय शरीर बना कर के एक पिंजडे में स्थित करके उस कृष्णाश को लेकर काम से विह्वल वह बाह्लीक देश मे आगई और वहाँ शुभ सारह नगर मे रहने लगी। फिर उसने स्वय ही परम अपना दिव्यमय शरीर धारण किया तथा आधीरात म उसको नर रूप वाला बनाकर काम से आर्त्त वह उस धम के पण्डित कृष्णांश से आलिङ्गन करन लगी ॥३६-३८॥ कृष्णाश ने उस प्रकार की कामार्त्त देखकर कृष्णाश ने जगदम्बिका का स्तवन किया और मनके द्वारा विनम्र होकर उस धीर ने रात्रि सूक्त से देवी की स्तुति की ॥३९॥ उस समय वह खेदिनी होकर उस उत्तम कृष्णाश को त्याग कर उसने फिर शुकमय शरीर बना लिया और वह चिंचणी के वृक्ष पर आरूढ होगई ॥४०॥ तब देवी स्वर्णवती विष्णु की माया के द्वारा बोधित की गई और वह अपना श्येनीमय शरीर धारण करक प्रसन्नता के साथ वहाँ पहुची। उसने योग मे तत्पर शुक के रूप म स्थित कृष्णाश को वहाँ देखा। ॥४१॥

एतस्मिनन्तरे वेश्या पुन कृत्वा शुभ वपु ।
नरभूत च कृष्णाश वच। प्राह नम्रधी ॥४२
अये प्राणप्रिय स्वामिन्भज मा कामविह्वलाम् ।
पाहि मा रतिदानेन धर्मज्ञोसि भवान्सदा ॥४३
इत्युक्तस्स तु तामाह वचन शृणु शोभने ।
आयवरमस्थितोह वै वदमागपरायण ॥४४
विवाहिता शुभा नारी यो भजेत ऋतौ नहि ।
स पापी नरक याति तिर्य्यग्योनिमय स्मृतम् ।
अन्य परस्त्रिया भोगो न या वै निरयप्रद ॥४५
इति श्रुत्वा तु सा प्राह विश्वामित्रेण धीमता ।
शृ गिणा च महाप्राज्ञ वध्यासग कृत पुरा ।
न वाऽपि नरक प्राप्तस्तस्मान्मा भज कामिनीम् ॥४६

पुनश्चाह स कृष्णाश कृत पाप तपोवलात् ।
ताभ्या च मुनियुग्माभ्यामसमर्थोहिसाप्रतम् ।।४७
अर्द्धांग पुरुषस्य स्त्री मैथुने च विशेषत ।
अहमार्यश्च भवती वेश्या च वहुभोगनी ।।४८
ऋचि शब्दश्च पूर्वास्याज्जात ऋग्जस्सनातन ।
योगजश्चैव य शब्दो दक्षिणास्याद्यजुर्भव ।।४९

इसी बीच मे उस वेश्या ने पुन अपना शुभ शरीर बना लिया और नररूपी कृष्णाश को करके उससे नम्रता के साथ वह बोली—हे प्राण प्रिय स्वामिन् ! काम से विह्वल मेरा उपभोग करो । आप तो धर्म के ज्ञाता हैं इस समय रति का दान मुझे प्रदान करके मेरी रक्षा कीजिए ।।४२-४३।। इस तरह से उस वेश्या के द्वारा कहा गया वह कृष्णाश उस से बोला—हे शोभने ! तू मेरा वचन श्रवण कर मैं आर्यों के मार्ग मे स्थित हूँ और सदा वेद के मार्ग मे परायण रहने वाला हूँ ।।४४।। जो पुरुष अपनी विवाहिता शुभ नारी का ऋतुकाल में उपभोग नही किया करता है वह पापी नरक म जाया करता है जोकि तिर्यक योनिमय कहा गया है इसलिये पराई स्त्री के साथ भोग करना नरक के देने वाला ही जानना चाहिए । यह श्रवण करके वह वेश्या बोली—धीमान् विश्वामित्र ऋषि ने और शृङ्गी ने हे महाप्राज्ञ ! पहिले समय मे वेश्या के साथ प्रसङ्ग किया । उन मे से कोई भी नरक मे प्राप्त नही हुआ । अत आप मुझ कामिनी का सानन्द उपभोग करें ।।४५ ४६।। फिर उस कृष्णाश ने उस से कहा—उन ऋषियो ने अपने तपस्या के बल से उस पाप को काट दिया । वे तो दोनो मुनि गण परम तपस्वी एव समर्थ थे मैं तो इस समय म असमर्थ हू ।।४७।। पुरुष का आधा अग स्त्री होता है और विशेष करके मैथुन के समय म ऐसा ही माना जाता है । मैं तो आर्य हू और बहुतो का भोग करने वाली वेश्या है ।।४८।। ऋचि शब्द पूर्वस्य से समुत्पन्न हुआ है वह ऋग्न सनातन है जो शब्द योगज होता है वह दक्षिणास्य से यजुर्भव है ।।४९।।

तद्धितान्तश्च यश्शब्द पश्चिमास्याच्च सामज ।
छन्दोभूताश्च ये शब्दास्तेसर्वे ब्राह्मणप्रिया ।
केवलो वणमात्रश्च स शब्दोऽथवज स्मृत ॥५०
पञ्चमास्याच्च य जाता शब्दा ससारकारिण ।
ते सर्वे प्राकृता ज्ञ याश्चतुर्लक्षविभेदिन ॥५१
हित्वा तान्यो हि शुद्धात्मा चतुर्वेदपरायण ।
स वै भवाटवी त्यक्त्वा पद गच्छत्यनामयम् ॥५२
न वदेद्यावनी भाषा प्राणै कठगतैरपि ।
गजैरापीड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैन मदिरम् ॥५३
इत्येव स्मृति वाक्यानि मुनिना पठितानि व ।
मय त्याज्यो मया धर्मस्सवलोकसुखप्रद ॥५४
इति श्रुत्वा तु सा वेश्या म्लेच्छायाश्चाशसभवा ।
शोमना नाम रभोरुर्महाक्रोधमुपाययौ ॥५५
वेतसैस्ताडयित्वा त पुन कृत्वा शुक स्वयम् ।
न ददौ भोजन तस्मै फलाहार शुकाय वै ॥५६

और जो शब्द तद्धितान्त है और पश्चिमास्य म अर्थात् पश्चिम मुख से सामज है छन्दोभूत जो शब्द होत हैं व सब ब्राह्मणा क प्रिय हुआ करत हैं। केवल जो वण मात्र है वह शब्द अथवज होता है ॥५०॥ पञ्चम मुख स जो शब्द उत्पन्न हुए थ वे सब ससारकारी होत हैं। वे सब प्राकृत जानने चाहिए जिनके चार लाख भेद होते हैं ॥५१॥ जो उनको त्याग करके शुद्ध आत्मा वाला चारों वेदा म परायण होता है वह इस ससार रूपी अटवी (जगल) का त्याग करके अनामय पद को प्राप्त किया करता है ॥५२॥ यावनी भाषा का कभी भी नहीं बोलना चाहिए चाहे प्राण कण्ठगत भी क्यों न हो जावें। मदमस्त हाथियों क द्वारा सताया हुआ होकर भी रक्षा पाने क लिय जैन मदिर म नहीं जाना चाहिय चाहे प्राणगत भी हाथियों द्वारा क्यो न हो जावें ॥५३॥ इस प्रकार स स्मृतियों क वाक्य मुनि के द्वारा पढ़ गय थ। तो अब मुझ अपना यह आय धम कैम त्याग दना चाहिए। जाकि धम

ही एक ऐसा होता है सब लोको में सुख के प्रदान करने वाला हुआ करता है ।।५४।। यह कृष्णाश के द्वारा कहा हुआ श्रवण करके म्लेच्छा के अ श से समुत्पन्न होने वाली वेश्या शोभना नाम वाली जिसके ऊरु-रम्भा (केला) के समान परम सु दर थे बहुत ही क्रोध को प्राप्त होगई ।।५५।। उसने उस कृष्णाश को वेतो से पीट कर फिर तोता बना दिया और स्वय उसने उसको खाने के लिये भोजन नही दिया जो कुछ भी फलो का आहार वह कराया करती थी।।५६।।

तदा स्वर्णवती देवी कृत्वा नारीमय वपु ।
मशकीकृत्य त वीर तत्रैवान्तर्दधे तु सा ।।५७
पुन श्येनीवपु कृत्वा तद् शाद्यातुमुद्यता ।
पृष्ठमारोप्य मशक मयूरनगर ययौ ।।५८
मकरदस्तु ता दृष्ट्वा कृष्णाशेन समन्विताम् ।
नेत्रपालस्य तनया नाम्ना स्वर्णवती बली ।
चरणावुपसगृह्य स्वगेहे तामवासयत् ।।५९
शोभनापि च सबुध्य पञ्जरान्तमुपस्थिता ।
न ददर्श शुक रम्य मूछिता चापतद्भुवि ।।६०
किकरोमि क्व गच्छामि विना त रमण परम् ।
इत्येव बहुधालप्य मदहीनपुर ययौ ।।६१
तत्र स्थित च पैशाच मायामदविशारदम् ।
महामद च सपूज्य स्वदेह त्यक्तुमुद्यता ।।६२

उस समय नारी स्वणवती अपना वपु नारीमय बना कर उस वीर को एक मशक को रूप देकर वहो पर अन्तर्हित होगई अर्थात् छिप गई थी।।५७।। फिर उसने श्येनी का वपु (शरीर) करके उस देश से जाने के लिये वह उद्यत होगई थी। वह मशक की पीठ पर आरोपित होकर मयूर नामक नगर को चली गई थी ।।५८।। वहाँ पर बली मकरन्द ने कृष्णाश के सहित नत्रपाल सिंह की पुत्री स्वणवती नाम वाली को देखा उसन दोनो चरणो का स्पश कर अपन घर म उनको आवास दिया था ।।५९।। शोमना वेश्या ने जाकर पीजरा क पास गमन किया तो वहा

उसने उस रम्य शुक के रूप रहने वाले कृष्णांश को नहीं देखा तो वह मूर्च्छित होकर भूमि मे गिर गई ।।६०।। वह विलाप करती हुई बोली अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊं बिना उस परम रमण के मैं कैसे रहूँगी । इस प्रकार से बहुत कुछ रो-धोकर वह मदहीनपुर को चली गई थी ।।६१।। वहाँ पर स्थित माया के मद के परम प्रवीण पैशाच महामद की उसने अर्चा की और फिर वह अपने शरीर का त्याग करने को उद्यत होगई थी ।।६२।। उसकी पूजा से महामद पिशाच बहुत सन्तुष्ट हो गया था और वह शिव मन्दिर मे जाकर मरुस्थलेश्वर लिंग की ऋषभ भाषा से स्तुति करने लगा था ।।६३।।

महामदस्तु सतुष्टो गत्वा वै शिवमंदिरम् ।
मरुस्थलेश्वरं लिंगं तुष्टावार्षभभाषया ।।६३
तदा प्रसन्नो भगवान्वचनं प्राह सेवकम् ।
स्वर्णवत्या हृतो वीरः कृष्णांशश्चार्यधर्मगः ।
मया सह समागच्छ मयूरनगरं प्रति ।।६४
इत्युक्तस्तेन पैशाचो नटैः पंचसहस्रकैः ।
तया सह ययौ तूर्णं सहुरेणं समन्वितः ।।६५
इन्दुलश्च तथाह्लादो बोधितो विष्णुमायया ।
त्रिलक्षबलसंयुक्तोदेवसिंहेन संयुतः ।
मयूरनगरं प्राप्य मकरदमुपाययौ ।।६६
तदा तु शोभना वेश्या सहुरेण बलैस्सह ।
चकार भैरवी माया सर्वशत्रुभयकरीम् ।।६७
सर्वतश्चोत्थितो वातो महामेघसमन्वितः ।
पतति बहुधा चोल्काः शर्करावर्षणे रताः ।।६८
दृष्ट्वा ता भैरवी माया तमोभूता समन्ततः ।
मकरन्दश्च बलवान्नयस्थः स्वयमाययौ ।।६९
घ्नति भल्लेन ता माया भस्म कृत्वा महाबलः ।
गृहीत्वा सहुरं धूर्तं सबलं गेहमाप्तवान् ।।७०

उस समय भगवान् प्रसन्न हो गये और उस सेवक से बोले आर्यधर्म के अनुगामी वीर कृष्णांश का हरण स्वर्णवती के द्वारा किया गया है। मेरे साथ तू मयूर नगर की ओर आजा ॥६४॥ (इस प्रकार से उसके द्वारा कहा गया पैशाच पाँच हजार नट तथा उस शोभना के साथ शीघ्र ही सहुरेण से समन्वित वहाँ गया था ॥६५॥) इधर विष्णु माया के द्वारा इन्दुल तथा आल्हाद बोधित किये गये थे। ये तीन लाख बल से संयुक्त होकर तथा देवसिंह से समन्वित होकर मयूर नगर में पहुँच कर मकरन्द के पास गये थे ॥६६॥ उस समय में शोभना नाम वाली वेश्या सहुरेण सेना के साथ वहां पहुँच गई और उसने शत्रुओं को भय करने वाली भैरवी माया को किया था ॥६७॥ सब ओर से बड़ा भयानक वायु उठा था जोकि बड़े भारी मेघों से भी समन्वित था। बहुत से उल्काओं का पतन होता था जोकि शर्करा (धूल) के वर्षा करने में रत थे ॥६८॥ उस भैरवी माया को देख कर जो सभी ओर से अन्धकारमय थी बलवान् मकरन्द स्वयं रथ में स्थित होकर वहाँ आगया था ॥६९॥ उस महान् बलशाद् ने शनिल्ल के द्वारा उस माया को भस्म करके उस धूर्त सहुर को बल के साथ पकड़कर घर में प्राप्त हो गया ॥७०॥

तदा तु शोभना नारी काममायां चकार ह।
बहुलास्यं स्थिता वेश्या गीतनृत्यविशारदाः ॥७१
मोहिताः क्षत्रियाः सर्वे मुमुहुर्लास्यदर्शनात्।
देवसिंहाञ्च कृष्णांशादृते जडतां गतः ॥७२
तदा स्वर्णवती देवी कामाक्षी ध्यानतत्परा।
पुनरुत्थाप्यतान्सर्वान्गृहीत्वा शोभानां पुनः।
मयूरध्वजमागम्य निगडैस्तान्वबंध ह ॥७३
महामदस्तु तज्ज्ञात्वा रुद्रध्यानपरायणः।
चकार शाम्वरी मायां नानासत्त्वविधायिनीम् ॥७४
व्याघ्राः सिंहा वराहाश्च वानरा दंशका नराः।
सर्पागृध्रास्तथा काका भक्षयंति समंततः ॥७५

तदा स्वर्णवती देवी कामाक्षीध्यानतत्परा ।
ससर्ज स्मरजा माया तन्मायाध्वंसिनी रणे ॥७६

(उस समय उस शोभना नारी ने काममाया की थी जिसमे बहुत सी गीत और नृत्य की विशारद वेश्याएं वहां संस्थित होगई थी ॥७१॥ उनके लास्य के दर्शन से समस्त क्षत्रिय मोहित होकर मूच्छित हो गये थे । देवसिंह और कृष्णाश के बिना वे सभी जड़ता को प्राप्त हो गये) ॥७२॥ उस समय देवी स्वर्णवती कामाक्षी के ध्यान मे तत्पर होगई और उसने उन सबको फिर उठा कर पुन शोभना को पकड़ लिया । मयूर-ध्वज म आकर उनको निगडो से बांध दिया ॥७३॥ महामद ने यह सब समझकर यह रुद्र के ध्यान मे परायण हो गया और उसने फिर शाम्बरी माया की थी जो नाना प्रकार के सत्वो की विधायिनी थी ॥७४॥ उस माया म व्याघ्रसिंह–वराह–वानर–दशक–नर–सर्प–गृध्र और काक सभी ओर से खाते थे ॥७५॥ फिर उस समय स्वर्णवती देवी ने कामाक्षी के ध्यान म तत्परता की और उसने रण म उस भय के विध्वंस करने वाली स्मरजा माया का सृजन किया ॥७६॥

तया तार्क्ष्याससमुत्पन्ना शरभाश्च महाबला ।
सिंहादीन्भक्षयामासुघ्नु जघ्नुश्चैव सहस्रश ॥७७
हाहाभूते च तत्सैन्येदिक्षु विद्राविते सति ।
शोभना चाभवद्दासी स्वर्णवत्याश्च मायिनी ॥७८
सहुरस्तैर्नटैस्सार्द्ध चाह्लादेनैव चूर्णित ।
तेषा रुधिरंयु भाश्च भूमिमध्ये समारुहन् ॥७९
एव च मुनिशार्दूल चतुर्मास्यभवद्रण. ।
वैशाखे मासि सप्राप्ते ते वीरा गेहमाययु ।
इति ते कथित विप्र चान्यत्किं श्रोतुमिच्छसि ॥८०

उस माया के प्रभाव से तार्क्ष्य और महा बलवान् शरभ समुत्पन्न होगये थे । जिन्होंने सिंह आदि सब को खालिया तथा सहस्रो को मार दिया ॥७७॥ उस समय सेना मे हा हा कार मच गया और सब दिशाओं से भागने लगे । तब वह मायिनी शोभना स्वर्णवती की दासी

होगई ॥७८॥ और वह सहुर समस्त नरो के सहित आह्लाद के ही द्वाराचूर्णित कर दिया गया उनके रुधिर रम्म भमि के मध्य मे समारूढ हो गये थे ॥७९॥ हे मुनि शार्दूल ! इस प्रकार से यह युद्ध चार मास तक हुआ । वैसाख मास के प्राप्त होने पर वे सब वीर अपने घर मे आगये । हे विप्र ! यह समस्त वृत्तान्त हमने तुझे सुना दिया है । अब तुम इसके आगे क्या श्रवण करने की इच्छा रखते हो ? ॥८०॥

॥ समस्त नृपो का सग्राम और नाश ॥

द्वात्रिंशाब्दे च कृष्णांशे सप्राप्ते योगरूपिणी ।
वेला नाम शुभा नारी हरिनागरसस्थिता ।
महावती समागम्य सभाया तत्र चाविशत् ॥१
एतस्मिन्नंतरे प्राप्ता कृष्णांशाद्या महाबलाः ।
नत्वा परमल भूप वेला वचनमब्रवीत् ॥२
महीपति प्रिय मत्वा कृष्णांश नृप दुष्प्रियम् ।
त्वया मे घातितो भर्ता ब्रह्मानदो महाबल. ॥३
महीराजसुतैर्घूर्तैस्तारकार्यैर्महाबलैः ।
मारीयेष च चामुन्डो धुधुकारेण वारित ॥४
स्वामिन प्रति चागम्य ते जग्मुश्छद्मना प्रियम् ।
पुरद्वारे स्थित स्वामी महत्या मूर्च्छयान्वित. ।
तस्माद्यूय मया सार्द्धं गतुमर्हथ त प्रति ॥५
इति घोरतम वाक्य श्रुत्वा सर्वे शुचान्विताः ।
धिग्भूपति च मत्वा ताभ्यां नो घातित. सदा ॥६
इत्युक्त्वोच्चैश्च रुरुदु कृष्णांशाद्या महाबला. ।
पत्राणि प्रेषयामासु स्वकीयान्भूपतीन्प्रति ॥

इस अध्याय म बत्तइवा वें आदि समस्त नृपों के अन्तिम महान् घोर संग्राम और उसमें प्राय. समस्त राजाओं के क्षय हो जाने के वृत्तान्त

का वर्णन किया जाता है। सूत जी ने कहा—कृष्णांश के बत्तीस वर्ष की अवस्था वाला हो जाने पर योग रूपिणी वेला नाम धारिणी शुभ नारी जोकि हरि नागर मे संस्थित थी महावती मे आई और वहा उसने सभा मे प्रवेश किया था ॥१॥ इसी बीच मे महान् बलवाले कृष्णांश आदि वहा प्राप्त हो गये थे। वेला ने राजा परिमल को प्रणाम करके ये वचन कहे थे ॥२॥ हे नृप! आपने महीपति को अपना प्रिय समझ कर और कृष्णांश को दुष्प्रिय मान कर महान् बलवान् मेरा स्वामी ब्रह्मानन्द को मरवा दिया है ॥३॥ महीराज के पुत्र बडे ही धूर्त थे जोकि महान् बली तारक आदि से संयुक्त थे घुन्धुकार के द्वारा नारी के वेष को प्राप्त कराये जाने वाला चामुण्ड इन सबने मेरे स्वामी के पास आकर वे छल से प्रिय होगये थे मेरा स्वामी कुरुक्षेत्र में स्थित है जोकि बडी भारी मूर्च्छा से युक्त है। इसलिये आप मेरे साथ उसके प्रति जाने को योग्य होते हो ॥४-५॥ इस प्रकार के घोर तम वाक्य को सुनकर सब शोक से युक्त हो गये थे। इस राजा को और मलना को धिक्कार है जिन दोनो ने हमारा सखा मरवा डाला है ॥६॥ इस प्रकार से कहे कर कृष्णांश आदि जो महान् बलवान् थे वे सब ऊँचे स्वर से रो उठे थे। और उन्होंने अपने भूपों के प्रति पत्रो को भेजा था ॥७॥

क्रोधयुक्ता तदा वेला लिखित्वा पत्रमुल्वणम् ।
महीराजाय सम्प्रेष्य मलनागेहमागमत् ॥८
तत्पत्र च महीराजो वाचयित्वा विधानतः ।
ज्ञात्वा तत्कारण सर्वं तन्निशम्य विशाम्पतिः ॥९
चिताक्लेवर प्राप्य सुखनिद्रा व्यनाशयत् ।
आहूय भूपतीन्सर्वान्घोरयुद्धोन्मुखोऽभवत् ॥१०
चतुर्विंशतिलक्षैश्च शूरैर्भूपसमन्वितैः ।
कुरुक्षेत्र ययो शीघ्र धृतराष्ट्रांशसभव. ॥११
तथा परिमलो भूपो लक्षषोडशसैन्यप ।
द्रुपदांशो ययो शीघ्र वेलया स्वकुलैः सह ॥१२

तोमरान्वयभूपालो बाह्लीकपतिरागत ।
निलक्षैश्च तथा सैन्यै सप्तपुत्रैश्च भूपति ॥१६
चित्रोपचित्रौ चित्राक्षश्चारुश्चित्र शरासन ।
सुलोचन सवर्णश्च पूर्वजन्मनि कौरवा ॥२०
तेषामशा क्रमाज्जाता अभिनदनदेहजा ।
महानदश्च नदश्च परानदोपनदकौ ।
सुनदश्च सुरानन्द प्रनद कौरवाशक ॥२१

उन सब ने वहा कार्तिकी पूर्णिमा का स्नान किया और अनेक प्रकार के बहुत से दान दिये थे । मार्ग कृष्ण पक्ष की दूज के दिन वे सब युद्ध स्थल मे उपस्थित हो गये थे ॥१५॥ विष्वक्सेनीय राजा लहर भी वहाँ पर आगया था । उसके कौरवाश पुत्र सोलह ही महान् बलवान् थे । इनका पूर्व जन्म मे जो भी कुछ नाम था उसी नाम से यहा अब भी प्रसिद्ध हुए थे ॥१६॥ उनके नाम ये हैं—दुस्सह—दुश्शल–जलसन्ध—सम—सह—विन्द — अनुविन्द — सुबाहु — दुष्प्रधर्पण — दुर्मर्पण — सोमकीर्त्ति — अनूदर — शल— सत्व—विवत्सु—ये सब ही क्रम से महा बलवान् थे ॥१७-१८॥ तोमर व श का राजा बाह्लीक देश का स्वामी वहा आया था । वह तीन लाख सेना और सात पुत्रो से युक्त भूपति था ॥१६॥ चित्र-उपचित्र–चित्राक्ष चारुचित्र–शरासन–सुलोचन–सवर्ण ये सब पूर्व जन्म मे कौरव थे ॥२०॥ उनके अ श क्रम से समुत्पन्न हुए थे । जोकि अभिनन्दन के देह से उत्पन्न हुए थे । महानन्द–नन्द–परानन्द—उपनन्दक—सुनन्द— सुरानन्द—प्रनन्द ये सभी कौरवो के अ श थे ॥२१॥

नृप परिहरवशीयो मायावर्मा महाबली ।
लक्ष सैन्ययुत प्राप्तो दशपुत्रसमन्वित. ॥२२
दुर्मदो दुर्विगाहश्च नदश्च विकटानन ।
चित्रवर्मा सुवर्मा च सुदुर्मोचन एव च ॥२३
ऊर्णनाम सुनाभश्च चोपनदश्च कौरवा ।
तेषामशा क्रमाज्जाता सुता अगपते स्मृता ॥२४

मत्त प्रमत्त उन्मत्त सुमत्तो दुर्मदस्तथा॥
दुर्मुखो दुर्द्धरो वायु सुरथो विरथ क्रमात् ॥२५
शुक्लवशीयभूपालो मूलवर्मा समागत ।
लक्षसैन्यैश्च बलवान्दशपुत्रसमन्वित ॥२६॥
अयोबाहुर्महाबाहुश्चित्रागश्चित्रकुण्डलः ।
चित्रायुधो निषगी च पाशीवृन्दारकस्तथा ॥२७
दृढवर्मा दृढक्षत पूर्वजन्मनि कौरवा ।
नेपामशा मही जाता गृहे ते मूलवर्मण ॥२८

परिहर व श मे होने वाला नृप माया वर्मा महान् बली था। यह अपने दश पुत्र और अपनी एक लाख सेना के साथ इस युद्ध स्थल म प्राप्त हुआ था॥ २२॥ दुर्मद—दुर्विगाह—नन्द—विकटानन—चित्र वर्मा—सुवर्मा—सुदुर्मोचन—उणनाभ—सुनाभ—उपनन्द ये सभी कौरव तथा उनके अ श-क्रम से उत्पन्न हुए थे। और य राजा अ कपति के पुत्र हुए थे ॥२४॥ उन्मत्त—मत्त-प्रमत्त—सुमत्त-दुर्मद—दुर्मुख—दुर्धर-वायु—सुरथ—विरथ ये सब क्रम से हुए थे॥२५॥शुक्ल वश का भूपाल मूलवर्मा नाम वाला वहा युद्ध भूमि मे आया था। एक लाख सेना इसके साथ थी और इसके भी दश पुत्र थे। जो बडे बलवान् थे उनको भी साथमें लेकर आया था॥२६॥ उनके नाम अयोबाहु—महाबाहु—चित्राग—चित्रकुण्डल—चित्रायुध—निषगी—पाशी—वृन्दारक—दृढवर्मा—दृढक्षत्र थे। ये सब पहिले जन्म में कौरव थे। उनके अ श अब पृथ्वीपर उत्पन्न हुए थे जोकि मूलवर्मा के घर मे जन्म ग्रहण किया था ॥२७-२८॥

बलश्च प्रबलश्चैव सुबलोबलवान्बली ।
सुमूलश्च महामूलो दुर्गो भीमो भयंकर ॥२९
मैंवयश्चद्रवशीयो लक्षसैन्यसमन्वित ।
दशपुत्रान्वित प्राप्त कुरुक्षेत्रे महारणे ॥३०
भीमवेगो भीमबलो बलावी बलवर्द्धन ।
उग्रायुधो दृढधरो दृढसघो महीधर ॥३१

जरासंधः सत्यसधः पूर्वजन्मनि कौरवाः ।
तेषामशाः समुद्भूताः कैकयस्य गृहे शुभे ॥३२
कामः प्रकामः सकामो निष्कामो निरपत्रपः ।
जयश्च विजयश्चैव जयंतो जयवाञ्जयः ॥३३
नागवशीयभूपालो नामवर्मा समागतः ।
लक्षसेनान्वितः प्राप्तो दशपुत्रसमन्वितः ॥३४
पूर्वजन्मनि यन्नाम्ना तन्नाम्ना कौरवा भुवि ।
पुंड्रदेशपते. पुत्रा जाता दश शिवाज्ञया ॥३५

बल-प्रबल—सुबल—बलवान्—बली —सुमूल—महामूल—दुर्ग—भीम भयकर ये नाम थे ॥२६॥ चन्द्रवश का एक कैकय राजा था जोकि एक लाख सेना से समन्वित और दश पुत्रों से युक्त उस कुरुक्षेत्र के महा युद्ध में प्राप्त हुआ था ॥३०॥ भीमवेग—भीमबल—बलाकी—बलवर्धन-उग्रायुध—दण्डधर—दृढसन्ध—महीधर—जरासन्ध—सत्यसध ये उनके नाम हैं जो पूर्व जन्म मे कौरव थे और अब उनके अंश यहा कैकय के घर मे उत्पन्न हुए थे ॥३२-३२॥ काम—प्रकाम—स काम—निष्काम—निरपत्रप—जय—विजय—जयन्त—जयवान्—जय ये उनके नाम हैं। नागवंश मे उत्पन्न राजा नाम वर्मा आया था। एक लाख सेना इसकी भी थी और इसके भी दश पुत्र इसके साथ मे आये थे ॥३३-३४॥ पूर्व जन्म में इनके ये ही नाम थे वे ही नाम इस जन्म में भी हुए। ये सब कौरव थे जोकि अंशावतार होकर भूमण्डल में फिर आये थे पुण्ड्र देश के पति के दश पुत्र भगवान् शिव की आज्ञा से समुत्पन्न हुए थे ॥३५॥

उग्रश्रवा उग्रसेनः सेनानीर्दुष्परायणः ।
अपराजित. कुण्डशायी विशालाक्षो दुराधरः ॥३६
दृढहस्तः सुहस्तश्च सुतास्ते नागवर्मणः ॥३७
मद्रदेश समायातस्तोमरास्त्वयसभवः ।
लक्षसैन्यर्युतो राजा दशपुत्रसमन्वित. ॥३८
वातवेग. सुवर्चाश्च नागदत्तोऽग्रयाजवः ।
आदिकेतुश्च वकूशी च कवची भाय एव च ॥३९

कुण्डश्च कुण्डधारश्च कौरवा पूर्वजन्मनि ।
तन्नाम्ना भुवि वै जाता मद्रकेशस्य मंदिरे ॥४०
नृप शार्दूलवंशीयो लक्षसैन्यसमन्वित ।
पूर्णमलो मागधेशो दशपुत्रान्वितो ययौ ॥४१
वीरबाहुर्भीरथश्चोग्रश्चैव धनुर्धर ।
रौद्रकर्मा दृढरथोऽलोलुपश्चाभयस्तथा ॥४२
अनाधृष्ट कुण्डभेदी कौरवा पूर्वजन्मनि ।
पूर्णमलस्य वै गेहे तन्नाम्ना भुवि संभव ॥४३

उनके नाम—उग्रश्रवा—उग्रसेन—सेनानी—दुष्परायण—अपराजित—कुण्डशायी—विशालाक्ष—दुराधर—दृढहस्त— सुहस्त—ये सब नागवर्मा के पुत्र हुए थे ॥३६॥ तोमरो म समुत्पन्न मद्रेश भी वहा आया था । इसके साथ भी एक लाख सेना थी और इसने भी दश पुत्र साथ मे युद्ध स्थल मे आये थे ॥ ३८ ॥ वातवेग—सुवर्चा—नागदन्त उग्रयाजक— आदिकेतु—वशी-कवची—क्राथ— कुण्ड — कुण्डधार-ये सब कौरव थे । इस समय फिर उन्ही अपने नामो से ये भूमण्डल मे मद्रकेश के यहा उत्पन्न हुए थे ॥४०॥ शार्दूल व श म होने वाला नृप भी एक लाख सेना से युक्त था । मगध देश का स्वामी पूर्णमल अपने दश पुत्रो के सहित गया था ॥४१॥ उनके नाम—वीरबाहु—भीरथ-उग्र-धनुर्धर-रौद्रकर्मा-दृढरथ-अलोलुप-अभय-अनाधृष्ट और कुण्डभेदी थे । पूर्वजन्म म ये कौरव थ । फिर इस जन्म म इन्होने राजा पूर्णमल के घर म अपना जन्म ग्रहण किया था और उन्ही पूर्व के नामो स य भूमि म प्रसिद्ध हुए थे ॥४२-४३॥

मयण किन्नरो नाम रूपदशी महीपति ।
चीनदशात्परे पारे रूपदश स्मृतो बुधै ।
नर किन्नर जातीयो वसति प्रियदर्शन ॥४४
मयणश्च तदा प्राप्त किन्नरायुतसयुत ।
अष्टपुत्रान्वित प्राप्तो यत्र सर्वनृपा स्थिता ॥४५

विरावी प्रथमश्चैव प्रसाथी दीर्घरोमक. ।
दीर्घबाहु महाबाहुर्व्यूढोरा कनकध्वज ॥४६
पूर्वजन्मनि यन्नाम्ना तन्नाम्ना किन्नरा भुवि ।
विरजोशश्च यो जातो मकणो नाम किनर ॥४७
नेत्रसिह समायातो लक्षसैन्यसमन्वित ।
शल्याश स तु विज्ञेय शार्दूलान्वयसभव ॥४८
तदा गणपति राजा लक्षसैन्यसमन्वित ।
सप्राप्त शकुने रशस्त्यक्त्वा गेहे स्वपुत्रकान् ॥४९

मङ्कण किन्नर नाम वाला रूप देश मे राजा था। चीनदेश से परे पार में बुधो के द्वारा रूप देश कहा गया है। वहा किन्नर जातीय नृपति नर के रूप प्रियदर्शन निवास करता है। उस समय वह मङ्कण दश सहस्र किन्नरो क सहित आया था। उसके आठ पुत्र थे उनको भी साथ मे लेकर आया था जहाँ कि समस्त नृप स्थित थे ॥४४-४५॥ उनके नाम-विरावी- प्रथम-प्रमाथी-दीर्घ रोमक—दीर्घ बाहु—महा-बाहु-व्यूढोरा—कनकध्वज थे,पूर्वजन्म म जिनके जो नाम थे उन्ही नामो से ये भूमण्डल में किन्नर हुए थे जो विरजोश या वह मकण नाम वाला किन्नर उत्पन्न हुआ था ॥४६-४७॥ एक लाख सेना से समन्वित होकर वहा नेत्रसिह आया था। उसे शल्य का अ श समझना चाहिए। वह शार्दूल वश म समुत्पन्न हुआ था ॥४८॥ उस समय म राजा गणपति एक लाख सना से युक्त वहा आया था जोकि शकुनि का अ श था। इसन अपन पुत्रा को घर मे ही छोड दिया ॥४९॥

मयूरध्वज एवापि लक्षसैन्यसमन्वित ।
मकरद गृहे त्यक्त्वा विराटाश समागत ॥५०
वीरसेन समायात भीमसेनसमन्वित ।
लक्षसेनान्वितस्तत्र चोग्रसेनाशसभव ॥५१
लक्षणश्च समायात सप्तत्रगजलैर्युत ।
सत्यज्य पद्मिनी नारी महाकष्टेन भूपति ॥५२

तालनो धान्यपालश्च लल्लसिंहस्तथैव च ।
भीमस्यांशो युयुत्सोश्च कुन्तिभोजस्य वै क्रमात् ।।५३
आह्लादश्च समायात कृष्णांशेन समन्वित ।
जयन्तेन च वै वीरो लक्षसैन्यान्वितो बली ।।५४
जगन्नायक एवापि शूरायुतसमन्वित ।
सम्प्राप्तो भगदत्तांशो गौतमान्वयसम्भव ।।५५
अन्ये च क्षुद्रभूपाश्च सहस्राढ्या पृथक्पृथक् ।
कुरुक्षेत्र परं स्थानं सययुर्मदविह्वला ।।५६

एक लाख सेना सहित राजा मयूरध्वज भी मकरंद को घर छोड़कर वहाँ आया जोकि राजा विराट का अंश था ।।५०।। कामसेन के सहित वीरसेन भी आया ।।इसके साथ भी एक लाख सेना थी । यह सूर्यसेन का अंश था ।।५१।। लक्षण भी अपनी सात लाख सेना से सज्जित होकर वहाँ आया इस राजा ने अपनी पद्मिनी रानी का महान् कष्ट से वहाँ छोड़ दिया ।।५२।। तालन-धान्यपाल और लल्लसिंह क्रम से भीमसेन-युयुत्सु और कुन्तिभोज के अंश थे । ये सभी वहाँ आये थे ।।५३।। कृष्णांश को साथ लेकर आह्लाद आया जयन्त के साथ बली वीर एक लाख सेना लेकर आया ।।५४।। जगन्नाथ का भी दशसहस्र शूरों से अन्वित सम्प्राप्त हुआ था यह भगदत्त का अंश और गौतम वंश में उत्पन्न होने वाला था ।।५५।। इनके अतिरिक्त अन्य क्षुद्र (छोटे) राजा भी आये जो अलग अलग सहस्रों शूरों से युक्त थे । ये युद्ध के मद से विह्वल होकर कुरुक्षेत्र के परम स्थान में चले गये ।।५६।।

मूलवर्मा च नृपति सपुत्रो लक्षसैन्यप ।
नृप परिमलं प्राप्य संयुक्तो दक्षिणेश्वर ।।५७
मंथयो लक्षमानाढ्य सपुत्रो नृपति स्वयम् ।
नृपं परिमलं प्राप्य स युद्धार्थमुपस्थित ।।५८
नरसिंहश्च नृपति [illegible] वीरो लक्षसैन्यप ।
मयूरध्वज एवापि लक्षप अग्निवंशिनाम् ।।५९

वीरसेनश्च लक्षाढ्य: सपुत्रश्चाद्रिपक्षग: ।
लक्षण: सप्तलक्षाढ्यो: युद्धार्थं समुपस्थित: ॥६०
आह्लादो लक्षसैन्याढ्य पक्षगश्च द्रवशिन: ।
द्विलक्षसयुतो राजा चन्द्रवशो रणोन्मुख: ।
एवं पोडशलक्षाढ्य: स्थित: परिमलो रणे ॥६१
लहरो भूपतिश्रेष्टो लक्षप: पुत्रसयुत: ॥
महीराजमुपागम्य युद्धार्थं समुपस्थित ॥६२
अभिनन्दन एवापि सपुत्रो लक्षसैन्यप: ।
मायावर्मा च नृपति. सपुत्रो लक्षसैन्यप: ॥६३

मूलवर्मा नृप पुत्र के सहित लाख सेना का स्वामी था । देहलीपति से सयुक्त होकर नृप परिमल से भिड गया था ॥५७॥ कैकय एक लाख सेना से पूर्ण पुत्रो के सहित स्वय राजा परिमल को प्राप्त युद्ध के लिये उपस्थित हो गया था ॥५८॥ नेत्रसिंह वीर लाख सेना का स्वामी तथा एक लाख सेना का पति मयूरध्वज भी शशिवशी से युद्धार्थ भिड गये थे ॥५६॥ लक्ष सेना स युक्त वीरसेन पुत्रो के सहित चान्द्रि के पक्ष मे था । लक्षण सात लाख सैन्य से पूर्ण युद्ध के लिये वहाँ पर उपस्थित हो गया था ॥६०॥ एक लाख सेना से युक्त आह्लाद चन्द्रवशी राजा के पक्ष मे जाने वाला था । दो लाख से युक्त राजा चन्द्रवश रणोन्मुख हो गया था । इस प्रकार राजा परिमल सोलह लाख सेना से पूर्ण रण मे स्थित हुआ था ॥६१॥ लहर राजाओ म श्रेष्ठ एक लाख सेना का अधिपति और पुत्रो के सहित महाराज के पास पहुँच कर युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गया था ॥६२॥ अभिनन्दन भी पुत्रो के सहित एक लाख सेना का मालिक था । माया वर्मा राजा पुत्रों [redacted] सहित एक लाख सेना का स्वामी था ॥६३॥

नागवर्मा समायात. सपुत्रो लक्षसैन्यप ।
मद्रकेश सपुत्रश्च लक्षसैन्यो रणोन्मुख ॥६४
पूर्णामल. सपुत्रश्च लक्षपश्च व पक्षग. ।
मदरक किनरो नाम सपुत्रस्तत्र सस्थित ॥६५

गजराजः समायातो महीराजं हि लक्षपः ।
धु धुकारः समायातः पञ्चलक्षपतिः स्वयम् ॥६६
पुत्रः कृष्णकुमारस्य भगदत्तः समागतः ।
त्रिलक्षबलसंयुक्तो महीराज महीपतिम् ॥६७
दलवाहनपुत्रश्च देशगोपाल संस्थितः ।
अंगदस्तत्र संप्राप्तः सायुतो देवकी प्रियः ।
महीराजमुपागम्य युद्धार्थं समुपस्थितः ॥६८
कलिंगश्च नृपः प्राप्तस्त्रिकोणश्च तथैव च ।
श्रीपतिश्च तथा राजा श्रीतारश्च तथा गतः ॥६९
मुकुन्दश्च सुकेतुश्च रुहिलो गुहिलस्तथा ।
इन्दुवारश्च बलवाञ्जयंतश्च तथाविधः ।
सर्वे दशसहस्राढ्या महीराजमुपस्थिताः ॥७०

नागवर्मा पुत्रों के सहित लाख सैन्य से युक्त वहाँ आ गया और मद्रकेश सपुत्र लाख सेना समन्वित होकर रण में उन्मुख हुआ था ॥६४॥ पूर्णमल एक लाख सेना से सज्जित पुत्रों के सहित पक्ष में गमन करने वाला था । मद्गुण किन्नर नाम वाला पुत्रों के सहित वहाँ संस्थित था ॥६५॥ गजराज महीराज के पास लाख सेना का अधिप आया । धुन्धुकार पाँच लाख का पति स्वयं आया ॥६६॥ कृष्णकुमार का पुत्र भगदत्त आया जो महीराज महीपति के पास तीन लाख सेना से संयुक्त होकर आया था ॥६७॥ देश गोपाल संस्थित दलवाहन का पुत्र अङ्गद देवकी का प्रिय दस हजार सेना से युक्त आया था । महीराज के पास जाकर युद्ध के लिये उपस्थित हुआ ॥६८॥ कलिङ्ग का राजा तथा त्रिकोण-श्रीपति और श्रीतार भी वहीं प्राप्त हो गये थे । मुकुन्द-सुकेतु-रुहिल गुहिल-इन्दुवार तथा बलवान जयन्त ये सब दस सहस्र २ सेना से युक्त होकर महीराज के पास युद्धार्थ उपस्थित हुए थे ॥६९-७०॥

महीराजस्य पक्षे तु सहस्रं क्षुद्रभूमिपाः ।
ते तु साहस्रसेनाढ्या महीराजमुपस्थिताः ॥७१
तेषां मध्ये च वै भूपान्द्विशतान्देशगी श्रृणु ।

ससैन्यान्प्रेषयामास राष्ट्ररक्षणहेतवे ।
एवं स देहलीराजश्चतुर्विंशतिलक्षपः ।।७२

युद्धमष्टादशाहानि सञ्जात सर्वसंक्षयम् ।
शृणु युद्धकथा रम्या भृगुवर्य सुविस्तरात् ।।७३
मार्गकृष्णद्वितीयाया महीराजो महाबलः ।
आहूय लहर भूपं वचन प्राह निर्भयः ।।७४

भवान्सपुत्रः सेनाढ्यो धुंधुकारेण रक्षितः ।
चामुण्डेन युतो युद्धे गन्तुमर्हति सत्तमः ।
इति श्रुत्वा ययौ शीघ्रं कुरुक्षेत्रे महारणे ।।७५

तदा परिमलो राजा मयूरध्वज मेव हि ।
समाहूय वचः प्राह शृणु पार्थिवसत्तम ।।७६

कृष्णांशेन जयतेन देवसिंहेन रक्षित. ।
स भवाल्लँक्षसैन्याढ्यो गतुमर्हति वै रणे ।।७७

महीराज के पक्ष मे एक सहस्र छोटे राजा थे । वे सब सहस्र २ सेना से युक्त थे जोकि महीराज क पास उपस्थित हुए थे ।।७१।। उनके मध्य में से दो सौ राजाओ को सेना के सहित राष्ट्र की रक्षा के लिये महीराज ने देहली को भेज दिया था । इस प्रकार से वह देहली का राजा चौवीस लाख सेना से युक्त था ।।७२।। यह युद्ध अठ्ठारह दिन पर्यन्त हुआ जो कि सब का सक्षय करने वाला था । हे भृगुवर्य ! अब इस रम्य युद्ध की कथा को तुम विस्तार के साथ श्रवण करो ।।७३।। मार्ग शीर्ष कृष्ण द्वितीया के दिन महान बलवान् महीराज ने लहर राजा को बुलाकर निर्भय होत हुए यह वचन कहे ।।७४।। आप पुत्रो के सहित सेना से पूर्णतया युक्त हैं और धुन्धुकार के द्वारा रक्षित हैं । आप चामुण्ड को साथ लेकर युद्धभूमि मे हे सत्तम ! जाने के योग्य होते हैं । यह वचन सुनकर वह शीघ्र ही कुरुक्षेत्र के महारण मे चला गया ।।७५।। उसी समय में राजा परिमल ने मयूरध्वज को बुलाया और वह उससे यह वचन बोला—हे पार्थिव श्रेष्ठ ! आप मेरे वचन श्रवण करो । आप

कृष्णांश-जयन्त और देवसिंह के द्वारा रक्षित होते हुए एक लाख सेना से युक्त होकर आप रण में जाने के योग्य होते हैं ॥७६-७७॥

इति श्रुत्वा तु वचनं मयूरध्वज एव हि ।
लक्षसैन्यान्वितः प्राप्तो लहरं नृपतिं प्रति ॥७८
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोरुभयो रणे ।
सेना तु लक्षवीरस्य तत्र युद्धे प्रकीर्तिता ॥७९
एको रथो गजास्तत्र ज्ञेया पञ्चशतं रणे ।
हयाश्च पञ्चसाहस्रा पत्तयस्तद्गुणा दश ।
एते सैन्या नरा ज्ञेया सैन्यपाश्च शृणुष्व भो. ॥८०
दशानां पद्चराणां च पतिर्नाम्ना स पत्तिप. ।
पचानां च हयानां च पतिर्नाम्ना स गुल्मपः ॥८१
पचानां च गजानां च पतिर्नाम्ना गजाधिपः ।
एतं सार्द्धं रथी ज्ञेयो रणेऽस्मिन्दारुणे कलौ ॥८२
उष्ट्रारूढा. स्मृता दूताश्चत्वारिंशच्च तद्बले ।
शतघ्न्य स्तत्र साहस्रास्तेषां मध्ये पृथक्पृथक् ।
षट्त्रिंशद्वै पदचरास्तेषां कर्माणि मे शृणु ॥८३
दश गोलकदातारो दशतत्पुष्टिकारका ।
दश चार्द्रकरास्ता वै त्रयस्ते वह्निदायिन. ।
त्रयो दृष्टिकरा ज्ञेयास्त्रियामेषु पृथक्पृथक् ॥८४

मयूरध्वज ने राजा परिमल के इस आज्ञा वचन को सुनकर एक एक लाख सेना से सुसज्जित होकर राजा लहर के मुकाबिले में शीघ्र ही वह पहुँच गया था ॥७८॥ रण में उन दोनों सेनाओं में उन दोनों का महान् युद्ध हुआ । लक्षवीर की सेना उस युद्ध में प्रकीर्तित हुई ॥७९॥ एक रथ और यहाँ पर हाथी पाँच सौ थे । अश्व पाँच सहस्र थे और पैदल सैनिक उसके दश गुने थे । ये इतने तो सेना के नर थे । अब सेना के स्वामियों के विषय में श्रवण करो । दश पदचरों का पति नाम से वह पत्तिप कहा जाता है ॥८०॥ पाँच अश्वों का पति नाम से गुल्मप कहलाता है ॥८१॥ पाँच गजों का स्वामी गजाधिप इस नाम से प्रसिद्ध है । इतनों

के साथ इस दारुण काल में युद्ध में रथी का होना जानना चाहिए ॥८२॥ उस सेना में उष्ट्रो पर आरूढ दूत चालीस थे । वह शतघ्नी (तोपें) एक सहस्र थी और उनके मध्य में पृथक् २ छत्तीस पदचर थे । अब उनके कर्मों के विषय में श्रवण करो ॥८३॥ दश तो गोलो के देने वाले थे । दश उसकी पुष्टि के करने वाले थे । दश उनको आर्द्र करने वाले थे और तीन उनमे अग्नि लगाने वाले दग्ध करके चलाने वाले थे । तीन दृष्टिकर अर्थात् निगरानी रखने वाले तीन प्रहरों में पृथक् पृथक् होते थे ॥८४॥

शेषा शूद्रास्तु सेनाना शूरकृत्यपरायणा ।
एव च लक्षवीराणा सेना तत्र प्रकीर्तिता ॥८५
तत्रासीत्तुमुल युद्ध धर्मेण च समन्तत ।
प्रात कालात्समारभ्य मध्याह्न सैन्ययोर्द्वयो ॥८६
तत्पश्चाद्याममात्रेण सैन्यपा युद्धमागता ।
तत्पश्चाच्च महाशूरा धुधुकारादयो बला ॥८७
याममात्र च युद्धाय सस्थिता रणमूर्धनि ।
चामुण्डेन च कृष्णाशो धुधुकारेण चेन्दुल ॥८८
भगदत्तेन वै देव कृतवान्युद्धमुत्तमम् ।
सायकाले तु सप्राप्ते सर्वे शूरा क्षय गत ॥८९
कृष्णाशस्तत्र चामुण्ड जित्वा तु लहरात्मजान् ।
षोडशैव जघानाशु घटीमात्रेण वीर्यवान् ।
दध्मौ शख प्रसन्नात्मा लक्षणान्तमुपाययौ ॥९०
चामु डो धुन्धुकारश्च भगदत्तो युत शतै ।
महीराजमुपागम्य सुषुपुर्निशि निर्भया ॥९१

इनके अतिरिक्त शेष लोग सेनाओ के शूरो के कृत्यो मे परायण रहने वाले शूद्र लोग थे । इस प्रकार से लाख वीरो की सेना वहाँ पर कही गई है ॥८५॥ वहा बडा भारी तुमल युद्ध सभी ओ से धर्म के साथ हुआ था । प्रात काल से आरम्भ करके दोनो सेनाओं का मध्याह्न तक होता था । इसके पश्चात् फिर याम मात्र के लिए सैन्यप लोग युद्ध

स्थल में आये थे। इसके पीछे एक प्रहर के लिये धुन्धुकार आदि महान् बलवान् आते थे। और रण के मस्तक पर डट कर युद्ध किया करते थे। चामुण्ड के साथ कृष्णांश ने और धुन्धुकार के साथ इन्दुल ने तथा भगदत्त के साथ देवसिंह ने उत्तम युद्ध किया। सायंकाल प्राप्त होने पर समस्त शूर क्षय को प्राप्त हो गये थे ॥८६-८९॥ वहां पर कृष्णांश ने चामुण्ड को जीतकर लहर के सोलहों पुत्रों को मार दिया और एक घटी मात्र में ही वीर्यशाली ने सब को खत्म कर दिया। उसने प्रसन्न होकर विजय का शंख बजाया और लक्षणान्त को आ गया था। ॥९०॥ चामुण्ड-धुन्धुकार और भगदत्त सौ से युक्त होकर महीराज के पास जाकर निर्भय होते हुए रात्रि में सो गये थे ॥९१॥

इंदुलो देवसिंहश्च सहस्रैः संयुतो मुदा ।
गत्वा परिमलं भूपं रात्रौ सुषुपतुस्तदा ॥९२
प्रातःकाले तु संप्राप्ते तृतीयायां भयंकरे ।
महीराजस्तदाहूय नृपं गजपतिं बली ॥९३
वचनं प्राह भो राजँस्त्वं त्रिवीरैः सुरक्षितः ।
स्वकीयैर्लक्षसैन्यैश्च गंतुमर्हसि वै रणे ॥९४
तदा परिमलो भूपो नेत्रसिंहं महीपतिम् ।
युद्धायाज्ञापयामास कृष्णांशाद्यैः सुरक्षितम् ॥९५
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोरुभयोः क्रमात् ।
हया हयैः क्षयं जग्मुर्गजाश्चैव तथा गजैः ।
पत्तराः पत्तरैः सार्द्धं शतघ्न्यश्च शतघ्निभिः ॥९६
अपराह्णे मुनिश्रेष्ठ नेत्रसिंहो महाबलः ।
महागजं गजपतिं गत्वा युद्धमचीकरत् ॥९७
परस्परं च विरथो संछिन्नधनुषौ तदा ।
खड्गहस्तौ महीं प्राप्य चक्रतू रणमुल्बणम् ।
अन्योन्येन वधं कृत्वा स्वर्गलोकमुपागतौ ॥९८

इन्दुल-देवसिंह सहस्रों से संयुत होकर आनन्द के साथ राजा परिमल के पास पहुँचकर उस समय में शयन कर गये थे ॥९२॥ प्रातःकाल के

सम्प्राप्त होने पर तृतीय के दिन जो भयङ्कर थी उस समय बली महीराज ने गजपति नृप को बुलाकर यह वचन कहे थे—हे राजन् ! तुम तीन वीरों से रक्षित होते हुए अपनी लाख सेना से युक्त होकर रण-स्थल में जाने के योग्य होते हो ॥९३-९४॥ उस समय परिमल राजा ने नेत्रसिंह महीपति को युद्ध के करने की आज्ञा दी थी जोकि कृष्णांश आदि के द्वारा सुरक्षित होकर युद्ध करे ॥९५॥ उन दोनों का क्रम से सेनाओं में महान् युद्ध हुआ था। अश्व अश्वों के द्वारा क्षय को प्राप्त हुए थे तथा गज गजों के द्वारा क्षीण हो गये थे पच्चर पच्चरों के द्वारा और तोपें तोपों के द्वारा क्षय को प्राप्त हुए। हे मुनि श्रेष्ठ ! अपराह्न में महान् बलवान् नेत्रसिंह ने महाराज गजपति के पास जाकर युद्ध किया। ॥९७॥ ये दोनों ही आपस में रथहीन और छिन्न धनुष वाले होकर हाथों में खड्ग लेकर भूमि में पहुँचकर उल्वण युद्ध कर रहे थे। एक-दूसरे का वध करके दोनों ही स्वर्गलोक को प्राप्त हो गये थे ॥९८॥

इन्दुलस्त तु चामुण्ड देवो वै धुन्धुक तथा ।
कृष्णांशो भगदत्त च जित्वा राजानमाययु ॥९९
शेषं पंचशतं शूरंस्तं सार्द्धं लक्षण प्रति ।
पराजिताश्च ते सर्वे सहस्रं सहिता ययु ॥१००
प्रातःकाले तु सम्प्राप्ते महीराजो महाबल ।
मायावर्माणमाहूय वचन प्राह निर्भय ॥१०१
भवान्दशसुतैर्वीरैर्लक्षसैन्यैश्च संयुत ।
सर्वशत्रुविनाशाय गन्तुमर्हति सत्तम ।
इति श्रुत्वा स नृपतिर्वाद्यान्सवाद्य चाययौ ॥१०२
दृष्ट्वा परिमलो भूयो मायावर्माणमागतम् ।
जगन्नायकमाहूय वचन प्राह निर्भय ॥१०३
भवान्दशसहस्रं श्च सार्द्धं तैस्त्रिभिरन्वित ।
गन्तुमर्हति युद्धाय शीघ्र मद्विजय कुरु ॥१०४
इति श्रुत्वा ययौ शीघ्र सेनयोरुभयोर्महत् ।
युद्ध चासीन्मुनिश्रेष्ठ याममात्र भयानकम् ॥१०५

इन्दुल ने चामुण्ड को देवसिंह ने धुन्धुक को और कृष्णाश ने भगदत्त को जीत कर वे राजा के पास आ गये थे। शेष जो पाँच सौ शूर थे उनके साथ लक्षण के प्रति चले गये। पराजित वे सब सहस्रो के साथ गये थे। ॥६६ १००॥ प्रात काल के होने पर महाराज महाबली महीराज ने माया वर्मा को बुलाकर यह वचन निर्भयता पूर्वक कहे—आप अपने वीर दश पुत्रों के और एक लाख सेना के सहित सज्जित होकर हे सत्तम ! आज शत्रुओं के विनाश के लिये युद्ध-स्थल मे जाने के योग्य हो। यह आदेश वचन सुनकर वह राजा युद्ध के वाद्यो का वादन करा कर वहा आ गया था ॥१०१ १०२॥ राजा परिमल ने जब देखा कि आज रणभूमि मे माया वर्मा आ गया है तो इसने जगन्नायक का समाह्वान करके उससे कहा—आप दश सहस्र के साथ उन तीनो के द्वारा सुरक्षित होते हुए युद्ध करने के लिये जाने के योग्य हैं और बहुत ही शीघ्र मेरा विजय करिये ॥१०३ १०४॥ इस आज्ञा का श्रवण कर वह बहुत ही शीघ्र वहा गया और उन दोनो का बडा महान् डटकर युद्ध हुआ था। हे मुनिश्रेष्ठ ! वह केवल प्रहर तक अत्यन्त भयानक युद्ध हुआ था ॥१०५॥

हतास्ते दशसाहस्रा कृष्णाशाद्यै सुरक्षिता ।
शखान्दध्मुश्च ते सर्वे चागदेशनिवासिन ॥१०६
एतस्मिन्नतरे धीरा कृष्णाशाद्यास्तुरीयका ।
याममात्रेण सजघ्नुलक्षसैन्य रिपोस्तदा ॥१०७
अपराह्णे महाराजो मायावर्मा सुतै सह ।
कृष्णाश देवसिंह च सप्राप्तो जगनायकम् ॥१०८
अथाङ्गभूप दशपुत्रयुक्त कृष्णाश एवाशु जगाम शीघ्रम् ।
हयस्थितौ वीरवर प्रमाथी कलंकजातो मधुसूदनस्य ॥१०९
ततोगभूपस्त्रिभिरेव बाणैरताडय-मूर्ध्नि च पार्श्वयोर्वै ।
अमर्षमाणो बलवान्महीपति दंडैर्हत काल इवाशु सर्पे ॥११०
हय समुड्डीय स पुष्करान्त ततोऽभ्यगात्त नृपति रथस्थम् ।
हयस्य पातैर्विरथीचकार स एव भूपोऽसिमुपाददान ॥१११

स्वेनासिना विदुलमगशल्य कृत्वा स कृष्णाशमुवाच वाक्यम् ।
कल्लोलमायात्तव नाशनाय त्वया जिता भूपतय प्रधाना ॥११२

कृष्णाशादि के द्वारा सुरक्षित वे दश सहस्र महा दूत हो गये । उन सब अ ग देश के निवासियो ने विजय का शख बजा दिया था ॥१०६॥ इस बीच मे कृष्णाशादि तुरीयक वीरो ने जो परम धीर थे केवल एक ही प्रहर म उस समय शत्रु की एक लाख सेना का हनन कर दिया था ॥१०७॥ अपराह्न मे महाराज मायावर्मा अपने पुत्रो के साथ कृष्णाश-देवसिंह और जगनायक के पास सम्प्राप्त हो गया था ॥१०८॥ इसके अनन्तर दशपुत्रो से युक्त अ गदेश के राजा के पास वह कृष्णाश बहुत ही शीघ्र गया । यह वीरो म परम श्रेष्ठ प्रमथन करने वाला अश्व पर समारूढ था जो कि भगवान् मधुसूदन की एक कला का अवतार हुआ । ॥१०६॥ इसके पश्चात् उस अ ग देश के राजा ने अपने तीन ही बाणो के द्वारा मस्तक मे और पाश्र्वों मे प्रहार किया । वह बलवान् महीपति अमर्षमान होकर दण्डो के द्वारा काल सर्प की भाति अति शीघ्र ही अपने अश्व को उडाकर वह उस रथ मे बैठे हुए नृपति के पीछे पुष्कर के अन्त तक गया । उसने अश्व के पातो से उसे रथ से हीन कर दिया । उसी राजा ने खग को धारण करते हुए अपने असि के द्वारा बिन्दुल के अ ग मे शल्य करके फिर वह कृष्णाश से यह वाक्य बोला—तेरे नाश के लिये कल्लोल मे आया है तूने बहुत से प्रधान राजाओ को जीत लिया है ॥११०-११२॥

तदैव कीर्तिर्भविता ममाशु हत्वा भवत च सुखी भवामि ।
इत्युक्त्वा त नृपति महा त स्वेनासिना तस्य शिरो जहार ॥११३
हतेऽङ्गभूपे दश तस्य पुत्रास्तमेव जग्मुर्युधि कौरवाशा ।
तानागतानिदुल एव पच जघान बाणैस्तु तदा समन्यु ॥११४
उभौ च देवस्तु जघान तत्र भल्लेन सिद्धेन नृपात्मजौ च ।
ज्येष्ठ सुत गौतम एव हत्वा द्वौ यौ स कृष्णाश उपाजघान ॥११५
शखा-प्रदध्मर्रुचिराननास्ते प्रदोषकाले शिविराणि जग्मु ।
श्रमान्वितास्ते सुषुपुर्निशाया प्रात समुत्थाय स्वकर्म कृत्वा ॥११६

गत्वा सभाया नृपति प्रणम्य वाक्य समूचुः शृणु चद्रवशिन् ।
अद्य व सेनापतिरस्ति को वै चाज्ञापयास्मान्नृप तस्य गुप्त्यै ॥११७
श्रुत्वाह भूपोद्य तु वोरसेन. सकामसेन स्ववलं समेत. ।
रण करिष्यत्यचिरेण वीरास्तस्मात्सुरक्षध्वमरिभ्य एव ॥११८
स वीरसेनो नृपति प्रणम्य लक्षे. स्वसैन्यैयु धि सजगाम ।
तदा महीराजनृपः प्रतापी स नागवर्माणमुवाच तापी ॥११९

मेरी कीर्त्ति तो इस ससार मे तभी होगी जब मैं तुझे जीत कर और शीघ्र तेरा हनन करके मैं सुखी होऊ गा । इस प्रकार से कहने वाले उस महान् अ गाधिपति का कृष्णाश ने अपने खग से शिर का मस्तक को काट डाला । उस अ ग के भूप के मर जाने पर उसके दश पुत्र भी उसी पर टूट पडे थे जो कि युद्ध मे कौरवो के अ श रूप वहाँ आये । उन आये हुओ को पाँचो को तो बिन्दुल ने ही मार दिया और फिर क्रोध-युक्त ने उस समय मे बाणो के द्वारा हनन किया ॥११३-११४॥ दो को देवसिंह ने वहाँ पर मार दिया जिन नृप के पुत्रो पर अपने सिद्ध भाले से देव ने प्रहार किया । ज्येष्ठ सुत को गौतम ने मारा और जो शेष दो रह गये उनको कृष्णाश ने हनन किया ॥११५॥ प्रसन्नमुख वाले उन्होने विजय शखो का वादन किया था और प्रदोप के समय मे वे सब अपने शिविरो को चले गये थे । वे उस दिन अत्यन्त परिश्रम से थके हुए थे रात्रि मे वहा सो गये थे । प्रात काल मे उठकर उन्होने अपना दैनिक कर्म सम्पन्न किया था ॥११६॥ फिर वे सभा मे गये और राजा को प्रणाम किया । वे राजा से यह वाक्य बोले—हे चन्द्रवशी राजन् ! सुनिये, आज का सेनापति कौन होगा । हे नृप ! उसकी रक्षा करने वाले के विषय में भी अब आप अपनी आज्ञा प्रदान कीजिए । यह सुनकर राजा ने कहा—आज वीरसेन राजा कामसेन के सहित अपनी सेना स युक्त होकर युद्ध करेंगे । इससे वीर शीघ्र ही शत्रुओ से उसकी रक्षा करियेगा ॥११७-११८॥ इसके अनन्तर तुरन्त ही वह राजा वीरसेन राजा को प्रणाम करके अपनी एक लाख सेना से समन्वित होकर युद्ध

भूमि मे चला गया था। उस समय प्रतापी महीराज भूप ने नागवर्मा से कहा ॥११६॥

रणाय गच्छाशु सुतैः समेतो लक्षै. स्वसैन्यैरुत भूपवर्य।
हत्वा रिपु घोरतम हि वीर पति महान्तयुधि वीरसेनम् ॥१२०
इत्युक्तवत नृपति प्रणम्य सुवादयामास तदा हि वीर।
तयोर्बभूवाशु रणो महान्वै सुसेनयो सकुलयुद्धकर्त्रो. ॥१२१
त्रियाममात्रेण हताश्च सर्वे विमानमारुह्य ययुश्च नाकम्।
हतेषु सर्वेषु च नागवर्मा सुतेषु वै यादवभूप माह ॥१२२
भवान्विसैन्यश्च तथैव चाह भवान्सपुत्रश्च तथाहमेव।
सस्मृत्य धर्म कुरु युद्धमाशु ततो रथस्थ सुधनुर्गृहीत्वा ॥१२३
बाणैश्च बाणान्भुवि तौ चछित्त्वा बभूवतुस्तौ विरथौ नृपाग्रचौ।
खड्गेनखड्ग च तथैव छित्त्वा विमानमारुह्य गतौहिनाकम् ॥१२४
स कामसेन. स्वरिपोश्च पुत्रान्जघान बाणैश्च तदाष्टसख्यान्।
ज्येष्ठौ तदा कोपसमन्वितौ त गृहीतखड्गौ च समीयतुश्च ॥१२५
रिपो. शिरो जह्रतुरुग्रवेगौ सकामसेनश्च कबध एव।
हत्वारिपू तौ च तदा मिलित्वा स्वर्गंययुस्ते च विमानरूढाः॥१२६

आप आज युद्ध करने के लिये शीघ्र ही अपने पुत्रो के सहित जाइये ! हे भूप श्रेष्ठ ! आप एक लाख सेना से सज्जित होकर जावें। अत्यन्त घोर परमवीर शत्रु वीरसेन राजा को जोकि महान् है युद्ध मे मार डालिये। इस प्रकार से आदेश देने वाले राजा को उस वीर ने प्रणाम करके अपने युद्ध के वाद्यो को बजवाया था। उन दोनो का बहुत ही शीघ्र युद्ध शुरू हो गया था। वे दोनो ही अच्छी सेना वाले और सकुल युद्ध के करने वाले थे। उन दोनो का महान् युद्ध हुआ था ॥१२०-१२१॥ केवल तीन ही प्रहार के समय मे वे सब हत हो गये थे और विमानों म समारूढ होकर स्वर्ग को चल गये थे। नाग वर्मा न उन समस्त पुत्रो के मारे जान पर यादव भूप से कहा—॥१२२॥ आप अब सेना रहित हैं और मै भी वैसा ही हूँ। आप सपुत्र हैं और वैसा ही मैं

भी हूँ। अतएव अब धर्म का सस्मरण करके शीघ्र ही युद्ध करो। इसके पश्चात् रथ मे स्थित धनुष का ग्रहण कर उन दोनो ने बाणो के द्वारा बाणो का छेदन किया और वे दोनो नृप श्रेष्ठ विरथ हो गये थे। खग से खग का छेदन करते हुए वे दोनो विमान म चढकर स्वग को चले गये थे ॥१२३ १२४॥ उस कामसेन ने अपने शत्रु के पुत्रो को जो सख्या मे आठ थे बाणो से मारा था। दो जो ज्येष्ठ थे वे क्रोध से युक्त होकर हाथो मे खग लेकर उसके पास आये थे ॥१२५॥ उग्र वेग वाले उन्होने शत्रु का शिर काट डाला था कि तु उस कामसेन का कबन्ध ही ने उन दोनो शत्रुओ को मार डाला था। वे सब उस समय मिलकर विमानो मे चढ कर स्वग को गये थे ॥१२६॥

हतेषु सर्वेषु तदा त्रयस्ते चामु डकाद्या जगनायक ते ।
रुद्धा समेता स्वशरै कठोरैजघ्नुस्तमश्व हरिनागर च ॥१२७
स दिव्यवाजी च सदा स्वपक्षौ प्रसार्य्य खेनाशु रिपु जगाम ।
स धु धुकारस्य गज विहत्य चामु डकस्यैव गज विमर्द्य ॥१२८
रथ च भूमौ भगदत्तकस्य विचूर्ण्य शीघ्र च नभो जगाम ।
प्रवाद्य शख जगनायकश्च कृष्णाशमागम्य कथा चकार ॥१२९
निशामुषित्वा जगनायकाद्या प्रात समुत्थाय रण प्रजग्मु ।
तदा महीराज उताशुवारी स किन्नरेश कणक सपुत्रम् ॥१३०
उवाच राजञ्छृणु किनराणा महाबलास्ते रिपवो ममैते ।
विनाशयाशु प्रवलारिघातान्देवैर्न साद्धं युधि वै मनुष्या ॥१३१
इ युक्तवान्मकणभूपतिस्तु ययौ सपुत्रोऽप्युतसन्यपश्च ।
समागत तत्र विलोक्य राजा वीरान्स्वकीयाश्च समादिदेश ॥१३२
मनोरथस्थो जगनायकश्च स तालनो वै बडवा विगृह्य ।
करालसस्थश्च तदा जयन्तो विगृह्य चाप तरसा जगाम ॥१३३

उस समय म सबके हत हो जाने पर वे चामुण्ड आदि तीनों ने जगनायक को रुद्ध किया था और उन सब ने अपने कठोर शरो के द्वारा उसको और हरि नागर नामक अश्व को मार दिया था ॥१२७ १२८॥ उस समय उस दिव्य अश्व ने अपने पर्गो को फैला दिया था और शीघ्र

ही आवाश के मार्ग से शत्रु क समीप मे गया था। उसने धुधुकार के हाथी का हनन करके और चामुण्ड के गज का विमर्दन करके तथा भूमि मे भगदत्त के रथ का चूर्ण करके वह शीघ्र ही आकाश को चला गया था। जगनायक ने अपने विजय शख को बजाकर कृष्णाश के पास गमन किया था और वहा सम्पूर्ण कथा उसने कही थी ॥१२६॥ जगनायक आदि रात्रि मे निवास करके प्रात काल में उठे और रण भूमि मे चले गए थे। उस समय म महीराज ने जोकि आशुकारी था शीघ्र ही पुत्रों के सहित किन्नरेश कणक को बुलाकर उससे बोला—हे राजन्! सुनो आपके किन्नरो के महा बलवान् योधा हैं। ये मेरे शत्रु हैं उनके प्रबल शत्रु प्रहारो को नष्ट करिये क्योकि देवो के साथ मनुष्य युद्ध मे नही ठहर सकते हैं ॥१३० १३१॥ मकण भूपति ने इस प्रकार से कहा और दश सहस्र सेना से तथा पुत्रो से युक्त होकर वह गया था। राजा ने उनको आते हुए देखकर अपने वीरो को आदेश दिया था ॥१३२॥ मनोरथ पर स्थित जगनायक और बडवा को ग्रहण करने वाला तालन तथा कराल पर सस्थित जयन्त इन सब ने अपने २ धनुष ग्रहण किये थे और बडे वेग से गये थे ॥१३३॥

पपीहकस्थश्च स रूपणो वै जगाम कृष्णाशसमन्वितश्च ।
स लल्लसिंहो गजमत्तसस्थ स धान्यपालो हयमारुरोह ॥१३४
समतत किन्नरसैंयघोर विनाशयामासुरुपाशुखङ्गै ।
विनश्यमाने त्रिसहस्रसैन्ये स किन्नरेशस्त्वरसा जगाम ॥१३५
ध्यात्वा कुबेर च गृहीतचापो नभोगतस्तत्र बभूव सूक्ष्म ॥१३६
अदृश्यमा स्वशरै कठोरैर्विनद्य सर्वाहि ननद घोरम् ।
विलप्यमाने च समस्तशूरे जयन्त एवाशु जगाम शत्रुम् ॥१३७
ध्यात्वा महेंद्र कणक च वद्धा कृष्णाशमागम्य पदौ ननाम ।
तदा तु त शत्रुसहस्रसैन्ये निशम्य वद्ध कणक निर्जेद्रम् ॥१३८
विनद घोर रुरुयुद्ध सर्वा-माया विनो गुह्यकमस्त्रमूह ।
दिनेषु सप्तषु तथा निशासु बभूव युद्ध च समततस्तै ॥१३९

श्रमान्विताः सप्त महाप्रवीरा हतेषु सर्वेषु सुषुपुश्च वै यदा ।
तदा कुबेरं कणकश्च ध्यात्वा लब्ध्वा वरं बंधनमाशु छित्वा ॥१४०

रूपण पपीहक पर स्थित था जो कि कृष्णांश के साथ समन्वित होकर गया था । वह लल्लसिंह मत्तगज पर स्थित था और धान्यपाल ने अश्व पर समारोहण किया था ॥१३४॥ सब ओर से किन्नरों की घोर सेना को उपांशु खंगों के द्वारा विनाश कर दिया था । जब तीन सहस्र सेना का विनाश हो गया था तब किन्नरेश बड़े वेग से गया था ॥१३५॥ उसने कुबेर का ध्यान किया था और चाप को ग्रहण किया और वह आकाश मे जाकर अत्यन्त सूक्ष्म हो गया था ॥१३६॥ अपने कठोर बाणों के सहित अदृश्य होकर वहा से सब को डाटकर उसने घोर गर्जना की थी । समस्त शत्रुओं के विलप्यमान हो जाने पर फिर जयन्त ही शीघ्र शत्रु के पास गया था ॥१३७॥ उसने महेन्द्र का ध्यान किया था और कणक को बांध करके उसने शीघ्र ही आकर कृष्णांश के चरणों मे प्रणाम किया था । उस समय शत्रु की सहस्र सेना में अपने स्वामी कणक को बद्ध सुनकर अत्यन्त घोर रूप से समस्त मायावियों ने युद्ध करके गुह्यक का अस्त्र ग्रहण किया था । फिर सात दिन और रात्रियों में उनके साथ चारों ओर से महान् युद्ध हुआ । सातों महान् प्रवीर श्रमित होकर सब के मरने पर जब सो गये थे तब कणक ने कुबेर का ध्यान करके वर प्राप्त किया था और शीघ्र बन्धन का छेदन किया था ॥१३८-१४०॥

सुप्तान्समुत्थाय च सप्त शूरान्निशीथ काले स चकार युद्धम् ।
जित्वा च तान्पट्ट स वरप्रभावात्तर्देदुलेनैव रणं चकार ॥१४१
गृहीतखड्गो रणघोरमत्तो हत्वा ततो वै भुवि चेयतुश्च ।
प्रजग्मतुर्नाकमुपान्तदेवौ संस्तूयमानो गुरसत्तमैश्च ॥१४२
ततः प्रभाते विमले विजाते रुरोध रामांश उताललाप ।
पापं कमार्तः परिशोच्यमानः कृष्णान्वितः सर्वयुतो मुनीन्द्र ॥१४३
स पपनदं गजमारुरोह त्रिलक्षसैन्यैस्त्वरया जगाम ।
तदा महीपास्त उताहू शृण्वन्तत्क्षयमर्थं व मया समेताः ॥१४४

स्वपचलक्षै प्रबलैश्च शूरै साद्धं रुरोधाशु रिपोश्च सेनाम् ।
तयोवभूवाशु रण प्रघोरो विनर्दतोयु द्धनिमित्तमाशु ॥१४५
नियाममात्रेण हताश्च सर्वे द्वयोश्च पक्षा बलशालिनश्च ।
तदा महीराज उतायया वै समडलीकश्च धनुर्विगृह्य ॥१४६
स धु धुकारश्च तदा जगाम रथस्थित लक्षणमुग्रवीरम् ।
तदोदयो वै भगदत्तमेव चामु डक भीष्मकराजसूनु ॥१४७

शयन करते हुए उन सातो शूरो को उठा कर आधीरात के समय मे उसने युद्ध किया था। उसने वर के प्रभाव से उन छै को जीत कर फिर उसने इ दुल क साथ ही युद्ध किया था ॥१४१॥ युद्ध करने एक दम मस्त हाथो मे खग लिए आपस मे प्रहार करके भूमि मे वे दोनो आगये थे और फिर उपा त देव वे दोनो देवो के द्वारा स्तुति किये स्वग मे चले गये थे ॥१४२॥ इसके अन तर प्रभात के विमल हो जाने पर रामाश ने रोध किया और अलाप किया था। हे मुनी द्र ! वह पापो के समूह से परिपीडित होता हुआ कुन से युक्त तथा सबके सहित था ॥१४३॥ वह पच शब्द नामक गज पर समारूढ हो गया था और तीन लाख सेना से समन्वित होकर वेग के साथ गया था। उस समय सुनते हुए महीराज बोला—मेरे सहित आज ही जाओ ॥१४४॥ अपने पाँच लाख प्रबल शूरवीरो के साथ शीघ्र ही उसने शत्रु की सेना को रोक दिया था अर्थात् घेर लिया था। फिर दोनो मे शाघ्र ही बडा घोर युद्ध हुआ था। वे दोनो युद्ध के लिये विशेष रूप से नदन (गजन) कर रहे थे ॥१४५॥ केवल तीन ही प्रहर के युद्ध मे दोनो पक्षो के समस्त बलशाली वीर हत हो गये थे। तब महीराज समण्डलीक हाथ मे धनुष लेकर वहा आ गया था ॥१४६॥ वह धुधुकार उस समय मे रथ मे स्थित उग्रवीर लक्षण के पास पहुचा था। उदयसिह भगदत्त के समीप और भीष्मक राजा का पुत्र चामुण्डक के निकट युद्ध के लिये गये थे ॥१४७॥

स पचशब्द गजमास्थितो वै गत स एवाशु जगाम भूपम् ।
धनुर्विगृह्याशुगमुल्वण च नृपस्थितश्चाथ भयकर च ॥१४८

गजं प्रमत्तं शिवदत्तमुग्रमाह्लादहन्तारमुवाच वाक्यम् ।
अये प्रमत्ताग्रगजेंद्र शूर जयं च मे देहि शिवप्रदत्त ।।१४६
स मंडलीको रणदुर्मदश्च रामांश आह्लाद इति प्रसिद्धः ।
तस्माच्च मां रक्ष जवेन हस्तिन्महाबलात्काल रसाच्च वीरात् ।।१५०
इत्येवमुक्तो नृपति स हस्ती वचस्तमाहाशु शृणुष्व राजन् ।
यावदहं वै तनु जीवधारीतावद्भवाञ्छत्रुभयंकरश्च ।।१५१
इत्युक्तवंतं गजं प्रमत्तं स पंचशब्दश्च तदा स्वदंतैः ।
मुखं चतुर्भिश्च विदार्य शत्रोर्ननर्द घोरं स महेंद्रदत्तः ।।१५२
स रुद्रदत्तश्च गजः प्रमत्तो रुषान्वधावत्तरसा गजेंद्रम् ।
रिपुं स्वपद्भ्यां च चखान कुम्भैः स्वतुंडदंडेन तुदं प्रकुर्वन् ।।१५३
अवाप मूर्च्छां च स पंचशब्दस्तदाशु भूपं प्रति मंडलीकः ।
स्वतोमरेणांगव्रणं प्रदाय खंगेन हत्वा गजराजमुग्रम् ।
जगाम पद्भ्यां रिपुप्रमाथी यत्र स्थितश्चेन्दुल उग्रधन्वा ।।१५४

वह पञ्चशब्द गज पर बैठा हुआ शीघ्र ही राजा के पास गया था और धनुप ग्रहण करके जोकि शीघ्र गमन करने वाला, उल्वण और बहुत ही भयंकर था वहां नृपस्थित था ।।१४८।। अत्यन्त प्रमत्त और महाउग्र तथा आह्लाद के हनन करने वाले शिवदत्त नामक गज से यह वचन बोला था—अरे प्रमत्त गजों में शिरोमणे ! हे शिवदत्त ! हे शूर ! मुझे अब जय प्रदान कर ।।१४६।। वह मण्डलीक रण में दुर्मद रामांश था जो आह्लाद नाम से प्रसिद्ध हुआ था। हे हस्तिन् ! वेग के द्वारा उससे मेरी रक्षा कर। वह महान् बलवाला है—काल रस और परम वीर है, उससे त्राण करो ।।१५०।। इस प्रकार से जब उस हाथी से राजा ने कहा तो उस हाथी ने राजा से यह वचन कहा—हे राजन् ! सुनो, जब तक मैं तनु जीवधारी हूँ तब तक आप शत्रु के लिये महान् भयङ्कर रहेंगे ।।१५१।। इस रीति से कहने वाले उस प्रमत्त गज को उस समय में उस पञ्चशब्द ने अपने चारों दान्तों से शत्रु के मुख को फाड़कर वह महेन्द्रदत्त अत्यन्त घोर रूप से नर्दन करने लगा था ।।१५२।। वह प्रमत्त रुद्रदत्त गज बड़े क्रोध से वेग पूर्वक गजेन्द्र पर दौड़ा था।

उसको अपने तुण्ड दण्ड से पीडा करते हुए कुम्भ स्थल से और अपने पैरो से शत्रु को पछाड दिया था। वह पश्च शब्द मूर्छा को प्राप्त होगया था। मण्डलीक अपने तोमर से अग मे व्रण करके और खग से उग्र गज राज का हनन करके शीघ्र भूप के प्रति चला गया था। शत्रुओं का पैरों से प्रमथन करने वाला वहा गया था जहा उग्रधवा इन्दुल स्थित था ॥१५३-१५४॥

उत्थाप्य पुत्र च विलप्यमाना पत्नी स्वकीया प्रति चाजगाम।
तदा प्रमत्तौ च गजौ सुमूर्छां त्यक्त्वा पुनश्चक्रतुरेव युद्धम् ॥१५५
स लक्षण खगवरेण बाणान्रिपोश्चछित्वा निजवैष्णवास्त्रम्।
दधार चापे च सुमन्त्रयित्वा सघु धुकार च गज ददाह ॥१५६
हते च तस्मिन्निजमुग्यबधौ सभूमिराजश्च गृहीतचाप।
शरेण रौद्रेण च लक्षण त जघान तत्रादिभयकरस्थ ॥१५७
स मूर्छित शुक्ल कुलेषु सूयस्तदोदयो वै भगदत्तमेव।
सुमूर्छयित्वा च जगाम शीघ्र यत्रस्थितो लक्षण एकवीर ॥१५८
भयान्वितस्त च विलोक्य राजा जवेन दुद्राव च रक्तबीजम्।
तदा सुदेव च स रक्तबीजो जित्वा तु कृष्णाशयुत जगाम ॥१५९
बाणेन शीघ्र स च मूर्च्छयित्वा पुनश्च देव च स मूर्छयित्वा।
तद्बन्धनायोद्यत आशुकारी स लक्षणस्तत्र तदा जगाम ॥१६०
प्रधाय चापे च स वैष्णवास्त्र प्रचोदयामास च रक्तबीजे।
तदा स सामन्तसुतो बलीयास्त्र विहायाशु विलोक्य सध्याम्।
भयान्वित स्वैश्च युतो ययौ वै यत्र स्थिता भूपतय सकोपा ॥१६१

अपने पुत्र को उठा कर विलाप करती हुई अपनी पत्नी के प्रति आगया था। उस समय दोनों प्रमत्त गजो ने अपनी मूर्च्छा का त्याग किया और वे फिर युद्ध करने लगे थे ॥१५५॥ उस लक्षण ने अपने श्रेष्ठ खग से शत्रु के बाणों का छेदन करके अपने चाप पर निज के वैष्णव अस्त्र को सुमन्त्रित करके धारण किया था और उससे घु धुकार के सहित गज का दाह कर दिया था ॥१५६॥ उस मुख्य अपने बन्धु के हत हो जाने पर उस भूमिराज ने चाप को ग्रहण किया और रौद्र शर

के द्वारा वहा पर आदि भयकरस्थ ने लक्षण को मार दिया था। वह शुक्ल कुलों का सूर्य मूच्छित हो गया था। तव उदय ने भगदत्त को भी मूर्छित कर वह शीघ्र वहा चला गया था जहा पर एक वीर लक्षण मूर्च्छितावस्या मे पडा था ।।१५७-१५८।। भय से अन्वित राजा ने उसे देख कर बडी ही शीघ्रता से वह रक्तबीज के पीछे दौडा था। उस समय रक्तबीज ने सुदेव को कृष्णाश से युत जीत कर गमन कर दिया ।।१५९।। उसने बाण के द्वारा फिर शीघ्र ही देव को मूच्छित करके वह शीघ्रता से कार्य करने वाला उसके वन्धन के लिये उद्यत हो गया था। उस समय वह लक्षण वहा चला गया था ।।१६०।। उसने चाप पर वैष्णवास्त्र को चढा कर रक्तबीज पर प्रेरित किया था। उस समय मे बलवान् वह सामत पुत्र सन्ध्या को देख कर रणभूमि का त्याग कराया और शीघ्र ही भय से अन्वित होकर अपने लोगो के साथ चला गया था जहाँ पर क्रोध से युक्त राजा लोग स्थित थे ।।१६१।।

विलोक्य शत्रु च स रत्नभानोः सुतो ययौ वै शिविराणि युक्तः ।
निशाम्य भूपः स च चंद्रवशी जयं स्वकीय सुषुपुस्तु ते वै ।
प्रातश्च काले स च चंद्रवशी विलोक्य शुक्लान्वयमाह भूपम् ।।१६२

अये गुजरदेशीय मूलवर्मन्सुतैः सह ।
लक्षसैन्यान्वितो भूत्वा गन्तुमर्हतु वै भवान् ।।१६३

इत्युक्तः स तु भूपालो युद्धभूमिमुपाययौ ।
महीराजाज्ञया प्राप्तो नाम्ना पूर्णामलो बली ।।१६४

दशपुत्रान्वितो युद्धे सैन्य लक्षेण सयुतः ।
तयोश्चासीन्महद्युद्धं यामद्वयमुपस्थितम् ।।१६५

हतेषु तेषु सर्वेषु तौ नृपौ ससुतैर्बलौ ।
अनोन्येन रण कृत्वा यमलोकमुपागतौ ।।१६६

मार्गकृष्णचतुर्दश्या प्रभाते विमले रवौ ।
कैकयो लक्षसेनाढ्यो दयापुत्रसमन्वितः ।
लक्षणानुज्ञया प्राप्तस्तस्मिन्युधि भयानके ।।१६७

मद्रकेशस्तदा राजा दशपुत्रसमन्वितः ।
लक्षसैन्यान्वितस्तत्र यत्र युद्ध समन्वभूत् ।
परस्पर हताः सर्वे दिनान्ते क्षत्रिया रणे ॥१६८

वह रत्नभानु का सुत शत्रु को देख कर शिविरो को चला गया था और चन्द्रवशी भूप ने अपना जय सुना कर सोने की इच्छा वाला हो गया। प्रात काल मे उस चन्द्रवशी राजा ने शुक्ल वश वाले भूप को देख कर उससे कहा— ॥१६२॥ हे गुर्जर देश के वासी मूल वर्मन ! आप अपने पुत्रो के साथ एक लाख सेना से सज्जित होकर युद्ध-स्थल मे जाने के योग्य होते हैं ॥१६३॥ इस तरह से कहा गया वह राजा युद्ध-भूमि मे चला गया था। इधर महीराज की आज्ञा से बलवान् पूर्णामल नाम वाला वहाँ प्राप्त हुआ था ॥१६४॥ यह पूर्णामल एक लाख सेना से तथा अपने दस पुत्रो से समन्वित होकर वहाँ उपस्थित हुआ था। उन दोनो का बडा भारी युद्ध दो प्रहर पर्यन्त उपस्थित हुआ था ॥१६५॥ उस सेना के समस्त सैनिको तथा शूरो के मर जाने के पश्चात् वे दोनो बली राजा पुत्रो के सहित आपस मे रण करते हुए यमलोक को अन्त मे प्राप्त हो गये थे ॥१६६॥ मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन प्रभात मे विमल रवि के उदय होने पर लाख सेना से युक्त दया पुत्र से समन्वित होकर कैवयराजा लक्षण की अनुज्ञा पाकर उस महाभयानक युद्ध क्षेत्र मे पहुचा था॥१६७॥उस समय मे मद्रकेश राजा दश पुत्रो के सहित एक लाख सेना लेकर वहाँ आ गया था जहा कि यह युद्ध हुआ था। वे समस्त क्षत्रिय भी उस युद्ध मे दिन के अन्त तक लडते हुए आपस मे हत हो गये थे ॥१६८॥

पुन. प्रभात विमले भगदत्तो महाबली ।
त्रिलक्षबलसयुक्तो जगर्ज रणमूर्द्धनि ॥१६९
दृष्ट्वा त लक्षणो वीरस्त्रिलक्ष महाबला. ।
चकार तुमुल घोर सेनया च स्वकीयया ॥१७०
अपराह्ने हता. सर्वे सैनिका नृपयोस्तदा ।
भगदत. स्वय क्रुद्धो रथस्थो लक्षण ययौ ॥१७१

लक्षणो रथमारुह्य स्वपितु शत्रुज नृपम् ।
त्रिभिर्बाणैश्च सतोद्य भल्लेन समताडयत् ॥१७२
भगदत्तस्तदा क्रुद्धो विरथ त चकार ह।
क्रुद्धवत रिपु घोर लक्षण खड्गपाणिक ।
हत्वा हयास्तथा सूत भगदत्तमुपाययौ ॥१७३
मर्दयित्वा च तच्चर्मच्छित्वा वम तदुद्भवम् ।
त्रिधा चकार बलवान्भगदत्त रिपोस्सुतम् ॥१७४
सध्याकाले हते तस्मिल्लँक्षणस्त्वरयान्वित ।
एकाकी शिविर प्राप्तो हस्तिन्युपरि सस्थित ॥१७५

फिर विमल प्रात काल मे महान् बलवान् भगदत्त तीन लाख सेना से समन्वित होकर युद्ध क्षेत्र मे गजने लगा ॥१६६॥ उसे गर्जन करते हुए देखकर तीन लाख महान् बलवानो की सेना से युक्त लक्षण ने अपनी सेना द्वारा अत्यन्त घोर तुमुल युद्ध किया । दोपहर के बाद तब उन दोनो राजाओं के सैनिक हत होगये ॥१७०॥ भगदत्त रथ पर बैठकर स्वय अत्यन्त क्रोध म भरा हुआ लक्षण की ओर गया ॥१७१॥ लक्षण ने रथ पर समारूढ होकर अपने पिता के शत्रुज नृप को तीन बाणो से पीडित करके भाले से ताडित किया था ॥१७२॥ फिर भगदत्त ने अत्यन्त क्रोधित होकर उसे रथहीन कर दिया । इस तरह क्रोध युक्त उस घोर शत्रु को हाथ में खग ग्रहण करके लक्षण ने घोडो को तथा सारथि को मार कर वह भगदत्त के ऊपर चढ कर आया ॥१७३॥ उसके चर्म (ढाल) का मर्दन करके उसके उद्भव वर्म का छेदन करके फिर रिपु के पुत्र भगदत्त के उस बलवान् न तीन टुकडे कर दिये ॥१७४॥ सन्ध्या के समय म उसके मर जाने पर लक्षण बड़ी शीघ्रता से युक्त होकर एकाकी हथिनी के उपर सवार होकर शिविर म प्राप्त हो गया ॥१७५॥

भगदत्ते हते तस्मिन्स राजा क्रोधमूर्छित ।
स्वकीयान्सर्वभूपाश्च चामुण्डेन समन्वितान् ।
प्रेषयामास युद्धाय मार्गे न प्रतिवर्द्दिन ॥१७६

लल्लसिंहोयुतैस्सार्धं गुहिलं प्रति सोऽगमत् ।
त्रिशतानि ततो भूपाः सहस्राढ्याः पृथक्पृथक् ॥१८४

क्षुद्रभूपाः क्षुद्रभूपास्त्रिशतानि समाययुः ।
अन्योन्येन हताः सर्वे कृत्वा युद्धं भयानकम् ॥१८५

चामुण्डस्तु तदा दृष्ट्वा मृतकान्सर्वभूपतीन् ।
लक्षणान्तमुपागम्य महद्युद्धं चकार ह ॥१८६

लक्षणो रक्तबीजं तं ज्ञात्वा ब्राह्मणसम्मतम् ।
वैष्णवास्त्रं तदा तस्मै न ददौ तेन पीडितः ॥१८७

सायंकाले तु सम्प्राप्ते लक्षणो हस्तिनीस्थितः ।
एकाकी शिविरं प्राप्तश्चामुण्डं नृपमाययौ ॥१८८
द्वितीयाया प्रभाते च कृष्णांशो देवसंयुतः ।
शूरैर्दशसहस्रैश्च युद्धभूमिमुपाययौ ॥१८९

वामन दश सहस्र सेना से युक्त होकर मुकुन्द से युद्ध करने लगा। बलवान् गंगासिंह अयुत सेना से समन्वित होकर महिल के साथ लड़ने लगा। लल्लसिंह एक अयुत सेना से सज्जित होकर गुहिल के प्रति गया था। इस तरह उस समय तीन सौ राजा थे जो पृथक् २ एक-एक सहस्र सेना से युक्त थे ॥१८३-१८४॥ छोटे राजा छोटे तीन सौ राजाओं के साथ युद्ध कर रहे थे। और वे सब एक दूसरे के द्वारा हत हो गये थे जोकि बड़ा भयानक युद्ध करने वाले वहां पर उपस्थित थे ॥१८५॥ उस समय चामुण्ड ने समस्त राजाओं को मृत हुए देखा और फिर वह स्वयं लक्षण के पास उपस्थित होकर महान् युद्ध करने लगा था ॥१८६॥ लक्षण ने ब्राह्मण सम्मत उस रक्तबीज जानकर उसके द्वारा पीडित होकर उसने वैष्णवास्त्र उसके लिये नहीं दिया था। ॥१८७॥ सायंकाल के हो जाने पर लक्षण हस्तिनी पर समास्थित होकर अकेला शिविर में प्राप्त होगया था और चामुण्ड नृप के पास आगया था ॥१८८॥ द्वितीया के दिन प्रभात में देव से युक्त कृष्णांश दश सहस्र शूरों के साथ उस युद्ध भूमि में आगया था ॥१८९॥

तारकश्च सचामु डो द्विलक्षवलसयुत. ।
द्विशतैश्च तथा भूपै: सार्द्धं युद्धमुपस्थितो ॥१८०
पुरस्कृत्य नृपान्सर्वान्ससैन्यौ वलवत्तरौ ।
तेपामनु स्थितौ युद्धे तत्र जातो महारण. ॥१८१
याममात्रेण तौ वीरौ हत्वा सर्वमहीपतीन् ।
लक्षसैन्यास्तथा हत्वा सस्थितौ श्रमकर्पितौ ॥१८२
चामु डस्तारको धूर्त. सप्राप्तौ छिद्रदर्शिनौ ।
ताभ्या श्रमान्विताभ्या च चक्रतुस्तौ सम रणम् ॥१८३
तेपा त्रियाममात्रेण सभूव महात्रण: ।
सायकाले तु सप्राप्ते कृष्णाशश्च निरायुध: ।
तलप्रहारेण रिपु मूर्च्छयामास वीर्यवान् ॥१८४
एतस्मिन्नतरे वीरस्तारको देवसिहकम् ।
हयं मनोरथ हत्वा शखशब्दमथाकरोत् ॥१८५
तच्छब्दात्स च चामु डस्त्यक्त्वा मूर्छां महावल. ।
कृष्णाशस्य शिर: कायादपहृत्य च वेगवान् ।
तयोर्गृ हीत्वा शिरसी महीराजमुपाययौ ॥१८६

तारक चामुण्ड के साथ दो लाख सेना से युक्त होकर और दो सौ भूपों को साथ लेकर युद्ध के लिए उपस्थित हुए थे ॥१८०॥ समस्त नृपो को आगे करके सेना के साथ ये दोनो अधिक बलवान् उनके पीछे स्थित रहे थे। उस समय रण भूमि मे बडा घोर युद्ध हुआ था ॥१८१॥ एक प्रहर भर मे ही उन दोनो ने समस्त भूपो को मार कर तथा एक लाख सैनिको को मारकर वे दोनो वीर श्रम से कर्पित होते हुए सस्थित हो गये। चामुण्ड और तारक ये दोनो बडे धूर्त थे और छिद्रदर्शी भी थे। उनने उन श्रम से युक्तों दोनो के साथ युद्ध किया ॥१८२-१८३॥ उनका तीन प्रहर तक महान् युद्ध हुआ। सायकाल के होने पर कृष्णाश निरायुध वीर्यवान् ने तल प्रहार से शत्रु को मूर्च्छित कर दिया ॥१८४॥ इस बीच मे वीर तारक ने देवसिह मनोरथ हय को मार कर शख की ध्वनि करदी ॥१८५॥

उस शब्द से महाबलवान् चामुण्ड ने मूर्च्छा का त्याग कर दिया और वेगवान् ने कृष्णाश का शिर शरीर से अपहृत करके उन दोनो के मस्तकों को लेकर महीराज के पास उपस्थित हो गया ॥१९६॥

महीराजस्तु ते दृष्ट्वा परमानदनिर्भरः ।
दत्वा दान द्विजातिभ्यो महोत्सवमकारयत् ॥१९७
लक्षणस्य तदा सैन्ये हाहाशब्दो महानभूत् ।
श्रुत्वा कोलाहल तेषा ज्ञात्वा तौ च हतौ नृपः ।
ब्रह्मानदस्तदा मूर्च्छां त्यक्त्वा वेलामुवाच ह ॥१९८
प्रिये गच्छ रण शीघ्रं हरिनागरमास्थिता ।
मम वेषं शुभं कृत्वा तारक जहि मा चिरम् ॥१९९
इति श्रुत्वा तु सा वेला रामांशेन समन्विता ।
सहस्रशूरसहिता युद्धभूमिमुपाययौ ॥२००
श्रुत्वा स लक्षणो वीरस्तालनेन समन्वितः ।
सैन्यैश्च दशसाहस्रैर्महीराजमुपाययौ ॥२०१
तृतीयाया प्रभाते च तारको बलवत्तरः ।
ब्रह्मानद च त मत्वा महद्युद्धमचीकरत् ॥२०२
रक्तबीजश्च चामुंडो रामांशो बलवत्तरः ।
चकार दारुण युद्ध तस्मिन्वीरसमागमे ॥२०३

महीराज ने उन शिरों को देखा और परम आनन्द से निर्भर हो गया। ब्राह्मणों को दान देकर उसने महान् उत्सव कराया ॥१९७॥ उस समय मे लक्षण की सेना में महान् हाहा कार की ध्वनि छागई। उनके कोलाहल को सुन कर राजा ने वे दोनो हत हो गये यह जानकर ब्रह्मानन्द ने मूर्च्छा का त्याग कर वेला से कहा ॥१९८॥ हे प्रिये ! अब हरिनागर पर स्थित होकर शीघ्र ही रण मे जाओ और मेरा वेष धारण करके तारक को मार डालो और विलम्ब मत करो ॥१९९॥ यह श्रवण कर वह वेला जो रामांश से समन्वित थी एक सहस्र शूरों को साथ लेकर युद्ध भूमि में आगई ॥२००॥ उस लक्षण वीर ने तालन से समन्वित होकर श्रवण किया और दशसहस्र सेना लेकर वह महीराज के

पास उपस्थित हो गया ॥२०१॥ तृतीया के दिन बलवान् तारक ने उसको ब्रह्मानन्द ही मान कर महान् युद्ध किया ॥२०२॥ और रक्तबीज चामुण्ड जो रामाश अधिक बलवान् था, उसने उस वीर समागम मे बडा ही दारुण युद्ध किया ॥२०३॥

यामममात्रेण रामाशो हत्वा तस्य महागजम् ।
तच्छस्त्राणि तथा च्छित्वा मल्लयुद्धमचीकरत् ॥२०४
त्रियाममात्रेण तदा सायकाले समागते ।
ममथ भ्रातृहन्तार स च वीरो ममार ह ॥२०५
तदा वेला महाशत्रु तारक बलवत्तरम् ।
छित्वास्त्राणि स्वखड्गेन शिर कायादपाहरत् ॥२०६
चिता कृत्वा विधानेन सा देवी द्रुपदात्मजा ।
ब्रह्मानद नमस्कृत्य तच्चितायां समारुहत् ॥२०७
तेन सार्द्ध च सा शुद्धा श्वशुरस्याज्ञया मुदा ।
सप्तजन्मकथा कृत्वा स्वपतेस्तु ददाह वै ॥२०८
तच्चितायां च भर्तारमिदुल बलवत्तरम् ।
सस्थाप्य दाहयामास तेन सार्द्ध कलेवरम् ॥२०९
रात्रौ परिमलो राजा लक्षणेन समन्वित ।
महीराजमुपागम्य महद्युद्धमकारयत् ॥२१०

केवल एक ही प्रहर मे उस रामाश ने उसके महागज को मार कर और उसके शस्त्रों का छेदन करके फिर मल्ल युद्ध किया ॥२०४॥ वह युद्ध तीन प्रहर तक हुआ फिर साय काल का समय हो जाने पर उस वीर ने भाई के हनन करने वाल का मथन किया और मार दिया। उस समय म बलवान् महान् शत्रु तारक के शस्त्रो का छेदन करके उसका शिर काया स अलग कर दिया ॥२०५ २०६॥ फिर उस द्रुपदात्मजा देवी ने विधि विधान स चिता की रचना करके ब्रह्मानन्द को प्रणाम किया और फिर स्वय वह उसकी चिता म समारूढ होगई ॥२०७॥ उसके साथ शुद्धा उसने श्वशुर की आज्ञा पाकर प्रसन्नता से अपने पति के सात जन्म की कथा कह कर दाह किया॥२०८॥और उस चिता मे बलवान्

इन्दुल भर्त्ता को सस्थापित करके उसके साथ कलेवर को दाह कर दिया ॥२०६॥ फिर रात्रि मे राजा परिमल लक्षण से समन्वित हो कर महीराज के पास गया और महान् युद्ध कराया ॥२१०॥

सपादलक्षाश्च तदा हतशेषा महाबलाः ।
त्रिलक्षैर्हतशेषैश्च सार्द्धं योद्धुमुपस्थिता ॥२११
धान्यपालः शत भूपाँल्लक्षणश्च तथा शतम् ।
तालनश्च शत भूपान्हत्वा राजानमाययौ॥२१२
महीराजस्तदा दु.खी ध्यात्वा रुद्रं महेश्वरम् ।
निशीथे समनुप्राप्ते हतशेषैस्समागतः ।
एकाकी गजमारुह्य ययौ चादिभयकरम् ॥२१३
रुद्रदत्तेन बाणेन हत्वा परिमलं नृपम् ।
धान्यपालं तथा हत्वा तालन बलवत्तरम् ।
लक्षणान्तमुपागम्य महद्युद्धमचीकरत् ॥२१४
महीराजस्य रौद्रास्त्रैस्सैन्यास्सर्वे क्षयं गताः ।
लक्षणं प्रति रौद्रास्त्र महीराजः समादधे ॥२१५
तदा तु लक्षणो वीरो वैष्णवास्त्र समादधे ।
तेनस्त्रेण क्षयं जातो महीराजस्य सायक. ।
तेनास्त्रतेजसा राजा महासंतापमाप्तवान् ॥२१६
ध्यात्वा महादेव त्यक्त्वा विद्या च वैष्णवीम् ।
स्वभल्लेन शिर. कायादपाहरत भूमिपः ॥२१७

उस समय सवा लाख महाबल वाले शूर मरने से बचे हुए थे उन्होंने तीन लाख उसके हतशेषों के साथ युद्ध करने के लिये वहाँ उपस्थिति की थी ॥२११॥ धान्यपाल ने सौ राजाओं को तथा लक्षण ने सौ को और तालन ने सौ नृपों को मार कर राजा के पास आये थे ॥२१२॥ तब महीराज बहुत ही दुःखित हुआ और उसने रुद्र महेश्वर का ध्यान किया था। आधी रात के समय मे मरने से बचे हुए वीरों के साथ आया था। एकाकी गज पर बैठकर चादिभयङ्कर को गया था ॥२१३॥ रुद्रदत्त बाण के द्वारा राजा परिमल को मार कर और बलवान् धान्यपाल तथा

तालन का वध करके लक्षण के पास पहुच कर उसने महान् युद्ध किया था ।।२१४।। महीराज के रौद्र अस्त्र से सभी वीर क्षय को प्राप्त हो गये थे । फिर लक्षण के प्रति महीराज ने रौद्र अस्त्र को चढाया था ।।२१५।। तब लक्षण ने वैष्णवास्त्र का समाधान किया था । उस वैष्णवास्त्र के द्वारा महीराज का सायक क्षय को प्राप्त हो गया था और उस अस्त्र के तेज से राजा ने महान् सन्ताप को प्राप्त किया था ।।२१६।। फिर महादेव रुद्र का ध्यान करके और वैष्णवी विद्या का त्याग करके भूमिप ने अपने भाले से शिर को शरीर से अलग कर दिया था ।।२१७।।

हस्तिनी च तदा रुष्टा गजमादिभयकरम् ।
गत्वा युद्ध मुहूर्त्तेन कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ।।२१८
उप.काले च सप्राप्ते मलना पतिमुत्तमम् ।
तच्चितायां समारोप्य ददाह स्व कलेवरम् ।।२१९
तदा तु देवकी शुद्ध लक्षण वलवत्तरम् ।
तालनादीस्तथा हुत्वा ददाह स्व कलेवरम् ।।२२०
प्रभाते विमले जाते चतुर्थे भौमवासरे ।
तथा हुत्वा स्वर्णवती कृत्वा तेषा तिलाजलिम् ।
ध्यात्वा सर्वमयी देवी स्थिरीभूय स्वय स्थितः ।।२२१
एतस्मिन्नतरे तत्र कलिर्भार्यासमन्वित. ।
वाछित फलमागम्य तुष्टाव श्लक्ष्णया गिरा ।।२२२

उस समय हस्तिनी बहुत ही रुष्ट होकर आदि भयकर गज के पास जाकर मुहूर्त्त भर युद्ध किया और स्वर्ग को प्राप्त हो गई थी ।।२१८।। उपा काल के प्राप्त होने पर मलना ने अपने उत्तम पति को चिता वनवा कर उसमे समारोपित किया और उसके साथ अपना शरीर भी दाह कर दिया था ।।२१९।। उस समय मे शुद्धा देवकी ने वलवान् लक्षण तथा तालन आदि को हुत करके अपना कलेवर भी दाह कर दिया था ।।२२०।। चौथे भौमवार के दिन विमल प्रभात के होने पर स्वर्णवती को हुत करके उन सब को तिलाञ्जलि देकर सर्वमयी देवी को अपने ध्यान लाकर स्थिर होकर स्वय स्थित हो गया था ।।२२१।। इसी बीच

मे भार्या के सहित कलि वहा पर वाञ्छित फल प्राप्त कर बडी श्लक्ष्ण वाणी के द्वारा स्तुति करने लगा था ॥२२२॥

नम आह्लाद महते सर्वानंदप्रदायिने ।
योगेश्वराय शुद्धाय महावतीनिवासिने ॥२२३
रामांशस्त्व महाबाहो मम पालनतत्पर ।
कलेकया समागम्य भुवो भारस्त्वया हृत ॥२२४
राजान पावकीयाश्च तपोबलसमन्विता ।
हत्वा तान्पञ्चसाहस्राञ्क्षुद्रभूपाननेकश ।
योगमध्ये समासीनो नमस्तस्मै महात्मने ॥२२५
तेषा सैन्या षष्टिलक्षा क्रमाद्वीर त्वया हता ।
वर ब्रूहि महाभाग यत्ते मनसि वर्तते ॥२२६
इति श्रुत्वा स आह्लादो वचन प्राह निर्भय ।
मम कीर्तिस्त्वया देव कर्तव्या च जनेजने ॥२२७
पुनस्ते कार्यमतुल करिष्यामि शृणुष्व भो ।
महीराजश्च धर्मात्मा शिवभक्तिपरायण ।
तस्य नेत्रे मया शुद्धे कर्तव्ये नीलरूपके ॥२२८
तव प्रिय सदा नीलस्तथैव च मम प्रिय ।
देवाना दु खदो देव दैत्याना हर्षवर्द्धन ॥२२९

कलि ने कहा—हे आह्लाद ! सब को आनन्द के प्रदान करने वाले-योगेश्वर-शुद्ध-महान् और महावती के निवासी आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥२२३॥ हे महान् बाहुओ वाले ! आप राम के अंशावतार हैं, मेरे पालन करने मे सर्वदा तत्पर रहते हैं । एक कला से यहाँ आकर आपने इस भूमण्डल का भार आपने हरण किया है ॥२२४॥ पावकीय राजा लोग जो तपस्या के बल से समन्वित थे उन अनेक क्षुद्र पाँच सहस्र राजाओं का वध करके आप योग के मध्य मे समासीन हो गये हैं उन महान् आत्मा वाले आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥२२५॥ उन नृपो की सेना भी साठ लाख थी । हे वीर ! आपने क्रम से उस सब का हनन किया था । हे महाभाग ! आपके मन मे जो भी कुछ हो उस

का वरदान मांगलो ॥२२६॥ कलियुग द्वारा कहे हुए इन वचनो का श्रवण करके आह्लाद ने निर्भय होकर कहा—हे देव ! आपको मेरी यह कीर्ति जन-जन म कर देनी चाहिए ॥२२७॥ मैं फिर तेरा अनुपम कार्य करूगा उसे श्रवण करलो । शिव की भक्ति मे परायण धर्मात्मा महीराज है उनके नीलरूप वाले नेत्र मुझे क्षुब्ध करते हैं ॥२२८॥ आपका नील रूप है और उसी तरह से मेरा भी वह रग प्रिय होता है । देवो को वह वर्ण दुःख देने वाला है और दैत्यो के हर्ष का बढाने वाला है ॥२२९॥

इत्युक्त्वा स तु रामांशो गजमारुह्य वेगत ॥
महीराजमुपागम्य महद्युद्ध चकार ह ॥२३०
रुद्रदत्तो गजस्तूर्णं पचशब्दमुपस्थित ।
पद्मदतान्समारुह्य युयुधाते परस्परम् ॥२३१
अन्योन्येन तथा हत्वा गजौ स्वर्गमुपेयतु ॥२३२
तदा भयातुरो राजा त्यक्त्वा युद्ध भयकरम् ।
स तु दुद्राव वेगेन रामांशोऽनुययौ तत ॥२३३
केशेषु च महीराज गृहीत्वा तरसा बली ।
कलिदत्त महानील नेत्रयोस्तेन तत्कृतम् ॥२३४
तदाप्रभृति वै शम्भुरक्षुद्ध नृपति प्रियम् ।
मत्वा त्यक्त्वा ययौ स्थाने कैलासे गुह्यकालये ॥२३५
आह्लाद कलिना सार्द्धं कदलीवनमुत्तमम् ।
गत्वा योग चकाराशु पर्वत गधमादने ॥२३६

इस तरह से कहकर वह रामांश गज पर समारोहण करके वेग से महीराज के समीप मे जाकर उसने महान् युद्ध किया था ॥२३०॥ रुद्र दत्त गज शीघ्र ही पच शब्द के पास उपस्थित हुआ था । पद्म दता पर चढ़कर वे परस्पर एक दूसरे का हनन करके वे दोनों गज स्वर्ग को गये थे ॥२३१ २३२॥ उस समय राजा ने भयातुर होकर उस भयकर युद्ध का त्याग कर दिया था और वेग से दौडा था फिर रामांश भी उसी के पीछे चल दिया था ॥२३३॥ उस बलवान् ने केशो को पकड कर वेग

से महीराज का ग्रहण कर लिया था। कलिदत्त महानील को उसने महीराज के नेत्रों में डाल दिया था ।।२३४।। तब से लेकर-शम्भु ने उस अशुद्ध नृपति को यद्यपि वह प्रिय था तो भी बुरा समझकर उसका त्याग कर दिया और गुह्य को स्थान जो कैलास पर्वत है वे वहाँ चले गये थे ।।२३५।। आह्लाद ने बलि के साथ उत्तम कदली वन में जाकर गन्धमादन पर्वत पर शीघ्र योग किया था ।।२३६।।

तथा भूतं च रामांशं कलिर्दृष्ट्वा मुदान्वितः ।
बलिपार्श्वमुपागम्य वर्णयामास सर्वशः ।।२३७
स वै बलिर्दैत्यराजोऽयुतैः सह विनिर्गतः ।
गौर देशमुपागम्य सहोद्दीनमुवाच ह ।।२३८
गच्छ वीर बलैस्सार्द्धं निशायां रक्षितो मया ।
हत्वा भूप महीराजं विद्युन्माला गृहाण भोः ।।२३९
इति श्रुत्वा वचस्तस्य षोडशाब्दान्तरे गते ।
सपादलक्षैश्च बलैः कुरुक्षेत्रमुपाययौ ।।२४०
महीराजसुतान्जित्वा समाहूय महावतीम् ।
महीपतिं प्रेषयित्वा लुण्ठयित्वा च तद्वसु ।।२४१
लिंगार्थं धृतवान्यत्नं स नृपः कीर्तिसागरे ।
न प्राप्तस्मनृपस्तु वै स्वगेहाय तदा ययौ ।।२४२
लक्षचंडीं कारयित्वा परमानन्दमाप्तवान् ।
जयचन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा पुत्रशोकसमन्वितः ।।२४३

उस प्रकार से उस रामांश को देखकर आनन्द से युक्त कलि ने देखा था और बलि के पास जाकर सब प्रकार से वर्णन अर्थात् स्तवन करने लगा था ।।२३७।। वह दैत्यों का राजा बलि दस सहस्र सेना के साथ निकल गया था और गौर देश में पहुँच कर महोद्दीन से बोला ।।२३८।। हे वीर ! मेरे साथ चलो और सेना को भी साथ में ले चलो, निशा में मेरे द्वारा आप सुरक्षित रहेंगे । राजा महीराज का हनन करके विद्युन्माला का ग्रहण करो ।।२३९।। इस तरह से उसके वचन श्रवण कर सोलह वर्ष के अन्तर होने पर सवा लाख सेना के सहित कुरुक्षेत्र में

आ गया था ॥२४०॥ महीराज के पुत्रो को बुला कर उन्हें जीत कर महावती मे महीपति को भेज कर उसका समस्त धन लूट कर उस राजा ने कीर्तिसागर मे लिग के लिये यत्न किया था। उस राजा ने उसे नही प्राप्त किया था तब वह अपने घर को चला गया था ॥२४१ २४२॥ वहाँ पर एक लाख चण्डी करा कर वह परम आनन्द को प्राप्त हुआ था। पुत्र के शोक से समन्वित ने इसका श्रवण किया था ॥२४३॥

निराहारो यतिर्भूत्वा मृत स्वर्गपुर ययौ।
सहोड्डीनेन स नृप कृत्वा युद्ध भयकरम् ॥२४४
सप्ताहोरात्रमात्रेण म्लेच्छराजवश गत ।
मारितो बहुयत्नेन महीराजो न वै मृत ॥२४५
तदा म्लेच्छस्सहोड्डीनो निर्वंधनमथाकरोत्।
ज्योतिरूपस्थित तत्र चद्रभट्टो नृपाज्ञया।
क्षुरप्रेण च वाणेन हत्वा वह्नौ ददाह वै ॥२४६
विद्युन्माला स च म्लेच्छो गृहीत्वा च धन बहु।
तत्रास्थाप्य स्वदास च कुतुकोड्डीनमागत ॥२४७

वह उस दु ख मे निराहार रह कर यति होगया और मर गया था और स्वर्ग पुर मे प्राप्त हो गया था। मरने के पूर्व उसने सहोड्डीन के साथ भयकर युद्ध किया था ॥२४४॥ सात अहोरात्र मे ही म्लेच्छराज के वश गया हुआ महीराज को बहुत से मारा गया था किन्तु वह मरा नही था ॥२४५॥ उस समय सहोड्डीन म्लेच्छ निर्वन्धन करा दिया था। वहाँ पर चन्द्र भट्ट ने नृप की आज्ञा से ज्योति रूप स्थित को क्षुरप्र बाण के द्वारा मार कर अग्नि म दाह कर दिया था ॥२४६॥ उस म्लेच्छ ने विद्युन्माला को और बहुत-सा धन ग्रहण करके वहा अपने दास को स्थित करके वह कुतुकोड्डीन म आ गया था ॥२४७॥

॥ व्यास द्वारा भविष्य कथन ॥

एव द्वापरसध्याया अन्ते सूतेन वर्णितम् ।
सूर्यचद्रान्वयाख्यान तन्मया कथित तव ॥१
विशालाया पुनर्गत्वा वैतालेन विनिर्मितम् ।
कथयिष्यति सूतस्तमितिहाससमुच्चयम् ॥२
तन्मया कथित सर्वं हृषीकोत्तमपुण्यदम् ।
पुनर्विक्रमभूपेन भविष्यति समाह्वय ॥३
नैमिषारण्यमासाद्य श्रावयिष्यति वै कथाम् ।
पुनरुक्तानि यान्येव पुराणाष्टादशानि वै ॥४
तानि चोपपुराणानि भविष्यति कलौ युगे ।
तेषा चोपपुराणाना द्वादशाध्यायमुत्तमम् ॥५
सारभूतश्च भणित इतिहाससमुच्चय ।
यस्ते मया च कथितो हृषीकोत्तम ते मुदा ॥६
विक्रमाख्यानकालातेऽवतार यलया हरे ।
स च शक्त्यावतारो हि राधाकृष्णस्य भूतले ॥७

इस अध्याय म महर्षि व्यास के द्वारा अपने ही मन के प्रति उद्देश्य करके भविष्यकथा का वर्णन किया जाता है । श्री महर्षि वेद व्यास जी ने कहा—इस प्रकार से द्वापर की सन्ध्या के अन्त म सूत के द्वारा वर्णन किया हुआ सूर्यवश और चन्द्रवश का आख्यान मैंने कहा है॥१॥विशाला म फिर जाकर वैताल क द्वारा विनिर्मित उस इतिहास समुच्चय को सूत कहेंगे ॥२॥ यह मैंने विषयेन्द्रियों को उत्तम पुण्य प्रदान करने वाला सब कह दिया है फिर विक्रम भूप स समाह्वय (नाम) होगा ॥३॥ नैमिषारण्य म पहुँच कर निश्चय ही कथा का सुनावेंग । जो भी अष्टादश पुराण हैं वे पुनरुक्त हैं अर्थात् फिर से कहे गये हैं ॥४॥ वे इस कलियुग म उप पुराण होंगे । उन उप पुराणों क बारह अध्याय उत्तम हैं ॥५॥ यह इतिहासों का समुच्चय सार भूत है जो कि मैन तुम स कहा है । तुम्हारे आनन्द के लिए इन्द्रियों क। सर्वोत्तम

है ॥६॥ विक्रमाख्यान के काल के अन्त मे हरि का कला से अवतार है। वह इस भूतल म राधा कृष्ण का शक्त्यवतार है ॥७॥

तत्कथा भगवान्सूतो नैमिपारण्यमास्थित ।
अष्टाशीतिसहस्राणि श्रावयिष्यति वै मुनीन् ॥८
यत्तन्मया त्व कथित हृपीकोत्तम ते मुदा ।
पुनस्ते शौनकाद्याश्च कृत्वा स्नानादिका क्रिया ॥९
सूतपार्श्वं गमिष्यति नैमिपारण्यवासिन ।
तत्पृष्टे नैव सूतेन यदुक्त तच्छृणुष्व भो ॥१०
श्रुत कृष्णस्य चरित्र भगवन्त्वतोदितम् ।
इदानी श्रोतुमिच्छामि राज्ञा-तेपा क्रमात्कुलम् ॥११
चतुर्णा वह्निजातात्ता मर कौतूहल हि-न ।
स हरिस्त्रियुगी प्रोक्त कथ जात कलौ-युगे ॥१२

उस कथा को भगवान् सूतजी नैमिपारण्य म आस्थित होकर अट्ठासी हजार शौनक आदि मुनियो का सुनायेगे ॥८॥ जो कुछ मैंने आपसे कहा है वह हे हृपीकोत्तम ! तुम्हारे सुख के लिये है। फिर उन शौनक आदि मुनियो ने वहा स्नान आदि क्रिया करके वे नैमिपारण्य वासी लोग सूतजी क पास म जायेगे। उनके द्वारा पूछे गये सूतजी ने जो कुछ भी कहा था उसे अब आप हे शौनकादि मुनिगण ! श्रवण कीजिए ॥९ १०॥ ऋषियो ने कहा—हे भगवन् ! आपने जो वर्णन किया था वह कृष्ण का चरित्र सुन लिया है। अब मैं उन राजाओ का कुल क्रम से श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ ॥११॥ जोकि राजा वह्नि जात चार हुए थे उनके कुल को क्रमश बताइये। हम को इसका अत्यन्त कौतूहल होता है। उस हरि को आपने त्रियुगी बताया है फिर वह कलियुग चौथे युग म कैसे उत्पन्न होकर यहा आय थे ॥१२॥

कथयामि मुनिश्रेष्ठा युष्माक प्रश्नमुत्तमम् ।
अग्निवशनृपाणा च चरित्र शृणु विस्तरात् ॥१३
प्रमरश्च महीपालो दक्षिणा दिशमास्थित ।
अम्बया रचिता दिव्या प्रमराय पुरी शुभाम् ॥१४

निवासं कृतवान्राजा सामवेदपरो बली ।
षड्वर्षाणि कृतं राज्यं तस्माज्जातो महामरः ॥१५
त्रिवर्षं च कृतं राज्यं देवापिस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं देवदूतस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शृणु तत्कारणं मुने ॥१६
अशोके निहते तस्मिन्बौद्धभूपे महाबले ।
कलिर्भास्करमाराध्य तपसा ध्यानतत्परः ॥१७
पंचवर्षान्तरे सूर्यस्तस्मै च कलये मुदा ।
शकाख्यं नाम पुरुषं ददौ तद्भक्तितोषितः ॥१८
तदा प्रसन्नः स कलिः शकाय च महात्मने ।
तैत्तिरं नगरं प्रेम्णा ददौ हर्षितमानसः ॥१९
तत्र गोपान्दस्युगणान्वशीकृत्य महाबली ।
आर्यदेशविनाशाय कृत्वोद्योगं पुनःपुनः ।
हतवान्भूपतीन्वार्णस्तस्मात्ते स्वल्पजीविनः ॥२०
गंधर्वसेनश्च नृपो देवदूतात्मजो बली ।
शताब्दं पदं कृत्वा तपसे पुनरागतः ॥२१

सूतजी ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठो ! आपका यह प्रश्न तो बहुत ही उत्तम हुआ है,मैं इसको बताता हूं,अब अग्नि वंश के राजाओं का चरित्र विस्तार के साथ आप लोग श्रवण करें ॥१३॥ प्रमर नामक एक राजा दक्षिण दिशा में आस्थित था । अम्बा के द्वारा वहां एक रचित शुभ और दिव्य पुरी प्रमर को दी गई थी ॥१४॥ वहां बलवान् और साम-वेद में परायण यह राजा निवास करता था । उस राजा ने छै वर्ष तक राज्य का शासन किया था । उससे फिर महामर ने जन्म ग्रहण किया था ॥१५॥ इसने भी तीन वर्ष पर्यन्त राज्य किया था । इसका पुत्र देवापि नामधारी उत्पन्न हुआ था । इसने भी अपने पिता के तुल्य राज्य किया था । उससे फिर देवदूत पुत्र हुआ । इसने पिता के बराबर ही राज्य शासन किया था । हे मुने ! इसका कारण सुनो ॥१६॥ महान् बलवान् बौद्ध धर्म के मानने वाले महाराज अशोक के मृत हो जाने पर

कलि ने भगवान् भास्कर को आराधना करके तप द्वारा वह ध्यान मे तत्पर होगया था ॥१७॥ पाच वर्ष के अन्तर मे भगवान् भास्कर ने प्रसन्न होकर उस कलि के लिए शकाख्य नाम वाला पुरुष को उसकी अत्यन्त भक्ति सन्तुष्ट होकर दिया था ॥१८॥ उस समय बहुत ही प्रसन्न हुआ और महात्मा शक के लिए हर्षित मन वाला होकर प्रेम से तैत्तिरनगर दे दिया था ॥१६॥ वहा पर उस महान् बलवान् ने गोपो को दस्युवर्गों को अपने वश मे करके फिर उसने आर्यों के देश का विनाश करने के लिये बार बार उद्योग किया था और भूपो को बाणो से मार दिया था। इस कारण से वे फिर स्वल्पजीवी होगये थे ॥२०॥ देवदूत का पुत्र बलवान् गन्धर्व सेन राजा पचास वर्ष तक पद का उपभोग करके फिर वह तपस्या करने के लिये आगया था ॥२१॥

शिवाज्ञया च नृपतिर्विक्रमस्तनयस्तत ।
शतवर्षं कृत राज्य देवभक्तस्ततोऽभवत् ।
दशवर्षं कृत राज्य शकैर्दुष्टैर्लयं गत ॥२२
शालिवाहन एवापि देवभक्तस्य चात्मज ।
जित्वा शका-सपष्टघशब्द राज्य कृत्वा दिव गत ॥२३
शालिहोत्रस्तस्य सुतो राज्य कृत्वा शतार्द्धकम् ।
स्वर्गलोक तत प्राप्तस्तत्सुत शालिवर्द्धन ॥२४
पितुस्तुल्य कृत राज्य शकहन्ता ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य सुहोत्रस्तनयोऽभवत् ॥२५
पितुस्तुल्य कृत राज्य हविर्होत्रस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्यमिन्द्रपालस्ततोऽभवत् ॥२६
पुरीमिन्द्रावती कृत्वा तत्र राज्यमकारयत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य माल्यवान्नामतत्सुत ।
पुरी माल्यवती कृत्वा पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥२७
अनावृष्टिस्तत्रासीन्महती चतुरब्दिका ।
ता क्षुधातुरो राजा श्वविष्ठाधान्यगर्हितम् ॥२८

भगवान् शिव की आज्ञा से राजा विक्रम उसका पुत्र था। इसने सौ वर्ष तक राज्य किया था। उससे फिर देवभक्त उत्पन्न हुआ था। इसने केवल दश ही वर्ष तक राज्य किया था। फिर यह दुष्ट शकों के द्वारा लय को प्राप्त हो गया था ॥ २२ ॥ शालिवाहन भी देवभक्त का पुत्र था। उसने शकों को जीत कर साठ वर्ष तक राज्य का शासन किया और फिर वह स्वर्ग वासी हुआ था ॥२३॥ उसका पुत्र शालिहोत्र हुआ था। इसने पचास वर्ष पर्यन्त राज्य का शासन किया था और इसके पश्चात् वह स्वर्ग लोक को गया था। इस शालिहोत्र के राजा शालिवर्द्धन ने पुत्र के रूप मे जन्म ग्रहण किया था ॥२४॥ इस शालिवर्द्धन ने भी अपने पिता के समान ही राज्य का उपयोग किया और इसके फिर शकहन्ता नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था। अपने पिता के बराबर समय तक ही इसने राज्य सुख सम्प्राप्त किया था। इसके पश्चात् इसका पुत्र सुहोत्र नाम धारी ने जन्म ग्रहण किया था। पिता के तुल्य इसने राज्य किया। फिर हविर्होत्र उत्पन्न हुआ। यह भी पितृतुल्य राज्य सुख का भोगी रहा था। इसके पीछे इसका पुत्र इन्द्रपाल हुआ था ॥२५-२६॥ इसने इन्द्रावती नाम की एक परम रम्य पुरी की रचना करा कर वहा राज्य शासन चलाया था। इन्द्रपाल ने भी अपने पिता के बराबर समय तक राज्य किया था। उसके यहाँ माल्यवान् नामक पुत्र हुआ, इसने अपने नाम से माल्यवती नाम की पुरी बनाई थी और वहाँ अपने पिता के समान राज्य पद के सुख का उपभोग किया था ॥२७॥ उस समय वहा चार वर्ष तक बडी भारी अनावृष्टि हो गई थी। तब तो राजा भूख से अत्यन्त आतुर हो गया था। उस समय उस राजा ने श्वविष्ठा से गहित धान्य का सत्कार करके मन्दिर मे शालग्राम के समर्पित किया था ॥२८॥

सत्कृत्य मदिरे राजा शालग्रामाय चार्पयत्।
तदा प्रसन्नो भगवान्वचन नभसेरितम् ॥२९
कृत्वा ददौ वर तस्मै शृणु तन्मुनिसत्तम।

कुले यावन्नृपा भाव्यास्तव भूपतिसत्तम ।
अनावृष्टिर्न भविता तावत्ते राष्ट्र उत्तमे ॥३०
सुतो माल्यवतश्चासीच्छम्भुदत्तो हरप्रिय ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य भौमराजस्ततोऽभवत् ॥३१
पितुस्तुल्य कृत राज्य वत्सराजस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य भोजराजस्ततो भवत् ॥३२
पितुस्तुल्य कृत राज्य शम्भुदत्तस्ततोऽभवत् ।
दशहीन कृत राज्य भोजराजपितुस्समम् ॥३३
शम्भुदत्तस्य तनयो बिंदुपालस्ततोऽभवत् ।
बिंदुखण्ड च राष्ट्र वै कृत्वा स सुखितोऽभवत् ।
तेन राज्य पितुस्तुल्य कृत वेदविदा मुने ॥३४
बिंदुपालस्य तनयो राजपालस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माज्जातो महीनर ॥३५
पितुस्तुल्य कृत राज्य सोमवर्मा नृपोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य कामवर्मा सुतोऽभवत् ॥३६
पितुस्तुल्य कृत राज्य भूमिपालस्ततोऽभवत् ।
भूसरस्तेन खनित पुर तत्र शुभ कृतम् ॥३७

उस समय भगवान् प्रसन्न हो गये और आकाश के द्वारा कहे हुए वचन से उसे वर दिया था। हे मुनिश्रेष्ठ ! उसे श्रवण करो। भगवान् ने आकाशवाणी के द्वारा कहा था—हे श्रेष्ठ भूप ! तेरे कुल में जितने भी राजा जब तक होंगे तब तक कभी तेरे राष्ट्र में अनावृष्टि नहीं होगी ॥२९-३०॥ माल्यवान् राजा का पुत्र हर का प्यारा शम्भुदत्त उत्पन्न हुआ था। इसने भी पिता के बराबर ही राज्य किया था। इसके पश्चात् इसका पुत्र भौमराज नाम वाला उत्पन्न हुआ। पिता के तुल्य राज्य इसने किया था। फिर वत्सराज हुआ था। इसने भी पिता के समान राज्य किया था। वत्सराज का पुत्र भोजराज हुआ था जिसने कि अपने पिता के ही समान राज्य सुख का अनुभव किया था, भोजराज का पुत्र शम्भुदत्त समुत्पन्न हुआ था। इसने भोजराज के तुल्य तो सभी

काम किये थे किन्तु राज्य शासन उससे दश वर्ष कम ही किया था ॥३१ ३३॥ शम्भुदत्त का पुत्र बिन्दुपाल हुआ था जिसने बिन्दुखण्ड राष्ट्र बना कर वहाँ सुख पूर्वक निवास किया था। हे मुने ! उस वेद के ज्ञाता ने राज्य सुख का उपभोग अपने पिता के समान ही किया था॥३४॥ बिन्दुपाल का तनय राजपाल का नाम वाला उत्पन्न हुआ, उसने पिता के समान राज्य किया था। इससे महीनर पुत्र और महीनर के सोमशर्मा तथा सोमशर्मा के काम वर्मा पुत्र उत्पन्न हुए थे। इन सब ने अपने अपने पिताओं के ही समान सब प्रकार से राज्य किया था। काम वर्मा के भूमिपाल पुत्र हुआ था, जिसने भूसर का खनन किया और वहाँ पर एक अति रमणीक शुभ पुर की रचना की थी॥३५ ३७॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य रंगपालस्ततोऽभवत् ।
भूमिपालस्तु नृपतिर्जित्वा भूपाननेकश ॥३८
वीरसिंहस्ततो नाम्ना विख्यातोऽभून्महीतले ।
स्वराज्ये रंगपाल स चाभिषिच्य वन ययौ ।
तप कृत्वा दिव यातो देवदेवप्रसादत ॥३९
कल्पसिंहस्ततो जातो रंगपालन्नृपोत्तमात् ।
अनपत्यो हि नृपति पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥४०
एकदा जाह्नवीतोये स्नानार्थं मुदितो ययौ ।
दान दत्वा द्विजातिभ्य कल्पक्षेत्रमवाप्तवान् ॥४१
पुण्यभूमि समालोक्य शून्यभूता स्थलीमपि ।
नगर कारयामास तत्र स्थाने मुदान्वित ॥४२

इस भूमिपाल ने पिता के समान राज्य किया फिर रंगपाल हुआ। भूमिपाल राजा ने अनेक राजाओं को जीत कर यश प्राप्त किया ॥३८॥ तब से वह वीरसिंह इस नाम से इस भूमण्डल में विख्यात हो गया था। उसने अपने राज्यासन पर रंगपाल का अभिषेक कर दिया था और स्वयं वन को चला गया था। वहाँ उसने कठोर तपस्या की और देवदेव के प्रसाद से वह स्वर्ग को चला गया था ॥३९॥ फिर रंगपाल नृप श्रेष्ठ से कल्पसिंह सुत की समुत्पत्ति हुई थी। यह राजा

सन्तान से हीन था और इसने अपने पिता के बराबर राज्य शासन किया था ॥४०॥ एक बार यह प्रसन्न होकर भागीरथी गगा के जल मे स्नान करने के लिए गया था। द्विजो को दान देकर कल्पक्षेत्र को प्राप्त किया था ॥४१॥ उस पुण्य भूमि को देखा कि वह बिल्कुल शून्य पडी हुई है। फिर उसने वहा एक नूतन नगर का निर्माण कराया था। और उस स्थान मे बहुत अधिक आनन्द से युक्त रहता था ॥४२॥

कलापनगर नाम्ना प्रसिद्धमभवद्भु वि ।
तत्र राज्य कृत तेन गगासिहस्ततोऽभवत् ॥४३
नवत्यब्दवपुर्भू त्वा सोऽनपत्यो रण गतः ।
त्यक्त्वा प्राणाग्कुरुक्षेत्रे स्वर्गलोकमवाप्तवान् ।
समाप्तिमगमद्विप्र प्रमरस्य कुल शुभम् ॥४४
तदन्वये च ये शेषाः क्षत्रियास्तदनतरम् ।
तन्नारीष्वमितो विप्र बभूव वर्णसकरः ॥४५
वैश्यवृत्तिकराः सर्वे म्लेच्छतुल्या महीतले ।
इति ते कथितं विप्र कुल दक्षिणभूपतेः ॥४६

वह नगर इस भूमिमण्डल मे कलाप नगर के नाम प्रसिद्ध हुआ था। यहा पर उसने समासित होकर राज्य का शासन सुख पूर्वक किया था। उसके गगासिह सुत हुआ। वह नब्बे वर्ष मे शरीर वाला होकर रण मे गया था और सन्तान हीन था। कुरुक्षेत्र में उसने अपने प्रिय प्राणों का त्याग किया और फिर सीधा स्वर्ग लोक को चला गया था। हे विप्र ! प्रमर राजा का यह शुभ कुल समाप्ति को प्राप्त होगया था ॥४३-४४॥ उसके वश मे शेष जो क्षत्रिय थे वे उसके पश्चात् उसकी स्त्रियों मे अनुरक्त होकर वर्णसकर होगये थे॥४५॥ये समस्त वैश्यों की वृत्ति को करने वाले इस भूमण्डल मे म्लेच्छों के तुल्य ही होगये थे। हे विप्र ! यह मैंने दक्षिण दिशा मे होने वाले राजा का कुल वर्णित कर दिया है ॥४६॥

॥ अजमेर के तोमर नरेशो का वर्णन ॥

वयहानिर्महोपालो मध्यदेशे स्वक पदम् ।
गृहीत्वा ब्रह्मरचितमजमेरमवासयत् ॥१॥
अजस्य ब्रह्मणो मा च लक्ष्मीस्तत्र रमा गता ।
तया च नगर रम्यमजमेरमज स्मृतम् ॥२
दशवर्षं कृत राज्य तोमरस्तत्सुतोऽभवत् ।
पार्थिवै पूजयामास वर्षमात्र महेश्वरम् ॥३॥
इ द्रप्रस्थ ददौ तस्मै प्रसन्नो नगर शिव ।
तदन्वये च ये जातास्तोमरा क्षत्रिया स्मृता ॥४
तोमरावरजश्चैव वयहानिसुत शुभ.।
नाम्ना सामलदेवश्च प्रथितोऽभून्महीतले ॥५
सप्तवर्षं कृत राज्य महादेवस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्यमजयश्च ततो भवत् ॥६
पितुस्तुल्य कृत राज्य वीरसिंहस्ततोऽभवत् ।
शताद्धाब्द कृत ततोबिंदुसुरोऽभवत् ॥७

इस अध्याय में अजमेर नगर के वृत्तान्त का तथा तोमर के वश के वृत्तान्त का वणन किया जाता है। सूतजी बोले—वयहानि नाम के महीपाल न मध्य देश में अपना पद ग्रहण करके ब्रह्मरचित अजमेर नगर को बसाया था ॥१॥ अज यह ब्रह्म का नाम है मा लक्ष्मी का नाम है । यह वहा पर रमा गई थी । उससे ही यह रम्य अजमेर नगर कहा गया है ॥२॥ इस राजा ने वहा दश वर्ष तक राज्य सुख का अनुभव किया था फिर इसका पुत्र तोमर उत्पन्न हुआ था । इसने पार्थिवों क द्वारा एक वष पर्यन्त महेश्वर का अभ्यचन किया था अर्थात् शिव का शास्त्रोक्त पार्थिव पूजन सविधि किया था ॥३॥ भगवान् शिव ने परम प्रसन्न होकर उसक लिए इन्द्रप्रस्थ देदिया था । उसक वश म जो भी क्षत्रिय समुत्पन्न हुए थे व सब इस प्रतापी क नाम से ही तोमर क्षत्रिय कहलाये थे ॥४॥ राजा तोमर का छोटा पुत्र वयहानिशुभ

हुआ था। यह नाम से इस भूमि तल मे सामन्त देव प्रसिद्ध हुआ था ॥५॥ इसने मात वर्ष पर्यन्त राज्य किया था इसका पुत्र फिर महादेव उत्पन्न हुआ। इस महादेव ने अपने पिता के समान ही राज्य किया था। इसके पश्चात् अजय ने उसके यहाँ जन्म धारण किया था। यह भी पिता के बराबर ही राज्य शासन करने वाला हुआ था। इसका पुत्र वीरसिंह हुआ। इस वीरसिंह ने आधी शताब्दी तक राज्य किया था। इसका पुत्र बिन्दुसर नाम धारी हुआ था ॥६-७॥

पितुरर्द्धं कृत राज्य मध्यदेशे महात्मना।
तस्माच्च मिथुन जात वीरा वीरविहारक. ॥८
विक्रमाय ददौ वीरा पिता वेदविधानत ।
स्वपुत्राय स्वक राज्य मध्यदेशान्तर मुदा ॥९
पितुस्तुल्य कृत राज्यं माणिक्यस्तत्सुतोऽभवत् ।
शतार्द्धाब्द कृत राज्य महासिहस्ततोऽभवत् ॥१०
पितुस्तुल्य कृत राज्य चन्द्रगुप्तस्ततोऽभवत् ।
पितुरर्द्धं कृत राज्यं तत्सुतश्च प्रतापवान् ॥११
पितुस्तुल्य कृत राज्य मोहनस्तत्सुतोऽभवत् ।
निशदब्द कृत राज्य श्वेतरायस्ततोऽभवत् ॥१२
पितुस्तुल्य कृत राज्य नागवाहस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य लोहधारस्ततोऽभवत् ॥१३
पितुस्तुल्य कृत राज्य वीरसिहस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य विबुधस्तत्सुतोऽभवत् ॥१४

इस महान् आत्मा वाले ने मध्य देश मे पिता का आधा राज्य किया था। उसके दो जोडला पुत्र हुए थे इन दोनो मे एक कन्या और एक पुत्र था। कन्या का नाम वीरा था और पुत्र का नाम वीर विहारक था ॥८॥ राजा विक्रम के लिये वीरा का दान कर दिया था जो कि पिता के द्वारा वेद की विधि से किया गया था। और अपने पुत्र को परम प्रसन्नता से मध्य देशान्तर अपना राज्य दे दिया था ॥९॥ इसके माणिक पुत्र हुआ—माणिक्य ने पचास वर्ष तक राज्य कियाँ था।

फिर महासिंह के चन्द्रगुप्त पुत्र हुआ जिसने अपने पिता से आधे समय तक ही राज्य किया था। चन्द्रगुप्त का पुत्र प्रताप वान् हुआ था। इसने पिता के तुल्य राज्य किया था। इसका पुत्र मोहन नामक राजा हुआ। इसने तीस वर्ष तक राज्य किया। इसका पुत्र श्वेतराय हुआ था ॥१०-१२॥ श्वेतरायका पुत्र नागवाह और नागवाह का पुत्र लोहधार हुआ एव इसका पुत्र वीरसिंह हुआ था। इन सबने अपने पिताओं के समान ही राज्य किया। वीरसिंह के पुत्र का नाम विबुध था ॥१४ १४॥

शतार्द्धाब्द कृत राज्य चद्ररायस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य ततो हरिहरोऽभवत् ॥१५
पितुस्तुल्य कृत राज्य वसतस्तस्य चात्मज ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य बलागस्तनयोऽभवत् ॥१६
पितुस्तुल्य कृत राज्य प्रथमस्तत्सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य मगरायस्ततोऽभवत् ॥१७
पितुस्तुल्य कृत राज्य विशालस्तस्य चात्मज ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य शार्ङ्गदेवस्ततोऽभवत् ॥१८
पितुस्तुल्य कृत राज्य मन्नदेवस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य जयसिहस्ततोऽभवत् ॥१९
आर्यदेशाश्च सकला जितास्तेन महात्मना ।
तद्धर्न कारयामास यज्ञ बहुफलप्रदम् ॥२०
ततश्चानद देवो हि जात पुत्र शुभानन ।
शतार्द्धाब्द कत राज्य जयसिहेन धीमता ॥२१

विबुध ने पचास वर्ष राज्य किया। इसका पुत्र चन्द्रराय, उसका हरिहर, उसका बसत, उसका बलाग, उसका प्रमथ, उसका मगराय और उसका विशाल तथा उसका मन्नदेव और उसका पुत्र जयसिंह हुआ ॥१५ १९॥ इन सब ने पिताओं के समान ही राज्य शासन किया था। जयसिंह ने समस्त आर्य देशों की विजय करली थी। उस जीत के धन

से उस महात्मा ने बहुत फल का प्रदान करने वाला यज्ञ कराया ॥२०॥ उससे फिर आनन्द देव नामक शुभ मुख वाले पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। धीमान् जयसिंह ने पचास वर्ष तक राज्य किया था ॥२१॥

तत्सुतेन पितुस्तत्य कृतं राज्य महीतले ।
सोमेश्वरस्तस्य सुतो महाशूरो बभूव ह ॥२२
अनंगपालस्य सुतो ज्येष्ठा वै कीर्तिमालिनीम् ।
तामुद्वाह्य विधानेन तस्या पुत्रानजीजनत् ॥२३
धुंधुकारश्च वै ज्येष्ठो मथुराराष्ट्रसंस्थितः ।
मध्य कुमाराख्यसुतः पितुः पदसमास्थितः ॥२४
महीराजस्तु बलवास्तृतीयो देहलीपतिः ।
सहोद्दीनस्य नृपतेर्वशमाप्य मृतिं गतः ॥२५
चपहानेश्च स कुलं छायर्यित्वा दिवं ययौ ।
तस्य वशे तु राजन्यास्तेषा पत्न्यः पिशाचकैः ॥२६
म्लेच्छैश्च भुक्तवत्यस्ता बभूवुर्वर्णसंकराः ।
न वै आर्या न वै म्लेच्छा जट्टा जात्या च मेहना. ॥२७
मेहना म्लेच्छजातीता जट्टा आर्यमया स्मृताः ।
क्वचित्क्वचिन्न ये शेषा क्षत्रियाश्चपहानिजा. ॥२८

उसके पुत्र ने अपने पिता के समान ही इस भूतल पर राज्य किया था। उसका पुत्र सोमेश्वर हुआ था जो महान् शूरवीर था ॥२२॥ अनग पाल के पुत्र ने ज्येष्ठा कीर्ति मालिनी के साथ विधान के साथ विवाह किया था और उसमे पुत्रों को समुत्पन्न किया था ॥२३॥ धुन्धुकार ज्येष्ठ था जो मथुराराष्ट्र म सस्थित था। मध्य पुत्र कुमाराख्य था जो पिता के पद पर समास्थित हुआ था ॥२४॥ महीराज बलवान् उसका तृतीय पुत्र था जो देहली का स्वामी हुआ था। वह सहोद्दीन राजा के वश मे आकर मृत्यु को प्राप्त हुआ था ॥२५॥ उसने चपहानि के कुल को फँसा दिया था और फिर स्वर्ग को चला गया था। उसके वश मे जो राजन्य (क्षत्रिय) थे उनकी पत्नियो और म्लेच्छो के द्वारा भोगी गई थी और वे सब वर्ण सकर होगये थे। न तो वे आर्य

ही थे और न म्लेच्छ ही रहे थे। वे जाति से जट्ट और मेहन होगये थे। मेहन तो म्लेच्छ जाति वाले होते हैं और जट्ट आर्यमय माने गये हैं। यहा मेहन से मेव और जट्ट से जाट होता है। और कही कही पर शेष चयहानि से उत्पन्न क्षत्रिय रहे हैं ॥२६ २८॥

॥ शुक्ल वश चरित्र ॥

शुक्लवश प्रवक्ष्यामि श्रृणु विप्रवरादित ।
यदा कृष्ण स्वय ब्रह्म त्यक्त्वा भूमि स्वक पदम् ॥१
दिव्य वृन्दावन रम्य प्रययौ भूतले तदा ।
कलेरागमन ज्ञात्वा म्लेच्छपा द्वीपमध्यगे ॥२
स्थिता द्वीपेषु वै नाना मनुजा वेदतत्परा ।
कलिनामित्रधर्मेण दूषितास्ते बभूविरे ॥३
अष्टषष्टिसहस्राणा वर्षाणा मुनिसत्तम ।
अद्य प्रभृति वै जात काल कलिसमागमे ॥४
षष्टिवर्षसहस्राणि द्वीपराज्यमचीकरत् ।
स कलिर्म्लेच्छया सार्धं सूर्यपूजनतत्पर ॥५
ततपश्चाद्भारते वर्षे म्लेच्छया कलिराययौ ।
दृष्ट्वा तद्भारत वर्षं लोकपालैश्च पालितम् ॥६
भयभीतस्त्वराविष्टो गन्धर्वाणा यशस्कर ।
स कलि सूर्यमाराध्य समाधिस्थो बभूव ह ॥७

इस अध्याय म शुक्ल नामक अग्निवश म होने वाले तथा भूपान वश मे होने वालो के चरित्र का वणन है। श्री सूतजी ने कहा—हे विप्र वर! अब मैं शुक्ल वश का वणन करता हूँ उसे तुम आदि से ही श्रवण करो। जिस समय में भगवान् कृष्ण स्वय ब्रह्म अपने भूमि पद का त्याग करके उस समय मे दिव्य एव रम्य वृदावन मे भूतल म चले गये थे। उन्होंने द्वीप के मध्य म्लेच्छ और कलि का आगमन जान लिया था॥१-२॥ द्वीपों के अनेक मनुष्य वेदो म तत्पर जो थे वे धर्म के शत्रु कलि के

द्वारा दूषित होगये थे ॥३॥ हे मुनिसत्ताम ! आज स लेकर अडसठ हजार वर्षों का समय कलि के समागम मे होगया है ॥४॥ उस कलि न म्लेच्छा के साथ सूय के पूजन मे तत्पर रहते हुए साठ हजार वर्ष तक द्वीप राज्य किया था॥५॥इसके पीछे इस भारत को लोकपालो के द्वारा पालित देख कर म्लच्छा के साथ भारत वर्ष मे वह कलि आया था ॥६॥ त्वरा (शीघ्रता) से अभीष्ट और भय से डरा हुआ गन्धर्वों के यश को करने वाला वह कलि सूर्यदेव की समाराधना करके समाधि में स्थित हो गया था ॥७॥

ततो वर्षशताब्दाते सतुष्टो रविरागत ।
सोशुभिर्लोकमातप्य मसावृष्टिमकारयत् ॥८
चतुर्वर्षसहस्राणि चतुर्वर्षशतानि च ।
व्यतीतानि मुनिश्रेष्ठ चाद्य प्रभृति सत्तपे ॥९
सपन्न भारत वर्षं तदा जात समतत ।
ग्यूहाख्यो यवनो नाम तेन वै पूरित जगत् ॥१०
सहस्राब्दकलौ प्राप्ते महेन्द्रो दवराट् स्वयम्
काश्यप प्रेरयामास ब्रह्मावर्ते महोत्तमे ॥११
आर्यावती देवशक्तिस्तत्कर चाग्रही मुदा ।
दशपुत्रान्समुत्पाद्य स द्विजो मिश्रमागमत् ॥१२
मिश्रदेशोद्भवाम्लेच्छा वशीकृत्यायुत मुदा ।
स्वदश पुनरागत्य शिष्यास्तान्सचकार स ॥१३
नष्टाया सप्तपुर्यां च ब्रह्मावर्ते महोत्तमम् ।
सरस्वतीदृषद्वत्योर्मध्यग तत्र चावसत् ॥१४

इसके अनन्तर एक सौ वर्ष के अन्त मे रवि सन्तुष्ट होकर आया था। उसने अपनी किरणो के द्वारा लोक को आतप्त करके फिर महा वृष्टि कराई थी ॥८॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आज से लकर चार हजार चार सौ वर्ष व्यतीत हुए हैं ॥९॥ उस समय सभी ओर से यह भारत वर्ष पूर्णतया सम्पन्न होगया था। एक व्यूह नाम वाला यवन था उसन इस सम्पूर्ण जगत् को पूरित कर दिया था ॥१०॥ एक सहस्र वर्ष

कलि के प्राप्त होने के हो जाने पर देवो के राजा महेन्द्र ने स्वय महान् उत्तम ब्रह्मावर्त्त म काश्यप को भेजा था ॥११॥ आर्यावती देव शक्ति ने प्रसन्नता से उसके कर को ग्रहण किया था। उसम दश पुत्रो को समुत्पन्न किया था और फिर वह मिश्र म आ गया था ॥१२॥ वहा मिश्र देश मे होने वाले म्लेच्छो को जो सख्या म दश सहस्र थे अपने वश मे किया था। इसके पश्चात् अपने देश मे आकर उनको शिष्य बनाया था ॥१३॥ सप्तपुरी के नष्ट हो जाने पर महान् उत्तम ब्रह्मावर्त्त सरस्वती और दृषद्वती के मध्य मे रहने वाला वहा पर बस गया था ॥१४॥

स्वपुत्र शुक्लमाहूय द्विजश्रेष्ठ तपोधनम् ।
आज्ञाप्य रैवत शृ ग तपसे तु पुन स्वयम् ॥१५
नवपुत्रांस्तथा शिष्यान्मनुधर्मं सनातनम् ।
श्रावयामास धर्मात्मा स राजा मनुधर्मग ॥१६
शुक्लोपि रैवत प्राप्य सच्चिदानदविग्रहम् ।
वासुदेव जगन्नाथ तपसा समतोषयत् ॥१७
तदा प्रसन्नोभगवान्द्वारकानायको बली ।
करे गृहीत्वा त विप्र समुद्रातमुपाययौ ॥१८
द्वारका दर्शयामास दिव्यशोभासमन्विताम् ।
व्यतीते द्विजसहस्राब्दे किञ्चिज्जाते भृगूत्तम ॥१९
अग्निद्वारेण प्रययौ स शुक्लोऽर्बु दपर्वते ।
जित्वा बौद्धान्द्विजै साध त्रिभिरन्यैश्च बधुभि ॥२०
द्वारका कारयामास हरेश्च कृपया हि स ।
तत्रोष्य मुदितो राजा कृष्णध्यानपरोभवत् ॥२१

तप के धन वाले द्विजो मे श्रेष्ठ अपने पुत्र शुक्ल को उसने बुला कर रैवत शृ ग को आज्ञा दी थी और पुन स्वय तप के लिए चला गया था॥१५॥वहा शिष्य उन नौ पुत्रों को मनु के धम के अनुगामी धर्मात्मा उस राजा ने सनातन मनु के धर्म को श्रवण कराया था ॥१६॥ शुक्ल भी रैवत पवत पर पहुँच कर उसने सच्चिदानन्द विग्रह वाले जगत् के स्वामी वासुदेव को अपने तप के द्वारा पूणतया सन्तुष्ट किया था

॥१७॥ उस समय में बलवान् द्वारका के स्वामी भगवान् परम प्रसन्न हुए और उस ब्राह्मण को हाथ से पकड़ कर समुद्रान्त पर आ गये थे ॥१८॥ हे भृगूत्तम ! वहाँ उन्होंने दिव्य शोभा से समन्वित द्वारका को दिखाया था। बत्तीस हजार वर्ष व्यतीत होजाने पर वह शुक्ल अग्निद्वार से अर्बुद पर्वत पर चला गया था। वहाँ अपने तीन अन्य द्विज बन्धुओं को साथ लेकर बौद्धों का विजय किया था ॥१९ २०॥ उसने हरि की कृपा से उस द्वारका को कराया था। वह राजा परम प्रसन्नता से निवास कर कृष्ण के ध्यान में तत्पर हो गया था ॥२१॥

पश्चिमे भारते वर्षे दशाब्दं कृतवान्पदम् ।
नारायणस्य कृपया विष्वक्सेन सुतोऽभवत् ॥२२
विंशदब्दं कृतं राज्यं जयसेनस्ततोऽभवत् ।
त्रिंशदब्दं कृतं राज्यं विसेनस्तस्य चात्मजः ॥२३
शतार्धाब्दं कृतं राज्यं मिथुनं तस्य चाभवत् ।
प्रमोदो मोदसिंहश्च विक्रमाय निजां सुताम् ॥२४
विसेनश्च ददौ प्रीत्या राष्ट्रं पुत्राय चोत्तमम् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सिंधुवर्मा सुतोऽभवत् ॥२५
सिंधुकूले कृतं राज्यं त्यक्त्वा तत्पतृकं पदम् ।
सिंधुदेशस्ततो नाम्ना प्रसिद्धोभून्महीतले ॥२६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं राज्ञा वै सिंधुवर्मणा ।
सिंधुद्वीपस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥२७
श्रीपतिस्तस्य तनयो गौतमान्वयसम्भवाम् ।
काच्छपी महिषीं प्राप्य कच्छदेशमुपाययौ ॥२८

पश्चिम भारत वर्ष में दस वर्ष तक पद किया था फिर नारायण की कृपा से विष्वक्सेन नामक उसका सुत हुआ था ॥२२॥ उसने यहाँ बीस वर्ष तक राज्य का शासन किया था। उसका पुत्र जयसेन समुत्पन्न हुआ था। इसने तीस वर्ष पर्यन्त राज्य किया था। फिर इसका पुत्र विसेन नामधारी उत्पन्न हुआ था ॥२३॥ इसने पचास वर्ष तक राज्य शासन की बागडोर अपने हाथ में रक्खी थी। इसके एक मिथुन

(जोड़ा) पैदा हुए थे जिनके नाम प्रमोद और मोदसिंह थे। विसेन ने अपनी कन्या को विक्रम को दी थी और प्रीति से उत्तमराष्ट्र पुत्र को दिया था। इसने राज्य का शासन अपने पिता के समान ही किया था। इसका पुत्र सिंधु वर्मा नाम धारी समुत्पन्न हुआ था ॥२४ २५॥ इसने उस अपने पैतृक पद का त्याग करके सिन्धु नदी के तट पर अपना राज्य बनाया था। तभी से वह सिन्धु देश इस नाम [illegible] उसकी प्रसिद्धि होगई थी ॥२६॥ इस राजा सिन्धु वर्मा ने अपने पिता के समान ही राज्य का शासन किया था। उसके पुत्र का नाम सिन्धु द्वीप था। इसने भी अपने पिता के समान ही अपने पद का कार्य संभाला था ॥२७॥ इसके पुत्र का नाम श्रीपति था जिसने गौतम वंश में समुत्पन्न भाण्डवी रानी को प्राप्त करके वह फिर कच्छ देश में आगया था ॥२८॥

पुलिन्दान्यवनाञ्जित्वा तत्र देशमकारयत् ।
दशो वै श्रीपतिर्नाम्ना सिंधुकूले बभूव ह ॥२९

पितुस्तुल्य कृत राज्य भुजवर्मा ततोऽभवत् ।
जित्वा स शबरान्भिल्लांस्तत्र राष्ट्रमकारयत् ॥३०

भुजदशस्तनो जात प्रसिद्धोऽभून्महीतले ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य रणवर्मा सुतोऽभवत् ॥३१

पितुस्तुल्य कृत राज्य चित्रवर्मा सुतोऽभवत् ।
कृत्वा स चित्रनगरी वनमध्ये नृपोत्तम ॥३२

पितुस्तुल्य कृत राज्य दमवर्मा सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य [illegible]वर्मा सुतोऽभवत् ॥३३

पितुस्तुल्य कृत राज्यमुदयस्सुतोऽभवत् ।
कृत्वोदयपुरं रम्यं वनमध्ये नृपोत्तम ॥३४

पितुस्तुल्य कृत राज्य बाप्यवर्मा सुतोऽभवत् ।
[illegible] नानारूपाणि तेन वै ॥३५

धर्मार्थं कारयामास [illegible] वै पुरम् ।
[illegible] प्राप्तो बप्पा नाम भूपति ॥३६

वहां उसने पुलिन्द और यवनों को जीत कर अपना देश बनाया था। इसलिए वह देश सिन्धु के तट पर श्रीपति के नाम से ही होगया था ॥२९॥ इस श्रीपति ने अपने पिता के समान ही राज्य का शासन चलाया था, इसके पश्चात् इस का पुत्र भुज वर्मा हुआ था। इसने वहां पर शवरों और भीलों को जीत कर अपने एक राष्ट्र का निर्माण किया था ॥३०॥ तभी से इस महीतल में भुज नाम से देश की प्रसिद्ध हुई थी। इसने अपने पिता की रीति-नीति के अनुसार ही उतने ही समय तक राज्य-शासन का काम संभाला था। इसके पीछे इसका पुत्र रण वर्मा हुआ था ॥३१॥ इस रण वर्मा ने पितृ तुल्य राज्य किया और इस के पुत्र का नाम चित्र वर्मा हुआ था। इस उत्तम नृप ने घोर वन के मध्य में चित्र नगरी की रचना कराई थी ॥३२॥ इसका राज्य-शासन भी इसके पिता के समान ही रहा था। इसके पुत्र का नाम धर्म वर्मा था। धर्म वर्मा ने तथा इसके पुत्र कृष्ण वर्मा ने पिताओं के समान ही राज्य किया था ॥३३॥ फिर इसका पुत्र उदय नाम धारी हुआ था। इस उत्तम नृप ने घोर वन के मध्य में रम्य उदयपुर बसाया इसके राज्य की शासन-व्यवस्था भी बिल्कुल अपने पिता के समान ही थी। इसके पुत्र का नाम वाप्य वर्मा हुआ था। इसने अनेक प्रकार के बहुत से वापी (बावडी)—कूप और तडाग (तालाब) तथा विविध प्रकार के हर्म्यों (उत्तम भवनों) की रचना कराई थी ॥३४-३५॥ इसने इन सब का निर्माण धर्मार्थ ही कराया था क्यों कि वह बहुत धर्मात्मा उस पुर में हुआ था। इसी अन्तर में बलद नाम वहां प्राप्त होगया था ॥३६॥

लक्षसैन्ययुतो वीरो महामदमते स्थितः ।
तेन सार्धमभूद्युद्धं राज्ञो वै वाप्यकर्मणः ॥३७
जित्वा पैशाचकान्म्लेच्छान्कृष्णोऽसवमकारयत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं गुहिलस्तत्सुतोऽभवत् ॥३८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बालभोजः सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं राष्ट्रपालस्ततोऽभवत् ॥३९

स त्यक्त्वा पैतृक स्थान वैष्णवी शक्तिमागमत् ।
तपसाराधयामास शारदा सर्वमंगलाम् ॥४०
प्रसन्ना सा तदा देवी कारयामास वै पुरीम् ।
महावती महारम्या मणिदेवेन रक्षिताम् ॥४१
तत्रोष्य नृपतिर्धीमान्दशाब्द राज्यमाप्तवान् ।
तस्योभौ तनयौ जातौ विजय प्रजयस्तथा ॥४२

यह वीर एक लाख सेना से समन्वित होकर आया था और महामद के मद मे स्थित था अर्थात् मुसलमान धर्म वाला था। उसके साथ वाप्य कर्मा राजा का बड़ा भारी युद्ध हुआ था ॥३७॥ इसने उन पैशाचिक म्लेच्छों को जीत कर फिर कृष्णोत्सव कराया था। इसने अपने राज्य का शासन बिल्कुल अपने पिता के ही समान किया था। इसके पुत्र का नाम गुहिल हुआ था ॥३८॥ गुहिल के पुत्र का नाम कालभोज था। इन दोनो ने अपने पिताओं के समान ही राज्य का पद सभाला था। कालभोज के पुत्र का नाम राष्ट्रपाल था। इसने अपने पिता के स्थान का त्याग कर दिया था और वह वैष्णवी शक्ति मे चला आया था। इसने तप के द्वारा सर्व मङ्गला शारदा की आराधना की थी ॥३९ ४०॥ तब वह शारदा देवी इस पर प्रसन्न हो गई थी और पुरी की रचना कराई थी। यह पुरी महा रम्य महावती नाम वाली थी जो कि मणिदेव के द्वारा रक्षित थी ॥४१॥ वहा पर यह धीमान् नृप निवास करते हुए दश वर्ष पर्यन्त इसने राज्य पद की प्राप्ति की थी। इसके दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे। एक का नाम विजय था और दूसरे का प्रजय नाम था ॥४२॥

प्रजय पितरौ त्यक्त्वा गगाकूलमुपाययौ ।
द्वादशाब्द च तपसा पूजयामास शारदाम् ॥४३
मन्यामूर्तिमयी देवी वेणुवादनतत्परा ।
हयमारुह्य सप्राप्ता विहस्याह महीपतिम् ॥४४
निमित्त भूपसुत त्वया चाराधिता शिवा ।
तत्फन त्व हि तपसा भक्त शीघ्रमवाप्स्यसि ॥४५

इति श्रुत्वा स होवाच कुमारि मधुरस्वरे ।
नवीन नगरं मह्यं कुरु देवि नमोस्तु ते ।।४६
इति श्रुत्वा तु सा देवी ददौ तस्मै हयं शुभम् ।
पुरो भूत्वा वाद्यकरी दक्षिणां दिशमागता ।।४७
स भूपो हयमारुह्य नेत्र आच्छाद्य चाययौ ।
पुनः स भूपतिः पश्चात्पश्चिमां दिशमागता ।।४८
ततोनुप्रययौ पूर्वमर्कणो यत्र पक्षिराट् ।
भयभीतो नृपस्तेन समुन्मील्य स चक्षुषी ।।४९

प्रजय ने अपने माता-पिता का त्याग करके गङ्गा के तट पर प्रस्थान कर दिया था। वहाँ पर स्थित होकर इसने बारह वर्ष पर्यन्त तपस्या करके शारदा देवी का अर्चन किया था ।।४३।। कन्या की मूर्त्ति वाली अपने वेणु को बजाती हुई देवी अश्व पर समारूढ़ होकर वहाँ प्राप्त हुई थी और उसने हँस कर राजा से कहा था ।।४४।। हे भूप के पुत्र ! तू ने किस कारण से शिवा का समाराधन किया है। इस तपस्या का फल मुझसे तू बहुत ही शीघ्र प्राप्त कर लेगा ।।४५।। इतना श्रवण करके उस राजा ने कहा—हे मधुर स्वर वाली कुमारी ! मेरे लिये आप एक नूतन नगर की रचना कर दो। हे देवि ! आपके लिये मेरा प्रणाम है ।।४६।। यह राजा का वचन श्रवण करके उस देवी ने उस राजा को वह शुभ अश्व दे दिया था और आगे होकर वाद्य का वादन करने वाली वह दक्षिण दिशा मे आ गई थी ।।४७।। वह राजा भी अश्व पर सवार होकर अपने नेत्रों को आच्छादित करके आ गया था। फिर वह राजा पश्चिम दिशा मे आ गया था ।।४८।। इसके बाद पूर्व मे गया था जहाँ पर अर्कमण पक्षियों का राजा था। उससे राजा भयभीत हो गया और उसने अपनी आँखें मींचली थी ।।४९।।

ददर्श नगरं रम्यं कन्याया रचितं शुभम् ।
उत्तरे तस्य वै गंगा दक्षिणेनास पाण्डुरा ।।५०
पश्चिमे ईशसरिता पूर्वे पक्षी स मर्कणः ।
कुब्जभूतमभूद्ग्रामं कान्यकुब्ज इति स्मृतः ।।५१

स्वयमेकैव वसना मनोग्लानिमुपाययौ ।
तदैव स घटो भूमौ न प्राप्त सप्रवृत्तिकाम् ॥५८
दृष्ट्वा कन्यावती देवी घटहीना गृह ययौ ।
तदा तु सप्त कन्याश्च शिलाभूता गृहे स्थिता ॥५९
श्रुत्वा वेणुस्तदागत्य भर्त्सयित्वा स्वका प्रियाम् ।
ब्रह्मचर्यव्रत त्यक्त्वा रमयामास योषितम् ॥६०
नृपाद्वै वीरवत्या च यशोविग्रह आत्मज ।
बभूव बलवान्धर्मी चार्यदेशपति स्वयम् ॥६१
विंशद्वर्ष कृत राज्य तेन राज्ञा महीतले ॥
महीचन्द्रस्तस्य सुत पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥६२
चन्द्रदेवस्तस्य सुतो राज्य तेन पितु समम् ।
कृत तस्मात्सुतो जातो मदपालो महीपति ॥६३

वह स्वय एक ही वस्त्र वाली मनोग्लानि को प्राप्त हुई थी । उस समय ही वह घट भूमि मे प्राप्त नही हुआ था । सप्रवृत्तिका को देख कर कन्यावती देवी घर से रहित गृह को चली गई थी उस समय सात कन्याएँ शिला भूता होकर घर मे स्थित हो गई थी ॥५८-५९॥ वेणु ने जब यह सुना तो वहा उस समय उसने आकर अपनी प्रिया को भर्त्सना दी और फिर ब्रह्मचर्य व्रत का त्याग करके योषित के साथ रमण किया था ॥६०॥ तब राजा से वीरवती मे यशोविग्रह नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था । वह बलवान् धर्मात्मा और स्वय आर्यदेश का स्वामी था ॥६१॥ उस राजा ने बीस वर्ष तक इस भूमि तल पर राज्य का शासन किया था । फिर इसके महीचन्द्र नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसने पिता के तुल्य राज्य किया था ॥६२॥ महीचन्द्र का पुत्र चन्द्रदेव हुआ था । इसने भी पिता के समान ही राज्य किया था । इसके जो पुत्र समुत्पन्न हुआ था उसका नाम मदपाल महीपति था ॥६३॥

तस्य भूपस्य समये सर्वे भूपा समन्तत ।
त्यक्त्वा त मदपाल च तद्वृत्त सस्थिता गृहे ॥६४

पितुरर्द्धं कृत राज्य कुम्भपालस्ततोऽभवत् ।
राजनीया च नगरी पिशाच विषये स्थिता ॥६५
तत्पतिश्च महामोदो म्लेच्छपैशाचधर्मग ।
स जित्वा वहुधा देशांल्लु ठयित्वा धन बहु ॥६६
म्लेचछधमकर प्राप्त कुम्भपालो यत्र स्थित ।
कुम्भपालस्तु त दृष्ट्वा कलिना निर्मित नृप ॥६७
महमोद समागम्य प्रणनाम स बुद्धिमान् ।
तदा म्लेच्छपति शूरो दत्वा तस्मै धन बहु ॥६८
राजनीया च नगरी प्राप्तवान्मूर्तिखडकम् ।
विंशदब्द कृत राज्य कु भपालेन धीमता ॥६९
तत्पुत्रो देवपालश्चानगभूपस्य कन्यकाम् ।
समुद्वाह्य विधानेन चन्द्रकांति तया सह ॥७०

उस राजा के समय मे सभी ओर समस्त राजाओ ने उस मन्दपाल को त्याग दिया था और तद्गत गृह म सस्थित हो गये थे ॥६४॥ इसने पिता का आधा राज्य किया था । इसके बाद इसका पुत्र कुम्भपाल हुआ था । राजनीय नगरी पिशाचो के देश मे स्थित थी ॥६५॥ उस नगरी का स्वामी महामोद था जो कि म्लेच्छ पैशाच धर्म का अनुयायी था । उसने बहुधा देशो को जीत लिया था और बहुत सा धन वहा से लूट लिया था । उसने म्लेच्छ धर्म कर प्राप्त किया था जहाँ कुम्भपाल स्थित था । हे नृप ! कुम्भपाल ने कलि के द्वारा निर्मित उसको देख कर उस बुद्धिमान ने महामोद के समीप म जाकर उसको प्रणाम किया था । तब म्लेच्छो के स्वामी ने उसको बहुत-सा धन दिया था ॥६६ ६८॥ फिर वह अपनी राजनीया नगरी को चला गया था । धीमान् कुम्भपाल ने बीस वर्ष तक मूर्ति खण्डक राज्य किया था । इसका पुत्र देवपाल हुआ था । इसने अनग राजा की कन्या चन्द्रकान्ति के साथ विवाह विधि के साथ किया था और उसके साथ आनन्द मे रहने लगा था ॥६९ ७०॥

कान्यकुब्जगृह प्राप्य जित्वा भूपाननेकश ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्योभौ तनयौ स्मृतौ ॥७१
जयचन्द्रो रत्नभानुर्दिश पूर्वां तथोत्तराम् ।
आर्यदेशस्य वै जित्वा वैष्णवो राज्यमाप्तवान् ॥७२
रत्नभानोश्च तनयो लक्षणो नाम विश्रुतः ।
कुरुक्षेत्रे रण प्राप्य त्यक्त्वा प्राणान्दिव गत. ॥७३
समाप्तिमगमद्वंशो वैश्यपालस्य धीमत ।
कुं भपालस्य शौक्लस्य वैश्याना रक्षकस्य च ॥७४
विष्वक्सेनान्वये जाता विष्वक्सेना नृपा स्मृता. ।
विसेनस्य कुले जाता विसेना क्षत्रिया. स्मृता ॥७५
गुहिलस्य कुले जाता गौहिला क्षत्रिया हि ते ।
राष्ट्रपालान्वये जाता राष्ट्रपाला नृपा स्मृताः ॥७६
वैश्यपालस्य वै वंशे कुं भपालस्य श्रीमत ।
वैश्यपालाश्च राजन्या बभूवुर्बहुधा हि ते ॥७७
लक्षणे मरण प्राप्ते शुक्ल वंशधुरंधुरे ।
सर्वे ते क्षत्रिया मुख्या कुरुक्षेत्रे लय गता ॥७८
शेषास्तु क्षुद्रभूपाला वर्णसंकरसंभवा ।
म्लेच्छैश्च दूषिता जाता म्लेच्छराज्ये भयानके ॥७९

यह देवपाल चन्द्रकांति को साथ में लेकर कान्य कुब्ज गृह में पहुंचा और वहाँ अनेक भूपों को जीत कर इसने अपने पिता के तुल्य राज्य किया था। उसके दो पुत्र कहे गये हैं ॥७१॥ उनके नाम जयचन्द्र और रत्नभान थे। इन्होंने पूर्व तथा उत्तर दिशा आर्य देश को जीत कर वैष्णव ने राज्य प्राप्त किया था ॥७२॥ रत्नभानु का पुत्र लक्षण इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उसने कुरुक्षेत्र में युद्ध करके प्राणों का त्याग किया था और स्वर्ग लोक को चला गया था ॥७३॥ धीमान् वैश्यपाल का वंश फिर समाप्ति को प्राप्त हो गया था। कुम्भपाल का तथा वैश्यों के रक्षक शौक्ल का वंश भी समाप्त हो गया था ॥७४॥ विष्वक्सेन के वंश में उत्पन्न होने वाले विष्वक्सेनेन नृप कहे गये थे।

जो विसेन के कुल मे समुत्पन्न हुए थे वे विसन क्षत्रिय कहलाये हैं ॥७५॥ गुहिल के कुल म समुत्पन्न गौहिल क्षत्रिय कहे गये हैं और राष्ट्रपाल क वश मे जो समुत्पन्न थे वे राष्ट्रपाल नाम से ही प्रसिद्ध हुए हैं ॥७६॥ वैश्यपाल और धीमान् कुम्भपान के वश मे वैश्यपाल क्षत्रिय बहुधा हुए थे। शुक्ल वश के धुरन्धर लक्षण क मरण प्राप्त हो जाने पर समस्त वे क्षत्रिय उस कुरुक्षेत्र के मैदान मे लय को प्राप्त हो गये थ ॥७७-७८॥ शेष जो क्षुद्र राजा थे वे वणशकर से उत्पत्ति वाले हैं और वे म्लेच्छो के द्वारा उस अति भयानक म्लेच्छो के राज्य मे दूषित हो गय थे ॥७६॥

॥ परिहर भूप वश वर्णन ॥

भृगुवर्यं शृणु त्व वे वश परिहरस्य च।
जित्वा बौद्धान्परिहरोऽथववेदपरायण ॥१
शक्ति सर्वमयी नित्या ध्यात्वा प्रेमपरोऽभवत्।
प्रसन्ना स तदा देवी साध्रयोजनमायतम् ॥२
नगर चित्रकूटाद्री चकार कलिनिर्जरम्।
कलियक्ष भवेद्वद्धो नगरेऽस्मिन्सुरप्रिये ॥३
अत कलिजरो नाम्ना प्रसिद्धाऽभून्महीतले।
द्वादशाब्द कृत राज्य तेन पूवप्रदशवे ॥४
गौरवर्मा तस्य सुत कृत राज्य पितु समम्।
स्वानुज घोरवर्माण तत्रास्थाप्य मुदान्वित ॥५
गौडदेश समागम्य तत्र राज्यमकारयन्।
सुपर्णो नाम नृपतिस्ततोऽभूद्गरवर्मण ॥६
पितुस्तुल्य कृत राज्य रूपणस्तत्सुतोऽभवत्।
पितुस्तुल्य कृत राज्य कारवर्मा सुतोऽभवत् ॥७

इस अध्याय में परिहर भूपति क वंश में होन वाले नृपतियों के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—हे भृगुवर्य! अब आप परिहर राजा क वश का श्रवण करो। अथव वद म परायण राजा

रिहर ने बौद्धो को जीत लिया था ॥१॥ इसके पश्चात् नित्य सर्वमयी क्ति का ध्यान कर वह प्रेम मे परायण हो गया था । राजा के यान से देवी परम प्रसन्न होगई थी और उसने चित्रकूट पर्वत पर डेढ़ ोजन के विस्तार वाला कलिनिर्जर नामक नगर का निर्माण किया था वहा पर इस सुर प्रिय नगर म कलिब्रद्ध होगया था ॥२-३॥ इसी लिए यह नगर कलिंजर नाम से भूतल मे प्रसिद्ध हुआ था,उसने वहा पर पूर्व प्रदेश म दश वर्ष तक राज्य किया था॥४॥इसके गौर वर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था । इसने भी अपने पिता के समान ही राज्य का शासन किया था । फिर यह अपने छोटे भाई को जिसका नाम धौरवर्मा था प्रसन्नता पूर्वक उस राज्यासन पर स्थापित करके गौड देश मे आगया था और वहा राज्य किया था । उस गौर वर्मा का पुत्र सुवर्ण नामक राजा हुआ था ॥५-६॥ इसने अपन पिता के ही समान राज्य किया था । इसका पुत्र रूपण नाम धारी नृप हुआ था । इसका राज्य भी पिता के समान रहा था इसके पुत्र का नाम कारवर्मा था ॥७॥

शको नाम ततो राजा महालक्ष्मी सनातनीम् ।
त्रिवर्पाति च सा देवी कामाक्षीरूपधारिणी ॥८
स्वभक्तपालना चैव तत्र वासमकारयत् ।
शतार्द्धाब्द कृत राज्य तेन वै कामवर्मणा ॥९
मिथुन जनयामास भोगो भोगवती हि सा ।
विक्रमायैव नृपति सुता भोगवती ददौ ॥१०
स्वराज्य च स्वपुत्राय प्रददौ भोगवर्मणे ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य कालिवर्मा सुतोऽभवत् ॥११
महोत्सव महाकाल्या कृतवान्स च भूपति ।
तस्मै प्रसन्ना वरदा काली भूत्वा स्वयस्थिता ॥१२
कलिका बहुपुष्पार्णा सा चकार स्वहर्षत ।
ताभिर्भव च नगर सजात च मनोहरम् ॥१३
कलिकाता पुरी नाम्ना प्रसिद्धाभून्महीतले ।
कौशिकस्तस्य तनय पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥१४

कारवर्मा के पश्चात् शक नाम वाला राजा हुआ था जिसने सनातनी महालक्ष्मी की आराधना की थी। तीन वर्ष के अन्त मे कामाक्षी रूप के धारण करने वाली उस देवी ने जो अपने भक्तो के पालन करने वाली थी उस राजा का वहा वास करा दिया था। उस काम वर्मा न पचास वर्ष पर्यन्त राज्य किया था ॥८-९॥ उसने एक जोड़ा भोग और भोगवती उत्पन्न किया था। वह जो भोगवती सुता थी उसका दान राजा ने विक्रम के लिए कर दिया था और अपने पुत्र भोगवर्मा को अपना राज्य दे दिया था। इसने पिता के समान ही राज्य का शासन किया था। इसका पुत्र कालिवर्मा नाम वाला हुआ था ॥१० ११॥ इस राजा ने महाकाली देवी का एक महोत्सव किया था। इसम प्रसन्न हुई देवी उसके लिए वरदान देने वाली काली होकर वहा स्वय स्थित होगई थी ॥१२॥ उसने अपने हर्ष से बहुत से पुष्पो की कलिका करदी थी। उन कलिकाओ से होने वाला नगर—अत्यन्त ही मनोहर होगया था ॥१३॥ तब से वह इस भूमण्डल मे कलिकाता पुरी के नाम से प्रसिद्ध होगया है। इस राजा के कौशिक नाम धारी पुत्र समुत्पन्न हुआ था जिसने अपने पिता के तुल्य ही राज्य के सुख का उपभोग किया था ॥१४॥

कात्यायनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्य कृत पदम्।
तस्य पुत्रो हेमवत. पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥१५
शिववर्मा च तत्पुत्र पितुस्तुल्य कृत पदम्।
भववर्मा च तत्पुत्रः पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥१६
रुद्रवर्मा च तत्पुत्र. कृत राज्य पितु समम्।
भोजवर्मा च तत्पुत्रस्त्वयत्ना वै पतृक पदम् ॥१७
भोजराष्ट्रं वनोद्देशे कारयामास वीर्यवान्।
पितुस्तुल्य कृत राज्य गयवर्मा नृपोभवत् ॥१८
पितुस्तुल्य कृत राज्य विध्यवर्मा नृपोऽभवत्।
स्वानुजाय स्वर राज्य दत्वा वनमुपाययौ ॥१९

पितुस्तुल्य कृत राज्यं सुखसेनस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य वलाकस्तस्य चात्मजः ॥२०
दशवर्षं कृत राज्य लक्ष्मणस्तत्सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य माधवस्तत्सुतोऽभवत् ॥२१

इस वौशिक का पुत्र कात्यायन और कात्यायन का पुत्र हेमवत, उसका पुत्र शिववर्मा और शिववर्मा का पुत्र भववर्मा हुआ था इन सभी ने अपने २ पिता के समान ही राज्य के शासन का कार्य सुचारुतया किया था ॥१५-१६॥ भववर्मा राजा के यहा रुद्र वर्मा नृप न पुत्र रूप मे आकर जन्म ग्रहण किया था और अपने पिता की भाँति ही राज्य किया था । इसके फिर भोजवर्मा पुत्र समुत्पन्न हुआ था जिसने अपने पैतृक पद का त्याग कर दिया था और वीर्यवान् नृप ने वनोद्देश म भोजराष्ट्र बनाया था । इसके पश्चात् गववमा नृप हुआ जिसने पिता के ही समान राज्य किया था ॥१७ १८॥ फिर विन्ध्य वर्मा नृप हुआ जिसने पिता के तुल्य राज्य किया था । यह अपने छोटे भाई को राज्य सौंप कर वगदेश मे आगया था ॥१९॥ फिर सुखसेन नृप हुआ था जिसने पिता की भाँति राज्य किया था । इसके पुत्र का नाम बलाक हुआ था ॥२०॥ इस बालक न दश वर्ष ही राज्य किया था । वलाक के पुत्र का नाम लक्ष्मण था । इसने भी पिता के समान ही राज्य किया था । इसके यहाँ माधव न पुत्र रूप म जन्म धारण किया था ॥२१॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य केशवस्तत्सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य सुरसेनस्ततोऽभवत् ॥२२
पितुस्तुल्य कृत राज्य ततो नारायणोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य शातिवर्मासुतोभवत् ॥२३
गगाकूले शातिपुर रचित तेन धीमता ।
निवास कृतवान्भूप पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥२४
नदीवर्मा तस्य सुतो गगादत्तवरो बली ।
चकार नगरी रम्या नदीहा गौडराष्ट्रगाम् ॥२५

राष्ट्रदेशमुपागम्य जित्वा तस्य नृप वली ।
महावती पुरी रम्यामध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥३२
पितुस्तुल्य कृत राज्य धृतिवर्मा सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्य पुत्रो महीपति ॥३३
जयचद्राज्ञया भूप उर्वीमायामिति स्मृताम् ।
नगरी कारयामास तत्र वासमकारयत् ॥३४
कुरुक्षेत्रे हता सर्वे क्षत्रियाश्च द्रवशिन ।
तदा महीपत्ती राजा महावत्यधिपोऽभवत् ॥३५

उसके पुत्र गगा देव हुआ था जिसने दशवर्ष तक राज्य किया था । इसके पश्चात् अनग भूपति हुआ था । जिसने बीस वर्ष तक राज्य का सुखोपभोग किया था ॥२६॥ इसका तनय बलवान् था जोकि गौड देश का महीपति हुआ था । इसने अपने पिता के समान ही राज्य किया था । इसके पश्चात् राजेश्वर नाम वाला हुआ था । इसन पितातुल्य राज्य किया था । इसका पुत्र नृपसिंह हुआ था । इसन पिता के समान राज्य किया था । इसका पुत्र कलिवर्मा हुआ था ॥३०-३१॥ इस बलवान् ने राष्ट्रदेश मे पहुच कर वहा क राजा को जीत लिया था और फिर महावती रम्य पुरी रह कर सुखित हुआ था ॥३२॥ इसका राज्य शासन अपने पिता के समान ही था। इसका पुत्र धृतिवर्मा हुआ था । इसने पितृ तुल्य राज्य पद को भोगा था। इसका पुत्र महीपति हुआ था ॥३३॥ इस राजा ने जयचन्द्र की आज्ञा से उर्वीमाया कही जाने वाली नगरी की रचना कराई और अपना निवास किया था ॥३४॥ चन्द्रवश मे होने वाले समस्त क्षत्रिय नृप कुरुक्षेत्र के युद्ध म हत होगये थे । उस समय मे राजा महीपति उस महावती नगरी का स्वामी हुआ था ॥३५॥

विंशद्वर्षं कृत राज्य सहोद्दीनेन वै तत ।
कुरुक्षेत्रे मृति प्राप्ना सुयोधनकलांशका ॥३६
घोरवर्मा तु नृपति सुत परिहरस्य वै ।
कलिंजरे कृत राज्य शार्दूलस्तत्सुतोऽभवत् ॥३७

तदन्वये च ये भूपाः शार्दूलीयाः प्रकीर्तिताः ।
भूपानां बहुधा राष्ट्रं शार्दूलान्वयसंभवम् ॥३८
बभूव सर्वतो भूमौ महामायाप्रसादतः ।
इति ते कथितं विप्र पावकीयमहीभुजाम् ॥३६
कुलं सकलपापघ्नं यथैव शशिसूर्ययोः ।
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि यथा जातः स्वयं हरिः ॥४०

इस महीपति ने बीस वर्ष तक राज्य किया था और इसके अनन्तर सहोद्दीन के द्वारा सुयोधन के कलांश वाले मृत्यु को प्राप्त होगये थे ॥३६॥ घोरवर्मा परिहर का पुत्र था। इसने कलिंजर में राज्य किया था। इसके यहा शार्दूल ने पुत्र रूप में जन्म धारण किया था ॥३७॥ उसके वंश में जो राजा हुए हैं वे सब शार्दूलीय नाम से प्रसिद्ध थे। शार्दूल के वंश में उत्पन्न बहुधा राजाओं का राष्ट्र है ॥३८॥ जोकि महामाया के प्रभाव से भूमि पर सब ओर हुआ। हे विप्र! यह तुमको हमने पावकीय राजाओं का कुल कह सुनाया है जो शशि सूर्य के वंश की भांति ही समस्त पापों का नाशक है। अब फिर अन्य भी बताता हूँ। जिस तरह हरि स्वयं समुत्पन्न हुए थे ॥३८-४०॥

॥ भगवदवतारादिवृत्तान्त ॥

मध्याह्नकाले संप्राप्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
चाक्षुषांतरमेवापि महावायुर्बभूव ह ॥१
तत्प्रभावेन हेमाद्रिः कंपमानः पुनः पुनः ।
यथा वृक्षस्तथैवासौ तत्कंपादेव मंडलः ॥२
नभसो भूतले प्राप्तस्तदा भूमिः प्रकंपिता ।
बभूव मुनिशार्दूल सर्वलोकविनाशिनी ॥३
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च जलभूता बभूविरे ।
लोकालोकस्तदा शेषोऽभवत्सोत्तरपर्वतः ॥४

शेषा भूमिर्लयं प्राप्ता मुने मन्वतरे लये ।
सहस्राब्दातरे भूमिर्बभूव जलमध्यगा ॥५
तदा स भगवान्विष्णुर्भवेन विधिना सहं ।
शशुमारं शुभं चक्रं चकार नभसिस्थितम् ॥६
गृहीत्वा सकलास्तारा ग्रहान्सर्वान्यथाविधि ।
स्थापयामास भगवान्यथायोग्यं पितामहः ॥७

इस अध्याय मे ब्रह्माजी के मध्याह्न काल की प्राप्ति होने पर भगवान् के अवतार आदि के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है श्री सूतजी बोले— अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा के मध्याह्न काल के सम्प्राप्त होने पर चाक्षु पान्तर भी था उस समय महावायु हुआ था ॥१॥ उस महावायु का यह प्रभाव हुआ था कि हेमाद्रि बार-बार कम्पमान होगया था, जिस तरह कोई वृक्ष कम्पायमान हुआ करता है उसी तरह यह गिरि कापने लगा था। उसके कम्पन से मण्डल भी नभ से भूतल मे प्राप्त होगया था और उस समय यह भूमि भी प्रकम्पित होगई थी। हे मुनि शार्दूल ! उस समय यह सर्व लोको के विनाश करने वाली होगई थी ॥२-३॥ सातो द्वीप और समस्त समुद्र जलमय होगये थे। उस समय मे केवल उत्तर पर्वत लोकालोक शेष रह गया था ॥४॥ हे मुने ! शेष सभी भूमि लय को प्राप्त होगई थी और मन्वन्तर का भी लय होगया था। एक सहस्र वर्ष के अन्तर मे यह भूमि जल के मध्य मे गमन करने वाली होगई थी॥५॥उस समय मे भगवान् विष्णु ने भव (महादेव) और विधि (ब्रह्मा) के साथ नभ मे स्थित शशुमार शुभ चक्र को किया था ॥६॥ भगवान् पितामह ने सम्पूर्ण ताराओ को ग्रहण करके तथा समस्त ग्रहो को गृहीत करके यथाविधि यथायोग्य रीति से स्थापित किया था ॥७॥

पुनर्वै ज्योतिषा चक्रैः शोषिता सकला मही ।
स्थलीभूमायुताब्दान्ते दृश्यमाना बभूव ह ॥८
तदा स भगवान्ब्रह्मा मुखात्सोमं चकार ह ।
द्विजराजं महाप्राज्ञं सर्ववेदविशारदम् ॥९

भुजाभ्या भगवान्ब्रह्मा क्षत्रराज महाबलम् ।
सूर्यं च जनयामास राजनीतिपरायणम् ।।१०
ऊरुभ्या वैश्यराजं च समुद्र सरिता पतिम् ।
रत्नाकर च कृतवान्परमेष्ठी पितामह. ।।११
पद्भ्या च जनयामास विश्वकर्माणमुत्तमम् ।
दक्ष नाम कलाभिज्ञं शूद्रराज सुकृत्यकम् ।।१२
सोमाद्वै ब्राह्मणा जाता. सूर्याद्राजन्यवशजाः ।
समुद्रात्सवला वैश्या दक्षाच्छूद्रा बभूविरे ।।१३
सूर्यमंडलतो जातो मनुर्वैवस्वत. स्वयम् ।
तस्यराज्यमभूत्सर्वं प्राणिना लोकवासिनाम् ।।१४
फिर ज्योतियो के चक्रो के द्वारा समस्त भूमि शोधित हुई थी।

चतुश्शतानि वर्षाणि परमायुर्नृणा तदा ।
त्रेतायायौवनं प्राप्त पूर्वार्द्धात्सभवो हरे ॥१७
वर्षाणा त्रिशताना च नृणामायु: प्रकीर्तितम् ।
द्वापरे वार्द्धिको देवो नृणामायु. शतद्वयम् ॥१८
कलौ तु मरण प्राप्तो विश्वरूपो हरि. स्वयम् ।
नृणामायु शताब्द च केषाचिद्धर्मशालिनाम् ॥१६
परार्द्धाद्वामनो देवो महेन्द्रावरजो हरिः ।
चतुर्भुजो महाश्यामो गरुडोपरि सस्थित. ॥२०
विश्वरूपहितार्थाय त्रियुगी सबभूव ह ।
वामनार्द्धाच्च त्रियुगो जातो नारायण: स्वयम् ॥२१

अति दिव्य युगो की यह एक सप्तति जाननी चाहिए। उस समय वह भगवान् विष्णु विश्वरूपावतार वाले हुए थे ॥१५॥ पूर्वार्द्ध से विष्णु उत्पन्न हुए थे और परार्द्ध से स्वय वामन हुए थे। सत्य युग मे विश्वरूप सनातन वाल देव थे ॥१६॥ उस समय मे अर्थात् सत्ययुग म मनुष्यो की परमायु चार सौ वर्ष हुआ करती थी। हरि का पूर्वार्द्ध से सम्भव त्रेता मे यौवन को प्राप्त हुआ था ॥१७॥ त्रेता मे मानवो की परमायु तीन सौ वर्ष होती थी। द्वापर म देववार्धिक होगये और मनुष्यो की आयु दो सौ वर्ष की ही रह गई थी ॥१८॥ कलियुग मे विश्वरूप हरि स्वय मरण को प्राप्त हो गये थे और कुछ धर्मशाली मानवो की परमायु केवल एक सौ वर्ष की ही हो गई थी ॥१६॥ परार्द्ध स वामन देव जो महेन्द्र के अवरज हरि थे। यह चार भुजा वाले महान् श्याम वर्ण से युक्त और गरुड पर सस्थित थे ॥२०॥ विश्वरूप के हित के लिये इस तरह त्रियुगी हुए थे। वामनार्द्ध से नारायण स्वय समुत्पन्न हुए थे ॥२१॥

श्वेतरूपो हरि: सत्ये हंसाख्यो भगवान्स्वयम् ।
त्रेताया रक्तरूपश्च यज्ञाख्यो भगवान्स्वयम् ।

कलिकाले तु सप्राप्ते सध्याया द्वापरे युगे ।
कला तु सकला विष्णोर्वामनस्य तथा कला ।
एकीभूता च देवक्या जातो विष्णुस्तदा स्वयम् ॥२३
वसुदेवगृहे रम्ये मथुराया च देवता ।
ब्रह्माद्यास्तुष्टुवुर्देव पर ब्रह्म सनातनम् ॥२४
तदा प्रसन्नो भगवान्देवानाह शुभ वच. ।
देवाना च हितार्थाय दैत्याना निधनाय च ।
अह कलौ च बहुधा भवामि सुरसत्तमाः ॥२५
दिव्य वृ दावन रम्य सूक्ष्म भूतलसस्थितम् ।
तत्राह च रह.क्रीडा करिष्यामि कलौ युगे ॥२६
सर्वे वेदाः कलौ घोरे गोपीभूता. समततः ।
रस्यन्ते हि मया सार्द्ध त्यक्त्वा भूमडल तदा ॥२७
राधया प्रार्थितोऽह वै यदा कलियुगातके ।
समाप्य च रहःक्रीडा कल्की च भवितास्म्यहम् ॥२८

सत्ययुग में हरि हंसाख्य अर्थात् हंस नाम वाले स्वयं भगवान् श्वेत रूप वाले थे। त्रेता में रक्त रूप वाले भगवान् स्वयं यज्ञ नाम वाले हुए थे। द्वापर में पीत रूप वाले अर्थात् पीत वर्ण से युक्त स्वयं हरि स्वर्णगर्भ थे ॥२२॥ कलिकाल के सम्प्राप्त होने पर द्वापर युग की सन्ध्या में विष्णु की समस्त कला तथा वामन की कला ये समस्त देवकी में एकीभूत हो गई थी उस समय भगवान् विष्णु ने जन्म धारण किया था ॥२३॥ वसुदेव के रम्य गृह में मथुरा पुरी में ब्रह्मा आदि समस्त देवता एकत्रित हुए और इन सब ने सनातन परब्रह्म देव की स्तुति की थी ॥२४॥ उस समय परम प्रसन्न भगवान् ने देवों से यह वचन कहा था कि देवों के हित सम्पादन करने के लिए तथा दैत्यों के विनाश करने के लिये हे सुर श्रेष्ठो ! मैं बहुधा कलियुग में होता हूँ ॥२५॥ वृन्दावन परम दिव्य-रम्य एवं सूक्ष्म है और भूमण्डल में संस्थित है। वहाँ पर मैं कलियुग में रहस्य की क्रीड़ा करूँगा ॥२६॥ समस्त वेदगण इस घोर कलियुग में सब ओर से गोपियों के स्वरूप में होकर मेरे साथ यहाँ

रमण करेंगे और समस्त भूमण्डल का त्याग कर देंगे ॥२७॥ इस कलियुग के अन्त मे राधा के द्वारा जिस समय मैं प्रार्थित होऊगा तो उस रद क्रीडा को समाप्त करके फिर मैं कल्की होऊंगा ॥२८॥

युगांतप्रलय कृत्वा पुनर्भूत्वा द्विधातनु ।
सत्यधर्म करिष्यामि सत्य प्राप्ते सुरोत्तम ॥२९
इति श्रुत्वा तु ते देवास्तत्रैवान्तर्लय गता. ।
एव युगेयुगे क्रीडा हरेरद्भुतकर्मण ॥३०
ये तु वै विष्णुभक्ताश्च ते हि जानंति विश्वगम् ।
यथैव नृपतेर्दासा स्वराज्ञ कार्यगौरवम् ।
जानंति नापरे विप्र तथा दासा हरे स्वयम् ॥३१
विष्णुवाछानुसारेण विष्णुमाया सनातनी ।
रचित्वा विविधाँल्लोकान्महाकाली बभूव ह ॥३२
कृत्वा कालमय सर्व जगदेतच्चराचरम् ।
पश्चात्तु भक्षयित्वा तान्महागौरी भविष्यति ॥३३
नमस्तस्यै महाकाल्यै विष्णुमाये नमोनम ।
महागौरि नमस्तुभ्यमस्मान्पाहि भयान्वितान् ॥३४

युगान्त का प्रलय करके फिर द्विधा तनु हो कर हे सुरोत्तमो ! मैं सत्य के प्राप्त होने पर सत्य धर्म को करूगा ॥२९॥ इस प्रकार के भगवान् के वचनो को श्रवण करके वे देवगण वहा पर ही अन्तर्हित हो गये थे । इस प्रकार से युग-युग मे अद्भुत कर्म वाले हरि की क्रीडा होती है ॥३०॥ जो भगवान् विष्णु के भक्त होते है वे ही विश्वग को जानते है । जिस तरह से राजा के समीपस्थ जो दास होते हैं वे ही उस अपने राजा के कार्यो के गौरव को भली-भाँति जाना करते हैं । हे विप्र ! दूसरे इस रहस्य को नही जानते हैं जैसा कि हरि के दास स्वय जानते हैं ॥३१॥ भगवान् विष्णु की इच्छा के अनुसार सनातनी विष्णुमाया ने अनेक लोको की रचना करके वह महाकाली हो गई थी ॥३२॥ इस चर और अचर समस्त जगत् को कालमय करके और पीछे उनका भक्षण करके वह महागौरी हो जायगी ॥३३॥ हे विष्णुमाये ! महाकाली आपके

लिये नमस्कार है तथा बार-बार नमस्कार है। हे महागौरि! आपके लिये नमस्कार है। भय से युक्त हमारी रक्षा करो ॥३४॥

॥ दिल्ली के म्लेच्छ राजा ॥

महीराजान्मुनिश्रेष्ठ के राजानो बभूविरे।
तान्नो वद महाभाग सर्वज्ञोऽस्ति भवान्सदा ॥१
पैशाचः कुतुकोद्दीनो देहलीराज्यमास्थितः।
वलीगढ महारम्य यादवै रक्षित पुरम्।
ययौ तत्र स पैशाचः शूरायुतसमन्वितः ॥२
वीरसेनस्य वै पौत्रं भूपसेन नृपोत्तमम्।
स जित्वा कुतुकोद्दीनो देहलीग्रामसस्थितः ॥३
एतस्मिन्नंतरे भूपा नानादेश्याः समागताः।
जित्वा स कुतुकोद्दीन. स्वदेशात्तं निराकृतः ॥४
सहोद्दीनस्तु तच्छ्रुत्वा पुनरागत्य देहलीम्।
जित्वा भूपान्दैत्यवरो मूर्तिखडमथाकरोत् ॥५
तत्पश्चाद्बहुधा म्लेच्छा इहागत्य समन्ततः।
पंचषट्सप्तवर्षाणि भूत्वा राज्यं लय गताः ॥६
अद्यप्रभृति देशेऽस्मिन्म्लेच्छनवपान्निरे हि ते।
भूत्वा चाल्पायुषो मन्दा देवतीर्थविनाशकाः ॥७

गया था ॥२॥ नृपों मे अति उत्तम वीरसेन का पौत्र भूपसेन वहा पर था उसको जीत कर कुतुकोद्दीन देहली मे संस्थित हो गया था ॥३॥ इस अन्तर में अनेक देशो मे रहने वाले भूप वहा पर आये थे। कुतुकोद्दीन ने उन सबको जीत लिया था और वह अपने देश से उनके द्वारा निराकृत हो गया था ॥४॥ यह सुन कर फिर सहोद्दीन पुन देहली मे आ गया था और उस ईश्वर ने उन भूपो को जीत कर मूर्तियों का खण्डन किया था ॥५॥ इसके पश्चात् बहुधा सब ओर से यहा आये थे और पाच छै सात वर्षों तक राज्य करके लय को प्राप्त हो गये थे ॥६॥ आज तक इस देश मे सौ वय से वे होकर यहा रहे हैं जो अल्प आयु वाल मन्द और देवों तथा तीर्थों के विनाश करने वाले है ॥७॥

म्लेच्छभूपा मुनिश्रेष्ठास्तस्माद्यय मया सह ।
गतुमर्हथ वै शीघ्र विशाला नगरी शुभाम् ॥८
इति श्रुत्वा तु वचन दु खात्सत्यज्य नैमिषम् ।
ययु सर्वे विशालाया हिमाद्रौ गिरिसत्तमे ॥९
तत्र सर्वे समाधिस्था ध्यात्वा सवमय हरिम् ।
शतवर्षान्तरे सर्वे ध्यानाद्ब्रह्मगृह ययु ॥१०
इत्येव सकल भाव्य योगाभ्यासवशाद्द्रुतम् ।
वर्णित च मया तुभ्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥११
भगव वेदतत्त्वज्ञ सर्वलोकशिवकर ।
अह मायाभवो जातो भवान्वेदभवो भुवि ॥१२
अविद्यया न सकल मम ज्ञान समाहृतम् ।
अतोऽह विविधा योनीर्गृहीत्वा लोकमागत ॥१३
पर ब्रह्मैव कृपया दृष्ट्वा मा मन्दभागिनम् ।
व्यासरूप स्वय कृत्वा समुद्धर्तु मुपागत ॥१४

हे मुनिश्रेष्ठो ! इस कारण से आप सब लोग मेरे साथ शीघ्र ही इस विशाल शुभ नगरी को जाने के योग्य होते हो ॥८॥ इस वचन का श्रवण करके वे सब बडे ही दु ख के साथ नैमिष का परित्याग करके

गिरियो मे श्रेष्ठ हिमाद्रि मे विशाला मे चले गये थे ॥६॥ वहा पर सब समाधि मे स्थित हो गये थे और सर्वमय हरि का ध्यान करके शत वर्ष के अन्तर मे ध्यान से वे ब्रह्म गृह को चले गये थे ॥१०॥ व्यासजी ने कहा—इस प्रकार से यह सब होने वाला जो कुछ था वह योगाभ्यास से शीघ्र ही मैंने तुमको वर्णन करके सुना दिया है। अब आगे और तुम क्या श्रवण करना चाहते हो ? ॥११॥ मनु ने कहा—हे भगवन् ! आप समस्त वेदो के तत्त्वो को जानने वाले हैं और सब लोको के कल्याण के करने वाले है। मैं तो यहा माया होने वाला उत्पन्न हुआ हूँ और आप भूमि पर वेदो से उत्पन्न होने वाले हैं ॥१२॥ अविद्या से मेरा सम्पूर्ण ज्ञान समाहृत हो गया है। इसलिये मैं अनेक प्रकार की योनियो को प्राप्त करके इस लोक मे आया हू ॥१३॥ मुझ मन्द भाग्य वाले को देख कर यहा ही कृपा कर स्वय व्यास के रूप को धारण करके मेरा उद्धार करने के लिये यहा सम्प्राप्त हुए हैं ॥१४॥

नमस्तस्मै मुनीद्राय वेदव्यासाय साक्षिणे ।
अविद्यामोहभावेभ्यो रक्षणाय नमोनम. ॥१५

पुनरन्यच्च मे ब्रूहि सूताद्यै किं कृत मुने ।
तत्सर्वं कृपया स्वामिन्वक्तुमर्हसि साप्रतम् ॥१६

ब्रह्माडे ये स्थिता लोकास्ते सर्वस्मिन्कलेवरे ।
अहकारो हि जीवात्मा सर्वं स्यात्कोटिहीनक: ॥१७

पुराणोऽणोरणीयाश्च षोडशात्मा सनातन. ।
इन्द्रियाणि मनश्चैव पञ्च चेन्द्रियगोचरा ॥१८

ज्ञेयो जीव: शरीरेऽस्मिन्स ईशगुणवर्धित ।
ईशो ह्यष्टादशात्मा वै शकरो जीवशकर ॥१९

बुद्धिर्मनश्च विषया इन्द्रियाणि तथैव च ।
अहकारस्य चेशो वै महादेव: सनातन ॥२०

जीवो नारायणस्साक्षाच्छङ्करेण विमोहित ।
स यद्धत्त्रिगुणं. पार्मेश्वश्च बहुधाभवत् ॥२१

मुनियो मे परम श्रेष्ठ शिरोमणि साक्षी स्वरूप उन आप वेद व्यास के लिये मेरा नमस्कार है। अविद्या और मोह के भावो से रक्षा करने वाले आपके लिये मेरा बार बार नमस्कार है ॥१५॥ हे मुने ! फिर और मुझे आप बताइये कि सूत आदि ने क्या किया था। हे स्वामिन् ! वह सभी अब आप कृपा करके मुझे बताने के योग्य होते हैं ॥१६॥ व्यासजी ने कहा—ब्रह्माण्ड मे जो लोक स्थित हैं वे सब इस कलवर मे हैं। अहकार यह सब जीवात्मा है जो कोटिहीनक है ॥१७॥ पुराण और अणु से भी छोटा यह सनातन जीवात्मा षोडश स्वरूप वाला है। पाँच ज्ञानेन्द्रिया और पाच कर्मेन्द्रिया और एक मन तथा पाच इन्द्रियो के गोचर विषय हैं। इस तरह ये सोलह रूप वाला है ॥१८॥ वह ईश गुण से वञ्चित इस शरीर मे जीव जानना चाहिए। ईश अष्टदशात्मा जीवो के कल्याण करने वाला शकर है ॥१६॥ बुद्धि-मन विषय इन्द्रिया और अहकार और वह सनातन ईश महादेव है ॥२०॥ जीव साक्षात् नारायण है वह शकर के द्वारा विमोहित हो रहा है। वह त्रिगुण पाशो के द्वारा बद्ध हो रहा है और एक तो बहुधा होता था ॥२१॥

कालात्मा भगवानीशो महाकल्पस्वरूपक ।
शिवकल्पो ब्रह्मकल्पो विष्णुकल्पस्तृतीयक ।
ईशनेत्राणि तान्येव बन्धकल्पश्चतुर्थक ॥२२
वायुकल्पो वह्निकल्पो ब्रह्माडो लिंगकल्पक ।
ईशवक्त्राणि पञ्चैव तत्त्वज्ञै कथितानि वै ॥२३
भविष्यकल्पश्च तथा तथा गरुडकल्पक ।
कल्पो भागवतश्चैव मार्कण्डेयश्च कल्पक ॥२४
वामनश्च नृसिंहश्च वराहो मत्स्यकूर्मको ।
ज्ञानात्मनो महेशस्य ज्ञेया दश भुजा बुधै ॥२५
अष्टादशदिनेष्वेव ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ।
कल्पाश्चाष्टादशास्सर्वे बुधैर्ज्ञेया विलोमत ॥२६
कूर्मकल्पश्च तत्राद्यो मत्स्यकल्पो द्वितीयक ।
तृतीय श्वेतवाराह कल्पो ज्ञेय पुरातन ॥२७

द्विधा च भगवान्ब्रह्मा सूक्ष्म स्थूलोऽगुणो गुणी ।
सगुण स विराणाम्ना विष्णु नाभिसमुद्भव ।।२८

भगवान् ईश कानात्मा महाकल्प स्वरूप वाले हैं । तीन कल्प हैं—शिव कल्प, ब्रह्म कल्प और तीसरा विष्णु कला है । वे तीनो ही ईश क भेद होते हैं । चौथ व घ कल्प होता है ॥२२॥ वायु कल्प—वह्निकल्प—ब्रह्माण्ड कल्प—लिंग कल्प इन पाँचो कल्पो को ही ईश के तत्वनो के द्वारा मुख कहे गये है ॥२३॥ भविष्य कल्प—गरुड कल्प—भागवत कल्प—माकण्डेय कल्प—वामन नृसिंह वराह मत्स्य और कूम ये ज्ञानात्मा महेश की भुजो के द्वारा दश भुजा जानी गई हैं ॥२४ २५॥ अव्यक्त ज मा ब्रह्म क अठारह न्तो मे ही ये सब अष्टादश कल्प विलोम से विद्वानो के द्वारा जानने चाहिए ॥२६॥ उनम आद्य अर्थात् सब से प्रथम होने वाला कूम कल्प है और दूसरा मत्स्यकल्प होता है । तृतीय कल्प का नाम श्वेत वाराह कल्प है जो कि पुरातनो के द्वारा जानने के योग्य होता है ॥२७॥ भगवान् ब्रह्मा दो प्रकार के रूप वाले हैं—सूक्ष्म और स्थूल तथा अगुण और गुणी ये दो रूप हैं । सगुण वह विराट नाम वाले विष्णु की नाभि से उत्पन्न होने वाले हैं ॥२८॥

निर्गुणोऽव्ययरूपश्चाऽव्यक्तज मा स्वभ् स्वयम् ।
ब्रह्मण सगुणस्यैव शतायु कालनिर्मितम् ।।२९
ऊनविंशसहस्राणि लक्षको मानुपाब्दके ।
एभिर्वर्षैदिन ज्ञेय विराजो ब्रह्मण स्वयम् ।।३०
निर्गुणोऽव्यक्तजन्मा च कालात्सर्वेश्वर पर ।
अव्यक्त प्रकृतिर्ज्ञेया द्वादशागानि वै तत ।।३१
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरव्यक्तस्य स्मृतानि वै ।
अव्यक्ताच्च पर ब्रह्म सूक्ष्मज्योतिस्तदव्ययम् ।।३२
यदा व्यक्ते स्वय प्राप्तोऽव्यक्तजन्मा हि सस्मृत ।
शतवर्षसमाधिस्थो यस्तिम्श्च निरतरम् ।।३३
सूक्ष्मो मनोनिलो भूत्वा गच्छेद्ब्रह्मण पदम् ।
सत्य लोकमिति ज्ञेय योगगम्य सनातनम् ।।३४

तत्र स्थाने तु मुनयो गत सर्वे समाधिना ।
तत्रोषित्वा च लक्षाब्द भूर्लोकारक्षणमात्रकम् ॥३५

जो निर्गुण हैं वह अव्यय रूप वाले—अव्यक्त जन्म वाले स्वय स्वभू हैं । सगुण ब्रह्मा की ही काल से निर्मित शतायु होती है ॥२६॥ मनुष्य के वर्षों से एक लाख उन्नीस हजार वर्ष विराट् ब्रह्मा का स्वय एक दिन होता है ॥३०॥ जो निर्गुण ब्रह्मा का स्वरूप है वह तो अव्यक्त जन्म वाला है और काल से भी परे है तथा सब का ईश्वर है । अव्यक्त प्रकृति जाननी चाहिये अर्थात् प्रकृति को ही अव्यक्त कहा जाता है । उसके बारह अ ग होते हैं । वे अव्यक्त के बारह अ ग पाच ज्ञानेन्द्रिय पाच कर्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि ये होते हैं । ब्रह्मा अव्यक्त से पर है वह सूक्ष्म ज्योति और अव्यय होता है ॥३२॥ जिस समय मे व्यक्त म स्वय प्राप्त होता है तो अव्यक्त जन्मा सस्मृत होता है । शत वर्ष पर्यन्त समाधि म जो निरन्तर स्थित होता है वह सूक्ष्म मनोऽनिल होकर ब्रह्मा के पद को प्राप्त होता है । वह सत्य लोक जानने के योग्य है । जो सनातन अर्थात् सर्वदा रहन वाला और योग के द्वारा गम्य होता है ॥३३-३४॥ उस स्थान पर समाधि के द्वारा समस्त मुनि गण गये थे । भूर्लोक से क्षणमात्र के लिये वहाँ एक लक्ष वर्ष तक निवास करते हैं ॥३५॥

सच्चिदानदघनक तत प्राप्ता कलेवरे ।
नेत्राणि च समुन्मील्य सप्राप्ते द्वितयाह्निके ॥३६
ददृशुर्मनुजान्सर्वान्पशुतुल्यान्हि सूक्ष्मकान् ।
षष्टचब्दायुयु तान्घोरान्सार्द्ध किष्कुद्वयोन्नतान् ॥३७
क्वचित्क्वचित्स्थिता वर्णा वर्णसकरसन्निभा ।
सर्वे म्लेच्छाश्च पापडा बहुरूपमतो स्थिता ॥३८
तीर्थानि सकला वेदास्त्यक्त्वा भूमडल तदा ।
गोप्यो भूत्वा च हरिणा सार्द्ध चक्रुर्महोत्सवम् ॥३९
पाषडा बहुजातीया नानामार्गप्रदर्शका ।
कलिना निर्मितान्वर्णान्वर्चयित्वा स्थिता भुवि ॥४०

इति दृष्ट्वा तु मुनयो रोमहर्षणमतिके ।
गत्वा तत्र भवष्यिति तत प्राजलयो हि तें ते ॥४१
तैंश्च तत्र स्तुत सूतो योगनिद्रा सनातनीम् ।
कथयिष्यति सत्यज्य कल्पाख्यान मुनीन्प्रति ।
तच्छृणुष्व नृपश्रेष्ठ यथा सूतेन वर्णितम् ॥४२

इसके पश्चात् क्लेवर मे सच्चिदानन्द घन को प्राप्त हुए थे । द्वितीय दिन के प्राप्त होने पर आँखो को खोल कर समस्त सूक्ष्म मनुजो को पशु के तुल्य उन्होने देखा था । जिनकी साठ वर्ष की आयु थी घोर थे और ढाई किष्कु के समान ऊँचे थे ॥३६ ३७॥ उन्होंने देखा था कि यहा कहीं कही पर वर्ण थे जो कि वर्णसकर के ही तुल्य थे । सभी लोग म्लेच्छ पाखण्ड से भरे हुए और बहुत प्रकार के मतों एव रूपो म स्थित थ ॥३८॥ समस्त तीर्थ और वेद उस समय म इस भूमण्डल का त्याग कर गये थे । वे सब गोपियाँ होकर हरि के साथ महोत्सव करत थे ॥३९॥ पाखण्ड से पूर्ण बहुत सी जातियो वाले तथा अनेक मार्गों के प्रदर्शन करने वाले थे । वे सब भूतल पर कलि के द्वारा निर्मित वर्णो को वञ्चित करक स्थित होने वाले थे ॥४०॥ इस प्रकार की भूमण्डल की दशा को देख कर मुनिगण रोमहर्षण के समीप म जाकर वहा पर होगे । इसके पश्चात् वे सब प्राञ्जलि वाले होगे । उन सब के द्वारा स्तुति किये सूत सनातनी योगनिद्रा को कहेंगे और मुनियो से जो कल्पाख्यान कहत उसका त्याग करेंगे । हे नृप श्रेष्ठ ! अब उसका श्रवण करो जैसा सूतजी ने वर्णन किया था ॥४१ ४२॥

कल्पाख्यान प्रवक्ष्यामि यद्दृष्ट योगनिद्रया ।
तच्छृणुध्व मुनिश्रेष्ठा लक्षाब्दाते यथाभवत् ॥४३
मुकुला वयसभूतो म्लेच्छभूप पिशाचक ।
नाम्ना तिमिरलिगश्च मध्यदेशमुपाययौ ॥४४
आर्या म्लेच्छास्तदा भूपाञ्जित्वा कालस्वरूपक ।
देहलीनगरीमध्ये महावधमकारयत् ॥४५

आहूय सकलान्विप्रानार्यदेशनिवासिन. ।
उवाच वचन धीमान्यूय मूर्तिग्रपूजका ॥४६
निर्मिता येन या मूर्तिस्तस्य पुत्रीसमा स्मृता ।
तस्या कि पूजन शुद्ध शालग्रामशिलामयम् ।
विष्णुदेवश्च युष्माभि प्रोक्ता स तु न वै हरिः ॥४७
अतो व सकला वेदा शास्त्राणि विविधानि च ।
वृथा कृतानि मुनिभिर्लोकवञ्चनहेतवे ।
इत्युक्त्वा ताम्बलद्गृह्य ज्वलदग्नौ समाक्षिपत् ॥४८
शालिग्रामशिला. सर्वा बलारोपा सुपूज्यका ।
गृहीत्वा चोष्ट्रपृष्ठेषु समारोप्य गृह ययौ ॥४९

सूतजी ने कहा—मैं कल्पाख्यान का वर्णन करूगा जो योगनिद्रा के द्वारा देखा गया है। हे मुनि श्रेष्ठो ! द्राय अब उसका श्रवण करो। एक लक्ष वर्ष के अन्त म जिस तरह से हुआ था ॥४३॥ मुकुल नाम वाले वंश मे उत्पन्न म्लेच्छ राजा पिशाचक जिसका नाम तिमिर लिंग (तैमूर लग) था मध्य देश मे आया था ॥४४॥ काल के समान स्वरूप वाले उसने आर्य भूप और म्लेच्छ भूप इन सब को जीत लिया था और देहली नगरी के मध्य मे महान् वध उसने कराया था ॥४५॥ उसने आर्य देश के निवास करने वाले समस्त ब्राह्मणो को बुलाकर कहा—आप बुद्धिमान हैं और मूर्ति का पूजन करने वाले हैं ॥४६॥ जिसने जिस मूर्ति का निर्माण किया है वह तो उसकी पुत्री के ही समान होती है क्योकि उसे उसने पुत्री के समान बना कर तैयार किया है। क्या उसका यजन करना शुद्ध है अथवा शिलामय शालग्राम का पूजन शुद्ध है ? आप लोगो ने विष्णु को देव कहा है किन्तु वह तो हरि नही है ॥४७॥ इसलिये आपके समस्त देवता सम्पूर्ण वेद और सब शास्त्र जो कि अनेक प्रकार के हैं, इन सबकी रचना मुनियों ने व्यर्थ ही की है और केवल लोको की वचना करने के लिये ही इनका निर्माण किया गया है, इनमे कुछ भी तथ्यांश नही है। इस प्रकार से कह कर उनको बलात् ग्रहण करके जलती हुई अग्नि मे फेंक दिया था ॥४८॥ समस्त शालग्रामो को

शिलाओं को जो कि सुपूज्य थी उन्हें जबर्दस्ती से छीन कर ऊँटों की पीठ पर लदवाकर गृह को चला गया था ॥४६॥

तैत्तिर देशमागम्य दुर्गं तत्र चकार स. ।
शालिग्रामशिलाना च स्वासनारोहण कृतम् ॥५०
तदा तु सकला देवा दु खिता वासव प्रभुम् ।
समूचुर्बहुधालप्य देवदेव शचीपतिम् ॥५१
वय तु भगवन्सर्वे शालग्रामशिलास्थिता ।
त्यक्त्वा मूर्तीश्च सकलाः कृष्णाशेन प्रबोधिता ।
शालग्रामशिलामध्ये वसामो मुदिता वयम् ॥५२
शिलास्सर्वाश्च नो देव शालदेशसमुद्भवा ।
ताश्च वै म्लेच्छराजेन स्वपदारोहणीकृता ॥५३
इति श्रुत्वा तु वचन देवाना भगवान्सुरराट् ।
ज्ञात्वा बलिकृत सर्वं देवपूजानिराकृतम् ॥५४
चुकोप भगवानिन्द्रो दैत्यान्प्रत्यभ्रवाहन ।
गृहीत्वा वज्रमतुल स्वायुध दैत्यनाशनम् ।
तैत्तिरे प्रेषयामास देशे म्लेच्छनिवासये ॥५५
तस्य शब्देन सकला देशाश्च बहुभिन्नका ।
स म्लेच्छो मरण प्राप्तस्तदा सयसभाजनै ॥५६
शालग्राममशिला सर्वा गृहीत्वा विबुधास्तदा ।
गण्डक्या च समाक्षिप्य स्वर्गलोकमुपाययु ॥५७

होने वाली वाली हमारी सम्पूर्ण शिलाऐं जो थी जिन में हम लोग निवास किया करते थे उनको ने जाकर म्लेच्छ राज ने अपने पैरों के नीचे लगाकर उन पर आरोहण कर लिया है ।।५३।। इस प्रकार के स्वराट् भगवान् इन्द्र ने देवों के वचनों को सुनकर उस बलि के द्वारा किया हुआ यह देव पूजा का निरादर सब जानकर भगवान् इन्द्र जो अभ्र वाहन थे दैत्यों के प्रति बहुत अधिक क्रोधित हुए थे। उन्होंने दैत्यों के नाश करने वाला अतुल वज्र अपना आयुध ग्रहण किया था और उसे म्लेच्छ के निवास स्थान तैत्तिर देश में प्रेषित कर दिया था ।।५४ ५५।। उसके शब्द से ही समस्त देश बहुत टुकडो में छिन्न भिन्न हो गये थे और वह म्लेच्छ मृत्यु को प्राप्त हो गया था। तब समस्त सभासद मनुष्यों ने वे सम्पूर्ण शालग्राम की शिलाओं को जो पण्डित थे उन्होंने लेकर गण्डकी नदी में फेंक दिया था और वे सब स्वर्ग लोक को चले गये थे ।।५६ ५७।।

महेन्द्रस्तु सुरैः सार्द्धं देवपूज्यमुवाच ह।
महीतले कलौ प्राप्ते भगवन्दानवोत्तमा ।।५८
वेदधर्मं समुल्लध्य मम नाशनतत्परा ।
अतो मा रक्ष भगवन्देवै सार्द्धं कलौ युगे ।।५९
महेन्द्र तव या पत्नी शची नाम्ना महोत्तमा ।
ददौ तस्यै वर विष्णुर्भवितास्मि सुत कलौ ।।६०
त्वदाज्ञया च सा देवी पुरी शांतिमयी शुभाम् ।
गौडदेशे च गगाया कूले लोकनिवासिनीम् ।।६१
प्रत्यागत्य द्विजो भूत्वा कार्यसिद्धिं करिष्यति ।
भवान्वै ब्राह्मणो भूत्वा देवकार्यं प्रसाधय ।।६२
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं रुद्रैरेकादशैः सह ।
अष्टभिर्वसुभिः सार्धमश्विभ्यां स च वासव ।।६३
तीर्थराजमुपागम्य प्रयाग च रविप्रियम् ।

बृहस्पतिस्तदागत्य सूर्यमाहात्म्यमुत्तमम् ।
इन्द्रादीन्कथयामास द्वादशाध्यायमापठन् ।।६५

तब महेन्द्र ने देवो के साथ जाकर देव पूज्य से कहा था—महीतल मे कलियुग के प्राप्त होने पर हे भगवन् ! दानवोत्तम वेद के धर्म का उल्लघन करके मेरे नाश करने मे तत्पर होगे । इसलिए हे भगवन् ! देवो के साथ इस कलियुग मे मेरी रक्षा करना ।।५६।। जीव ने कहा—हे महेन्द्र ! आपकी जो महान् उत्तम शची नाम वाली है उसको विष्णु भगवान् ने वरदान दिया था कि मैं कलियुग मे तेरा पुत्र होऊँगा ।।६०।। आपकी आज्ञा से वह देवी गौड देश मे भागीरथी गगा के तट पर लोक निवासिनी शुभ शान्तिमयी पुरी मे आकर द्विज होकर कार्य की सिद्धि करेगी । आप ब्राह्मण होकर देवो के कार्य का प्रसाधन करिए ।।६१-६२।। यह गुरु का वाक्य सुन कर एकादश रुद्र और आठ वसुओ के साथ तथा अश्विनी कुमारो को साथ लेकर उस वासव (इन्द्र) ने रविदेव के परम प्रिय तथा समस्त तीर्थों के राजा प्रयाग मे आकर माघ मास मे जब मकर राशि पर सूर्यदेव स्थित हुए थे उस समय मे वहा इन्द्र ने सूर्य देव को सन्तुष्ट किया था ।।६३-६४।। उस समय देवो के गुरु बृहस्पति ने वहा आकर परम उत्तम सूर्य देव का माहात्म्य के बारह अध्याय इन्द्रादि देवो के आगे कहा था और उन्होने उस माहात्म्य के बारह अध्यायो को पढ़ा था ।।६५।।

।। चैतन्य और शकराचार्य उत्पत्ति ।।

विष्णुशर्मा पुरा कश्चिद्विप्रोभूद्वेदपारगः ।
सर्वदेवमय विष्णु पूजयित्वा प्रसन्नधी ।।१
अन्यैस्सुरैश्च संपूज्यो बभूव हरिपूजनात् ।
भिक्षावृत्तिपरो नित्य पत्नीमान्पुत्रवर्जितः ।।२
यदाचित्तस्य गेहे वै व्रती कश्चिरमागतः ।
द्विजपत्नी तदैवाको मलिनग्रा दरिद्रिणीम् ।
दृष्ट्वोवाच महाभागः स स्पर्शाढ्यो दयापरः ।।३

अनेन स्पर्शमणिना लोहधातुश्च काचनम् ।
भवेत्तस्मान्महासाध्वि त्रिदिनातं गृहाण तम् ।।४
स्नात्वा तावत्सरय्वा चायास्यामि तेतिक मुदा ।
इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो ब्राह्मणी वहु काचनम् ।
कृत्वा लक्ष्मी समाप्यासीद्विष्णुशर्मा तदागमत् ।।५
वहुस्वर्णयुता पत्नी दृष्ट्वोवाच हरिप्रियः ।
गच्छ नारि मदाघूर्णे यत्र वै रसिको जनः ।।६
अहं विष्णुपरो दीनश्चौरभीतः सदैव हि ।
मधुमत्तां कथ त्वा वै गृहीतुं भुवि च क्षमः ।।७

इस अध्याय मे कृष्ण चैतन्य भगवान् की उत्पत्ति के वृत्तान्त का वर्णन तथा भगवान् शकराचार्य की उत्पत्ति के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । जीव (वृहस्पति) ने कहा—पहिले समय मे समस्त वेदो का पारगामी अर्थात् पूर्ण विद्वान विष्णु शर्मा नामक कोई ब्राह्मण हुआ था यह समस्त देवो से परिपूर्ण भगवान् विष्णु का पूजन करके प्रसन्न बुद्धि वाला रहा करता था।।१।।भगवान् हरि के पूजन करने के प्रभाव से अन्य मुगो के द्वारा भी यह सम्पूज्य होगया था । यह भिक्षा वृत्ति मे नित्य तत्पर रहता था और पत्नी वाला तो था किन्तु पुत्र से रहित था ।।२।। किसी समय मे उसके घर मे कोई व्रती आया था । उसने उसकी पत्नी को उस समय मे अकेली भक्ति भाव से परम विनम्र और दरिद्रिणी देखी थी । ऐसा देख कर स्पर्शमणि रखने वाला-दयापरायण वह महाभाग उस द्विज पत्नी से बोला—।।३।।इस स्पर्श मणि से स्पर्श कराते ही लोहा सुवर्ण हो जाता है। इसलिए हे महासाध्वि ! इसे तू तीन दिन तक ग्रहण कर अपने पास रख ले ।।४।। मैं तब तक सरयू मे स्नान करके तेरे पास आनन्द पूर्वक आऊँगा । यह कह कर वह विप्र चला गया था । उस ब्राह्मणी ने बहुत सा सुवर्ण बना कर लक्ष्मी को समाप्त करके बैठी थी उस समय विष्णु शर्मा आगया था ।।५।। उस हरि के प्रिय ने बहुत सुवर्ण से युक्त पत्नी को देख कर उससे कहा—हे मदाघूर्णे नारि ! तू वहीं चली जा जहा वह रसिक व्यक्ति रहता है ।।६।। मैं तो विष्णु

परायण दीन हूँ और सदा ही चोरों से भयभीत रहता हूँ। तुझ मधुमत्ता को मैं इस भूमि तल में कैसे ग्रहण करने में समर्थ हो सकूँगा ॥७॥

इति श्रुत्वा वचो घोर पतिभीता पतिव्रता ।
सस्वर्णं स्पशकं तस्मै दत्त्वा सेनापराभवत् ॥८
द्विजोऽपि घर्घरामध्ये तद्द्रव्य बलतोऽक्षिपत् ।
त्रिदिनान्ते च स यतिस्तत्रागत्य मुदान्वित ।
उवाच ब्राह्मणी दीना स्वर्णं किं न कृतं त्वया ॥९
साह भो मत्पतिश्शुद्धो गृहीत्वा स्पर्शकं रुषा ।
घर्घरे च निचिक्षेप ततोहं वह्निपाकिनी ।
निर्लोहो वतते विप्रस्तत प्रभृति हे गुरो ॥१०
इति श्रुत्वा तु वचन स यतिर्विस्मयान्वित ।
स्थित्वा दिनान्ते त विप्रमुवाच बहु भर्त्सयन् ॥११
दरिद्रो भिक्षुकश्चास्ति भयान्दैवेन मोहित ।
देहि मे स्पर्शकं शीघ्रं नो चेत्प्राणास्त्यजाम्यहम् ॥१२
इत्युक्तवत यतिन विष्णु शर्मा तदाब्रवीत् ।
गच्छ त्व घर्घराकूले तत्र वै स्पर्शकस्तव ॥१३
इत्युक्त्वा यातिना सार्द्धं गृहीत्वा कटका बहून् ।
यतिने दर्शयामास स्पर्शकानिव कटकान् ॥१४

उस पति की परम भक्त पतिव्रता तथा पति से भीत रहने वाली ने जब यह वचन घोर रूप वाले सुने तो तुरन्त ही उसने इस समस्त सुवर्ण के सहित उस स्पर्श मणि को अपने पति को समर्पित करके पति की सेवा में तत्पर होगई थी ॥८॥ उस ब्राह्मण ने भी वह द्रव्य घर्घरा के मध्य में बलपूर्वक डाल दिया था और दिन के अन्त में आनन्द युत वह यति वहाँ आया और उस दीना ब्राह्मणी से बोला—क्या तूने स्वर्ण बनाया है ?॥६॥ वह बोली—मेरा पति शुद्ध है उसने उस स्पर्शमणि को ग्रहण करके क्रोध से घर्घर में उसे फेंक दिया था तब से मैं वह्निपाकिनी हूँ। विप्र बिना लोहा वाला है। हे गुरो ! तभी से यह लगा है॥१०॥ यह सुनकर उस यति ने विस्मय से अन्वित होकर वह वहाँ स्थित होगया था।

जब दिन का अन्त हुआ तो उस समय में उस यति ने ब्राह्मण को बहुत ही फटकारा और उससे कहा था ॥११॥ आप दरिद्र और भिक्षुक हैं। आपको दैव के द्वारा मोह प्राप्त होगया है ! अब मुझे वह स्पर्श मणि शीघ्र वापिस दे नहीं तो मैं यहां प्राणों का त्याग करता हूँ ॥१२॥ इस प्रकार से कहने वाले यति से उस समय विष्णु शर्मा ने कहा—तुम घघरा के तट पर जाओ वहां पर ही आपकी वह स्पर्शमणि उपस्थित है ॥१३॥ विष्णु शर्मा उस यति के साथ जाकर बहुत से कष्टकों का उसने ग्रहण कर लिया था और उस यति को उन कांटों को स्पर्शमणि के समान कार्य करने वाले दिखा दिये थे ॥१४॥

तदा तु स यती विप्रं नत्वा प्रोवाच नम्रधीः ।
मया वै द्वादशाब्दान्तं सम्यगाराधितः शिवः ।
ततः प्राप्तं शुभं रत्नं तत्तु त्वद्दर्शनेन वै ॥१५
स्पर्शको बहुधा प्राप्तो मया लोभात्मना द्विज ।
इत्याभाष्य शुभं ज्ञानं प्राप्तो मोक्षमवाप्तवान् ॥१६
विष्णशर्मा सहस्राब्दमुषित्वा जगतीतले ।
सूयमाराध्य विधिवद्विष्णोर्मोक्षमवाप्तवान् ॥१७
स द्विजो वैष्णवं तेजो धृत्वा वै मासि फाल्गुने ।
त्रैलोक्यमतपत्स्वामी देवकार्यपरायणः ॥१८
इत्युक्त्वा भगवाञ्जीवः पुनः प्राह शचीपतिम् ।
फाल्गुने मासि तं सूर्य समाराध्य सुखी भव ॥१९
इत्युक्तो गुरुणा देवो ध्यात्वा मवमयं हरिम् ।
पूजनैर्बहुधाकारैर्देवदेवमपूजयत् ॥२०
तदा प्रसन्नो भगवान्मभूत्सूर्यमण्डलात् ।
चतुर्भुजो हि रक्ताङ्गो यथा यक्षस्तथैव सः ।
पश्यतां सर्वदेवानां शक्रदेहमुपागमत् ॥२१

उस समय में वह यती बहुत ही विनम्र होकर विप्र को प्रणाम करके बोला—मैंने तो बारह वर्ष तक शिव की आराधना की थी और बहुत ही अच्छी तरह से शिव को समाराधित किया था। तब मैंने यह

उत्तम रत्न प्राप्त किया था और वही आपके दर्शन से ही बहुत सी स्पर्शमणियां लोभासक्त मैंने हे द्विज ! प्राप्त करली हैं। यह कह कर उसने शुभ ज्ञान को प्राप्त किया और मोक्ष का प्राप्त किया था ॥१५-१६॥ विष्णु शर्मा ने एक सहस्र वर्ष तक इस जगती तल मे निवास करके सूर्य की आराधना करके विधिवत् विष्णु से वह मोक्ष को प्राप्त हुआ था ॥१७॥ उस ब्राह्मण ने वैष्णव तेज को धारण करके फाल्गुन मास मे देव के कार्य में परायण उस स्वामी ने त्रैलोक्य को तृप्त कर दिया था ॥१८॥ सूत जी ने कहा—भगवान् जीव ने यह कह कर शची के पति इन्द्र से फिर कहा—तुम भी फाल्गुन मास में उस सूर्यदेव की आराधना करके सुखी हो जाओ ॥१९॥ गुरु के द्वारा इस प्रकार से कहे गये देव ने सर्वमय हरि का ध्यान करके और बहुधा कार वाले पूजनों के द्वारा देव-देव का यजन किया था ॥२०॥ तब भगवान् प्रसन्न होकर सूर्य मण्डल से उत्पन्न हुए थे। उनकी चार भुजाएँ थी, रक्त वर्ण का अंग था और जिस तरह यक्ष होता है उसी प्रकार के वह थे। समस्त देवों को देखते हुए इन्द्र के देह में प्राप्त होगये थे ॥२१॥

तत्तेजसा तदा शक्रः स्वान्तर्लीय स्वकं वपुः ।
अयोनिस्स द्विजो भूत्वा शची देवी तथैव सा ॥२२
तदा तौ मिथुनीभूतौ वैष्णवाग्निप्रपीडितौ ।
रेमाते वर्षपर्यन्तं गंगाकूले महावने ॥२३
अधाद्गर्भं तदा देवी शची तु द्विजरूपिणी ।
भाद्रशुक्ले गुरौ वारे द्वादश्यां ब्राह्ममण्डले ॥२४
प्रादुरासीत्स्वयं विष्णुर्धृत्वा सर्वं कलां हरिः ।
चतुर्भुजश्च रक्ताङ्गो रविकुंभसमप्रभः ॥२५
तदा रुद्राश्च वसवो विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।
साध्याश्च भास्कराः सिद्धास्तुष्टुवुस्तं सनातनम् ॥२६
कुलिशध्वजपद्मगदांकुशाभं चरणं तव नाथ महाभरणम् ।
रमणं मुनिभिर्विधिशंभुयुतं प्रणमाम वयं भयभीतिहरम् ॥२७

दरचक्रगदाम्बुजमानधर सुरशत्रुकठोरशरीरहर ।
सचराचरलोकभरश्चपल खलनाशकरस्सुरकार्य कर ॥२८

उस समय मे उसके तेज से अपने वपु को अपने अन्तर्लीन करके यह द्विज अयोनि होकर स्थित हुआ था और उसी प्रकार से वह शची देवी भी थी ॥२७॥ उस समय म वे दोनो मिथुनी भून वैष्णव अग्नि से प्रपीडित गगा के तट पर उस महा वन मे एक वर्ष पर्यन्त रमण करते रहे थे ॥२३॥ तब द्विज के रूप वाली उस शची न गभ को धारण किया था। भाद्रपद मास क शुक्ल पक्ष मे गुरुवार के दिन द्वादशी तिथि मे ब्रह्ममण्डल म विष्णु भगवान् स्वय हरि समस्त कलाओ को धारण कर प्रादुर्भूत हुए थे। इनकी चार भुजाऐ थी, रक्त वर्ण वाला अग था और रवि के कुम्भ क समान प्रभा से युक्त थे ॥२४-२५॥ उस समय म रुद्र-वसुगण-विश्वेदेवा-मरुद्गण-साध्य-भास्कर और सिद्ध इन सब ने उस सनातन का स्तवन किया था ॥२६॥ देवो ने कहा—हे नाथ! कुलिश-ध्वज-पद्म-गदा और अकुश की आभा वाल तथा महान् आभरण स युक्त आपके चरण हैं जो विधि (ब्रह्मा) और शम्भु स युक्त है और मुनियो के रमण करान वाल हैं एव इस ससार के भय का हरण करने वाल हैं ऐसे आपके चरणो मे हम प्रणाम करते हैं ॥२७॥ दरचक्र गदा और अम्बुज मान के धारण करन वाले तथा देवो क शत्रुओ के कठोर शरीर का हरण करने वाले एव समस्त चराचर लोक का भरण करने वाल चपल और खलो के नाश करन वाल तथा सुरो क कार्य को करन वाल आपके कर हैं ॥२८॥

नमस्ते शचीनदनानन्दकारिन्महापापसन्तापदुर्लापहारिन् ।
मरारोग्निहत्याग्गुलोग्राधिधारिन्स्वमक्त्याधजाताङ्घ्रिकोटिप्रहारिन् ।
त्वया हंसरूपेण सत्य प्रपाल्य त्वया यज्ञरूपेण वेद प्ररक्ष्य ।
म व यज्ञरूपो भवाँल्लोकधारी शचीनन्दन शर्मशर्मप्रसक्त ॥३०

अनर्पितचरीचिरात्करुणयावतीर्ण कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसा स्वभक्तिश्रियम् ।

हरे पुरसुन्दरद्युतिकदवसन्दीपित सदा
स्फुरतु नो हृदयकन्दरे शचीनदन ।।३१
विसजति नरान्भवान्करुणाया प्रपाल्य क्षितौ
निवेदयितुमुद्भव परात्पर स्वकीय पदम् ।
कलौ दितिजसभवाधिव्यथाब्धिसुरमग्नमा-समु-
द्धर महाप्रभो कृष्णचैतन्य शचीसुत ।।३२
माधुर्य्यैर्मधुभिस्सुगधवदन स्वर्णांबुजाना वन
कारुण्यामृतनिर्झरैरुपचित सत्प्रेमहेमाचल ।
भवताभोघरधारिणी विजयिनी निष्कपसप्तावली
देवो न कुलदैवत विजयते चैतन्यकृष्णो हरि ।।३३
देवारातिजनैरधर्मजनितैस्सपीडितेय मही
सवृष्याशु कलौ कलेवरमिद बीजाय ह्रा वतते ।
त्वन्नाम्नैव सुरारयो विदलिता. पातालगा
पीडिता म्लेच्छा धर्मपरा सुरेश-
नमनास्तस्मै नमो व्यापिने ।।३४
इत्यभिष्टूय पुरुष यज्ञेश च शचीपतिम् ।
बृहस्पतिमुपागम्य दवा वचनमब्रुवन् ।।३५
यय रुद्रा महाभाग इमे च वसवोऽश्विनौ ।
येन येनाशवेनैव जनिष्यामो महीतले ।
तत्सर्वं कृपया देव वक्तुमर्हति नो भवान् ।।३६

करके अवतीर्ण हुए हैं और आपको यह अवतार उन्नत एव उज्वल रस वाली अपनी भक्ति की श्री को समर्पित करने के लिये ही हुआ है। हम प्रार्थना करते हैं कि हरि के सुन्दर द्युति कदम्ब (समूह) से सन्दीपित शचीनन्दन हम लोगो के हृदय कन्दरा मे सर्वदा स्फरण करते रहे ।।३१।। आप करुणा से नरो का प्रतिपालन करके भूमि मे विसर्जन करते हैं। आपका उद्भव परात्पर अपना पद प्रदान करने के लिए ही होता है। हे महा प्रभो ! हे शची सुत ! कलियुग मे दितिजो (दैत्यो) से उत्पन्न आधि की व्यथा का जो समूह है उसमे मग्नो का हे कृष्ण चैतन्य ! उद्धार करियेगा ।।३२।। माधुर्यों से और मधुओ से सुन्दर गन्धयुक्त वदन वाले—स्वर्णिम अम्बुजो के वन स्वरूप—कारुण्य रूपी अमृत के निर्झरो से उपचित (सवर्द्धित)—सत्प्रेम के हेम गिरि—भक्त रूपी अम्भोधरो को धारण करने वाली—विजयवाली निष्पङ्क सतावली हमारे कुल के देवता देव कृष्ण चैतन्य हरि की विजय हो ।।३३।। देवो के शत्रुजनो से जोकि अधर्म से जनित हैं यह मही अत्यन्त सम्पीडित हो रही है और इस कलियुग मे शीघ्र कलेवर को सकुचित करके हा ! बीज के लिए वर्त्तमान है आपके नाम से ही सुरो के शत्रु विदलित हो गये हैं और पीडित होकर पाताल मे ये म्लेच्छ गमन कर गये हैं। तथा धर्म पर एव सुरेश को नमन करने वाले हैं उस व्यापी आपके लिए नमस्कार है ।।३४।। सूतजी ने कहा—इस प्रकार से शची पति यज्ञेश पुरुष की स्तुति करके फिर देवगण देव गुरु वृहस्पति के पास आकर यह वचन बोले—हम रुद्र हैं हे महाभाग ! ये वसुगण हैं और ये अश्विनी कुमार हैं। आप कृपा कर यह बताये किस किस अश से हम महीतल मे जन्म ग्रहण करेंगे। हे देव ! यह सब आप हमको बताने के लिए योग्य होते हैं ।।३६।।

अहं व कथयिष्यामि शृणुध्व सुरसत्तमा ।
पुरा पूर्वभवे चासीन्मृगव्याधो द्विजाधम ।
[illegible] निर्निर्दिष्टक ।।३७

हत्वा द्विजान्महामूढस्तेषां यज्ञोपवीतकम् ।
गृहीत्वा हेलया दुष्टो महाक्रोशस्तु तत्कृत ॥३८

ब्राह्मणस्य च यद्द्रव्य सुधोपममनुत्तमम् ।
मधुर क्षत्रियस्यैव वैश्यस्यान्नसमं स्मृतम् ॥३९

शूद्रस्य वस्तु रुधिरमिति ज्ञात्वा द्विजाधम॰ ।
स जघान त्रिवर्णांश्च ब्राह्मणा॰वहुलान्खल ॥४०
द्विजनाशात्सुरास्सर्वे भयभीतास्समतत ।
परमेष्ठिनमागम्य कथाश्चक्रुश्च कारणम् ॥४१

श्रुत्वा च दु.खतो ब्रह्मा सप्तर्षीन्प्राह लोकगान् ।
उद्देश कुरु तत्रैव गत्वा तस्य द्विजोत्तम ॥४२

बृहस्पति ने कहा—हे सुरसत्तमो ! मैं आपको बताता हूँ अब आप श्रवण करिये । पहिले समय मे पूर्व जन्म मे एक अधम द्विज मृग व्याध था । वह धनुष और वाण धारण करने वाला नित्य ही मार्ग मे विप्रो की हिंसा किया करता था ॥३७॥ वह महा मूढ द्विजों का हनन करके उनका यज्ञोपवीत लेकर हना से दुष्टता करता था और महान् आक्रोश (निन्दा) किया करता था ॥३८॥ ब्राह्मण का जो द्रव्य है वह सर्वोत्तम सुधा के समान होता है । क्षत्रिय का ही धन मधुर होता है और वैश्य का धन अन्न के समान कहागया है ॥३९॥ शूद्र की वस्तु रुधिर होती है—यह जानकर वह द्विजो म अधम तीन वर्ण वालो को ही मारता था और वह धन ब्राह्मणों को अधिकतया मारा करता था ॥४०॥ द्विजो के नाश होन से सभी देवता सब प्रकार से भयभीत होगये थे । वे सब परमेष्ठी के पास आकर पहुचे और यह सब कथा तथा कारण सुनाई थी ॥४१॥ यह सब सुन कर ब्रह्माजी को बहुत दु ख हुआ था और उन्होंने महर्षियों से भाव म जान के लिए कहा था हे द्विजोत्तम ! वहा जाकर उसका उद्देश करो ॥४२॥

इति श्रुत्वा मरीचिस्तु वसिष्ठादि भिरन्वित ।
तत्र गत्वा स्थिताम्सर्वे मृगव्याधस्य यँ वने ॥४३

मृगव्याधस्तु तान्दृष्ट्वा धनुर्वाणधरो वली ।
उवाच वचन घोर हनिष्येह च वोद्य वै ॥४४
मरीचाद्या विहस्याहु. किमर्थं हतुमुद्यत: ।
कुलार्थं वात्मनोऽर्थं वा शीघ्रं वद महावल ॥४५
इत्युक्तस्तान्द्विज प्राह कुलार्थं चात्मनो हिते ।
हन्मि युष्मान्धनैर्युक्तान्ब्राह्मणांश्च विशेषत: ॥४६
श्रुत्वा तमाहुस्ते विप्रा गच्छ शीघ्रं धनुर्धर ।
विप्रहत्याकृत पाप भुञ्जीयात्को विचारय ॥४७
इति श्रुत्वा तु घोरात्मा तेपा दृष्ट्या सुनिर्मलः ।
गत्वा वंशजनानाह भूरि पाप मयार्जितम् ॥४८
तत्पापक भवद्भिश्च ग्रहणीय धन यथा ।
ते तु श्रुत्वा द्विज प्राहुर्न वय पापभोगिन: ॥४९

यह सुन कर वसिष्ठादि से समन्वित मरीचि प्रभृति सब वहा पहुँच कर सब स्थित होगये थे जहा मृगो के व्याध का वन था ।।४३।। मृग व्याध ने उनको देखकर धनुर्वाण धर कर वह वलवान् उनसे घोर वचन बोला—आज मैं तुम को निश्चय ही मार दूगा ।।४३।। मरीचि आदि ऋषिगण उससे हँस कर बोले हमको किस के लिये तू मारने को उद्यत हो गया है । हे महा बलवान् ! क्या कुल के लिये अथवा अपनी आत्मा के लिए ही ऐसा करना चाहता है ? हमको बहुत शीघ्र बतला दे ।।४५।। यह श्रवण कर वह द्विज बोला—कुल के लिए और आत्मा के लिए तुमको मारूँगा क्योंकि आप धनो से युक्त हैं । मैं विशेष करके ब्राह्मणों को ही मारा करता हूँ ।।४६।। यह सुनकर वे विप्र बोले—हे धनुर्धर ! शीघ्र जाओ, विप्रो की हत्या का किया पाप कौन भोगेगा—यह विचार करो । ।।४७।। यह सुन कर वह घोरात्मा उनकी दृष्टि से सुनिर्मल होता हुआ घर पर गया और अपने वंशजो से उसने कहा—मैंने बहुत भारी पाप अर्जित किया है ।।४८।। उस पाप को आप सबको भी धन की भाँति ग्रहण करना चाहिए । यह सुन कर वे सब उस द्विज से बोले कि हमम कोई भी पाप के भागी नहीं होंगे ।।४९।।

दर्शन ब्रह्मा ने अपने मुख से शुभ ब्राह्मण को—बाहुओं से क्षत्रिय को—ऊरुओं से उत्तम वैश्य को और अपने पैरों से शुभ आचार वाले शूद्र को उस वीर्यवान जन्म दिया था ॥६१ ६२॥ द्विजराज सोम चन्द्रमा नाम स द्विज था। लोक मे सर्वातप सूर्य जो कश्य वीर्य की रक्षा करता है ॥६३॥

कश्यपो हि द्वितीयोऽसौ मरीचिस्तु ततोऽभवत् ।
रत्नानामाकरो यो वै स हि रत्नाकर स्मृत ॥६४
लोकान्धरति यो द्रव्यै स तु धर्मो हि नामत ।
गभीरश्चास्ति सदृश. कोशो यस्य सरित्पति ॥६५
लोकान्दक्षति य. कृत्यै. स तु दक्ष प्रजापति. ।
ब्रह्मणोगाच्च ते जातास्तस्माद्वै ब्राह्मणा स्मृता ॥६६
वर्णधर्मेण ते सर्वे वर्णात्मानश्च वै क्रमात् ।
दक्षस्य मनसो जाता कन्या पञ्चशत तत ।
विष्णु मायाप्रभावेन कलाभूता स्थिता भुवि ॥६७
तदा तु भगवान्ब्रह्मा सोमायादितिमण्डलम् ।
सप्तविंशद्गण श्रेष्ठ ददौ लोकविवृद्धये ॥६८
कश्यपायादितिगण दशरूप त्रयोदशम् ।
धर्माय कीर्तिप्रभृतीर्ददौ स च महामुनि ॥६९
नानाविधानि सृष्टानि चास-वैवस्वतेऽन्तरे ।
तेषा पतिस्त्वय दक्षोऽभूद्विधेराज्ञया भुवि ॥७०

उस समय भगवान् ब्रह्मा ने चन्द्र के लिये अश्विनी-मण्डल जो कि सत्ताईस का एक गण है, इस लोक की वृद्धि के लिये दे दिया था ॥६८॥ कश्यप के लिये क्षवरूप तरह अदितिगण दिये थे और धर्म के लिये कीर्ति प्रभृति को उस महामुनि ने दिया था ॥६९॥ उस वैवस्वत अन्तर मे अनेक प्रकार की सृष्टि का सृजन किया गया था। उन सबका पति ब्रह्मा की आज्ञा से इस भूमण्डल मे दक्ष ही हुए थे ॥७०॥

तत्र वास स्वय दक्षः कृतवान्यज्ञतत्परः ।
सर्वे देवगणा दक्ष नमस्कृत्य चरंति हि ॥७१
भूतनाथो महादेवो न ननाम कदाचन ।
तदा क्रुद्ध स्वय दक्ष. शिवभाग न दत्तवान् ॥७२
मृगव्याध. शिवः क्रुद्धो वीरभद्रो बभूव ह ।
त्रिशिराश्च त्रिनेत्रश्च त्रिपदस्तत्र चागतः ॥७३
तेनैव पीडिता देवा मुनयः पितरोऽभवन् ।
तदा वै यज्ञपुरुषो भयभीत समतत ॥७४
मृगभूतो ययौ तूर्णं दृष्ट्वा व्याध. शिवोऽभवत् ।
रुद्रव्याधेन स मृगो विभिन्नाङ्गो बभूव ह ॥७५
तदा तु भगवान्ब्रह्मा तुष्टाव मधुरस्वरै. ।
संतुष्टश्च मृगव्याधो यज्ञ पूर्णमकारयत् ॥७६
तुलाराशिस्थिते भानौ त रुद्र चन्द्रमण्डले ।
स्थापयित्वा स्वय ब्रह्मा सप्तविंशद्दिनात्मके ।
प्रययौ सप्तलोक वै स रुद्रश्च द्ररूपवान् ॥७७

वहा पर दक्ष यज्ञो के करने मे तत्पर होते हुए स्वय वास करते थे। समस्त देवो के समूह दक्ष को प्रणाम करके ही विचरण किया करते थे ॥७१॥ किन्तु भूतों के स्वामी महादेव ने कभी भी दक्ष को प्रणाम नहीं किया था। तब तो दक्ष बहुत क्रुद्ध हो गये थे और उन्होने यज्ञ मे जो शिव का एक भाग होता है उसे नहीं दिया था ॥७२॥ मृग व्याध शिव क्रुद्ध होकर वीर भद्र हो गया था। उस समय मे त्रिशिरा–त्रिनेत्र और त्रिपद भी वहा आ गये थे ॥७३॥ उनके द्वारा पीडित देव-मुनिगण

के पास आये थे। तब ना उन विप्रो न उसको परम शुद्ध देखा और व सब विस्मय म भर कर उससे बोल—तू वाल्मीक से निकला है इसलिय तरा नाम परम उत्तम वाल्मीकि ही है और यही नाम हे विप्र! अब चलगा। ह त्रिकाल के ज्ञाता! हे महान् मति वाले ॥५५-५६॥

एवमुक्त्वा ययुर्लोक स तु रामायण मुनि ।
कल्पाष्टादशयुक्त हि शतकोटिप्रविस्तरम् ॥५७
चकार निर्मल पद्यं सर्वाघौघविनाशनम् ।
तत्पश्चात्स शिवो भूत्वा तत्र वासमकारयत् ॥५८
अद्यापि सस्थित स्वामी मृगव्याध सनातन ।
शृणुध्व च सुरा सर्वे तच्चरित्र हरप्रियम् ॥५६
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते चाद्ये सत्ययुगे शुभे ।
ब्रह्यागत्योत्पलारण्य तत्र यज्ञ चकार ह ॥६०
तदा सरस्वती देवी नदी भूत्वा समागता ।
तद्दर्शनात्स्वय ब्रह्मा मुखतो ब्राह्मण शुभम् ॥६१
बाहुभ्या क्षत्रिय चैव चोरुभ्या वैश्यमुत्तमम् ।
पद्भ्या शूद्र शुभाचार जनयामास वीर्यवान् ॥६२
द्विजराजस्तथा सोमश्च द्रमा नामतो द्विज ।
लोके सर्वानप सूय वश्य वीर्यं हि पाति यः ॥६३

इस प्रकार से कह कर सप्तर्षि अपन लोक को चले गये थे और उस मुनि ने फिर अठारह कल्प युक्त शतकोटि प्रकृष्ट विस्तार वाली रामायण की रचना की थी जा कि अति निर्मल पद्यों म थी और सभी पापो क समूह का नाश करन वाली थी। इसक पश्चात् वह शिव होकर वहा पर अपना निवास करता था ॥५७ ५८॥ आज भी वह सनातन मृग व्याघ स्वामी सस्थित है। हे सुरो! अब आप सब लोग उसका हरि भगवान् को प्रिय लगन वाला उत्तम चरित्र का श्रवण करो मैं उसे आपका बतलाता हू ॥५६॥ आद्य शुभ सत्य युग में वैवस्वत मनु का अन्तर प्राप्त हो जाने पर ब्रह्माजी ने आकर उस उत्पलारण्य मे यज्ञ किया था ॥६०॥ तब सरस्वती देवी नदी का रूप धारण करके वहा पर आई थी। उनक

और पितर सब हो गये थे। तब तो यज्ञ पुरुष सभी ओर से भयभीत हो गये थे ॥७४॥ मृग भूत होकर शीघ्र चला गया था। यह देख कर व्याध शिव हो गया था। रुद्र व्याध के द्वारा वह मृग विभिन्न अंगों वाला हो गया था ॥७५॥ उस समय भगवान् ब्रह्मा ने मधुर स्वरों से स्तवन किया था। फिर मृग व्याध सन्तुष्ट हो गया और उसने यज्ञ को पूर्ण करा दिया था ॥७६॥ तुला राशि पर सूर्य के स्थित होने पर चन्द्र-मण्डल में उस रुद्र को स्थापित करके जो चन्द्र मण्डल सप्तविंशति (सत्ताईस) दिन के रूप वाला था ब्रह्माजी स्वयं सत्य लोक को चले गये थे। वह रुद्र चन्द्र के रूप वाले हैं ॥७७॥

इति श्रुत्वा वीरभद्रो रुद्र. सहृष्टमानस ।
स्वांश देहात्समुत्पाद्य द्विजगेहमचोदयत् ॥७८
विप्रभैरव दत्तस्य गेह गत्वा स वै शिव. ।
तत्पुत्रोऽभूत्कली घोरे शकरो नाम विश्रुत ॥७९
स बालश्च गुणी वेत्ता ब्रह्मचारी बभूव ह ।
कृत्वा शकरभाष्य च शैवमार्गमदर्शयत् ॥८०
त्रिपुण्ड्रश्चाक्षमाला च मन्त्र पञ्चाक्षर शुभ ।
शैवाना मङ्गलकर शकराचार्यनिर्मित ॥८१

यह श्रवण करके वीरभद्र रुद्र ने सन्तुष्ट मन वाले होकर अपने अंश को देह से समुत्पन्न करके द्विज के गृह मे प्रेरित कर दिया था ॥७८॥ भैरव दत्त विप्र के घर में जाकर वह शिव इस घोर कलियुग में उसका पुत्र हुआ जो शंकर इस नाम से प्रसिद्ध है ॥७९॥ वह बालक परम-गुणी—ज्ञाता और ब्रह्मचारी हुआ था। इसने शांकर भाष्य की रचना करके अर्थात् वेद व्यास के वेदान्त सूत्र ग्रन्थ पर शांकर भाष्य बना कर शैव मार्ग को दिखलाया था ॥८०॥ त्रिपुण्ड्र—अक्षमाला और परम शुभ पञ्चाक्षर (ओं नमः शिवाय) मन्त्र ये शैवों का मंगल करने वाला है जिसको कि शंकराचार्य भगवान् ने निर्मित किया है ॥८१॥

।। रामानुजोत्पत्तिवर्णन ।।

इद दृश्य यदा नासीत्सदसदात्मक च यत् ।
तदाक्षरमय तेजो व्याप्तरूपमचिंत्यकम् ।।१
न च स्थूल न च सूक्ष्म शीत नोष्ण च तत्परम् ।
आदिमध्यांतरहित मनागाकारवर्जितम् ।।२
योगिदृश्य पर नित्य शून्यभूत परात्परम् ।
एका वै प्रकृतिर्माया रेखा या तदध स्मृता ।।३
महत्तत्त्वमयी ज्ञेया तदधश्चोर्ध्वरेखिका ।
रजस्सत्त्वतमोभूता ओमित्येवसुलक्षणम् ।।४
तत्सद्ब्रह्म पर ज्ञेय यत्र प्राप्य पुनर्भव ।
कियता चैव कालेन तस्येच्छा समपद्यत ।।५
अहकारस्ततो जातस्ततस्तन्मात्रिका परा ।
पञ्चभूतान्यतोप्यासञ्ज्ञानविज्ञानकान्यत ।।६
द्वाविंशज्जडभूताश्च दृष्ट्वा स्वेच्छामयो विभु ।
द्व द्वभूतश्च सगुणो बुद्धिर्जीवस्समागत ।।७

इस अध्याय मे रुद्र के माहात्म्य का वणन तथा श्री रामानुज की उत्पत्ति का वणन किया जाता है । बृहस्पति जी ने कहा—जो यह सत् और असत् स्वरूप वाला जिस समय म दृश्य नही था अर्थात् दिखलाई देने के योग्य नही था । उस समय अक्षर मय न चिन्तन करने के योग्य तेज व्याप्त रूप वाला था ।।१।। वह न तो स्थूल था—न सूक्ष्म ही था—न वह शीत था और न उष्ण ही था—तत्पर था—आदि—मध्य और अन्त स रहित था और मनाक आकार से वर्जित था वह केवल योगियो के द्वारा ही दृश्य था—पर—नित्य—शून्य भूत और परात्पर था । एक प्रकृति माया जो रेखा थी वह उसके नीचे बताई गई है ।।२ ३।। उसके नीचे एक ऊर्ध्व रेखा वाली महत् तत्त्वमयी जाननी चाहिए । यह रज-सत्व और तमोभूत थी । ओम् ही सुलक्षण है ।।४।। वह पर सद् ब्रह्म जानना चाहिए जहा प्राप्त होकर पुनर्भव होता है । कुछ ही काल म उसकी इच्छा समुत्पन्न हुई थी ।।५।। उससे अहकार की उत्पत्ति हुई और

फिर उस अहंकार से पञ्च तन्मात्रिकाऐं उत्पन्न हुई थी। इनसे फिर पाँच भूत ज्ञान विज्ञानक हुए थे। इन सब बाईस जड भूतों को देख कर वह स्वेच्छामय विभु द्वन्द्वभूत होकर सगुण हो गया और बुद्धि और जीव समागत हुआ था ॥६-७॥

पूर्वार्द्धात्सगुणः सोसौ निर्गुणश्च परार्द्धतः ।
ताभ्यां गृहीत तत्सर्वं चैतन्यमभवत्ततः ॥८
सविराडितिसंज्ञो वै जीवो जातस्सनातनः ।
विराजो नाभितो जातं पद्मं तच्छतयोजनम् ॥९
पद्माच्च कुसुमं जातं योजनायाममुत्तमम् ।
तत्पद्मकुसुमाज्जातो विरचिः कमलासनः ॥१०
द्विभुजस्स चतुर्वक्त्रो द्विपादो भगवान्विधिः ।
ज्ञेयः सप्तवितस्त्यंगो महाचितामवाप्तवान् ॥११
कोऽहं कस्मात्कुत आयातः कामे जननी को मे तातः ।
इत्यधिचिंतय तं हृदि देवं शब्दमहत्त्वमयेन स आह ॥१२
तपश्चैव तु कर्तव्यं संशयस्यापनुत्तये ।
तदाकर्ण्य विधिस्साक्षात्तपस्तेपे महत्तरम् ॥१३
सहस्राब्दं प्रयत्नेन ध्यात्वा विष्णुं सनातनम् ।
चतुर्भुजं योगगम्यं निर्गुणं गुणविस्तरम् ॥१४

वह यह पूर्वार्द्ध से सगुण था और परार्द्ध से निर्गुण था। उन दोनों से वह सब ग्रहण किया गया था और वह फिर चैतन्य हो गया था ॥८॥ स्वराट्-इस सज्ञा वाला जीव सनातन हो गया था। उस विराट् की नाभि से एक पद्म उत्पन्न हुआ था जो सौ योजन के विस्तार वाला था ॥९॥ उस पद्म से एक योजन आयाम वाला अति उत्तम कुसुम उत्पन्न हुआ था। उस पद्म के कुसुम से कमलासन ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था ॥१०॥ उस ब्रह्मा के दो भुजाऐं थीं—चार मुख थे—दो चरण थे ऐसे स्वरूप वाले भगवान् विधि (ब्रह्मा) थे। उसका अंग सात विलस्त वाला जानना चाहिए। उसने महान् चिन्ता प्राप्त की थी अर्थात् वह अत्यन्त चिन्तित हो गये थे ॥११॥ उसे यह चिन्ता हृदय में हुई कि मैं

कौन हूँ—कहाँ से मैं आया हूँ। मेरी माता कौन और पिता कौन हैं। उसने उस देव का हृदय में चिन्तन करके वह शब्द महत्त्वमय के द्वारा बोला ॥१२॥ अपने संशय की अपनुत्ति (दूरीकरण) के लिये तुमको तप ही करना चाहिए। यह सुनकर विधि (ब्रह्मा) ने साक्षात् तपस्या की थी जो कि अधिक महान् थी ॥१३॥ एक सहस्र वर्ष पर्यन्त सनातन भगवान् विष्णु का उसने ध्यान किया था जिनका स्वरूप चतुर्भुज है और निर्गुण तथा गुणों का विस्तार स्वरूप योग के द्वारा ही जानने के योग्य है ॥१४॥

सनाधिनिष्ठो भगवान्बभूव कमलासन ।
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्बालो भूत्वा चतुर्भुज ॥१५
श्यामांगो बलवानस्त्री दिव्यभूषणभूषित ।
ब्रह्मणोऽङ्के हरिस्तस्थौ यथा बाल पितुस्वयम् ॥१६
तदा प्रबुद्धश्च विधिस्त दृष्ट्वा मोहमागत ।
वत्सवत्सेति वचन विधि प्राह प्रसन्नधी ॥१७
विहस्याह तदा विष्णुरह ब्रह्मपिता तव ।
तयोर्विवदतोरेव रुद्रो जातस्तमोमय ॥१८
ज्योतिर्लिङ्गश्च भयदो याजनानन्तविस्तर ।
हसरूप तदा ब्रह्मा वराहो भगवान्प्रभु ॥१९
शताब्द तौ प्रयत्नेन जातौ चोर्ध्वमध क्रमात् ।
लज्जितौ पुनरागत्य तदा तुष्टुवतुर्मुदा ॥२०
ताभ्या स्तुतो हर साक्षाद्भवो नाम्ना समागत ।
कैलासनिलय कृत्वा समाधिस्थो बभूव ह ॥२१

भगवान् कमलासन समाधि में निष्ठ हो गये थे। इसी बीच में चतुर्भुज विष्णु बालक रूप में होकर जिसका श्याम तो अंग था और बलवान् दिव्य आभूषणों से भूषित थे। ऐसा बाल स्वरूप वाले हरि पिता की गोद में उसके पुत्र बालक की भाँति आकर ब्रह्मा की गोद में स्थित हो गये थे ॥१५-१६॥ उस समय ब्रह्मा को ज्ञान हुआ और उस बाल रूप हरि को देख कर वह स्नेह को प्राप्त हो गये थे। प्रसन्न

बुद्धि वाल ब्रह्माजी ने उस बाल स्वरूप को वत्स-वत्स ऐसा वचन कहा था ।।१७।। तब तो भगवान् विष्णु ने हँसकर कहा हे ब्रह्मन् ! मैं तो तुम्हारा पिता हूँ । उन दोनो का ऐसा विचार विवाद चलता रहा तो उस समय तमोमय रुद्र उत्पन्न हो गया था ।।१८।। और ज्योतिलिंग भय देने वाला जिसका अनन्त योजनो का विस्तार था उत्पन्न हुआ । तब ब्रह्मा ने इस रूप को देखा था । ब्रह्मा और भगवान् प्रभु वराह इन दानो को ऊर्ध्व और अधोभाग के क्रम से एक सौ वर्ष हो गये थे । फिर आकर नजित होते हुए उन दोनो ने प्रसन्नता से स्तुति की थी ।।१९ २०।। उन दोनो के द्वारा स्तुति किये गये साक्षात् हर भव इस नाम से आये थे । फिर अपना स्थान कैलास को बना कर समाधि में स्थित हो गय थे ।।२१।।

जात पचयुग तत्र दिव्य रुद्रस्य योगिन ।
एतस्मिन्नन्तरे घोरो दानवस्तारकासुर ।।२२
सहस्राब्द तप कृत्वा ब्रह्मणो वरमाप्तवान् ।
भववीर्योद्भव पुत्र. स ते मृत्यु करिष्यति ।।२३
इति मत्वा सुराजित्वा महेंद्रश्च तदा भवत् ।
ते सुराश्चैव कैलास गत्वा रुद्र प्रतुष्टुवु ।।२४
वर ब्रूहीति वचन सुरा प्राह तदा शिव ।
ते तु श्रु त्वा प्रणम्योचुवचन नम्रक धरा ।।२५
भगव ब्रह्मणा दत्तो वरो वै तारकाय च ।
शिववीर्योद्भव पुत्र स ते मृत्युभविष्यति ।
अतोऽस्मात्रक्ष भगवन्विवाह कुरु शकर ।।२६
स्वायभुवेऽन्तरे पूर्वं दक्षश्चासीत्प्रजापति ।
षष्टिकन्यास्ततो जातास्तासा मध्ये सती वरा ।।२७
वर्षमात्र भवन्त सा पार्थिवं समपूजयत् ।
तस्यै त्वया वरो दत्त सा बभूव तव प्रिया ।।२८

योगी रुद्र को वहा पर दिव्य पाँच युग हो गये थे । इस बीच मे परम घोर दानव तारकासुर हुआ, जिसने एक सहस्र वर्ष पर्यन्त तपस्या

करके ब्रह्मा से वरदान प्राप्त किया था कि भव के वीर्य से उत्पन्न होने वाला पुत्र तेरी मृत्यु करेगा ।।२२-२३।। ऐसा मान कर उसने देवों को जीत लिया था और स्वयं महेन्द्र के आसन पर स्थित हो गया था। वे देवगण सब कैलास में पहुंचे और भगवान् रुद्र की स्तुति करने लगे थे ।।२४।। तब प्रसन्न होकर शिव ने देवों से कहा—वरदान माँग लो जो कुछ भी चाहते हो। उन सुरों ने सुन कर प्रणाम किया और नम्र कन्धरा वाले होकर यह वचन बोले ।।२५।। हे भगवन्! ब्रह्मा ने असुर तारक को यह वरदान दिया है कि तेरी मृत्यु शिव के वीर्य से उत्पन्न होने वाला पुत्र ही करेगा अर्थात् तू उससे ही मारा जायगा। हे भगवन्! इसलिये अब आप हम सब की रक्षा कीजिए। हे शङ्कर! आप पुत्रोत्पादन करने के लिये अपना विवाह करिये ।।२६।। पहिले स्वायम्भुव अन्तर में दक्ष प्रजापति था। उस दक्ष से सात कन्याऐं समुत्पन्न हुई थी उन समस्त कन्याओं में सती सब से श्रेष्ठ है ।।२७।। उसने एक वर्ष तक आपका पार्थिवों के द्वारा अर्थात् पार्थिव पूजन किया था। आपने उसको वरदान दिया था और वह आपकी प्रिया हुई थी ।।२८।।

तत्पित्रा या कृता निंदा भवतोऽज्ञानचक्षुषा ।
तस्य दोषात्सती देवी तत्याज स्व कलेवरम् ।।२९
सतीतेजस्तदा दिव्य हिमाद्रौ क्षेत्रमागमत् ।
पीडितस्तेन गिरिराड् बभूव स्मरविह्वलः ।।३०
पित्रीश्वर स तुष्टाव कामव्याकुलचेतनः ।
अर्यमा तु तदा तुष्टो ददौ तस्मै सुता निजाम् ।
मेना मनोहरा शुद्धा स दृष्ट्वा हर्षितोऽभवत् ।।३१
नरस्प शुभं कृत्वा देवतुल्य च तत्प्रियम् ।
स रेमे च तया सार्द्धं चिर काल महावने ।।३२
गर्भो जातस्तदा रम्यो नववर्षांतमुत्तमः ।
कन्या जाता तदा शुभ्रा गौरी गौरमयी सती ।।३३

जातमात्रा च सा कन्या बभूव नवहायिनी ।
तुष्टाव शंकरं देवं भवन्तं तपसा चिरम् ।।३४
शताब्दं च जले मग्नाशनाब्दं वह्निसंस्थिता ।
ताब्दे च स्थिता वायो शताब्दं नभसि स्थिता ।।३५

उसके पिता ने अज्ञान चक्षु होने वाले ने आप की जो निन्दा की थी उसके दोष से सती देवी ने अपने शरीर का त्याग कर दिया था ।।२६।। उस समय वह सती का घोर एवं दिव्य तेज हिमाद्रि में आ गया था । उससे पीड़ित होकर वह गिरियों का राजा हिमवान् काम से विह्वल हो उठा था ।।३०।। कामदेव से व्याकुल बुद्धि वाले उसने पित्रीश्वर की स्तुति की थी । उस समय अर्यमा ने प्रसन्न होकर अपनी पुत्री उसको दान करके दे दी थी । परम शुद्ध एवं अत्यन्त सुन्दरी मेना को देख कर हिमवान् बहुत ही हर्षित हुआ ।।३१।। फिर हिमाचल ने अपना नर रूप धारण किया जो देव के समान शुभ और पत्नी का प्रिय था । यह हिमवान नररूप धारी होकर महावन में चिरकाल पर्यन्त उस मेना के साथ रमण करता रहा था ।।३२।। नौ वर्ष के अन्त में तब उत्तम तथा रम्य गर्भ धारण हुआ था । तब मुग्ध गौरमयी सती कन्या के रूप में उसके समुत्पन्न हुई थी ।।३३।। जात मात्र ही अर्थात् उत्पन्न होते ही वह कन्या नौ वर्ष की जैसी हो गई थी । फिर उस गौरी ने चिरकाल तक आप शंकर की तपस्या के द्वारा स्तुति की थी ।।३४।। सौ वर्ष तक सौ वह तपस्या में जल में मग्न रही थी और एक सौ वर्ष तक अग्नि में संस्थित रही थी । सौ वर्ष तक वायु में और एक शताब्दी पर्यन्त आकाश में स्थित रही थी ।।३५।।

शताब्दं च स्थिता चन्द्रे शताब्दं रविमण्डले ।
शताब्दं गर्भभूम्यां च स्थिता सा गिरिजा सती ।।३६
शताब्दं [redacted] महत्तत्वे गत्वा योगबलेन सा ।
भवन्तं शंकरं शुद्धं तत्र दृष्ट्वा स्थिताद्य वै ।।३७
त्रिशताब्दमतो जातं तस्मात्त्वं पार्वतीं प्रियाम् ।
वरं देहि प्रसन्नात्मा महादेव नमोऽस्तु ते ।।३८

इतिश्रुत्वा वचो रम्य शकरो लोक शकर ।
देवानाह तदा वाक्यमयोग्य वचन हि व. ॥३९

मत्तो ज्येष्ठाश्च ये रुद्रा कुमारव्रतधारिण ।
मृगव्याधादयो मुख्या दश ज्योतिस्समुद्भवा. ॥४०

अह तेषामवरजोभवो नामैव योगराट् ।
मायारूपा शुभा नारी कथ गृह्णामि लोकदाम् ॥४१

नारी भगवती साक्षात्तया सर्वमिदं ततम् ।
मातृरूपा तु सा ज्ञेया योगिना लोकवासिनाम् ॥४२

एक शताब्दी तक चन्द्र मे और एक सौ वर्ष पर्यन्त रविमडल मे स्थित रही थी । वह सती गिरिजा एक सौ वर्ष तक गर्भ भूमि म स्थित रही थी ॥३६॥ वह फिर योग के बल से सौ वर्ष तक महत्तत्व मे जाकर स्थित हुई और वह शुद्ध शकर आपका दर्शन करके आज भी स्थित है ॥३७॥ इस तरह तीन सौ वर्ष उसे वहा हो गये हैं । इसलिये आप उस शिवा पार्वती को प्रसन्न आत्मा वाले होकर अब वरदान देवें । हे महादेव ! हम सबका आपको नमस्कार है ॥३८॥ इस प्रकार के परम रमणीक वचन सुनकर लोको का कल्याण करने वाले भगवान् शकर उस समय मे देवो से बोले—आपका वचन अयोग्य है ॥३९॥ मुझ से बड़े जो रुद्र हैं वे कुमार व्रत के धारण करन वाले हैं । मृग व्याध आदि ज्योति समुद्भव दश मुख्य हैं ॥४०॥ मैं तो उन सब मे सब से छोटा हूँ, नाम से ही योगराट् हू । मैं अब उस माया रूप वाली शुभ नारी को जो कि लोकदा है, कैसे ग्रहण करूं ? ॥४१॥ नारी साक्षात् भगवती है । उसके द्वारा ही यह समस्त विश्व विस्तृत हुआ है । उस नारी को मातृ-रूपा ही जाननी चाहिए वह लोकवासी योगियो की भगवती माता के समान है ॥४२॥

अह योगी कथ नारी मातर वरितु क्षम ।
तस्मादह भवदर्थ स्ववीर्यमाददाम्यहम् ॥४३

वश्य हो गये थे ।।५४-५५।। स्तम्भन बाण के द्वारा महादेव शिवा के पास जाकर स्थिर हो गये थे । आकर्षण बाण से भगवान् शिवा के आकर्षण में तत्पर हो गये थे । मारण बाण के द्वारा महेश्वर मूर्च्छित हो गये थे ।।५६।।

एतस्मिन्नंतरे देवी महत्तत्त्वे स्थिता शिवा ।
मूर्छितं शिवमालोक्य तत्रैवान्तर्द्धिमागमत् ।।५७
तदोत्थाय महादेवो विललाप भृशं मुहुः ।
हा प्रिये चन्द्रवदने हा शिवे च घटस्तनि ।।५८
हा उमे सुंदराभे च पाहि मां स्मरविह्वलम् ।
दर्शनं देहि रंभोरु दासभूतोऽस्मिसाम्प्रतम् ।।५९
एवं विलपमानं तं गिरिजा योगिनी स्वयम् ।
समागत्य वचः प्राह नत्वा तं शंकरं प्रियम् ।।६०
कन्याहं भगवन्देव मातृपित्रनुसारिणी ।
तयोस्सकाशाद्भगवन्मम पाणि गृहाण भोः ।।६१
तथेति मत्वा स शिवः प्रद्युम्नशरपीडितः ।
सप्तर्षीन्प्रेषयामास ते तु गत्वा हिमाचलम् ।
संबोध्य च विवाहस्य विधि चक्रुर्मुदान्विताः ।।६२
ब्रह्माण्डे ये स्थिता देवास्तेषां स्वामी महेश्वरः ।
विवाहे तस्य संप्राप्ते सर्वे देवास्समाययुः ।।६३

नमस्कार करके यह वचन बोली ॥६०॥ हे देव ! मैं अपने माता-पिता के अनुसरण करने वाली कन्या हू । आप उनके ही सकाश से मेरा पाणि ग्रहण करें ॥६१॥ प्रद्युम्न के द्वारा पीडित वह शिव "ऐसा ही करूंगा" यह कहकर उसने फिर सप्तर्षियो को हिमवान् के पास भेजा था और वे हिमाचल के पास पहुँच गये । वहा उन्होने हिमवान् भली-भाँति समझा कर प्रसन्नता से युक्त होकर विवाह की विधि का सम्पादन किया ॥६२॥ ब्रह्माण्ड मे जो देवता हैं उन सबका स्वामी महेश्वर हैं । अतएव उनके विवाह के प्राप्त होने पर समस्त देवगण विवाह मे सम्मिलित होने को आये थे ॥६३॥

अनन्तांश्च गणांश्चैव सुरान्दृष्ट्वा हिमाचलः ।
गिरिजा शरण प्राप्त तस्थौ पर्वतराट् स्वयम् ॥६४
तदा तु पार्वती देवी निधीन्सिद्धी समन्तत ।
चकार कोटिशस्तत्र बहुरूपा सनातनी ॥६५
दृष्ट्वा तद्विस्मिता देवा ब्राह्मणा सह हर्षिताः ।
तुष्टुवुः पार्वती देवी नारीरत्न सनातनीम् ॥६६
उ वितर्के च मा लक्ष्मीर्बहुरूपा विदृश्यते ।
उमा तस्माद्व ते नाम नमस्तस्यै नमोनमः ॥६७
कतिचिदयनान्येव ब्रह्माण्डेऽस्मिञ्छिवे तव ।
कात्यायनी हि विज्ञेया नमस्तस्यै नमोनमः ॥६८
गौरवर्णाद्व वै गौरी श्यामवर्णाद्व कालिका ।
रक्तवर्णाद्ध भवती नमस्तस्यै नमोनमः ॥६९
भवस्य दयिता त्व वै भवानी रुद्रसयुता ।
दुर्गा त्वं योगि दुष्प्राप्या नमस्तस्यै नमोनमः ॥७०

हिमाचल ने अनन्तो को-गणो को और सुरो को देखकर पर्वतराज स्वय गिरजा के शरण मे पहुच कर स्थित होगया था ॥६४॥ उस समय म पार्वती देवी ने सब ओर से निधियो और सिद्धियो को वहां पर बहुत रूपो वाली और सनातनी करोडो करदी थी ॥६५॥ यह देख कर समस्त देव बड़े ही विस्मित हुए तथा देव और ब्राह्मण बहुत हर्षित भी हुए

तद्वीर्य भगवान्वह्निः प्राप्य कार्यं करिष्यति ।
इत्युक्त्वा वह्नये देवो ददौ वीर्यमनुत्तमम् ।
स्वयं तत्र समाधिस्थो बभूव भगवान्हरः ॥४४
तदा शक्रादयो देवा वह्निना सह निर्ययुः ।
सत्यलोकं समागत्याब्रुवन्सर्वं प्रजापतिम् ॥४५
श्रुत्वा तत्कारणं सर्वं स्वयंभूश्चतुराननः ।
नमस्कृत्य परं ब्रह्म कृष्णध्यानपरोऽभवत् ॥४६
ध्यानमार्गेण भगवान्गत्वा ब्रह्मा परं पदम् ।
हेतुं तद्वर्णयामास यथा शंकरभाषितम् ॥४७
श्रुत्वा विहस्य भगवान्स्वमुखात्तेज उत्तमम् ।
समुत्पाद्य ततो जातं पुरुषो रुचिराननः ॥४८
ब्रह्माण्डस्य च्छविर्या वै स्थिता तस्य कलेवरे ।
प्रद्युम्नो नाम विख्यातं तस्य जातं महात्मनः ॥४९

मैं तो एक योगी हूं, उस माता स्वरूपिणी भगवती नारी को कैसे वरने मे समर्थ हो सकता हूं। इसलिये मैं आप लोगों के कार्य के लिये अपना वीर्य तुम को देता हूं ॥४३॥ उस वीर्य को भगवान् वह्नि प्राप्त करके आपका कार्य कर देगा। यह कह कर देव ने वह्नि को उत्तम वीर्य दे दिया था और आप स्वयं समाधिस्थ होकर भगवान् हर स्थित हो गये थे ॥४४॥ उस समय इन्द्र आदि देव गण अग्नि के साथ वहां से निकल आये थे। सत्य लोक में जाकर उन्होंने यह समस्त वृत्तान्त प्रजापति से कहा था ॥४५॥ स्वयम्भू चतुरानन ने उस सम्पूर्ण कारण को सुन कर परब्रह्म को नमस्कार करके कृष्ण के ध्यान में परायण हो गये थे ॥४६॥ ध्यान के मार्ग के द्वारा भगवान् ब्रह्मा परमपद को प्राप्त हुए थे। वहां उन्होंने जैसा कि शकर ने कहा था वह समस्त हेतु वर्णित कर दिया था ॥४७॥ भगवान् उसे सुन कर और हंस कर अपने मुख से एक अति उत्तम तेज समुत्पन्न करके एक परम सुन्दर मुख वाला पुरुष को जन्म दिया था ॥४८॥ समस्त ब्रह्माण्ड की जो भी छवि थी वह उसके कलेवर

म स्थित थी। उसका नाम प्रद्युम्न विख्यात हुआ था जो कि महान् आत्मा वाला वहा समुत्पन्न हुआ था ॥४६॥

तन सार्द्धं तदा ब्रह्मा सप्राप्य स्व कलेवरम् ।
ददौ तेभ्यस्स पुरुष प्रद्युम्न शवरातिदम् ॥५०
तजसा तस्य देवस्य नरानार्यस्समन्तत ।
एकीभूतास्त्रिलोकेषु बभूवु स्मरपीडिता ॥५१
स्थावरा सौम्यभूता वै ते तु कामाग्निपीडिता ।
सरिद्भिश्च लताभिश्च मिलितास्सवभूविरे ॥५२
ब्रह्माण्डेश शिव साक्षाद्रुद्र कालाग्निसन्निभ ।
त्रिनेत्रात्तज उत्पाद्य शमयामास तद्व्यथाम् ॥५३
तदा क्रुद्ध स कृष्णाङ्गो गृहीत्वा कौसुम धनु ।
दिव्यान्पञ्च शरान्घोरान्महादवाय वधवे ॥५४
उच्चाटनेन बाणेन गन्ताभूल्लोकशकर ।
वशीकरणबाणेन नारीवश्य शिवोऽभवत् ॥५५
स्तभनेन महादेव शिवापार्श्वे स्थिरोऽभवत् ।
आकर्षणेन भगवाञ्छिवाकर्षणतत्पर ।
मारणेनैव बाणेन मूर्छितोऽभून्महेश्वर ॥५६

उस समय उसके साथ ब्रह्मा ने अपने कलेवर को सम्प्राप्त करके उसने उनके लिये शवरातिद प्रद्युम्न पुरुष को दे दिया था ॥५०॥ उस देव के तेज से सभी ओर म नर और नारी तीनो लोको म एकी भूत होकर काम से पीडित हो गये थ ॥५१॥ सौम्य भूत जो स्थावर थे वे भी काम की अग्नि से उत्पीडित हो उठे थे। सरिताऐ और लताऐ भी मिलित होकर काम तप्त हो गई थी ॥५२॥ इस ब्रह्माण्ड क स्वामी साक्षात् रुद्र शिव कालाग्नि के तुल्य ने तीसरे नत्र स तज समुत्पन्न करके उसकी व्यथा का शासन किया था ॥५३॥ उस समय वह कृष्णाङ्ग क्रुद्ध हुआ और उसने पुष्पो का धनुष ग्रहण किया था और दिव्य पाच घोर शरों को वधु महादेव क लिये प्रयोग किया था। उच्चाटन बाण स लोक शकर गत हो गया था। और वशीकरण बाण स शिव नारी

थे । उन्होंने नारी रत्न सनातनी पार्वती देवी की स्तुति की थी ॥६६॥ देवों ने कहा—"उ" यह तो वितर्क में आता है और 'मा' यह बहुरूपा लक्ष्मी दिखलाई देती है । इसी से तेरा उमा यह नाम है । उस उमा देवी के लिए हम सब का बार-बार नमस्कार है ॥६७॥ हे शिवे ! इस ब्रह्माण्ड में तुम्हारे कितने ही अयन है । आप कात्यायनी इसी लिए जानने के योग्य है । कात्यायनी देवी के लिए हमारा सबका बार-बार नमस्कार ॥६८॥ आप का अत्यन्त गौर वर्ण है इसी लिए आपका गौरी यह शुभ नाम है । आपका श्याम वर्ण भी दिखलाई देता है इसीलिए आपको कालिका भी कहा जाता है । आपका कभी रक्तवर्ण भी होता है इसी से हैमवती यह शुभ नाम पड़ गया है । ऐसी तीनों वर्णों वाली देवी आपके लिए हमारा बार-बार नमस्कार है ॥६९॥ आप भव की पत्नी हैं इसी लिए रुद्र से संयुक्त आपका भवानी नाम होता है । आप योगियों के द्वारा भी बहुत दुष्प्राप्य हैं, अतएव आपका नाम दुर्गा है । दुर्गा देवी आपके लिए हम सब का बार-बार नमस्कार है ॥७०॥

नान्तं जग्मुर्वयं ते वै चण्डिका नाम विश्रुता ।
अम्बा त्वं मातृभूता नो नमस्तस्यै नमोनमः ॥७१

इति श्रुत्वा स्तवं तेषां वरदा सर्वमंगला ।
देवानुवाच मुदिता दैत्यभीतिं हरामि वः ॥७२
स्तोत्रेणानेन सप्रीता भवामि जगतीतले ॥७३

इत्युक्त्वा शंभुसहिता कैलासं गुह्यकालयम् ।
गुहायां मिथुनीभूय सहस्राब्दं मुमोद वै ॥७४
एतस्मिन्नन्तरे देवा भीरुका लोकनाशनात् ।
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य तुष्टुवुर्गिरिजापतिम् ॥७५
लज्जितौ तौ तदा तत्र पश्चात्तापं हि चक्रतुः ।
महान्क्रोधस्तयोश्चासीत्तेन वै दुद्रुवुः सुराः ॥७६
प्रद्युम्नो बलवांस्तत्र संतप्त्यै गौरिवाचलः ।
रुद्रकोपाग्निना दग्धो बभूव बलवत्तरः ॥७७

अव हम सब आपके अनन्त नाम होने के कारण अन्त तक नही प्राप्त हुए हैं। आपका चण्डिका यह नाम परम प्रसिद्ध है। आप हम सब का मातृभूता अम्बा हैं ऐसी आप अम्बा देवी के लिए हमारा बार-बार नमस्कार है। ॥७१॥ इस प्रकार की स्तुति का सुन कर सवमङ्गला वरदा परम प्रसन्न होकर देवो से कहने लगी—मैं अब आपको जो दैत्यो से भय उत्पन्न हागया है उसका हरण कर दूंगी ॥७२॥ इस स्तोत्र से परम प्रसन्न मैं जगती तल मे होती रहूगी ॥७३॥ यह यह कह कर भगवान् शम्भु के सहित गुह्यको का आलय कैलास मे चली गई थी। वहा गुहा मे दोनो ने एकत्र होकर एक सहस्र वर्ष तक आनन्दोपभोग किया ॥७४॥ इसी अन्तर मे लोको के नाश से भयभीत देवगण ब्रह्मा का आगे करके गिरिजा के पति की स्तुति करने लगे थे ॥७५॥ तब वे दोनो ने अत्यंत लज्जित होकर बडा पश्चात्ताप किया था। उन दोनो का महान् क्रोध हुआ था उससे देवगण भाग गये थे ॥७६॥ प्रद्युम्न अत्यन्त बलवान् था। अचल गौ की भांति वहा पर ही सस्थित रहा था। वह अधिक बलवान् भी रुद्र की कोप की अग्नि से दग्ध हो गया था ॥७७॥

प्रद्युम्न स्थलरूप च त्यक्त्वा भस्ममय तदा।
सूक्ष्मदेहमुपागम्य विश्रुतोऽभूदनगक।
यथा पूर्वं तथैवासीत्काय कृत्वा स्मरो विभु ॥७८
स्थूल रूपा रतिर्देवी शताब्द शकर परम्।
ध्यानेनाराधयामास गिरिजावल्लभ व्रतं।
तदा ददौ वर देवस्तस्यै रत्यै सनातन ॥७९
रतिदेवि शृणु त्व वै लोकाना हृत्सु जायसे।
यौवने वयसि प्राप्ते नृणा देहे पति स्वकम्।
भजिष्यसि मदर्थेन प्रद्युम्न कृष्णसभवम् ॥८०
स्वारोचिषान्तर कालो वर्तते चाद्य सुप्रिय।
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते ह्यष्टाविंशतमे युगे।
द्वापरान्ते च भगवान्कृष्ण साक्षाज्जनिष्यति ॥८१

तदा तस्य सुत देव प्रद्युम्न मेरुमूर्द्धनि ।
भजिष्यसि सुख रम्ये विपिने नन्दने चिरम् ॥८२
अन्येषु द्वापरान्तेषु स्वर्णगर्भो हि तत्पति ।
जन्मवान्वर्त्तते भूमौ यथा कृष्णस्तथैव स ॥८३
मध्याह्ने चैव सध्याया ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ।
कल्पेकल्पे हरिस्साक्षात्करोति जनमगलम् ॥८४

प्रद्युम्न ने स्थल रूप का त्याग करके उस समय वह भस्ममय हो गया और फिर सूक्ष्म स्वरूप को प्राप्त कर अनङ्ग—इस नाम से ससार मे प्रसिद्ध होगया था । जैसे यह पहिले था वैसे ही काय को बना कर स्मर अब भी विभु है ॥७८॥ स्थूल रूप वाली रति देवी सौ वर्ष तक परम श कर का ध्यान से आराधन किया था और व्रतो के द्वारा गिरिजा के वल्लभ की पूर्ण उपासना की थी । तब सनातन देव ने उस रति को वरदान दिया था॥७९॥हे देवि ! हे रति ! तुम श्रवण करो मेरा तुमको यह वरदान है कि तुम लोगों के हृदयो मे उत्पन्न होओगी यौवन अवस्था के प्राप्त होने पर नरो के देहो द्वारा अपने पति का सेवन करोगी । मेरे आधे भाग से कृष्ण से सम्भूत प्रद्युम्न का सेवन अवश्य ही उस समय करती रहोगी॥८०॥इस समय आज स्वारोचिष के अन्तर का सुप्रिय काल वर्त्तमान है जब वैवस्वत का अन्तर प्राप्त होगा उस समय मे अट्ठाईसवें युग मे द्वापर युग के अन्त मे भगवान् कृष्ण इस भूमण्डल म जन्म ग्रहण करेंगे ॥८१॥ उस समय उसके पुत्र देव प्रद्युम्न को मेरु के शिखर म सेवन करोगी । और परम रम्य नन्दन विपिन मे चिरकाल तक सुख पूर्वक रमण करोगी ॥८२॥ अन्य द्वापरान्ता म स्वर्णगर्भ उसका पति जन्म वान् भूमि मे वर्त्तमान् होता है और जिस प्रकार कृष्ण हैं वैसे ही वह भी है ॥८३॥ अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्मा के मध्याह्न म और सध्या मे कल्प कल्प मे हरि साक्षात् जनमङ्गल करते हैं ॥८४॥

इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भुस्तत्रैवान्तर्द्धिमागमत् ।
राजा बभूव रुद्राणी गिरिजावल्लभो भव ॥८५

इति श्रुत्वा भव साक्षात्स्वमुखात्स्वांशमुत्तमम् ।
समुत्पाद्य तदा भूमौ गोदावर्यां बभूव ह ॥८६
आचार्यशर्मणो गेहे पुत्रो जातो भवांशकः ।
रामानुजस्स वै नाम्नानुजोऽभूद्रामशर्मणः ॥८७
एकदा रामशर्मा वै पतञ्जलिमते स्थितः ।
तीर्थात्तीर्थान्तरं प्राप्तः पुरीं काशीं शिवप्रियाम् ॥८८
शंकराचार्यमागम्य शतशिष्यसमन्वितः ।
शास्त्रार्थं कृतवांस्तस्य कृष्णपक्षो हरिप्रियः ॥८९
शंकराचार्यविजितो लज्जितो निशि भीरुकः ।
स्वगेहं पुनरायातः शाकरैर्वा शरैर्हतः ॥९०
रामानुजस्तु तच्छ्रुत्वा सर्वशास्त्रविशारदः ।
भ्रातृशिष्यैश्च सहितः पुरीं काशीं समाययौ ॥९१

इतना रति से वह कर भगवान् शम्भु वहीं पर अन्तर्धान होगये थे। रुद्राणी गिरिजा का वल्लभ भव राजा हुआ था ॥८५॥ सूतजी ने कहा—इस प्रकार से सुन कर भव ने साक्षात् अपने मुख से उत्तम अपने अंश को समुत्पादित करके भूमितल मे गोदावरी मे वह हुए थे ॥८६॥ वहा पर आचार्य शर्मा के घर मे भव का अंश पुत्र के स्वरूप मे समुत्पन्न हुआ था। इनका नाम रामानुज था और यह राम शर्मा के छोटे भाई थे ॥८७॥ एक बार राम शर्मा जोकि पतञ्जलि के मत मे स्थित थे, वह तीर्थाटन करते हुए तीर्थों से दूसरे तीर्थों मे चलते हुए शिव की प्रिय काशीपुरी मे प्राप्त हुए थे ॥८८॥ यह अपने सौ शिष्यो से समन्वित होकर शंकराचार्य के पास गये थे। वहा हरि प्रिय कृष्ण पक्ष वाले ने बड़ा सुन्दर शास्त्रार्थ उनके साथ किया था। उस शास्त्रार्थ में शंकराचार्य से विजित होकर परम लज्जा को प्राप्त हुए रात्रि मे भीरु होकर फिर अपने घर मे आगये थे, क्योंकि शास्त्रार्थ मे शांकर शरो से हत हो रहे थे ॥९०॥ रामानुज ने यह सुना तो वह समस्त शास्त्रो के महा मनीषी अपने भाई के शिष्यो को साथ मे लेकर काशीपुरी मे आगये थे ॥९१॥

गिरियों के ईश्वर हैं । रुद्र कभी गोपाल भी नहीं हो सकते हैं क्योंकि गोओ के पालन करने वाले नही है प्रत्युत गौ के ऊपर आरूढ होने वाले हैं । इसलिए वे गवारूढ कहे भी जाते हैं ॥६८॥

अत. पशुपतिः शंभुर्गोपतिर्नैव विश्रुतः ।
लज्जितः शकराचार्यो मीमामाशास्त्रमागतः ॥६६
तयोर्दशदिन शास्त्रे विवादस्सुमहानभूत् ।
यस्तु वै यज्ञपुरुषो रामानुजमतप्रियः ॥१००
विच्छिन्न. शकरेणैव मृगभूतः पराजितः ।
आचारप्रभवो धर्मो यज्ञदेवेन निर्मितः ॥१०१
भ्रष्टाचारस्तदा जातो यज्ञे दक्षप्रजापते. ।
इति रामानुजः श्रुत्वा वचन प्राह नम्रधीः ॥१०२
कर्मणे जनितो यज्ञो ज्ञेयो विश्वपालनहेतवे ।
कर्मब्रह्मोद्भव विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥१०३
अक्षरोऽयं शिवः साक्षाच्छब्दब्रह्मणि सस्थितः ।
पुराणपुरुषो यज्ञो ज्ञेयोऽक्षरकरो भुवि ।
अक्षरात्त तु वै श्रेष्ठ परमात्मा सनातनः ॥१०४
अक्षरेण न वै तृप्तातृप्तोभूद्यज्ञकर्मणि ।
नाम्ना स यज्ञपुरुषो वेदे लोके हि विश्रुतः ॥१०५

शम्भु का नाम पशुपति ही जाना जाता है । कही भी गोपति उनका नाम प्रसिद्ध नही है । इस प्रकार की इन प्रबलतर अकाट्य युक्तियो से शकराचार्य बहुत ही लज्जित हुए और फिर इन्होने मीमास शास्त्र मे वाद का आरम्भ कर दिया था ॥६६॥ उन दोनो का दश दिन तक महान् विवाद हुआ था । जो भी यज्ञ पुरुष हैं वह तो रामानुज के मत का ही प्रिय था । शकर के द्वारा ही विच्छिन्न हुआ मृगभूत हो कर पराजित होगया था । आचार से प्रभव धर्म यज्ञ देव के द्वारा ही निर्मित है ॥१००-१०१॥ वह दक्ष प्रजापति के यज्ञ मे उस समय भ्रष्टाचार होगया था । यह रामानुज सुनकर नम्र बुद्धि वाला बोला—यज्ञ कर्म के लिए जनित है और वह विश्व के पालन के हेतु के लिए ही है ।

वह कर्म ब्रह्मोदभव होता है और ब्रह्म अक्षर समुद्भव होता है ॥१०३॥ यह अक्षर साक्षात् शिव हैं जो शब्द ब्रह्म में संस्थित हैं। पुराण पुरुष यज्ञ है जो भूतल में अक्षरकर जानना चाहिए। अक्षर से वह सनातन परमात्मा श्रेष्ठ हैं ॥१०४॥ अक्षर से तृप्त मे यज्ञ कर्म मे नही होता है नाम के द्वारा वह यज्ञ पुरुष वेद और लोक मे विश्रुत है ॥१०५॥

प्रपौनस्य तदा वृद्धि दृष्ट्वा स्पर्द्धातुरः शिवः।
मृगभूतश्च रुद्रोऽसौ दिव्यवाणैरतर्पयत् ॥१०६
समर्थो यज्ञपुरुषो ज्ञात्वा गुरुमय शिवम्।
पलायनपरो भूतो धर्मस्तेन महान्कृतः ॥१०७
लज्जित. शकराचार्यो न्यायशास्त्रे समागतः।
भवतीति भवो ज्ञेयो मृडलीति स वै मृडः ॥१०८
लोकान्भरति यो देवः स कर्ता भर्ग एव हि।
हरतीति हरो ज्ञेयः स रुद्रः पापरावणः ॥१०९
स्वयं कर्ता स्वयं भर्ता स्वय हर्ता शिवः स्वयम्।
शिवाद्विष्णुर्मही यातो विष्णोर्ब्रह्मा च पद्मभूः ॥११०
इति श्रुत्वा तु वचनं प्राह रामानुजस्तदा।
धन्योऽय भगवाञ्छंभुर्यस्याय महिमा परः ॥१११
सत्यसत्य ममाज्ञेय कर्ता धारयिता शिवः।
रामनाम पर नित्यं कथ शम्भुर्जपेद्धरिम् ॥११२

स्पर्धातुर शिव उस समय मे प्रपौत्र की वृद्धि को देखकर मृगभूत यह रुद्र दिव्य वाणों के द्वारा तृप्त किया था ॥१०६॥ समर्थ यज्ञ पुरुष ने गुरुमय शिव को जान कर उससे महान् कृत धर्म पलायन परायण हो गया था इस मीमांसा शास्त्र मे भी लज्जित होकर शकराचार्य फिर न्याय शास्त्र में आगये थे शंकराचार्य ने कहा—भवतीति भव अर्थात् जो होता है वही भव जानने में योग्य होता है और जो मृडन करता है वह 'मृड-तीति'—इस व्युत्पत्ति के द्वारा मृड कहा जाता है ॥१०७-१०८॥ जो देव लोकों का भरण करता है वह कर्ता ही भर्ग है। जो हरण करता है उसे ही हर जानना चाहिए। वह रुद्र है जो पापों का रावण करने

वाला है ॥१०९॥ शिव स्वय कर्ता—भर्ता और हर्ता है। शिव से विष्णु महो को प्राप्त हुआ और विष्णु से पद्मभू महो को गया था ॥११०॥ शकर भगवान् के इन वचनो को सुन कर तव फिर रामानुज ने कहा—यह आपका भगवान् शम्भु धन्य है जिसकी ऐसी पर महिमा है ॥१११॥ सत्य और ध्रुव सत्य यह है कि यह शिव मेरी आज्ञा है जिस का वह कर्त्ता और कार पिता अर्थात् कराने वाला है। राम का नाम पर और नित्य हूँ उस हरि का ही शम्भु सदा जय किया करते हैं ॥११२॥

अनता: सृष्टय. सर्वा उद्भूता यस्य तेजसा ।
अनत: शेषत: शेपार मन्ते योगिनो हि तम् ॥११३
स च वै मत्प्रभोर्धाम सच्चिदानदविग्रहः ।
इति श्रुत्वा तदावाक्यं लज्जित: शंकरोऽभवत् ॥११४
योगशास्त्रपरो देव: कृष्णस्तेनैव दर्शित: ।
कालात्मा भगवान्कृष्णो योगेशो योगतत्पर: ॥११५
साख्यशास्त्रे च कपिलस्तस्मै तेनैव दर्शित: ।
कं वीर्यं पति यो वै स कपिस्त चैव लाति य: ।
कपिलस्स तु विज्ञेय: कपी रुद्र: प्रकीर्तित: ॥११६
कपिलो भगवान्विष्णु: सर्वज्ञ: सर्वरूपवान् ।
तदा तु शकराचार्यो लज्जितो नम्रकन्धर: ॥११७
शुक्लाम्बरधरो भूत्वा गोविन्दो नाम निर्मलम् ।
जजाप हृदि शुद्धात्मा शिष्यो रामानुजस्य वै ॥११८
इति ते रुद्रमाहात्म्य प्रसगेनापि वर्णितम् ।
धनवान्पुत्रवान्वाग्मी भवेद्य: शृणुयादिदम् ॥११९

ये समस्त सृष्टियाँ अनन्त हैं। ये सब जिसके तेज उद्भूत से हुई हैं,वह शेष मे भी अनन्त है। शेष योगिगण उसका रमण किया करते हैं ॥११३॥ वह मेरे प्रभु का धाम है जोकि सच्चिदानन्द विग्रह वाले हैं। इस रामानुज का वाक्य श्रवण करके शकराचार्य बहुत ही लज्जित हुए थे ॥११४॥ योगशास्त्र में परदेव कृष्ण ही हैं उसने ही दिखाया

है। भगवान् कृष्ण कालात्मा–योगेश और योग मे तत्पर हैं ॥११५॥ और साख्यशास्त्र मे कपिल ने उसके लिए उसी ने दिखाया है । कपि साम वीर्य को जो रक्षा करता है वह कपि है उस कपि को जा लाता है वह कपिल होता है। वही कपिल है और कपि रुद्र कहा गया है ॥११६॥ कपिल भगवान् विष्णु हैं जो सवज्ञ और सर्व रूप वाल है। तब तो भगवान् श कराचार्य परम लज्जित होकर नीचे को क धरा करने वाले होगये थे ॥११७॥ गोविन्द शुक्ल वस्त्र धारण करने वाला होकर निर्मल नाम का जप करने लगा। हृदय मे शुद्धात्मा रामानुज का शिष्य था ॥११८॥ यह रुद्र का माहात्म्य प्रसङ्ग स ही तुम्हारे समक्ष मे वणन कर दिया गया है। जो इस माहात्म्य का श्रवण करता है वह धन वाला और पुत्र वाला तथा वाग्मी हो जाता है ॥११९॥

॥ कबीर–नरश्री–पीपा–नानक–वृत्तान्त ॥

दितिपुत्रौ महाघोरौ विष्णुना प्रभविष्णुना ।
सहतौ तु दितिर्ज्ञात्वा कश्यप समपूजयत् ॥१
द्वादशाब्दातरे स्वामी कश्यपो भगवानृपि ।
उवाच पत्नी स हि ता वर ब्रूहि वरानने ।
सा तु श्रुत्वा नमस्कृत्य वचन प्राह हर्षिता ॥२
अदितिर्मम या देवी सपत्नी पुत्रसयुता ।
द्वादशततयास्तस्या मम द्वौ तनयौ स्मृतौ ॥३
सदवयसुते नैव विष्णुना सुरपालिना ।
विनाशितौ सुतौ घोरौ ततोऽह भृशदु खिता ॥४
देहि मे तनय स्वामिन्द्वादशादित्यनाशनम् ।
इति श्रुत्वा वचो घोरं दितिं प्राह सुदु खित ॥५
ब्रह्मणा निर्मितौ लोके धर्माधर्मौ परापरौ ।
धर्मपक्षास्तु ये लोके नरास्ते ब्रह्मण प्रिया ॥६

अधर्मपक्षास्तु नरा वैरिणस्तस्य धीमतः ।
अधर्मपक्षौ तनयौ तस्मान्मृत्युमुपागतौ ॥७

इस अध्याय मे कबीर—नरश्री—पीपा—नानक और नित्यानद साधुओ की समुत्पत्ति के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । सुर गुरु वृहस्पति जी ने कहा—दिति के पुत्र दोनो महान् घोर थे । वे दोनो विष्णु के द्वारा प्रभविष्णु होकर मारे गये थे अर्थात् विष्णु ने अवतार धारण कर उन्हें मार दिया था । यह जानकर दिति ने कश्यप की भली-भाँति पूजा की थी ॥१॥ जब यजन करते हुए दिति को बारह वर्ष हो गये तो भगवान् कश्यप ऋषि जो उस दिति के स्वामी थे अपनी उस पत्नी से बोले—हे वरानने ! तू अपना मनोवाञ्छित वर माँग ले । उस दिति ने यह श्रवणकर बड़ा हर्ष प्राप्त किया और पति को नमस्कार करके उनसे कहने लगी थी ॥२॥ हे भगवन् ! अदिति देवी जो मेरी सपत्नी है वह पुत्रो से सयुत है । उसके बारह पुत्र हैं और मेरे दो ही पुत्र थे ॥३॥ वे दो पुत्र भी अवर्यसुत सुरो के पालन करने वाले विष्णु ने विनाशित कर दिये हैं जो कि पुत्र अत्यन्त घोर थे । इससे मैं बहुत ही अधिक दुःखित हू । हे स्वामिन् ! मुझे ऐसा पुत्र प्रदान करें जो इन बारह अदिति के पुत्रों का नाश करने वाला हो । इस घोर वचन को सुनकर कश्यप बहुत अधिक दुखी होकर दिति से बोले ॥४-५॥ लोक मे ब्रह्मा ने पर और अपर धर्म तथा अधर्म इन दोनो का निर्माण किया है । धर्म के पक्ष को ग्रहण करने वाले नर होते हैं वे ब्रह्मा के प्रिय हुआ करते हैं । अधर्म के पक्ष को ग्रहण करने वाले नर उस धीमान् के शत्रु होते हैं । तेरे पुत्र तो अधर्म के पक्ष ग्रहण करने वाले थे । इसी से वे मृत्यु को प्राप्त हुए हैं ॥६-७॥

अतो धर्मप्रिये शुद्ध कुरु तस्मान्महाबल. ।
भविष्यति सुतो धीमांश्चिरजीवी तव प्रिय. ॥८
इति श्रुत्वा दितिर्देवी कश्यपाद्गर्भमुत्तमम् ।
सप्राप्य सा शुभाचारा बभूव व्रतधारिणी ॥९

तस्यागर्भगते पुत्र महेन्द्रश्च भयान्वितः ।
दासभूतः स्थितो गेहे स दितेराज्ञया गुरोः ॥१०
सप्तमासि स्थिते गर्भे शक्रमायाविमोहिता ।
अशुचिश्च दितिर्देवी सुष्वाप निजमंदिरे ॥११
अंगुष्ठमात्रो भगवान्महेन्द्रो वज्रसंयुतः ।
कुक्षिमध्ये समागम्य चक्रे गर्भं स सप्तधा ॥१२
जीवभूताननतिबलान्दृष्ट्वा सप्त महारिपून् ।
एकैकः सप्तधा तेन महेन्द्रेण तदा कृतः ॥१३
नम्रीभूतश्च तान्दृष्ट्वा महेन्द्रस्तैः समन्वितः ।
योनिद्वारेण चागम्य प्रणनाम तदा दितिम् ॥१४

इसलिये हे धर्म प्रिये ! शुद्ध मन करो । इससे महान् बलवान्—धीमान् और चिर काल तक जीवित रहने वाला तेरा प्रिय पुत्र समुत्पन्न होगा ॥८॥ यह श्रवण कर दिति देवी ने कश्यप ऋषि से उत्तम गर्भ धारण किया और वह फिर शुभ आचारों वाली वृत्तों को धारण करने वाली हो गई ॥९॥ उसके गर्भ में पुत्र के आ जाने पर महेन्द्र देव अत्यन्त भय से आतुर हो गये थे और गुरु की आज्ञा से वह दास बनकर दिति के घर में ही स्थित होकर रहने लगा था ॥१०॥ जब उस गर्भ को स्थित हुए सात मास हो गये थे तब वह दिति इन्द्र की माया से विमोहित होकर अशुचि दशा में ही वह अपने मन्दिर मे सो गई थी ॥११॥ इसी छिद्र को प्राप्त कर महेन्द्र देव अगुष्ठ मात्र होकर वज्र धारण करके दिति की कुक्षि में प्रवेश कर गये थे और उसने अपने वज्र से उस गर्भ के सात टुकड़े कर दिये थे ॥१२॥ फिर भी जीवभूत अत्यन्त बलवान् उन सातों महारिपुओं को देखकर उस समय महेन्द्र ने एक-एक खण्ड के फिर सात-सात टुकड़े कर दिये थे ॥१३॥ उनको नम्री भूत जब इन्द्र ने देखा तो उनके साथ ही योनि के द्वार से बाहिर निकल कर महेन्द्र ने दिति को प्रणाम किया था ॥१४॥

प्रसन्ना सा दितिर्देवान्महेन्द्राय च तान्ददौ ।
मरुद्गणाश्च ते सर्वे विख्याताः शक्रसेवकाः ॥१५

स तु पूर्वभवे जातो ब्राह्मणो लोकविश्रुतः ।
इलो नाम स वेदज्ञो यथेलो नृपतिस्तदा ॥१६
एकदा बलवाञ्राजा मनुपुत्र इलः स्वयम् ।
एकाकी हयमारुह्य मेरोर्विपिनमाययौ ॥१७
मेरोरधः स्थितः खण्डः स्वर्णगर्भो हरिप्रियः ।
निवास कृतवांस्तत्र कृत्वा राष्ट्रं महोत्तमम् ॥१८
इलेनावृतमेवापि कृत तत्र स्थले सुराः ।
इलावृतमिति ख्यातः खण्डोऽभूद्विबुधप्रिय. ॥१६
भारते ये स्थिता लोका इलावृतमुपागताः ।
मेरुगिरिर्वृक्षमयो विधात्रा निर्मितो हि सः ॥२०
आरोहण नरैस्तस्मिन्कृत स्वर्णमय शुभम् ।
तमारुह्य क्रमाल्लोकः स्वर्गलोकमुपागतः ॥२१

तब दिति देवी ने प्रसन्न होकर उन देवो को महेन्द्र के लिये ही दे दिया था । वे सब इन्द्र के सेवक मरुद्गण इस नाम से विख्यात हुए थे ॥१५॥ वह पूर्व जन्म मे लोक मे प्रसिद्ध ब्राह्मण हुआ था । वह वेदो का ज्ञाता इल नाम वाला था जैसा कि उस समय मे इल राजा था ॥१६॥ एक बार बलवान् मनु का पुत्र राजा इल स्वय अकेला ही अश्व पर समारूढ होकर मेरु के वन मे आ गया था ॥१७॥ मेरुगिरि के निचले भाग मे हरि का प्रिय स्वर्ण गर्भ खण्ड स्थित था । वहा पर इसने महान् उत्तम राष्ट्र का निर्माण करके अपना निवास किया था ॥१८॥ उस स्थल मे देवो ने इल के द्वारा आवृत भी किया था । अतः देवो का प्रिय वह खण्ड इलावृत इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥१६॥ भारत मे जो लोक स्थित हैं वे इलावृत मे उपागत हो गये थे । वह मेरु गिरि वृक्षो से परिपूर्ण विधाता के द्वारा निर्मित हुआ था ॥२०॥ उस पर नरो ने स्वर्णमय शुभ आरोहण किया था । उस पर आरोहण करके क्रम से लोक स्वर्ग लोक मे उपागत हो गया था ॥२१॥

तान्दृष्ट्वा मनुजान्प्राप्तान्सदेहान्स्वर्गमण्डले ।
विस्मिताश्च सुरास्सर्वे महेशं शरणं ययु. ॥२२

ज्ञात्वा स भगवान्रुद्रो भवान्या सह शंकरः ।
इलावृतवने रम्ये स रेमे च तया सह ॥२३
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो वैवस्वतसुतो महान् ।
इलो नाम महा प्राज्ञो मृगयार्थी सदाशिवम् ॥२४
नग्नभूत समालोक्य नेत्रे संमील्य सस्थितः ।
लज्जिता गिरिजां दृष्ट्वा शशाप भगवान्हरः ॥२५
अस्मिन्खण्डे सदा नार्यो भविष्यंति च मा विना ।
इत्युक्त्वा वचनं तस्मिन्नार्यस्सर्वा बभूविरे ॥२६
इला बभूव नृपतेः कन्या जनमनोहरा ।
बहुकाल मरम्भृ गे महत्तापमचीकरत् ॥२७
इलासमाधिभूतायाः मन्र्विशच्चतुर्युगम् ।
जात तत इला कन्या त्रेतामध्ये तु चन्द्रजम् ।
बुध देव पति कृत्वा चद्रवंशमजीजनत् ॥२८

पुत्र बुध देव को अपना पति बना कर चन्द्र वंश को समुत्पन्न किया था ।।२८।।

अयोध्याधिपतिः श्रीमान् यदलावृतमागत ।
तस्य राज्ञी मदवती नाम्ना तुष्टाव पार्वतीम् ।।२९
तदा प्राप्त इलो विप्रस्तस्या रूपेण मोहित ।
पस्पर्श ता मदवती राज्ञी कामविमोहित ।।३०
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी ।
इलो नाय द्विजश्चाय तव रूपविमोहित ।।३१
अनिलो नाम तत्रैव विख्यातोऽभूद्द्विजस्य वै ।
कामाग्निपीडितो विप्रस्स तुष्टाव च पावकम् ।।३२
छित्वाछित्वा शिरो रम्य तस्मै जात पुन पुन ।
दत्वा तुष्टाव त देव प्रसन्नोऽभूद्धनजय ।।३३
प्राह त्वमूनपचाशद्विभेदान्जनयिष्यसि ।
तथाह मिश्रवान्भूत्वा तत्सख्यस्तव कामद ।।३४
यथा कुबेरो भगवा पर्वविशद्वरुणप्रिय ।
तथाहमूनपचाशद्विभेदस्तव वै सखा ।।३५
इत्युक्ते वचने तस्मिन्दितिकुक्षौ द्विजोत्तम ।
वायुर्नाम स वै जात पावकस्य प्रियस्सखा ।।३६

अयोध्या का स्वामी श्रीमान् जिस समय मे इलावृत मे आया था उस समय मे उस राजा की रानी मदवती नाम वाली ने वहा पार्वती की स्तुति की थी ।।२९।। उस समय इल विप्र वहा आ गया और वह उस मदवती के रूप से मोहित हो गया था । काम से विशेष मोहित होकर उस विप्र ने उस मदवती राज्ञी का स्पर्श किया था ।।३०।। इसी अन्तर मे बिना शरीर वाली वाणी ने कहा अर्थात् आकाश मे वाणी हुई थी यह इल नही है और यह द्विज इल है जो तुम्हारे रूप से मोहित हो गया है ।।३१।। वहा पर ही द्विज का अनिल यह नाम विख्यात हो गया था । कामाग्नि से अत्यन्त पीडित उस ब्राह्मण ने पावक की स्तुति की थी ।।३२।। उसने अपने रम्य शिर को काट काटकर उसे समर्पित किये

थे किन्तु पुनः पुनः उत्पन्न हो गया था। इस तरह से उस देव का जब स्तवन किया था। तब धनंजय प्रसन्न हो गया था ॥३३॥ वह संतुष्ट होकर बोला—तू उनचास विभेदों को उत्पन्न करेगा। तब मैं मित्रवान् होकर उतनी ही संख्या वाला तेरी कामनाओं का देने वाला होऊंगा ॥३४॥ जिस तरह भगवान् कुवेर छब्बीस वरुणों का प्रिय हैं। उसी प्रकार से मैं उनचास विभेद वाला तेरा सखा हूं ॥३५॥ इस तरह के वचन कहने पर द्विजोत्तम दिति की कुक्षि मे वायु नाम वाला पावक का सखा उत्पन्न हुआ था ॥३६॥

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं वैश्यजात्यां समुद्भवः।
धान्यपालस्य वै गेहे मूलगंडान्तजः सुतः।
पितृमातृपरित्यक्तः काश्यां विंध्यवने तदा ॥३७
अलिको नाम वै म्लेच्छस्तत्र स्थाने समागतः ॥३८
अनपत्यो वस्त्रकारी सुत प्राप्य गृहं ययौ।
कबीर इति विख्यातः स पुत्रो मधुराननः ॥३९
स सप्ताब्दवपुर्भूत्वा गोदुग्धपानतत्परः।
रामानंदं गुरुं मत्वा रामध्यानपरोऽभवत् ॥४०
स्वहस्तेनैव संस्कृत्य भोजनं हरयेऽर्पयत्।
तत्प्रियार्थं हरिस्साक्षात्सर्वकामप्रदोऽभवत् ॥४१
उत्तानपादतनयो ध्रुवोभूत्क्षत्रियः पुरा।
पितृमातृपरित्यक्तः स बालः पंचहायनः ॥४२

सूतजी ने कहा—गुरु के इस वाक्य का श्रवण कर वैश्य जाति में समुत्पन्न धान्यपाल के घर मे मूलगण्डान्त में जन्म लेने वाला पुत्र हुआ था जो कि माता और पिता के द्वारा परित्यक्त कर दिया गया था। उस समय काशी में विन्ध्य वन मे अलिक नाम वाला म्लेच्छ था वह उस स्थान में आ गया था ॥३७-३८॥ वह म्लेच्छ सन्तान से हीन था और वस्त्रकारी था, वह उस सुत को प्राप्त करके गृह को चला गया था। वह कबीर इस नाम मे मधुर मुख वाला पुत्र संसार मे प्रसिद्ध हो गया था ॥३९॥ वह सात वर्ष की अवस्था वाला होकर गाय के दूध का

पान करने में तत्पर रहता था। फिर इसने स्वामी रामानन्द को अपना गुरु मान लिया था और श्रीराम के ध्यान में परायण हो गया था ॥४०॥ अपने हाथ से ही सस्कार करके यह हरि को भोजन अर्पण किया करता था। उसके प्रिय के लिये हरि साक्षात् समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले हो गये थे ॥४१॥ बृहस्पति जी ने कहा—पहिले राजा उत्तानपाद का पुत्र क्षत्रिय ध्रुव हुआ था। यह पाच वर्ष का बालक माता पिता के द्वारा परित्यक्त करा दिया गया था ॥४२॥

गोवर्द्धनगिरी प्राप्य नारदस्योपदेशत ।
स चक्रे भगवद्ध्यान मासान्षट् च महाव्रती ॥४३
तदा प्रसन्नो भगवान्विष्णुर्नारायण प्रभु ।
खमडले पद तस्मै ददौ प्रीत्या नभोमयम् ॥४४
दृष्ट्वा तद्वदन रम्य मायाशक्त्या दिशो दश ।
स्वामिन च ध्रुव मत्वा भक्तिनम्रा बभूविरे ॥४५
ध्रुवोऽपि भगवान्साक्षात्सर्वपूज्यो बभूव ह ।
दिक्पति स तु विज्ञेयो भगणाना पति स्वयम् ॥४६
नभ पति कालकर शिशुमारपतिस्स वै ।
पचतत्त्वा हि वै माया प्रकृतिस्तत्पति स्वयम् ॥४७
तस्माद्धराया सभूतो भौमो नाम महाग्रह ।
जलदेव्यास्ततो जात शुक्रो नाम महाग्रह ॥४८
वह्निदेव्यास्ततो जातश्चाह तत्र महाग्रह ।
वासुदेव्या ध्रुवाज्जात केतुर्नाम महाग्रह ॥४९

यह गोवर्द्धन पर्वत पर जाकर नारद के उपदेश से छै मास पर्यन्त महान् व्रत करने वाले इसने भगवान् का ध्यान किया था। तब भगवान् विष्णु नारायण प्रभु परम प्रसन्न हो गये थे और उन्होंने उसके लिये आकाश मण्डल में प्रीति से नभोमय पद दे दिया था ॥४४॥ माया शक्ति में उसके परम रम्य मुख को देखकर दशों दिशा में ध्रुव को स्वामी मान कर भक्ति से विनम्र हो गई थीं ॥४५॥ ध्रुव भी साक्षात् भगवान् सब का पूज्य हो गया था। वह स्वय भगणों का पति दिक्पति जानने के

योग्य है ॥४६॥ नभ का पति—कानकर और वह शिशु मार पति था। पाँच तत्वों वाली माया प्रकृति थी उसका पति वह स्वय था ॥४७॥ इस लिये धरा में भौम नाम वाला महाग्रह उत्पन्न हो गया था। इसके अनतर जलदेवी शुक्र नाम वाला वहा पर महाग्रह उत्पन्न हुआ था ॥४८॥ इसके पश्चात् वह्नि देवी में वहा मैं महाग्रह समुत्पन्न हुआ। वायुदेवी में ध्रुव से केतु नाम वाले महाग्रह ने जन्म धारण किया था ॥४९॥

ग्रहभूतः स्थितस्तत्र नभोदेव्यां तदुद्भवः ।
राहुर्नाम तथा घोरो महाग्रह उपग्रहः ॥५०
पूर्वस्यां दिशि वै तस्माज्जातश्चैरावतो गजः ।
आग्नेय्यां दिशि वै तस्मात्पुंडरीको गजोऽभवत् ॥५१
वामनः कुमुदश्चैव पुष्पदंतः क्रमाद्गजाः ।
सार्वभौमः सुप्रतीको नभोदिक्षु तु तत्सुताः ॥५२
अभ्रमुःकपिला चैव पिंगलाख्या इमाःक्रमात् ।
ताम्रकर्णी शुभ्रदती चांगना चांजनावती ॥५३
भूमिदिक्षु करिण्यश्च जातास्तस्मात्तु तत्प्रियाः ।
भगिनी च तथामाता सुता चैव स्नुषा तथा ॥५४
पशुयोन्युद्भवानां च नृणां ता योषितस्सदा ।
देवयोन्युद्भवानां च नृणां पत्नी स्मृता स्वसा ॥५५
मनुवंशोद्भवानां च नृणां चान्योद्भवाः स्त्रियः ।
इति धर्मो विधात्रोक्तो मया प्रोक्तःसुरा हि वः ॥५६

वहां पर ग्रह भूत होकर वह स्थित हो गया था। उसका उद्भव नभोदेवी मे हुआ था। राहु नाम का महाग्रह अति घोर उपग्रह है ॥५०॥ पूर्वदिशा मे उससे ऐरावत नाम वाला हाथी समुत्पन्न हुआ था। आग्नेयी दिशा में उससे पुण्डरीक नाम धारी गज की उत्पत्ति हुई थी ॥५१॥ वामन-कुमुद और पुष्प दन्त गज तथा सार्वभौम-सुप्रतीक क्रम से गज हुए थे जो नभो दिशाओं में थे। उनके पुत्र अभ्रमु-कपिला और पिंगल नाम वाले क्रम से हुए थे। ताम्रकर्णी-शुभ्रदन्ती-चाङ्गना और चाजनावती भूमि को दिशाओं मे करिणिया उससे उत्पन्न हुई थी।

उनकी प्रिया भगिनी-माता-सुता और स्नुषा हुई थी। पशुयोनि म जन्म लेने वाले मनुष्यों की वे सदा स्त्रियां थीं। जो देवयोनि म उद्भव वान नर थे उनकी पत्नी स्वसा थी। मनुवश मे जन्म ग्रहण करने वालो की भ्र योद्भव स्त्रिया थीं। हे देवगण ! विधाता ने यह धम कहा है और मैंन आपको कह कर सुना दिया है ॥५२ ५६॥

द्विधा ध्रुवस्स विज्ञेयो भूमेरुद्ध मधस्तथा ।
सद्गुण स दिवारूपो रात्रिरूपस्तमोगुण ॥५७
अधोध्रुवे सदा रात्रिर्नारकास्तत्र वै स्थिता ।
ऊर्ध्वध्रुवे दिवा नित्य तपोमध्ये निशा दिवा ॥५८
महो जनस्तपस्सत्य तेषु नित्य दिन स्मृतम् ।
रौरवश्चाधकूपश्च तामिस्र च तमोमयम् ।
तेषुनित्य स्मृता रात्रि कल्पमान च कोविदै ॥५९
स तु पूर्वभवे चासीद्ब्राह्मणो माधवप्रिय ।
पट्चब्द सवतीर्थेषु प्रात स्नान चकार ह ॥६०
तीर्थ पुण्यात्स वै विप्रो माधवो माधवप्रिय ।
सुनीत्या नर्ममासाद्य ध्रुवो भूत्वा रराज ह ।
षट्त्रिंशद्व सहस्रब्द राज्य कृत्वा ध्रुवोऽभवत् ॥६१
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्य स ध्रुव पचमो वसु ।
गुर्जरे देश आगम्य वश्यजात्या समुद्भव ।
नरश्रीर्नाम विख्यातो गुणवश्यस्य वै सुत ॥६२
कुसीदगुणगुप्तश्च नरश्री पुनवत्सल ।
त्यक्त्वा प्राणान्ययौ स्वर्ग स वैश्यतनयो ध्रुव ॥६३

वह ध्रुव भूमि के ऊर्ध्व भाग मे और अधोभाग म दो प्रकार का जानना चाहिए। दिवारूप वह सत्त्व के गुण वाला है और रात्रि रूप वह तमोगुण वाला है ॥५७॥ अधोभाग के ध्रुव मे सदा ही रात्रि रहा करती है। वहा पर नरक वाले लोग स्थित रहते हैं। ऊर्ध्वभाग के ध्रुव म नित्य ही दिन रहता है उन दोनो के मध्य में दिन और निशा दोनो रहा करते हैं ॥५८॥ महलोक-जन लोक-तपो लोक और सत्य लोक इन

चारो मे नित्य ही दिन रहता है । रौरव—अन्ध कूप—तामिस्र ये अन्धकार मय और तमोगुण वाले हैं । उनमे सर्वदा ही रात्रि कही गई है । कोविद लोगो के द्वारा एक कल्प तक उसका मान बताया गया है ॥५६॥ वह पहिले जन्म मे माधव का प्रिय ब्राह्मण था । साठ वर्ष तक समस्त तीर्थों मे उसने प्रातःकाल का स्नान किया था ॥६०॥ तीर्थों के पुण्य के प्रभाव से वह विप्र माधव का प्रिय हो गया था । फिर मुनीवि मे गर्भ प्राप्त करके ध्रुव हुआ था और दीप्तिमान हो गया था । छत्तीस सहस्र वर्ष तक राज्य सुख का अनुभव करके वह ध्रुव हो गया था ॥६१॥ सूतजी ने कहा—गुरु के इस वाक्य का श्रवण करके पचम वसु वह ध्रुव गुर्जर (गुजरात) देश मे आकर वैश्य जाति मे समुद्भूत हुआ था । इसका नरश्री यह नाम प्रसिद्ध था और यह गुण वैश्य नाम वाले वैश्य का पुत्र था ॥६२॥ इसका पुत्र कुसीद गुण गुप्त था । पुत्र का वत्सल नरश्री अपने प्राणो का त्याग करके स्वर्ग लोक को चला गया था । वह ध्रुव वैश्य तनय था ॥६३॥

प्रत्यह स हरेः क्रीडा वृन्दावनमहोत्तमे ।
शिवप्रसादात्प्रत्यक्षा दृष्ट्वा हर्षमवाप्तवान् ॥६४
यस्य पुत्रविवाहे च भगवान्भक्तवत्सलः ।
यादवैस्सह सप्राप्तस्तस्य वाछितदायकः ॥६५
पुरी काशी समागम्य नरश्रीभक्तराट् स्वयम् ।
रामानन्दस्य शिष्योऽभूद्विष्णुधर्म विशारद ॥६६
कदाचिद्भगवानत्रिर्गगाकूलेऽनसूयया ।
साद्धं तपो महत्कुर्वन्ब्रह्मध्यानपरोऽभवत् ॥६७
तदा ब्रह्मा हरिश्शभुः स्वस्ववाहनमास्थिताः ।
वर ब्रूहीति वचन तमाहुस्ते सनातना. ॥६८
इति श्रुत्वा वचस्तेषा स्वयभूतनयो मुनिः ।
नैव किञ्चिद्वचः प्राह सस्थितः परमात्मनि ॥६९
तस्य भाव समालोक्य त्रयो देवाः सनातनाः ।
अनसूया तस्य पत्नी समागम्य वचोऽब्रुवन् ॥७०

वृन्दावन महोत्सव मे प्रतिदिन उसने भगवान् श्री हरि की क्रीडा को शिव के प्रसाद से प्रत्यक्ष रूप मे देखकर बड़ा ही अधिक हर्ष प्राप्त किया था ॥६४॥ जिसके पुत्र के विवाह मे भक्तों पर अधिक प्यार करने वाले भगवान् यादवों के साथ सम्प्राप्त हुए थे जो कि उसके वाञ्छित के देने वाले थे ॥६५॥ काशीपुरी मे आकर भक्तों के राजा नरश्री स्वय स्वामी रामानन्द के शिष्य हो गये थे जो विष्णु धर्म के महापण्डित थे ॥६६॥ सूत गुरु बृहस्पति जी ने कहा—किसी समय भगवान् अत्रि मुनि गगा के तट पर अनसूया के साथ महान् तप करते हुए ब्रह्म के ध्यान मे तत्पर हो गये थे ॥६७॥ उस समय मे ब्रह्मा–हरि और शम्भु ये तीनो अपने-अपने वाहनो पर समारूढ होकर वे सनातन 'वरदान की याचना करो जो कुछ भी तुमको अभीष्ट हो'—यह वचन उस अत्रि मुनि से बोले थे ॥६८॥ उनके इस वचन का श्रवण करके स्वयम्भू के पुत्र मुनि ने कुछ भी वचन नही कहा था क्योकि वह उस समय परमात्मा मे ही सलग्न होकर स्थित थे ॥६९॥ वे सनातन तीनो देवो ने उसके भाव को देख कर उसकी पत्नी जो अनसूया थी उसके पास जाकर कहा था ॥७०॥

लिंगहस्त स्वय रुद्रो विष्णुस्तद्रसवर्द्धन' ।
ब्रह्मा कामब्रह्मलोप' स्थितस्तस्यावश गत ।
रति देहि मदाघूर्णे नो चेत्प्राणास्त्यजाम्यहम् ॥७१

पतिव्रताऽनसूया च श्रुत्वा तेषा वचोऽशुभम् ।
नैव किंचिद्वच. प्राह कोपभीता सुरान्प्रति ॥७२

मोहितास्तत्र ते देवा गृहीत्वा ता बलात्तदा ।
मैथुनाय समुद्योग चक्रुर्मायाविमोहिताः ॥७३

तदा क्रुद्धा सती सा वै ताञ्छशाप मुनिप्रिया ।
मम पुत्रा भविष्यति यूय कामविमोहिताः ॥७४

महादेवस्य वै लिंग ब्रह्मणोऽस्य महाशिर' ।
चरणौ वासुदेवस्य पूजनीया नरैस्सदा ।
भविष्यति सुरश्रेष्ठा उपहासोऽप्यमुत्तम ॥७५

इति श्रुत्वा वचो घोरं नमस्कृत्य मुनिप्रियाम् ।
तुष्टुवुर्भक्तिनम्राश्च देवपाठैश्च ऋङ्मयैः ॥७६
अनसूया तदा प्राह भवन्तो मम पुत्रकाः ।
भूत्वा शापं मदीयं च त्यक्त्वा तृप्तिमवाप्स्यथ ॥७७

रुद्र स्वयं लिङ्ग को हाथ में लिए हुए हैं—विष्णु उसके रस का वर्द्धन करने वाले हैं और काम ब्रह्मलोप ब्रह्मा भी यहा पर स्थित हैं जोकि उनके अवश को प्राप्त हुए हैं। हे महाघूर्णे ! अब तू रति का दान दे नहीं तो मैं प्राणों का त्याग करता हूँ ॥७१॥ पातिव्रत धर्म का पूर्ण पालन करने वाली अनसूया ने इन उनके अशुभ वचन को सुन कर देवों के प्रति अत्यन्त क्रुद्ध होने के भय से डरी हुई होकर उसने कुछ भी उनको उत्तर नहीं दिया था ॥७२॥ वहा पर देवगण मोहित होगये थे और उस अनसूया को बल पूर्वक उस समय पकड़ लिया था तथा माया से अत्यन्त विमोहित होते हुए उनने उसके साथ मैथुन करने का उद्योग किया था ॥७३॥ जब इसको देखा तो मुनि की प्रिया को बड़ा क्रोध उत्पन्न होगया था और उस सती ने उनको शाप देदिया था—तुम काम से विमोहित होगये हो अब तुम सब मेरे पुत्र होकर जन्म लोगे ॥७४॥ महादेव के इस लिङ्ग की—ब्रह्मा के महाशिर की और वासुदेव विष्णु के चरणो की ही सदा मनुष्यों के द्वारा पूजा हुआ करेगी। हे सुरश्रेष्ठो ! आप इसी प्रकार से पूजा के योग्य होओगे और यह एक उत्तम उपहास होगा ॥७५॥ इस प्रकार का परम घोर वचन सुन कर उन्होंने मुनि प्रिया को नमस्कार किया था और भक्ति से अत्यन्त विनम्र होकर वेद पाठ की ऋचाओं के द्वारा उसकी स्तुति करने लगे थे ॥७६॥ इसके पश्चात् अनसूया ने कहा—आप सब तीनों मेरे पुत्र बन कर मेरे शाप का त्याग करके फिर परम तृप्ति करेंगे ॥७७॥

इत्युक्ते वचने ब्रह्मा चंद्रमाश्च तदा ह्यभूत् ।
दत्तात्रेयो हरिः साक्षाद् दुर्वासा भगवान्हरः ।
तत्पापपरिहारार्थं योगवन्तो बभूविरे ॥७८

एतस्मिन्न तरेदेवी प्रकृतिस्सव धार्मिणी ।
विधि विष्णु हर चान्य चक्रे सा गुणरूपिणी ॥७९
मन्वतरमतो जात तेषा योग प्रकुर्वताम् ।
हर्षिताश्च त्रयो देवास्समागम्य च तान्प्रति ॥८०
उवाच वचन रम्य तेषा मगलहेतवे ।
चन्द्रमाश्च भवेत्सोमो वसु षष्ट सुरप्रिय ॥८१
रुद्राशश्चैव दुर्वासा प्रत्यूप सप्तमो वसु ।
दत्तात्रेयमयो योगी प्रभासश्चाष्टमो वसु ।
तेषा वाक्य समाकर्ण्य वसवस्ते त्रयोऽभवन् ॥८२
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्य वसवो हर्षितास्त्रय ।
स्वांशेन भूतल जग्मु कलिशुद्धाय दारुणे ।
दाक्षिणात्ये राजगृहे वैश्यजात्या समुद्भव ॥८३
पीपा नाम सुत मोम देवस्य तदा ह्यभूत् ।
कृत राज्यपद तेन यथा भूपेन तत्पुरे ॥८४

इस प्रकार से वचन कहे जाने पर उस समय ब्रह्मा चन्द्रमा हुए थे। हरि दत्तात्रेय हुए और भगवान् हर साक्षात् दुर्वासा हुए थे। उस पाप के परिहार के लिए वे योग वाले हुए थे ॥७८॥ इस बीच मे सर्व धर्म वाली प्रकृति देवी ने जोकि गुणो के रूप वाली थी विधि-विष्णु और हर को अन्य बनाकर स्थित कर दिया ॥७९॥ उनके योग करते हुए मन्वन्तर होगया था। परम प्रसन्न तीनो देव उनके मगल के लिए अति रम्य वचन कहने लगे थे। चन्द्रमा सोम होजावे और सुरप्रिय छटा वसु हो जावेगा ॥८०-८१॥ रुद्र का अंश दुर्वासा योगी प्रभास आठवाँ वसु होगा। उनके वाक्य का श्रवण करके वे तीनो वसु होगये थे ॥८२॥ सूतजी ने कहा—यह गुरु के वचन सुनकर तीनो वसु परम हर्षित होते हुए अपने अंश से कलिशुद्ध के लिए भूतल चले गये थे। वहाँ दारुण दाक्षिणात्य राजगृह मे वैश्य जाति मे उनका समुद्भव हुआ था ॥८३॥ उस समय मे देव का सुत सोम पीपा नामधारी हुआ। उसने उस पुर में भूप की भाँति ही राज्य पद का उपभोग किया था ॥८४॥

रामानन्दस्य शिष्योऽभूद्द्वारकां स समागतः ।
हरेर्मुद्रां स्वर्णमयीं प्राप्य कृष्णात्स वै नृपः ।
वैष्णवेभ्यो ददौ तत्र प्रेततत्त्वविनाशिनीम् ॥८५
प्रत्यूपश्चैव पांचाले वैश्यजात्यां समुद्भवः ।
मार्गपालस्य तनयो नानको नाम विश्रुतः ॥८६
रामानन्दं समागम्य शिष्यो भूत्वा स नानकः ।
स वै म्लेच्छान्वशीकृत्य सूक्ष्ममार्गमदर्शयत् ॥८७
प्रभासो वै शांतिपुरे ब्रह्मजात्यां समुद्भवः ।
शुक्लदत्तस्य तनयो निरयानंद इति स्मृतः ।
इति ते वसुमाहात्म्यं मया शौनक वर्णितम् ॥८८

वह स्वामी रामानन्द का शिष्य हुआ था और वह द्वारका में आगया था। उस राजा ने हरिकृष्ण से स्वर्णमयी मुद्राऐं प्राप्त करके जोकि प्रेत तत्व की विनाश करने वाली थी उसने वैष्णवों को देदी थी ॥८५॥ प्रत्यूप पांचाल अर्थात् पंजाब देश में वैश्य जाति में समुद्भूत हुआ था। यह मार्ग पालक पुत्र था और इसका नाम नानक प्रसिद्ध था ॥८६॥ यह नानक भी स्वामी रामानन्द के समीप में उपस्थित होकर उनका शिष्य होगया था। उस नानक ने म्लेच्छों को वश में करके उन्हें सूक्ष्म मार्ग दिखलाया था ॥८७॥ प्रभास जो था वह शान्तिपुर में ब्रह्मजाति में समुत्पन्न हुआ था। यह शुक्लदत्त का पुत्र था और निरयानन्द इस नाम से प्रसिद्ध था। हे शौनक ! यह वसुओं का माहात्म्य मैंने तुमको वर्णन कर के सुना दिया है ॥८८॥

॥ चैतन्य वर्णन में जगन्नाथ माहात्म्य ॥

भट्टोजिस्स च शुद्धात्मा शिवभक्तिपरायणः ।
कृष्णचैतन्यमागम्य नमस्कृत्य वचोऽब्रवीत् ॥१
महादेवो गुरुः स वै शिव आत्मा शरीरिणाम् ।
विष्णुर्ब्रह्मा च तद्दासौ तर्हि तत्पूजनेन किम् ॥२

इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विंशदब्दवयोवृतः ।
विहस्याह स भट्टोजि नाय शंभुर्महेश्वरः ॥३
समर्थो भगवाञ्छम्भुः कर्ता किन्न शरीरिणाम् ।
न भर्ता च विना विष्णुं संहर्तायं सदा शिवः ॥४
एकमूर्तिस्त्रिधा जाता ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः ।
शाक्तमार्गेण भगवान्ब्रह्मा मोक्षप्रदायकः ॥५
विष्णुर्वैष्णवमार्गेण जीवानां मोक्षदायकः ।
शम्भुर्वै शैवमार्गेण मोक्षदाता शरीरिणाम् ॥६
शाक्तः सदाश्रमो गेही यज्ञभुक्पितृदेवगः ।
वानप्रस्थाश्रमी यो वै वैष्णवः कन्दमूलभुक् ॥७

इस अध्याय मे कृष्ण चैतन्य के चरित्र के वर्णन मे जगन्नाथ के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—वह भट्टोजि शुद्ध आत्मा वाला और शिव की भक्ति में परायण था । वह कृष्ण चैतन्य महाप्रभु के पास आकर उनको नमस्कार करके यह वचन बोला—॥१॥ महादेव गुरु हैं और शरीर धारियो के शिव आत्मा हैं । विष्णु और ब्रह्मा तो उनके दोनों दास हैं फिर इनके पूजन करने से क्या लाभ है ॥२॥ यह सुनकर बीस वर्ष की अवस्था वाला यज्ञांश हँस कर भट्टोजि से बोला—यह महेश्वर शम्भु नही हैं ॥३॥ समर्थ भगवान् शम्भु शरीर धारियों का क्या नही करने वाला है । वह विष्णु के बिना भरण करने वाला नहीं है । यह शिव तो सदा संहार करने वाला होते हैं ॥४॥ एक ही मूर्त्ति है जो ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर इन तीन रूपा मे होगई है । भगवान् ब्रह्मा शक्तिमार्ग के द्वारा मोक्ष के प्रदान करने वाले हैं ॥५॥ विष्णु वैष्णव मार्ग के द्वारा जीवों को मोक्ष प्रदान किया करते हैं । शम्भु शैव पद्धति के द्वारा शरीर धारियो के मोक्ष दाता होते हैं ॥६॥ शाक्त सदाश्रम गेही और यज्ञ भुक् तथा पितृ देवो का अनुगमन वाला होता है । जो वानप्रस्थ आश्रम मे रहने वाला वैष्णव है कन्द मूल का उपभोक्ता होता है ॥७॥

यत्याश्रमः सदा रौद्रो निर्गुणः शुद्धविग्रहः ।
ब्रह्मचर्याश्रमस्तेषामनुगामी महाश्रमः ।।८
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं शिष्यो भूत्वा स वै द्विजः ।
तृतीयागं च वेदानां व्याचख्यौ पाणिनिकृतम् ।।९
तदाज्ञया च सिद्धान्तकौमुद्यास्स चकार ह ।
तत्रोष्य दीक्षितो धीमान्कृष्णचैतन्यसेवकः ।।१०
वराहमिहिरो धीमान्स च सूर्यपरायणः ।
द्वाविंशाब्दे च यज्ञांशे तमागत्य वचोब्रवीत् ।।११
सूर्योऽयं भगवान्साक्षात्त्रयो देवा यतोऽभवन् ।
प्रातर्ब्रह्मा च मध्याह्ने विष्णुःसायं सदाशिवः ।।१२
अतो रवेः शुभा पूजा त्रिदेवयजनेन किम् ।
इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विहस्याह शुभं वचः ।।१३
द्विधा बभूव प्रकृतिरपरा च परा तथा ।
नाममात्रा तथा पुष्पमात्रा तन्मात्रिका तथा ।।१४
शब्दमात्रा स्पर्शमात्रा रूपमात्रा रसा तथा ।
गंधमात्रा तथा ज्ञेया परा प्रकृतिरष्टधा ।।१५

यत्याश्रम सदा रौद्र होता है जो निर्गुण और शुद्ध विग्रह वाला है । उनका ब्रह्मचर्य आश्रम अनुगामी होता है और यह महान् आश्रम है ।।८।। यह गुरु का वचन सुन कर वह द्विज शिष्य होगया था और उसने वेदों का जो तीसरा अंग पाणिनि कृत व्याकरण है उसकी व्यवस्था की थी ।।९।। उसकी आज्ञा से ही उस भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी की रचना की थी । परम धीमान् कृष्ण चैतन्य के शिष्य दीक्षित ने यह रचना यहां पर रह कर ही की थी ।।१०।। सूतजी ने कहा—धीमान् वराह मिहिर जो था वह सूर्यदेव की उपासना में परायण रहता था । जब यज्ञांश बाईस वर्ष की अवस्था वाला होगया था तब उसके पास आकर यह वचन बोला—यह सूर्य भगवान हैं । तीनों बड़े देव उसी से उत्पन्न हुए हैं । प्रातः काल में ब्रह्मा हुए—मध्याह्न में विष्णु की उत्पत्ति हुई और सायंकाल में सदाशिव समुत्पन्न हुए हैं।।११-१२।।इसलिए सूर्यदेव

की ही पूजा शुभ है इन ब्रह्मा–विष्णु और महेश्वर तीन देवो की पूजार्था स क्या लाभ है। यमाश ने यह सुनकर हँसकर यह शुभ वचन बोला था ॥१३॥ यह प्रकृति परा और अपरा दो प्रकार की हुई थी। नाम मात्रा तथा पुष्पमात्रा तथा तन्मात्रिका और शब्दमात्रा–स्पर्शमात्रा–रूप मात्रा–रस और गन्धमात्रा इस प्रकार से परा प्रकृति आठ प्रकार की है ॥१४ १५॥

अपराया जीवभूता नित्यशुद्धा जगन्मयी।
भूमिरापोऽनलो वायु ख मनोबुद्धिरेव च।
अहंकार इति ज्ञेया प्रकृतिश्चापराष्टधा ॥१६
विष्णुर्ब्रह्मा महादेवो गणेशो यमराड गुह ।
कुबेरो विश्वकर्मा च परा प्रकृतिदवता ॥१७
सुमेरुवरुणा वह्निर्वायुश्चैव ध्रुवस्तथा ।
सोमो रविस्तथा शेषोऽपरा प्रकृतिदेवता ॥१८
अत सोमवती रुद्रो रवि स्वामी विधि स्वयम् ।
शेषस्वामी हरि साक्षान्नमस्तभ्यो नमोनम ॥१९
इति श्रुत्वा तदा विप्र शिष्यो भूत्वा च तद्गुरो ।
तदाज्ञया चतुर्थांग ज्योति शास्त्र चकार ह ॥२०
वराहसहिता नाम वृहज्जातकमेव हि ।
क्षुद्रतन्त्रास्तथान्यान्वै कृत्वा तत्र स चावसत् ॥२१

अपरा प्रकृति म जीवभूता नित्यशुद्धा जगन्मयी–भूमि–जल–तेज–वायु–आकाश–मन–बुद्धि और अहंकार ये सब है आठ प्रकार की ही इस तरह से अपरा प्रकृति भी है ॥१६॥ विष्णु–ब्रह्मा–महादेव–गणेश–यमराट्–गुह–कुबेर और विश्वकर्मा ये सब पराप्रकृति के देवता है ॥१७॥ सुमेरु–वरुण–वह्नि–वायु–ध्रुव–सोम–रवि तथा शेष ये सब अपरा प्रकृति देव हैं ॥१८॥ इसलिए सोम का स्वामी रुद्र हैं और रवि का स्वामी स्वय ब्रह्मा है शेष के स्वामी हरि साक्षात् है उन सबके लिये बार–बार नमस्कार है ॥१९॥ यह सब श्रवण करके वह विप्र शिष्य होकर उस गुरु की आज्ञा प्राप्त कर चौथा जो वेदो का अंग ज्योतिष

शास्त्र है उसकी रचना वराह मिहिर ने की थी ॥२०॥ वराहसंहिता नामक और बृहज्जातक छोटे तथा अन्य तन्त्र ग्रन्थ समूहों की रचना करके वह वहां पर बस गया था ॥२१॥

वाणीभूषण एवापि शिवभक्ति परायण ।
कृष्णचैतन्यमागम्य वचः प्राह विनम्रधीः ॥२२
विष्णुमाया जगद्धात्री सैका प्रकृतिरुत्कृता ।
तया जातमिदं विश्वं विश्वाद्देवसमुद्भव ॥२३
विश्वेदेवस्स पुरुषश्शक्तिजो बहुधाभवत् ।
ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चैव देवा प्रकृति संभवा ।
अतो भगवती पूज्या तर्हि तत्पूजनेन किम् ॥२४
इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विहस्याह द्विजोत्तमम् ।
न वै भगवती श्रेष्ठा जडरूपा गुणात्मिका ॥२५
एका सा प्रकृतिर्माया रचितुजगतां क्षमो ।
पुरुषस्य सहायेन योषितेव नरस्य च ॥२६
देवीभागवते शास्त्रे प्रसिद्धेयं कथा द्विज ।
कदाचित्प्रकृतिर्देवी स्वेच्छयेद जगत्खलु ॥२७
निर्मितं जडभूतं तद्ब्रह्मा बोधितं तया ।
न चैतन्यमभूद्विप्रा विस्मिता प्रकृतिस्तदा ॥२८

सूतजी ने कहा—वाणीभूषण भी शिव की भक्ति में परम परायण था। वही भी कृष्ण चैतन्य महाप्रभु के पास आकर विनम्र भाव से यह वचन बोला—॥२२॥ विष्णु माया जगत् की धात्री है। वह एक प्रकृति उत्कृत है। उससे यह जगत् उत्पन्न हुआ है और विश्वदेव से इस विश्व का उद्भव हुआ है। विश्वदेव वह पुरुष बहुधा शक्ति से उत्पन्न हुआ था। ब्रह्मा-विष्णु और हर ये सब देव प्रकृति से ही सम्भूत होने वाले हैं। इसीलिए भगवती का ही यजन करना चाहिए, इन सब के पूजन करने में क्या लाभ है ? ॥२३-२४॥ उस ब्राह्मण की यह बात सुनकर वह यज्ञांश मकर द्विजोत्तम से बोला—भगवती श्रेष्ठ नहीं है। वह तो जड रूप वाली और गुणात्मिका अर्थात् सत्वादि तीन गुणों के स्वरूप

ाली है । एक वह एक प्रकृति माया जगतो की रचना करने को क्षम
ुरुप की सहायता से ही हुई है । जिस तरह कोई स्त्री पुरुष की सहा-
ता से शिशु का सृजन किया करती है । हे द्विज ! यह कथा तो देवी
ागवत नामक शास्त्र में प्रसिद्ध है । कदाचित् प्रकृति देवी ने अपनी ही
इच्छा से इस जगत् का निर्माण किया था तो यह जड़ भूत था । उसने
बहुधा इसे बोधित किया था किन्तु यह चैतन्य नही हुआ था । हे विप्र !
तब यह प्रकृति बहुत ही विस्मित हुई थी ॥२५-२८॥

शून्यभूतं च पुरुषं चैतन्यं समतोषयत् ।
प्रविष्टो भगवान्देवीमायाजनितगोलके ॥२६
स्वप्नवद्वा स्वय जातश्चं तन्यमभवज्जगत् ।
अतः श्रेष्ठः स भगवान्पुरुषो निर्गुणः परः ॥३०
प्रकृत्या स्वेच्छया जातो लिंगरूपस्तदाऽभवत् ।
पुंल्लिगप्रकृतौ जातः पुंल्लिगोऽय सनातनः ॥३१
स्त्रील्लिगप्रकृतौ जातः स्त्रील्लिगोऽयं सनातनः ।
नपुंस्कप्रकृतौ जातः क्लीवरूपः स वै प्रभुः ॥३२
अव्ययप्रकृतौ जातो निर्गुणोऽयमधोक्षजः ।
नमस्तस्मै भगवते शून्यरूपाय साक्षिणे ॥३३
इति श्रुत्वा तु तद्वाक्य शिष्यो भूत्वा स वै द्विजः ।
त्रिंविंशाब्दे च यज्ञांशे तत्र वासमकारयत् ॥३४
छंदोग्रंथ तु वेदाग स्वनाम्ना तेन निर्मितम् ।
राधाकृष्णपर नाम जप्त्वा हर्ष मवाप्तवान् ॥३५

तब शून्यभूत चैतण्य पुरुष को भली भाँति उसने सन्तुष्ट किया था अर्थात् उसका स्तवन किया था । तब भगवान् ने इस देवी माया के द्वारा जनित गोलक मे प्रवेश किया था ॥२६॥ तब स्वप्न हुआ और यह समस्त जगत् चैतन्य होगया था । अतएव वह भगवान् पुरुष ही श्रेष्ठ है जो निर्गुण और पर है ॥३०॥ प्रकृति मे जब स्वय उत्पन्न हुआ तो उस समय वह लिगरूप होगया था । पुंल्लिङ्ग प्रकृति मे उत्पन्न हुआ यह सनातन पुंल्लिग होता है ॥३१॥ जब स्त्री लिंग प्रकृति मे यह जात

भी स्वय सब प्रकार से समय होते हैं ॥३७॥ नित्य–अव्यक्त–पर–सूक्ष्म हैं। उससे ही प्रकृति का उद्भव होना है। इसलिए वह भगवान् पूजन के योग्य हैं। इस प्रकृति के यजन मे क्या लाभ है ? ॥३८॥ यह उस धन्वन्तरि द्विज की बात का श्रवण करके समस्त शास्त्रो के ज्ञाता पराशर हँसकर बोले–यह पुरुष श्रेष्ठ नही है। यह भी प्रकृति के बिना कुछ भी करने के लिए समय नही होता है ॥३६॥ वाराह पुराण मे यह शुभ कथा अत्यन्त सुप्रसिद्ध है। किसी समय मे निरञ्जन नाममात्र पुरुष ने स्वेच्छा से स्वय ही बहुत प्रकार का होगया था जैसे कोई प्रबल होता है ॥४०॥ यह पर पुरुष जगतो की रचना करने के काय मे असमर्थ होगया था। तब इसने प्रकृति देवी की जो सनातनी थी चिरकाल तक स्तुति की थी ॥४१॥ उस समय देवी ने उसको प्राप्त करके महत्तत्व की रचना की थी। वह अहङ्कार महत् से उत्पन्न हुआ और उस अहङ्कार से पाच तन्मात्रिकाऐ उत्पन्न हुई थी ॥४२॥

महाभूतायतोऽप्यासस्तै सजातमिद जगत् ॥४३
अतस्सनातनौ चोभौ पुरुषात्प्रकृति परा ।
प्रकृते पुरुषश्चैव तस्मात्ताभ्या नमोनम ॥४४
इति धन्वतरि श्रुत्वा शिष्यो भत्वा च तद्गुरो ।
ततोऽप्यर्चव वेदाग कल्पवेद चकार ह ।
सुश्रुतादपरे चापि शिष्या धन्वतरे स्मृता ॥४५
जयदेवस्स वै विप्रो बौद्धमागपरायण ।
कृष्णचैतन्यमागम्य पर्श्वविशवयोवृ रम् ।
नत्वोवाच वचो रम्य स च श्रुत्वा उमापति ॥४६
यस्य नाभेरभूत्पद्म ब्रह्मणा सह निगतम् ।
अतस्स ब्रह्मसूर्नाम सामवेदेषु गीयते ॥४७
विश्वो नारायणस्साक्षाद्यस्य केतौ समास्थित ।
विश्वकेतुरतो नाम न निरुद्धोऽनिरुद्धक ॥४८
ब्रह्मवला च तत्पत्नी नित्या चोपा महोत्तमा ।
स वै लोकहितार्थाय स्वयमर्चावतारक ॥४६

होता है तो यह सनातन स्त्रीलिंग होता है। नपुंसक प्रकृति में जब होता है तो वह प्रभु क्लीव रूप वाला होता है ॥३२॥ अव्यय प्रकृति में जात होने पर यह निर्गुण अधोक्षज होता है। उस शून्य रूप वाले साक्षी स्वरूप में स्थित भगवान् के लिए नमस्कार है ॥३३॥ इस यज्ञांश के वचन को सुनकर वह द्विज भी उनका शिष्य होगया था और तेईस वर्ष वाले यज्ञांश के होने पर इसने वहां पर अपना निवास किया था ॥३४॥ इसने वेदों का अंग स्वरूप जो छन्दों का ग्रन्थ है वह अपने नाम से उसने रचित किया था। और श्रीराधा कृष्ण के नाम का जप करके यह परम हर्ष को प्राप्त हुआ था ॥३५॥

धन्वन्तरिर्द्विजो नाम ब्रह्मभक्तिपरायणः ।
कृष्णचैतन्यमागम्य नत्वा वचनमब्रवीत् ॥३६
भवांस्तु पुरुषः श्रेष्ठो नित्यशुद्धस्सनातनः ।
जडभूता च तन्माया समर्थो भगवान्स्वयम् ॥३७
नित्योऽव्यक्त परः सूक्ष्मस्तस्मात्प्रकृतिरुद्भवः ।
अतः पूज्यस्स भगवान्प्रकृत्याः पूजनेन किम् ॥३८
इति श्रुत्वा वहिस्याह यज्ञांशस्सर्वशास्त्रगः ।
नायं श्रेष्ठस्स पुरुषो न क्षेमः प्रकृतिं विना ॥३९
पुराणे चैव वाराहे प्रसिद्धेयं कथा शुभा ।
कदाचित्पुरुषो नित्यो नाममात्रः स्वकेच्छया ।
बभूव बहुधा तत्र यथा प्रेतस्तथा स्वयम् ॥४०
असमर्थो विरचितुं जगन्ति पुरुषः परः ।
तुष्टाव प्रकृतिं देवीं चिरकालं सनातनीम् ॥४१
तदा देवी च तं प्राप्य महत्तत्त्वं चकार ह ।
सोऽहंकारश्च महतो जातस्तन्मात्रिकास्ततः ॥४२

सूतजी ने कहा—धन्वन्तरि नाम वाला एक ब्राह्मण था जो ब्रह्मा की भक्ति में परायण रहता था। उसने महा प्रभु कृष्ण चैतन्य के पास उपस्थित होकर यह वचन कहा—॥३६॥ आप तो श्रेष्ठ पुरुष हैं नित्य शुद्ध और सनातन हैं। उनकी जो माया है वह तो जड़भूत है। भगवान्

ही स्वय सब प्रकार से समर्थ होते हैं ॥३७॥ नित्य–अव्यक्त–पर–सूक्ष्म हैं। उससे ही प्रकृति का उद्‌भव होता है। इसलिए वह भगवान् पूजने के योग्य हैं। इस प्रकृति के यजन मे क्या लाभ है? ॥३८॥ यह उस धन्वन्तरि द्विज की बात का श्रवण करके समस्त शास्त्रों के ज्ञाता यशाश हँसकर बोले–यह पुरुष श्रेष्ठ नही है। यह भी प्रकृति के बिना कुछ भी करने के लिए समर्थ नही होता है ॥३९॥ वाराह पुराण म यह शुभ कथा अत्यन्त सुप्रसिद्ध है। किसी समय मे निरग नाममात्र पुरुष ने स्वेच्छा से स्वय ही बहुत प्रकार का होगया था जैसे कोई प्रेत होता है ॥४०॥ वह पर पुरुष जगतो की रचना करने के कार्य मे असमर्थ होगया था। तब इसने प्रकृति देवी की जो सनातनी थी चिरकाल तक स्तुति की थी ॥४१॥ उस समय देवी न उसको प्राप्त करके मह त्तत्व की रचना की थी। वह अहकार महत् से उत्पन्न हुआ और उस अहकार से पाच तन्मात्रिकाऐ उत्पन्न हुई थी ॥४२॥

महाभूतान्यतोऽप्यासंस्तैः सजातमिदं जगत् ॥४३
अतस्सनातनो चोभौ पुरुषात्प्रकृति. परा ।
प्रकृतेः पुरुषश्चैव तस्मात्ताभ्या नमोनमः ॥४४
इति धन्वतरि· श्रुत्वा शिष्यो भूत्वा च तद्‌गुरो· ।
तत्रोप्यचैव वेदागं कल्पवेद चकार ह ।
मुश्रतादपरे चापि शिष्या धन्वतरेः स्मृताः ॥४५
जयदेवस्स वै विप्रो बौद्धमार्गपरायण· ।
कृष्णचैतन्यमागम्य पर्श्वाविशवयोवृ रमु ।
नत्वोवाच वचो रम्य स च श्रेष्ठ उपापनि ॥४६
यस्य नाभेरभूत्पद्म ब्रह्मणा सह निगतम् ।
अतस्स ब्रह्मसूर्नाम सामवेदेषु गीयते ॥४७
विष्णो नारायणस्साक्षाद्यस्य चेतो समास्थित. ।
विश्वचेतुरतो नाम न निरुद्धोऽनिरुद्धक ॥४८
ब्रह्मवेला च तत्पत्नी नित्या चोषा महोत्तमा ।
स वै लोकहितार्थाय स्वयमर्चावनारक· ॥४९

फिर उन पच तन्मात्राओ से पाँच महाभूतो की उत्पत्ति हुई थी। उन महाभूतो के द्वारा यह जगत् समुत्पन्न हुआ है ॥४३॥ इसलिये ये दोनो ही सनातन हैं। पुरुष से प्रकृति पर है और प्रकृति से पुरुष भी पर है। इसलिये उन दोनो प्रकृति और पुरुष के लिये बार बार नमस्कार है ॥४४॥ धन्वन्तरि ने यह यज्ञाश के वचन श्रवण करके उस गुरु का वह शिष्य हो गया था। और वहा पर ही निवास करके उसने वेदो का अ ग स्वरूप कल्प वेद की रचना की थी। सुश्रुत से दूसरे भी धन्वन्तरि के शिष्य बताये गय हैं ॥४५॥ सूतजी न कहा—एक जयदेव नाम वाला ब्राह्मण था जो कि बौद्ध धर्म के मार्ग मे परायण था। जब महाप्रभु कृष्ण चैतन्य पच्चीस वर्ष की अवस्था वाले थे तब उनके पास वह जयदेव आया था। उसने यज्ञाश को नमस्कार करके उस उपा पति श्रेष्ठ द्विज ने यह परम सुन्दर वचन बोला था—॥४६॥ जिसकी नाभि से ब्रह्मा के साथ ही पद्म निकल कर हुआ था इसीलिये वह ब्रह्मसू इस नाम से सामवेदो मे गाया जाता है ॥४७॥ विश्व साक्षात् नारायण जिसकी केतु म समास्थित है जिस कारण से विश्व केतु यह नाम है और न तो उसका नाम निरुद्ध है और अनिरुद्धक ही है ॥४८॥ ब्रह्म वेला उसकी पत्नी है जो नित्या और महोत्तमा उषा है। और यह लोगो के हित क लिये स्वय अर्थावतारक है ॥४९॥

इति श्रुत्वा विवस्वाह यज्ञाशस्त द्विजोत्तमम् ।
वेदोनारायण साक्षात्पूजनीयो नरैः सदा ॥५०
तत कालस्तत कर्म ततो धर्म प्रवर्तते ।
धर्मात्काम समुद्भू त कामपत्नी रति स्वयम् ॥५१
रत्या कामात्समुद्भूतोऽनिरुद्धो नाम देवता ।
उपा सा तस्य भगिनी तेन सार्द्धं समुद्भवा ॥५२
कालो नाम स वै कृष्णा राधा तस्य सहोदरा ।
कर्मरूप स वै ब्रह्मा नियतिस्तत्सहोदरा ॥५३
धर्मरूपो महादेव श्रद्धा तस्य सहोदरा ।
अनिरुद्ध कथ येनो भवतोक्त सनातन ॥५४

त्रिधा सृष्टिश्च ब्रह्माण्डे स्थूला सूक्ष्मा च कारणा ।
स्थूलसृष्टेश्च समुद्भूतो देवो नारायण स्वयम् ॥५५
नारायणी च तच्छक्तिस्तयोजलसमुद्भव ।
जलाज्जातस्स वै शेषस्तस्योपरि समास्थितौ ॥५६

यह उस जयदेव की बात सुनकर यज्ञाश हस पडे और फिर उस द्विजो म उत्तम से बोले—वेद ही साक्षात् नारायण हैं अतएव नरो के द्वारा वह सदा ही पूजन करने के योग्य होते हैं ॥५०॥ इसके पश्चात् उसमे ही काल-कर्म और धर्म क्रम स प्रवृत्त हुआ करते हैं । धर्म से काम *समुद्भूत हुआ है और काम की पत्नी स्वय रति है ॥५१॥ रति मे काम* म ।निरुद्ध नामधारी देवता ने जन्म धारण किया है । वह उषा उसकी भगिनी है जो उसक साथ ही समुद्भूत हुई है ॥५२॥ काल नाम वाला वही कृष्ण है और राधा उसकी सहोदरा है । कम रूप वह ब्रह्मा है जिसकी नियति सहोदरा है ॥५३॥ धर्मरूप वाला महादेव है उसकी श्रद्धा सहोदरा अर्थात् बहिन है । अनिरुद्ध आपने किस तरह सनातन ईश बताया है ॥५४॥ इस ब्रह्माण्ड मे तीन प्रकार की सृष्टि है—एक स्थूला सृष्टि है दूसरी सूक्ष्मा और तीसरी कारणा है । स्थूल सृष्टि क लिये देव नारायण स्वय समुद्भूत हुए हैं । और उनकी शक्ति नारायणी है । उन दोनो ने जल का जन्म हुआ है । जल से वह शेष समुत्पन्न हुआ है । उसक ऊपर ये समास्थित हैं ॥५५-५६॥

सुप्ते नारायणे देवे नाभे पङ्कजमुत्तमम् ।
अनन्तयोजनायाममुदभूद्व ततो विधि ॥५७
विधे स्थूलमयी सृष्टि देवतिर्य्यङ्नरादिका ।
सूक्ष्मसृष्टेश्च समद्भूत सोऽनिरुद्ध उषापति ॥५८
ततो वीर्यमय तोय जात ब्रह्माण्डमस्तके ।
वीर्याज्जातस्स वै शेषस्तस्योपरि स चास्थित ॥५९
तस्य नाभेस्समुद्भूतो ब्रह्मा लोकपितामह ।
सूक्ष्मसृष्टिस्ततो जाता यथा स्वप्नेपि दृश्यते ॥६०

हेतु सृष्ट्यै समुद्भूतो वेदो नारायण स्वयम् ।
वेदात्कालस्तत कर्म ततो धर्मादय स्मृता ।।६१
त्वद्गुरुश्च जगन्नाथ उड्रदेशनिवासक ।
मया तत्रैव गन्तव्य सशिष्येणाद्य भो द्विजा ।।६२
इति श्रुत्वा तु वचन कृष्णचैतन्यकिंकरा ।
स्वान्स्वाञ्छिष्यान्समाहूय तत्पश्चात्प्रययुश्च ते ।।६३

नारायण देव के सुप्त होने पर उनकी नाभि से उत्तम पकज हुआ था जिसका आयाम अनन्त योजन था फिर उससे ब्रह्मा हुए ।।५७।। उस ब्रह्मा की यह देव–तिर्यक् और नर आदि की स्थूलमयी सृष्टि हुई थी। सूक्ष्म सृष्टि के लिये वह उषा पति अनिरुद्ध उत्पन्न हुए थे ।।५८।। उससे ब्रह्माण्ड के मस्तक मे वीर्य भय तोय उत्पन्न हुआ था। उस वीर्य से वह शेष उत्पन्न हुआ। उसके ऊपर वह आस्थित है ।।५९।। उसकी नाभि स लोक पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था। उस ब्रह्मा से यह सूक्ष्म सृष्टि उत्पन्न हुई थी जैसे कि स्वप्न मे भी दिखलाई देती है ।।६०।। हतु सृष्टि क लिये वेद स्वय ही नारायण उत्प न हुए थे। वेद से काल–काल म कम और कर्म से धर्म आदि की उत्पत्ति कही गई है ।।६१।। आपका गुरु जगन्नाथ है जो उड्र देश का निवास करने वाला है। हे द्विजगण ! मुझे शिष्यो के सहित आज वहा पर ही जाना चाहिए। इस प्रकार के वचन को महाप्रभु कृष्ण चैतन्य के किंकरो ने श्रवण किया था और सब न अपने २ शिष्यों को बुलाकर इसक पश्चात् वे चले गये थे ।।६३।।

शाकरा द्वादशगणा रामानुजमुपाययु ।
नामदेवादयस्तत्र गणास्सप्त समागता ।।६४
रामानन्द नमस्कृत्य सस्थितास्तस्य सेवका ।
रोपणश्च तदागत्य स्वशिष्यैर्बहुभिर्वृत ।।६५
कृष्णचैतन्यमागम्य नमस्कृत्य स्थित स्वयम् ।
जगन्नाथपुरी ते वै प्रययुर्भक्ति तत्परा ।।६६
निधय सिद्धयस्तत्र तेषा सेवार्थमागता ।
सर्वे च दशसाहस्रा वैष्णवा शैवशाक्तकं ।।६७

यज्ञाश च पुरस्कृत्य जगन्नाथपुरी ययुः ।
अर्चावतारो भगवाननिरुद्ध उपापति. ॥६८
तदागमनमालोक्य द्विजरूपधरो मुनिः ।
जगन्नाथ स्वय प्राप्तो यत्र यज्ञां शकादयः ॥६९
यज्ञाशस्त समालोक्य नत्वा वचनमब्रवीत् ।
किं मत भवता ज्ञात कलौ प्राप्ते भयानके ॥७०

भगवान् शकराचार्य के बारहगण रामानुज के समीप मे आये थे । वहा पर नामदेव आदि सात गण आगये थे ॥६४॥ उसके सेवक स्वामी रामानन्द को नमस्कार करके वहा सस्थित हो गये थे । और रोपण उस समय वहा आया था जो बहुत से अपने शिष्यों के सहित था ॥६५॥ वह महाप्रभु कृष्ण चैतन्य को नमस्कार करके स्वय वहा स्थित हो गया था । वे सब भक्ति भाव मे तत्पर होते हुए जगन्नाथ पुरी को चले गये थे ॥६६॥ समस्त निधियाँ और समग्र सिद्धियाँ वहा पर उनकी सेवा करने के लिये उपस्थित हो गई थी । वे सब वैष्णव शैव और शाक्तों के सहित सख्या मे दश सहस्र थे । वे सब यज्ञाश को अपने सब के आगे करके जगन्नाथ पुरी को गये थे । अर्चावतार भगवान् उपापति अनिरुद्ध ने उन सब का आगमन देखकर द्विज के रूप को धारण कर मुनि जगन्नाथ स्वय वहाँ प्राप्त हो गये थे जहा पर कि यज्ञाश आदि सब लोग उपस्थित थे । ॥६७-६९॥ यज्ञाश ने उनको देख कर उन्हे प्रणाम किया और यह वचन बोले—इस भयानक कलियुग के आ जाने पर आपने क्या मत जाना है ? ॥७०॥

तत्सर्वं कृपया ब्रूहि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
इति श्रुत्वा तु वचनं जगन्नाथो हरिः स्वयंम् ।
उवाच वचन रम्यं लोकमंगलहेतवे ॥७१
मिश्रदेशोद्भवा म्लेच्छा काश्यपेनैव शासिताः ।
सस्कृताः शूद्रवर्णेन ब्रह्मवर्णमुपागताः ॥७२
शिखासूत्रं समाधाय पठित्वा वेदमुत्तमम् ।
यज्ञैश्च पूजयामासुर्देवदेव शचीपतिम् ॥७३

दु खितो भगवानिन्द्रः श्वेतद्वीपमुपागत ।
स्तुत्या मा बोधयामास देवमगलहेतवे ।।७४
प्रबद्ध मा वचः प्राह शृणु देव दयानिधे ।
शूद्रसस्कृतमन्नं च खादितु न द्विजोऽर्हति ।।७५
तथा च शूद्रजनितैर्यज्ञैस्तृप्ति न चाप्नुयाम् ।
काश्यपे स्वर्गते प्राप्ते मागधे राज्ञि शासति ।।७६
मम शत्रुर्बलिर्दैत्यः कलिपक्षमुपागत. ।
निस्तेजाश्च यथाहं स्या तथा वै कर्तुमुद्यत· ।।७७

यह सब कृपा करके हमको बताइये । मैं तत्व रूप से इसे श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ । यह वचन सुनकर जगन्नाथ हरि स्वय परम रम्य वचन लोक के मगल के लिये बोले ।।७१।। मिश्र देश मे उत्पन्न होने वाले म्लेच्छ तो काश्यप ने ही शासित कर दिये थे । शूद्र वर्ण म सस्कृत होते हुए व ब्रह्मवर्ण को उपगत हो गग हैं ।।७२।। अब शिखा और सूत्र को धारण करके उत्तम वेद को पढते और यज्ञो के द्वारा देवो क देव शची के पति को पूजते थे ।।७३।। दु खित भगवान् इन्द्र श्वेत द्वीप मे आ गये थे । और स्तुति के द्वारा देवो के मगल के लिये मुझ को बोधित कराया था । जब मैं प्रबुद्ध हो गया तो मुझ से यह वचन कह थे—हे देव ! हे दयानिधे ! सुनिये, शूद्र के द्वारा साधित अन्न द्विज खान को योग्य नहीं होता है ।।७४-७५।। और शूद्रों के द्वारा किये गये यज्ञो स मैं तृप्ति को प्राप्त नहीं होता हूँ । काश्यप के स्वर्गगत हो जाने पर मागध राजा के शासन करने पर मेरा शत्रु दैत्य बलि कलियुग के पक्ष मे आ गया है । वह ऐसा कार्य करन क लिये ही उद्यत हो गया है कि जिनमें मैं बिल्कुल ही तेज से हीन हो जाऊँ ।।७६-७७।।

मिश्रदेशोद्भवे म्लेच्छे सास्कृती तेन सस्कृता ।
भ पा देवविनाशाय दैत्याना वर्द्धनाय च ।।७८
आर्य्येषु प्राकृती भाषा दूषिता तेन वै कृता ।
अतो मा रक्ष भगवन्भवत शरणागतम् ।।७९

इति श्रुत्वा तदाह वै देवराजमुवाच ह ।
भवन्तो द्वादशादित्या गन्तुमर्हंति भूतले ॥८०
अह लोकहितार्थाय जनिष्यामि कलौ युगे ।
प्रवीणो निपुणोऽभिज्ञः कुशलश्च कृती सुखी ॥८१
निष्णात. शिक्षितश्चैव सर्वज्ञ सुगत स्तथा ।
प्रवुद्धश्च तथा बुद्ध आदित्या क्रमतो भवाः ॥८२
धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो मेघ प्राशुर्भगस्तथा ।
विवस्वाश्च तथा पूषा सविता त्वाष्ट्रविष्णुको ।
कीकटे देश आगत्य ते सुरा जज्ञिरे क्रमात् ॥८३॥
वेदनिन्दा पुरस्कृत्य बौद्धशास्त्रमचीकरत् ।
तेभ्यो वेदान्समादाय मुनिभ्य प्रददुस्सुरा ॥८४

मिश्र देश मे जन्म लेने वाले म्लेच्छो मे जो सास्कृती थी वह उसने सस्कृत कर दी है । वह भाषा देवो के विनाश करने के लिये और दैत्यो का वर्धन करने के लिये ही उसने की है ॥७८॥ आर्यों में प्राकृती भाषा उसने दूषित कर दी है । इसलिये हे भगवन् ! आप मेरी रक्षा कीजिए । मैं अब आपके शरण मे प्राप्त हो गया हूं ॥७९॥ यह श्रवण करके उस समय मैंने देवराज से कहा था—आप बारह आदित्य भूतल में जाने के योग्य होते हैं ॥८०॥ और मैं लोक के हित के लिये कलियुग में जन्म ग्रहण करूंगा । प्रवीण—निपुण—अभिज्ञ—कुशल—कृती—सुखी—निष्णात—शिक्षित—सर्वज्ञ और सुगत—प्रबुद्ध और बुद्ध ये आदित्य क्रम से हुए ॥८१-८२॥ धाता—मित्र—अर्यमा—शक्र—मेघ—प्राशुगर्भ—विवस्वान्—पूषा—सविता—त्वाष्ट्र—विष्णुक ये कीकट देश में आकर क्रम से वे सुर उत्पन्न हुए थे ॥८३॥ इन्होंने सबने वेदों की निन्दा पहिले की और फिर बौद्ध शास्त्रों की रचना की थी । सुरों ने उन सब वेदों को लाकर मुनियों से लिय दे दिये थे ॥८४॥

वेदनिंदाप्रभावेण ते सुरा कुष्ठिनोऽभवन् ।
विष्णुदेवमुपागम्य तुष्टुवुर्बौद्धरूपिणम् ॥८५

हरिर्योगबलेनैव तेषां कुष्ठमनाशयत् ।
तद्दोषान्नग्नभूतश्च बौद्धस्स तेजसाभवत् ॥८६
पूर्वार्द्धान्नेमिनाथश्च परार्द्धाद्बौद्ध एव च ।
बौद्धर ज्यविनाशाय दारुपाषाण रूपवान् ॥८७
अह सिंधुतटे जातो लोकमंगलहेतवे ।
इन्द्रद्युम्नश्च नृपति स्वर्गलोकादुपागत ।
मंदिर रचित तेन तत्राह समुपागत ॥८८
अत्र स्थितश्च यज्ञाशप्रसादमहिमा महान् ।
सर्ववांछितद लोके स्थापयामास मोक्षदम् ॥८९
वर्णधर्मश्च नैवात्र वेदधर्मस्तथा न हि ।
व्रत चात्र न यज्ञाशमण्डले योजना तरे ॥९०
येनोक्ता यावनी भाषा येन बौद्धो विलोकित ।
तस्य प्राप्त महत्पाप स्थितोऽह तदघापह ।
मा विलोक्य नर शुद्ध कलिकाले भविष्यति ॥९१

वेदो की निन्दा करने के प्रभाव से ये देव कुष्ठी हो गये थे । वे विष्णु देव के पास आकर बौद्ध रूपी विष्णु देव की स्तुति करने लगे थ ॥८२॥ हरि ने योग के बल से ही उनके कुष्ठ का नाश कर दिया था । उसके दोष से नग्न भूत वह तेज मे बौद्ध हो गया था ॥८६॥ पूर्वार्द्ध से वा नेमिनाथ हो गया था और परार्द्ध से बौद्ध ही हुआ था । बौद्धो क राज्य के विनाश करने के लिये दारुपाषाण रूप वाला हो गया था ॥८७॥ मैं सिन्धु के तट पर लोक के मगल हेतु के लिये उत्पन्न हुआ था । और इन्द्रद्युम्न राजा स्वर्ग लोक मे उपागत हुआ था । उसने मन्दिर की रचना की थी वहाँ पर मैं आ गया था ॥८८॥ यहा पर स्थित होते हुए यज्ञाश के प्रसाद की महान् महिमा लोक मे समस्त वाञ्छा को देने वाली तथा मोक्ष का प्रदान करने वाली स्थापित की थी ॥८९॥ यहा पर कोई भी वर्णो का धर्म नही है और न कोई वेद का ही धर्म है । इस योजनान्तर यज्ञाश मण्डल मे कोई व्रत ही है ॥९०॥ जिसने यावनी भाषा को कहा और जिसने बौद्ध को देखा उसको जो महान् पाप प्राप्त

दृआ मैं उसके पाप का अपहरण करने वाला यहाँ स्थित हूँ । इस कलि के समय में मेरा दर्शन करते ही नर शुद्ध हो जायगा ॥६१॥

॥ अकबर बादशाह वर्णन ॥

इति श्रुत्वा बलिर्दैत्यो देवानां विजयं महत् ।
रोपणं नाम दैत्येंद्रं समाहूय वचोऽब्रवीत् ॥१
मुनस्तिमिरलिंगस्य सरुषो नाम विश्रुतः ।
त्व सि तत्र समागम्य दैत्यकार्यं महत्कुरु ॥२
इति श्रुत्वा स वै दैत्या हृदि विप्राप्तरोपणः ।
ननाश वेदमार्गस्थान्देहलीदेशमास्थितः ॥३
पचवर्षं कृत राज्य तत्सुतो बाबरोभवत् ।
विंशदब्द कृतं राज्यं होमायुस्तत्सुतोऽभवत् ॥४
होमायुषा मदान्धेन देवताश्च निराकृता ।
ते सुराः कृष्णचैतन्य नदीहोपवने स्थितम् ॥५
तुष्टवुर्बहुधा तत्र श्रुत्वा क्रुद्धो हरिः स्वयम् ।
स्वतेजसा च तद्राज्यं विघ्नभूतं चकार ह ॥६
तत्सै यजनितैर्लोकैर्होमायुश्च निराकृत ।
महाराष्ट्रे न्नदा तत्र शेषशाकं समास्थितः ॥७

इस अध्याय मे तिमिर लिंग के पुत्र सरुषादि का देहली में राज्य का वृत्तान्त का वर्णन तथा अकबर के राज्य के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—यह सुनकर दैत्य बलि ने कि देवों की महान् विजय हुई है रोपण नाम वाले दैत्येन्द्र को बुलाकर उससे यह वचन कहा था—॥१॥ तिमिरलिंग (तमूरलंग) का पुत्र सरुष नाम वाला प्रसिद्ध था । तू वहा पर जाकर दैत्यों के महान् कार्य का सम्पादन कर ॥२॥ यह श्रवण कर वह दैत्य हृदय में विशेष रूप से रोष प्राप्त करके देहली में आस्थित होकर वेद मार्ग पर चलने वाला का उसने नाश कर

दिया था ॥३॥ पाँच वर्ष पर्यन्त उसने वहाँ पर राज्य का शासन किया। फिर उसका पुत्र बाबर हुआ इसने बीस वर्ष तक राज्य के सुख का उपभोग किया इसके होमायु नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ॥४॥ मद से अन्धे होमायु ने देवताओं का निरादर किया था। वे देवता कृष्ण चैतन्य की जो कि नदीहार (नदिया) के उपवन मे स्थित थे स्तुति करने लगे थे। बहुधा इसको सुन कर हरि स्वयं बहुत क्रुद्ध हुए थे। उन्होंने अपने तेज के प्रभाव से ही उसके राज्य को विघ्न भूत कर दिया था॥६॥ उसकी सेना के जनित लोगो ने ही होमायु को निराकृत कर दिया था। उस समय मे महाराष्ट्रों के द्वारा शप शाक समास्थित हुआ था ॥७॥

देहलीनगरे रम्ये म्लेच्छो राज्य चकार ह ।
धर्मकार्यं कृत तेन तद्राज्य पचहायनम् ॥८
ब्रह्मचारी मुकुन्दश्च शकराचार्यगोत्रज ।
प्रयोगे च तप कुर्वन्विशच्छिष्यैर्युत स्थित ॥६
बाबरेण च धूर्तेन म्लेच्छराजेन देवता ।
भ्रंशिता स तदा ज्ञात्वा वह्नौ देह जुहाव वै ॥१०
तस्य शिष्या गता वह्नौ म्लेच्छनाशनहेतुना ।
गोदुग्धे च स्थित रोम पीत्वा स पयसा मुनि ॥११
मुकुन्दस्तस्य दोषेण म्लेच्छयोनौ बभूव ह ।
होमायुपश्च काश्मीरे सस्थितस्तस्य पुत्रक ॥१२
जातमात्रे सुत तस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी ।
अकस्माद्व वरो जात पुत्रोऽय सवभाग्यवान् ॥१३
पैशाचे दारुणे मार्गे न भूतो न भविष्यति ।
अत सोऽकवरो नाम होमायुस्तनयस्तव ॥१४

रम्य देहली नगर मे म्लेच्छ ने राज्य किया था। उसने धर्म का काम किया था। पाँच वर्ष तक उसका राज्य रहा था ॥८॥ ब्रह्मचारी मुकुन्द जोकि शङ्कराचार्य के गोत्र मे जन्मा था प्रयाग मे अपने बीस शिष्यों के सहित तप करता हुआ स्थित था ॥६॥ अत्यन्त धूर्त म्लेच्छों के राजा बाबर ने देवताओं को भ्रंशित किया था। उसने यह जान कर

अपना शरीर अग्नि मे हवन कर दिया था ॥१०॥ उसके जो शिष्य थे म्लेच्छो के नाश करने के लिए वह्नि मे चले गये थे । गो दुग्ध मे स्थित रोम को मुनि ने पय के साथ पी लिया था । उसके दोष से मुकुन्द म्लेच्छ योनि मे हुआ था । होमायु काश्मीर मे स्थित था । वहा पर संस्थित के ही पुत्र हुआ था ॥११-१२॥ उस पुत्र के उत्पन्न होते ही आकाश वाणी ने कहा था—यह अकस्मात् वर पुत्र उत्पन्न हुआ है जोकि सब प्रकार के भाग्य वाला है । यह दारुण पैशाच मार्ग मे न कभी रहा और न आगे रहेगा । इसीलिए होमायु तेरा यह पुत्र अकबर नाम वाला है॥१३-१४॥

श्रीधरः श्रीपति. शम्भुर्वरेण्यश्च मधुव्रती ।
विमलो देववान्सोमो वर्द्धनो वर्तको रुचिः ॥१५
माधाता मानकारी च केशवो माधवो मधु ।
देवापि सोमपाः शूरा मदनो यस्य शिष्यकाः ॥१६
स मुकुन्दो द्विज. श्रीमान्दैवात्त्वद्गेहमागत. ।
इत्याकाशवचो श्रुत्वा हामायुश्च प्रसन्नधी. ॥१७
ददौ दान क्षुधार्तेभ्यः प्रेम्णा पुत्रमपालयत् ।
दशाब्दे तनये जाते देहलीदेशमागतः ॥१८
शेषशाक पराजित्य स च राजा बभूव ह ।
अब्द तेन कृत राज्य तत्पुत्रश्च नृपोभवत् ॥१९
सप्राप्तेऽकबरे राज्य सप्तशिष्याश्च तत्प्रियाः ।
पूर्वजन्मनि ये मुख्यास्ते प्राप्ता भूपति प्रति ॥२०
केशवो मानसेनश्च बैजवाक्स तु माधवः ।
म्लेच्छास्ते च स्मृतास्तत्र हरिदासो मधुस्तथा ॥२१
मध्याचार्यकुले जातो वैष्णव. सर्वरागवित् ।
पूर्वजन्मनि देवापि. स च वीरबलोऽभवत् ॥२२

श्रीधर – श्रीपति– शम्भु–वरेण्य–मधुव्रती–विमल–देववान्–सोम–वर्द्धन–वर्त्तक–रुचि–मान्धाता–मानकारी–केशव–माधव–मधु –देवापि–सोमपा–शूर–मदन ये इतने नामधारी जिसके शिष्य थे श्रीमान् वह मुकुन्द है व वश से तेरे घर मे आगया है । इस प्रकार की आकाशवाणी

का श्रवण करके होमायु अत्यन्त प्रसन्न हुआ था ।।१५-१७।। उस होमायु ने भूख से पीडितों को दान दिया था और अपने पुत्र का बडे प्रेम से पालन किया था। जब वह पुत्र दश वर्ष का होगया था तब देहली मे आगया था ।।१८।। उसने शेष शाक को पराजित करके वह वहा का राजा होगया था। एक वर्ष पर्यन्त वहा उसने राज्य किया था इसके पश्चात् उसका पुत्र राजा हुआ था ।।१६।। अकबर को राज्य प्राप्त होने पर उसके सात प्रिय शिष्य जो पहिले जन्म मे परम मुख्य थे इस समय राजा के पास उपस्थित हुए थे ।।२०।। केशव–मानसेन–वैजवावन–माधव वे म्लेच्छ कहे गये हैं। वहा हरिदास तथा मधु मध्वाचार्य के कुल में उत्पन्न हुए जो वैष्णव थे तथा समस्त रागों के ज्ञाता थे। पूर्व जन्म में जो देवापि नाम वाला था वह बीरबल नामधारी होकर समुत्पन्न हुआ था ।।२१-२२।।

ब्राह्मण पाश्चिमात्यो वै वाग्देवीवरदर्पित ।
सोमपा मानसिहश्च गौतमा वयसभव ।।२३
सेनापतिश्च नृपतेरार्यभूपशिरोमणे ।
सूरश्च व द्विजो जातो दक्षिणश्च व पडित ।।२४
बिल्वमगल एवापि नाम्ना तन्नृपते सखा।
नायिकाभेदनिपुणो वेश्यानां स च पारग ।।२५
मदनो ब्राह्मणो जात पौर्वात्य स च नर्तक ।
चदनो नाम विख्यातो रह क्रीडाविशारद ।।२६
अन्यदेशे गता शिष्यास्तेषा पूर्वास्त्रयोदश।
अनपस्य सुतो जात श्रीधर शत्रुत्रैदित ।।२७
विख्यातस्तुलसीशर्मा पुराणनिपुण कवि:।
नारीशिक्षा समादाय राघवानन्दमागत: ।।२८

यह पाश्चिमात्य ब्राह्मण था और वाग्देवी के वरदान से दर्पयुक्त था। सोमपा और मानसिह गौतम वश मे उत्पन्न होने वाले थे ।।२३।। यह आर्य भूपों मे शिरोमणि नृपति का सेना का स्वामी हुआ था। जो सूर था वह द्विज ही उत्पन्न हुआ था और दक्षिण भी पण्डित था ।।२४।।

(विल्वमङ्गल नाम वाला भी उस राजा का सखा था। यह नायिका भेद का बड़ा पण्डित तथा वेश्याओं का पारगामी था ॥२५॥) मदन नाम वाला जो था वह भी इस जन्म में ब्राह्मण ही होकर उत्पन्न हुआ था। यह पौर्वात्य था और नर्तक था। चन्दन नाम से जो विख्यात था वह रहस्य क्रीडा का महान् पण्डित था ॥२६॥ अन्य देश में जो शिष्य गये थे उनके पूर्व ये तेरह थे। अनपका पुत्र उत्पन्न हुआ था जो शत्रु वर्दित श्रीधर था ॥२७॥ तुलसी शर्मा इस नाम से विख्यात हुआ था जो कि पुराणों में परम निपुण और कवि था। नारी की शिक्षा को ग्रहण कर राघवानन्द के पास आगया था ॥२८॥

शिष्यो भूत्वा स्थित काश्यां रामानन्दमतेस्थितः।
श्रीपति स बभूवान्धो मध्वाचार्यमते स्थित ॥२६
सूरदास इति ज्ञेय कृष्णलीलाकर कवि ।
शम्भवं चद्रभट्टस्य कुले जातो हरिप्रिय ॥३०
रामानन्दमते सस्थो भक्तकीर्तिपरायण ।
वरेण्य सोग्रभुड्नामा रामानदमते स्थित ॥३१
ज्ञानध्यानपरो नित्य भाषाछदकर कवि ।
मधुव्रती स वै जातो कीलको नाम विश्रुत ॥३२
रामलीलाकरो धीमाब्रामानदमते स्थित ।
विमलश्च स वै जात स नाम्नैव दिवाकर ॥३३
सीतालीलाकरो धीमाब्रामानदमते स्थित ।
देववान्कृशवो जातो विष्णस्वामिमते स्थित ॥३४
कविप्रियादिरचना कृत्वा प्रेतत्वमागत ।
रामज्योत्स्नामय कृत्वा स्वर्गपुपाययौ ॥३५

यह रामानन्द का शिष्य हो गया और काशी में रामानन्द के मत का अनुयायी बनकर रहने लगा। वह श्रीपति अन्धा हो गया था और मध्वाचार्य के मत में स्थित हो गया था ॥२६॥ यह सूरदास इस नाम से जाना गया था और यह कवि था जिसने कृष्ण लीला के पदों की रचना की थी। शम्भु जो था वह चन्द्रभट्ट के कुल में उत्पन्न हुआ था जो कि

हरि प्रिय था ॥३०॥ अग्रभुज नाम वाला रामनन्द के मत का अनुयायी था। यह भक्तों की कीर्त्ति का वर्णन करने में परायण रहता था। यह वरेण्य ज्ञान के ध्यान मे तत्पर रहता हुआ नित्य भाषा के छन्दों की रचना करने वाला कवि था। मधुव्रती समुत्पन्न हुआ जो कौनक इस नाम से प्रसिद्ध था ॥३१-३२॥ यह बुद्धिमान् रामानन्द के मत में स्थित होकर रामलीला किया करता था। विमल उत्पन्न हुआ यह दिवाकर—इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥३३॥ यह भी स्वामी रामानन्द के मत का अनुयायी था और सीता की लीला किया करता था। देववान् केशव उत्पन्न हुआ था जो कि विष्णु स्वामी के मत का अनुयायी हुआ था ॥३४॥ इस केशव कवि ने कवि प्रिया आदि ग्रन्थों की रचना की थी और अन्त में यह प्रेतत्व को प्राप्त हो गया था। इसके पश्चात् राम-ज्योत्स्नामय ग्रन्थ की रचना की थी जिससे इसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई थी ॥३५॥

सोमो जातःस वै व्यासो निम्बादित्यमते स्थितः।
रहः क्रीडामयं ग्रंथं कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥३६
वर्द्धनश्च स वै जातो नाम्ना चरणदासकः।
ज्ञानमालामयं कृत्वा ग्रंथं रैदासमागमं ॥३७
वर्तवः स च वै जातो रोपणस्य मते स्थितः।
रत्नभानुरिति ज्ञेयो भाषाकर्ता च जैमिनेः ॥३८
शचिश्च रोचनो जातो मध्वाचार्यमते स्थितः।
नानाज्ञानमयीं लीलां कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥३९
माधाता भूपतिर्नाम क्षायस्थ स बभूव ह।
मध्वाचार्यो भागवतं धर्मं भाषामयं शुभम् ॥४०
मानकारी नारिभावात्प्रारीदेहमुपागतः।
मीरानामेति विख्याता भूपतेस्तनया शुभा ॥४१
सा शोभा च तनौ यस्या गतिर्गजगमा किल।
सा मीरा च बुधैः प्रोक्ता मध्वाचार्यमते स्थिता ॥४२

सोम व्यास होकर उत्पन्न हुआ था। यह निम्बार्काचार्य के मत का अनुयायी था। इसने रहस्य की क्रीडा स परिपूर्ण ग्रन्थ की रचना की थी और स्वर्ग लोक को चला गया था ॥३६॥ वर्द्धन चरणदास के नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। इसन ज्ञान माला मय ग्रन्थ की रचना की थी और यह रदास के मार्ग का अनुयायी था ॥३७॥ वर्शव उत्पन्न हुआ था जो कि कि रोपण के मत का अनुयायी हुआ था। यह रत्नभानु इस नाम से जानने के योग्य हुआ था। इस जैमिनि की भाषा की रचना की थी अर्थात् भाषा भाष्य जैमिनि के ग्रन्थ का किया था ॥३८॥ रुचि रोचर नाम से समुत्पन्न हुआ था जो कि मध्वाचाय के मत का अनुसरण करन वाला था। इसन अनक प्रकार की ज्ञानमयी लीलाओ की रचना की थी और अन्त मे यह स्वर्ग लोक म चला गया था ॥३९॥ मान्धाता जो था वह भूपति नाम वाला कायस्थ हुआ था। मध्वाचार्य ने भागवत की थी जो कि भाषामय शुभ थी ॥४०॥ मानकार नारीभाव मे रहा करता था इसीलिये वह नारी के देह को प्राप्त हुआ था। यह नारी मीरा इस नाम से विख्यात हुई थी जो कि एक राजा की शुभ पुत्री थी ॥४१॥ जिसके तनु मे या अर्थात् शोभा थी और जिसकी गति गज के समान थी वह विद्वानों के द्वारा मीरा कही गई थी जो कि मध्वाचाय के मत मे स्थित हुई थी ॥४२॥

एव ते कथित विप्र भाषाग्र थप्रकारणम् ।
प्रवध मगलकर कलिकाले भयकरे ॥४३
स भूपोऽकबरो नाम कृत्वा राज्यमकटकम् ।
शतार्द्धेन च शिष्यैश्च वैकुण्ठभवन ययौ ॥४४
सलोमा तनयस्तस्य कृत राज्य पितु समम् ।
खुदकस्तनयस्तस्य दशाब्द च कृत पदम् ॥४५
चत्वारस्तनयास्तस्य नवरगो हि मध्यम ।
पितर च तथा भ्रातॄञ्जित्वा राज्यमचीकरत् ॥४६
पूर्वजन्मनि दैत्योऽयमन्धको नाम विश्रुत ।
कम भूम्या तदशेन दैत्यराजाज्ञया ययौ ॥४७

तत्पश्चान्मरण प्राप्तो त्रिद्रघेन रुजा मुने ।
विक्रमस्य गते राज्ये सप्तत्युत्तरक शतम् ॥५४
ज्ञेय सप्तदश विप्रयदालोमा मृति गत ।
तालनस्य कुले जातो म्लेच्छ फलरुपोवली ॥५५
मुकलस्य कुल हत्वा स्वय राज्य चकार ह ।
दशाब्द च कृत राज्य तेन भूपेन भूतले ॥५६

नदीहोपवन में स्थित उस यज्ञांश ने यह सुनकर दुराचारी उस शाप दे दिया था कि तेरे वंश का क्षय हो जायगा ॥५०॥ उस दुरात्मा ने उनचास वर्ष तक राज्य किया था। सवाजय नाम वाला था जो कि देवों के पक्ष की वृद्धि करने वाला था ॥५१॥ उसका एक महाराष्ट्र द्विज था जो युद्ध की विद्या का बड़ा कुशल पण्डित था। उसने उस दुराचारी का हनन किया था और उसके पुत्र के लिये उसका पद दे दिया था ॥५२॥ वह उस राज्य देकर दक्षिणात्य देश में देश की वृद्धि करने वाला चला गया था। उसके पुत्र का नाम आलोमा था। उसने पाँच वर्ष पर्यन्त उसके पद का उपभोग किया था ॥५३॥ इसके पश्चात् हे मुने ! त्रिद्रघ रोग से मृत्यु को प्राप्त हो गया था। राजा विक्रम के एक सौ सत्तर वर्ष राज्य के हो जाने पर हे विप्र ! सत्रह जानने चाहिए जिस समय में आलोम मृत्यु को प्राप्त हुआ था। तालन के कुल में बलवान् फलरुप म्लेच्छ उत्पन्न हुआ था ॥५४ ५५॥ इसने मुकल के कुल का हनन करके स्वयं राज्य शासन किया था। इसने दश वर्ष तक भूतल में राज्य किया था ॥५६॥

शत्रुभिर्मरण प्राप्तो दैत्यलोकमुपागमत् ।
महामदस्तत्तनयो विंशत्यब्द कृत पदम् ॥५७
तद्राष्ट्रे नादरो नाम दैत्यो देश उपागमत् ।
हत्वार्यांश्च सुराञ्जित्वा देश खुरजमाययौ ॥५८
महामत्स्यो हि मदस्य तनयस्तत्पितु पदम् ।
गृहीत्वा पचवर्षान्त स च राज्य चकार ह ॥५९

महाराष्ट्रैर्हतो दुष्टस्तालनान्वयसम्भव ।
देहलीनगरे राज्य दशाब्द माधवेन वै ॥६०
कृत तत्र तदा म्लेच्छ आलोमा राज्यमाप्नवान् ।
तद्राष्ट्रे बहवो जाता राजानो निजदेशजा ॥६१
ग्रामपा बहवो भूपा देशेदेशे बभूविरे ।
मण्डलीकपद तत्राक्षय जात महीतले ॥६२
त्रिंशदब्दमतो जात ग्रामेग्रामे नृपेनृपे ।
तदा तु सकला देवा कृष्णचैतन्यमाययु ॥६३

यह फिर शत्रुओ के द्वारा मरण को प्राप्त होकर दैत्या के नोक मे चला गया था । महामद उसका पुत्र था जिसने बीस वष तक पद का उपभोग किया था ॥५७॥ उसके राष्ट म एक नादर नाम वाला (नादिर शाह) दैत्य देश मे आया था । उसने सुरो को जीत कर तथा आर्यो का हनन करके बडा ही अत्याचार किया था और फिर वह खुरज देश म आ गया था ॥५८॥ महामत्स्य नाम वाला मद का पुत्र हुआ था। उसने अपने पिता क पद को ग्रहण करके पाँच वर्ष के अन्त तक राज्य किया था ॥५९॥ यह दुष्ट तालन के वश म होने वाला महाराष्ट्रा (मरहठों) के द्वारा मारा गया था । फिर देहली नगर मे माधव ने दश वष तक राज्य किया था । वहा पर उस समय म्लेच्छ आलोमा ने राज्य को प्राप्त कर लिया था । उसके राष्ट्र म निज देश मे उत्पन्न होने वाले बहुत राजा हुए थे ॥६० ६१॥ ग्रामो के पालन करने वाले स्वामी भूप देश देश मे हुए थे । इस महीतल म वहा पर अक्षय मण्डलीक पद हो गया था ॥६२॥ ग्राम ग्राम मे और नृप-नृप मे तीस वष व्यतीत हो गये थे । उस समय समस्त देवगण महाप्रभु कृष्ण चैतन्य के पास आये थे ॥६३॥

यज्ञांशश्च हरि साक्षाज्ज्ञात्वा दु ख महीतले ।
मुहूर्तं ध्यानमागम्य देवान्वचनमब्रवीत् ॥६४
पुरा तु राघवो धीमाञ्जित्वा रावणराक्षसम् ।
वपीनुज्जीवयामास सुधावर्षैस्समतत ॥६५

विकटो वृजिलो जालो वरलीनो हि सिंहलः ।
जवस्सुमानश्च तथा नाम्ना ते क्षुद्रवानराः ॥६६
रामचद्रं वच प्राहुर्देहि नो वाछित प्रभो ।
रामो दशरथिः श्रीमाञ्ज्ञात्वा तेषा मनोरथम् ॥६७
देवाङ्गनोद्भवा- कन्या रावणाल्लोकरावणात् ।
दत्त्वा तेभ्यो हरिस्साक्षाद्वचन प्राह हर्षित ॥६८
भगनाम्ना च ये द्वीपा जालधरविनिर्मिताः ।
तेषु राज्ञो भविष्यति भवन्तो हितकारिणः ॥६९
नन्दिन्या गोश्चरुंडाद्द्ँजाता म्लेच्छा भयानका. ।
गुरुण्डा तालयस्तेषा तास्तु तेषु सदा स्थिता ॥७०

यज्ञाश साक्षात् हरि ने इस महीतल मे जो दु ख था उसको जानकर एक मुहूर्त तक ध्यान करके फिर वे देवो से यह वचन बोले ॥६४॥ पहिले धीमान् राघव ने राक्षस राज रावण को जीत कर सब ओर जो मृत बानर पडे हुए थे उनको सुधा की वृष्टि के द्वारा उज्जीवित कर दिया था ॥६५॥ उन बन्दरो के नाम–विकर–वृजिल–जाल–वरलीन–सिंहल –जव–सुमान ये नाम थे और ये क्षुद्र वानर थे ॥६६॥ उन्होने भगवान् रामचन्द्र से यह वचन कहे थे—हे भगवन् ! हे प्रभो ! आप हमको हमारा वाछित वरदान प्रदान करें। दशरथ के पुत्र राम ने उनके मनोरथ को जान लिया था ॥६७॥ लाको के लिये रावण अर्थात् भयानक रावण से एक देवागना मे जन्म ग्रहण करन वाली कन्या थी। भगवान् श्रीराम ने उनको उसे देकर फिर परम हर्षित होते हुए साक्षात् हरि न यह वचन कहा ॥६८॥ आपके नामो से जो जालन्धर के द्वारा निर्मित द्वीप हैं उन द्वीपो मे आप सब हितकारी राजा होगे ॥६९॥ नन्दिनी गौ स रुण्ड भयानक म्लेच्छ उत्पन्न हुए थे उनकी गुरुण्ड जाति थी। वे उन द्वीपों मे सदा से स्थित हैं ॥७०॥

जित्वा ताश्च गुरुण्डान्वै कुरुध्व राज्यमुत्तमम् ।
इति श्रुत्वा हरिं नत्वा द्वीपेषु प्रययुर्मुदा.॥७१

विकटान्वयसमूता गुरुण्डा वानरानना ।
वाणिज्यार्थमिहायाता गौरुण्डा बौद्धमार्गिण. ।।७२
ईशपुत्रमते सस्थास्तेपा हृदयमुत्तमम् ।
सत्यव्रत कामजितमक्रोध सूर्यतत्परम् ।।७३
यूय तत्रोष्य कार्यं च नृणा कुरुत मा चिरम् ।
इति श्रुत्वा तु ते देवा कुर्यु रर्चिकमादरात् ।।७४
नगर्यां कलिकाताया स्थापयामासुरुद्यता ।
विकटे पश्चिमे द्वीपे तत्पत्नी विकटावती ।।७५
अष्टकौशलमार्गेण राजमन्त्र चकार ह ।
तत्पतिस्तु पुलोमार्चि कालिकाता पुरी स्थित ।।७६
विक्रमस्य गते राज्ये शतमष्टादश कलौ ।
चत्वारिंश तथाब्द च तदा राजा बभूव ह ।।७७

आप लोग उन गुरुण्डों पर विजय प्राप्त करके वहाँ उत्तम राज्य करो। यह श्रीराम का कहा हुआ वचन श्रवण करके वे सब हरि को नमस्कार करके वहा बडी प्रसन्नता से चले गये थे ।।७१।। विकर के वश म उत्पन्न गुरुण्ड वानर के समान मुख वाले थे। वे वाणिज्य करने के लिये यहा आये थे और वे गौरुण्ड बौद्ध धम के मानने वाले थे ।।७२।। फिर वे ईशु के मत म सस्थित हो गये थे अर्थात् ईसाई हो गये थे। उनका हृदय अत्य त उत्तम है। सत्य व्रत वाला—काम को जीतने वाला —क्रोध से रहित और सूर्य मे तत्पर है ।।७३।। आप को वहा निवास करके मनुष्यो का कार्य करना चाहिए। अब विलम्ब मत करो। यह सुन कर वे देव आदर स अर्चिक करने लगे ।।७४।। कलिकाता नगरी मे उद्यत होते हुए स्थापना की थी। विकर पश्चिम द्वीप मे उसकी पत्नी विकटावती थी ।।७५।। उसने अष्ट कोशल मार्ग से राज मन्त्र को किया था। उसका पति पुलोमार्चि कलिकाता पुरी म स्थित था ।।७६।। कलियुग मे विक्रम के राज्य के अष्टादश शत और चालीस वर्ष हुए थे तब यह राजा हुआ था ।।७७।।

तदन्वये सप्तनृपा गुरुण्डाश्च बभूविरे ।
चतुष्षष्टिमितं वर्षं राज्य कृत्वा लयं गताः ॥७८
गुरुण्डे चाष्टमे भूपे प्राप्ते न्यायेन शासति ।
कलिपक्षो बलिर्दैत्यो मुर नाम महासुरम् ॥७६
आरुह्य प्रेषयामास देवदेशे महोत्तमे ।
स मुरो बार्डिलं भूप वशीकृत्य हृदि स्थितः ॥८०
आर्यधर्मविनाशाय तस्य बुद्धि चकार ह ।
मूर्तिसस्थास्तदा देवा गत्वा यज्ञाशयोगिनम् ॥८१
नमस्कृत्याब्रुवन्सर्वे यथा प्राप्तो मुरोऽसुरः ।
ज्ञात्वा शशाप कृष्णाशो गुरुण्डान्बौद्धमार्गिणः ॥८२
क्षय यास्यति ते सर्वे मुरस्य वश गताः ।
इत्युक्ते वचने तस्मिन्गुरुण्डाः कालनोदिताः ॥८३
स्वसैन्यैश्च क्षय जग्मुर्वर्षमात्रान्तरे खलाः ।
सर्वे त्रिशतसहस्राश्च प्रययुर्यमसदिरे ॥८४

उस वश मे सात गुरुण्ड नृप हुए थे । चौंसठ वर्ष परिमाण तक राज्य करके वे सब लय को प्राप्त हो गये थे ॥७८॥ गुरुण्ड के आठवें राजा के होने पर जो कि न्याय के साथ शासन कर रहा था कलि के पक्ष वाले बलि दैत्य ने मुर नाम वाले महान् असुर को आरूढ करके महान् उत्तम इस देवो के देश मे भेजा था ॥७६॥ वह मुर बार्डिल भूप को अपने वश मे करके उसके हृदय मे स्थित हो गया था ॥८०॥ आर्यों के धर्म को विशेष रूप से नष्ट करने के लिये उसकी वैसी ही बुद्धि उसने कर दी । उस समय मे मूर्त्तियो मे सस्थान रखने वाले देवगण यज्ञाश योगी के पास पहुचे थे ॥८१॥ उन सब ने यज्ञाश को नमस्कार किया और जिस तरह मुर असुर वहा प्राप्त हुआ था वह सब कह सुनाया था । कृष्णाश ने यह सब वृत्तान्त जान कर बौद्ध मार्ग के अनुयायी गुरुण्डो को शाप दे दिया था ॥८२॥ जो भी मुर असुर के वश मे प्राप्त हो गये हैं वे सब क्षय को प्राप्त हो जायेंगे । उसके इस वचन के कहने पर काल के द्वारा प्रेरित खल गुरुण्ड अपनी सेनाओ के साथ एक ही वर्ष के अन्दर

क्षय को प्राप्त हो गये थे। वे सब तस सहस्र यमराज के मन्दिर मे चले गये थे ॥८३-८४॥

वान्दडैस्स च भूपालो वार्डिलो नाशमाप्तवान् ।
गुरुण्डो नवम प्राप्तो भेकलो नाम वीर्यवान् ॥८५
न्यायेन कृतवान्राज्य द्वादशाब्द प्रयत्नत ।
आर्यदेशे च तद्राज्य बभूव न्यायशासति ॥८६
लार्डलो नाम विख्यातो गुरुण्डो दशमोहित ।
द्वात्रिंशाब्द च तद्राज्य कृत तेनैव धर्मिणा ॥८७
लार्डले स्वर्गते प्राप्ते करन्दकुलोद्भवा ।
आर्या प्राप्तस्तदा मोना हिमतु गनिवासिन ॥८८
वभ्रु वर्णा सूक्ष्मनसो वर्तुला दीर्घमस्तका ।
एव लक्षाश्च सप्राप्ता देहल्या वौद्धमार्गिण ॥८९
आजिको नाम वै राजा तेषा तत्र बभूव ह ।
तस्य पुत्रो देवकर्णो गगोत्रगिरि मूर्द्ध नि ॥९०
द्वादशाब्द तपो घोर तेपे राज्यविवृद्धये ।
तदा भगवती गगा तपसा तस्य धीमत ॥९१

वह वार्डिल राजा वान्दण्डो के द्वारा ही नाश को प्राप्त होगया था। इसके पश्चात् नवम गुरुण्ड जिस का नाम भेकल था और बडा ही वीर्यवान् था प्राप्त हुआ था ॥८५॥ इसने न्याय के साथ बारह वर्ष तक प्रयत्न पूर्वक राज्य का शासन किया था। आर्यदेश मे यह न्याय का शासन वाला राज्य हुआ था ॥८६॥ दशम गुरुण्ड परम हितकारी लार्डल नाम वाला विख्यात हुआ था। उस धर्मात्मा ने भी बत्तीस वर्ष पर्यन्त यहा राज्य का शासन किया था ॥८७॥ लार्डल के स्वर्ग मे प्राप्त हो जाने पर मकरन्द के कुल मे जन्म ग्रहण करने वाले उस समय यहाँ प्राप्त हुए थे जो मौन और हिमतुंग के निवास करने वाले थे ॥८८॥ ये बभ्रु वर्ण वाले, छोटी नाक वाले, वर्तुल आकार वाले और बडे मस्तक वाले थे। इस प्रकार से ये लाखों बौद्ध मार्ग के अनुयायी देहली मे प्राप्त होगये थे ॥८९॥ वहाँ पर उनका आजिक नाम वाला राजा

हुआ था। उसका पुत्र देवकर्ण नामधारी था जो मगोत्र गिरि के शिखर पर था ॥६०॥ वहा उस पर्वत की चोटी पर अपने राज्य की विशेष वृद्धि के लिए बारह वर्ष तक घोर उसने तपस्या की थी। तब उस बुद्धिमान् को तपस्या से सन्तुष्ट भगवती गगा हुई थी ॥६१॥

स्वरूप स्वेच्छया प्राप्य ब्रह्मलोक जगाम ह।
कुवेरश्च तदागत्य दत्त्वा तस्मै महत्पदम् ॥६२
आर्याणा मडलीकं च तत्रैवान्तरधीयत।
मण्डलीको देवकर्णो बभूव जनपालकः ॥६३
षट्पञ्च च कृत राज्य तेनराज्ञा महीतले।
तदन्वयेऽष्ट भूपाश्च बभूवुर्देवपूजका. ॥६४
द्विशताब्द पद कृत्वा स्वर्गलोकमुपाययुः।
एकादशश्च यो मौनः पन्नगारिरिति श्रुतः ॥६५
चत्वारिंशद्वर्षाणि राज्य कृत्वा प्रयत्नतः।
स्वर्गलोक गतो राजा पन्नगैर्मरण गतः ॥६६
एव च मौनजातीयैः कृत राज्य महीतले ॥६७

तब वह अपनी इच्छा से स्वरूप प्राप्त करके ब्रह्मलोक को चला गया था। और उस समय वहाँ कुवेर ने आकर उसे महत्पद प्रदान किया था ॥ ६२ ॥ र्यों का मण्डलीक वही पर अन्तर्धान होगया था। तब मण्डलीक देवकर्ण जनो का पालक हुआ था ॥६३॥ उस राजा ने सात वर्ष तक इस महीतल पर राज्य किया था। उसके वश मे आठ राजा बहुत ही देवो की पूजाचर्या करने वाले हुए थे ॥६४॥ वे सब दो शताब्दी तक अपना पद प्राप्त करते हुए फिर स्वर्ग लोक को चले गये थे। एकादश जो मौन था वह पन्नगारि नाम से प्रसिद्ध था ॥६५॥ उसने यहा चालीस वर्ष तक राज्य के सुख का उपभोग किया था और प्रयत्न के साथ राज्य शासन करके फिर वह पन्नगो के साथ मर कर स्वर्गलोक को चला गया था। ॥६६॥ इस प्रकार से मौनजाति वालो ने इस महीतल पर राज्य किया था ॥६७॥

।। किल्किला के शासको का वर्णन ।।

वैक्रमे राज्यविगते चतुष्पष्टयुत्तर मुने ।
द्वाविंशदब्दशतक भूतनन्दिस्तदा नृप ।।१
कुवरयक्षवान्मौना धनधान्यसमन्वितान् ।
सार्द्धं लक्षान्कलैर्घोरैर्जित्वा तान्ययुद्धवारिण ।।२
किल्किलाया स्वय राज्य नागवर्शश्चकार ह ।
आग्नेय्या दिशि विख्याता पुण्डरीकेण निर्मिता ।।३
पुरी किलकिला नाम तत्र राजा बभूव ह ।
पुण्डरीकादयो नागास्तस्मिन्राज्य प्रशासति ।।४
गेहेगेहे जनैस्सर्वे पूजनीया बभूविरे ।
स्वाहा स्वधा वषटकारो देवपूजा महीतले ।।५
त्यक्त्वा देवानुपागम्य संस्थिता मेरुमूर्द्धनि ।
शक्राज्ञया कुबेरस्तु सूर्यधाम्य समतत ।।६
यक्षं पडक्षानादाय देवेभ्य प्रददौ प्रभु ।
मणिस्वर्णादिरत्नानि मौनराज्येषु यानि वै ।।७

द्वारा पडश लेकर दोनो को दे दिया था और मणि स्वर्ण आदि वस्तुऐं जो भी मौन राज्य मे थी उनका पडश भी दिया था ॥६ ७॥

दत्तानि तानि कोशेपु पुनर्देवश्चकार ह ।
मडलीक पद तेन सत्कृत भूतनन्दिना ॥८
शताद्धं तु ततो राजा शिशु नन्दिर्बभूव ह ।
नागपूजा पुरस्कृत्य तिरस्कृत्य सुरान्भुवि ॥६
चकार राज्य विंशाब्द यशोनन्दिस्ततोऽनुज ।
भ्रातासन स्वय प्राप्तो नागपूजापरायण. ॥१०
पचविंशतिवर्षाणि स च राज्यमचीकरत् ।
ततस्तत्तनयो राजा स बभूव प्रवीरक ॥११
एकादशाब्द तद्राज्य कर्मभूम्या प्रकीर्तितम् ।
कदाचित्स च बाह्लीके सेनया सार्द्धमागत. ॥१२
तत्र तैरभवद्युद्ध पैशाचैर्म्लेच्छदारुणै. ।
मासमात्रान्तरे म्लेच्छा लक्षसख्या मृतिं गता ॥१३
तथा षष्टिसहस्राश्च नागभक्ता लय गता ।
बादलो नाम तद्राजा रोमजस्थो महाबल ॥१४

उन सभी को कोशो मे फिर देव ने कर दिया था। उस भूत नन्दी ने मण्डलीक पद को सत्कृत किया था ॥८॥ इसने आधी शताब्दी तक राज्य का शासन किया था। इसके पश्चात् शिशुनन्दि वहा का राजा हुआ था। इसने नागपूजा को ही प्रधानता दी थी और देवो का भूमि मे तिरस्कार ही कर दिया था ॥६॥ फिर इसके छोटे भाई यशोनन्दि ने बीस वर्ष पर्यन्त राज्य शासन को किया था। नाग पूजा मे परायण इसने अपने भाई का आसन स्वय प्राप्त कर लिया था। इसने भी पच्चीस वर्ष तक राज्य सुख का उपभोग किया था। इसके पश्चात् उसका पुत्र प्रवीरक नाम वाला वहा का राजा हुआ था ॥१०-११॥ ग्यारह वर्ष तक भूमि मे उसका शासन काल बताया गया है। किसी समय वह बाह्लीक देश मे सेना के साथ आया था ॥१२॥ वहा पर दारुण पैशाच म्लेच्छो के साथ उसका युद्ध हुआ था। एक मास के अन्तर

में ही एक लाख सख्या वाले म्लेच्छ मृत्युगत होगये थे ॥१३॥ तथा साठ हजार भाग भक्त भी लय को प्राप्त हुए थे । उनका राजा बादल वाला रोमजस्थ महान् बलवान् था ॥१४॥

यशोनदिनमाहूय ददौ जालवती सुताम् ।
गृहीत्वा म्लेच्छराजस्य सुता गेहमुपागत ॥१५
गर्भो जानस्ततस्तस्या बभूव तनयो बली ।
वाह्लीको नाम विख्यातो नागपूजनतत्पर ॥१६
तदन्वये नृपा जाता वाह्लीकाश्च त्रयोदश ।
चतुश्शतानि वर्षाणि कृत्वा राज्य मृति गता ॥१७
अयोमुखे च वाह्लीके राज्यमत्र प्रशासनि ।
तदा पितृगणास्सर्वे कृष्णचैतन्यमाययु ॥१८
नत्वोचुर्वचन तत्र भगवच्छृणु मे वच ।
वय पितृगणा भूपैर्नागभक्त्यैर्निराकृता ॥१९
श्राद्धतर्पणकर्माणि तैर्वय वर्द्धितास्सदा ।
पितृवृद्धात्सोमवृद्धिस्ततो देवाश्च तर्द्दना ॥२०
देववृद्धाल्लोकवृद्धिस्तस्माद्ब्रह्मा प्रजापति ।
ब्रह्मवृद्धात्पर हर्षं गेहेगेहे जनेजने ॥२१
अतोऽस्मात्रक्ष भगवन्प्रजा पाहि सनातनी ।
इति श्रुत्वा वचस्तेषा यज्ञांशो भगवान्हरि ॥२२

उसके बादल ने यशोनन्दी को बुला कर जालवती पुत्री का दान उसे करके देदिया था । यह उस म्लेच्छ राज की पुत्री को ग्रहण करके अपने घर म आगया था ॥१५॥ उसम फिर गर्भ उत्पन्न हुआ और बली पुत्र की उत्पत्ति उसमे हुई थी । यह भी वाह्लीक नाम से विख्यात हुआ था और यह नाग पूजन मे परायण रहा करता था ॥१६॥ उस वश मे तेरह वाह्लीक राजा हुए थे । इन्होने चार सौ वर्ष तक राज्य शासन किया था और फिर वे सब मृत्युगत होगये थे ॥१७॥ अयोमुख नामक वाह्लीक के यहा पर राज्य का शासन करने के समय समस्त पितृगण कृष्ण चैतन्य के पास आये थे ॥१८॥ उन्होने कृष्ण चैतन्य का प्रणाम

करके यह वचन कहे—हे भगवन् हमारे वचनों का श्रवण कीजिए। हम समस्त पितृगण नागवंश मे होने वाले भूपों के द्वारा निराकृत कर दिये गये हैं ॥१९॥ श्राद्ध-तर्पण कर्मों के द्वारा हम सदा वर्धित होते हैं। पितृगण की वृद्धि से सोमकी वृद्धि होती है और फिर उससे देवगण वर्धित हुआ करते हैं ॥२०॥ देवों की वृद्धि से ही लोकों की वृद्धि है और उससे प्रजापति ब्रह्मा वृद्धिशील होते हैं। ब्रह्म वृद्धि से घर-घर और जन-जन मे परमहर्ष हुआ करता है ॥२१॥ हे भगवन्! इसलिए हमारी रक्षा करो और सनातनी प्रजा का पालन करो। उनके इन वचनों का श्रवण करके भगवान् यज्ञांश हरि ने कहा—॥२२॥

पुष्यमित्र धर्मपरमार्यवंशविवर्द्धनम् ॥२३
जातमात्र स वै बाल षोडशार्द्धवयोभवत्।
अयोनिर्योनिभूतास्तानयोमुख पुरस्सरान् ॥२४
जित्वा देशान्निराकृत्य स्वय राज्य गृहीतवान्।
यथा शिवाशतो जातो विक्रमो नाम भूपति ॥२५
शकान्गन्धर्वपक्षीयाञ्जित्वा पूज्यो बभूव ह।
नागपक्षास्तथा भूपान्गोलकास्यान्भयकरान् ॥२६
पुष्यमित्रस्तदा जित्वा सर्वपूज्योऽभवद्भुवि।
सप्तविंशच्छत वर्षं द्विसप्तत्युत्तर तथा ॥२७
राज्य विक्रमतो जात समाप्तिमगमत्तदा।
पुष्यमित्रे राज्यपद प्राप्ते समभवत्तदा ॥२८
शतवर्षं राज्यपद तेन धर्मात्मना धृतम्।
अयोध्या मथुरा माया काशी काची ह्यवन्तिका ॥२९
पुरी द्वारावती तेन राज्ञा च पुनरुद्धृता।
कुरुसूकरपद्यानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥३०

धर्म परायण आर्य वंश का विवर्धन करने वाला पुष्य मित्र हुआ ॥२३॥ यह बालक उत्पन्न होने के साथ ही आठ वर्ष की अवस्था वाला होगया था। वह अयोनि था और उसने योनि भूत अयोमुख पुरस्सरों को जीत कर उन्हे देश से निकाल कर स्वयं राज्य को ग्रहण कर लिया

था। शिवांश से विक्रम नाम वाला राजा समुत्पन्न हुआ था ॥२४-२५॥ यह गन्धर्व पक्ष वाले शकों पर विजय प्राप्त करके स्वयं पूज्य होगया था। उसी प्रकार से नाग पक्ष वाले राजाओं को तथा भयंकर गोलकस्यों को उस समय जीत कर पुष्यमित्र भूतल में सर्व पूज्य होगया था। सप्तविंशत् शत और बहत्तर उत्तर वर्ष पर्यन्त विक्रम से राज्य हुआ था। इसके पश्चात् वह समाप्ति को प्राप्त होगया था। पुष्यमित्र के राज्य पद प्राप्त होने पर उस समय मे हुआ था ॥२६-२८॥ उस धर्मात्मा ने सौ वर्ष तक राज्य पद का उपभोग किया था। अयोध्या–मथुरा–माया काशी–काञ्ची–अवन्तिका और द्वारावती पुरियों का इसी राजा के द्वारा पुनः उद्धार हुआ था। इस के अतिरिक्त कुरु–सूकर पद्मों के क्षेत्रों का जो कि अनेक हैं पुनरुद्धार किया था ॥२९-३०॥

नैमिषोत्पलवृन्दाना वनक्षेत्राणि भूतले।
नानातीर्थानि तेनैव स्थापितानि समन्ततः ॥३१

तदा कलिः स गंधर्वो देवतापितृदूषकः।
ब्राह्मणं वपुरास्थाय पुष्यमित्रमुपागमत् ॥३२

नत्वोवाच प्रियं वाक्यं शृणु भूप दयापर।
आर्यदेशे पितृगणाः पूजार्हाः श्राद्धतर्पणे ॥३३

अज्ञानमिति तज्ज्ञेयं भुवि यत्पितृपूजनम्।
मृता ये तु नरा भूमौ पूर्वकर्मवशानुगाः ॥३४

भवन्ति देहवन्तस्ते चतुराशीतिलक्षधा।
छद्मना मयदेवेन पितृपूजा विनिर्मिता ॥३५

वृथा श्रमं वृथा कर्म नृणां च पितृपूजनम्।
इति श्रुत्वा वचो घोरं विहस्याह महीपतिः ॥३६

भवान्मूर्खो महामूढो न जानीषे परं फलम्।
भुवर्लोके न ये दृष्टाः शून्यभूताश्च भास्वराः ॥३७

ये तु ते मे पितृगणाः पिण्डरूपविमानगाः।
सत्पुत्रश्च विधानेन पिंडदानं च मत्कृतम् ॥३८

तद्विमान नभोजात सर्वानंदप्रदायकम् ।
अब्दमात्र स्थितिस्तेषां पिंडपायसरूपिणाम् ॥३९
गीताष्टादशकाध्यायै सप्तशत्याश्चरित्रकै ।
पावित यत्तु वै पिंड त्रिशताब्द च तत्स्थिति ॥४०

इस भूतल म नैमिषोत्पन्न वृन्दों के वन क्षेत्रों को तथा अनेक तीर्थों को सब ओर उसन ही स्थापित किया था ॥३१॥ उस समय मे वह गन्धर्व देव और पितृगण को दूषित करने वाला ब्राह्मण का शरीर धारण करके पुष्यमित्र के पास आया था ॥३२॥ उसको नमस्कार करके वह प्रिय वचन बोला—हे दया परायण नृप ! सुनिये, आर्य देश म पितृगण श्राद्ध और तपणो क द्वारा पूजा के योग्य हैं ॥३३॥ भूमण्डल म जो यह पितृगण का पूजन है वह अज्ञान है ऐसा जानना चाहिए। भूमि मे पूर्व कर्मों के वश क अनुगामी जो मनुष्य मृत हो गय हैं वे चौरासी लाख योनियो के भेद स देहधारी हो जाते है। मयदेव के द्वारा छल से यह *पितृगण की पूजा का निर्माण किया है ॥३४ ३५॥* मनुष्यो के द्वारा यह पितृगण का पूजन करना वृथा ही भ्रम और कम है। इस तरह से इस घोर वचन को सुनकर वह राजा हँसकर बोला ॥३६॥ आप महामूढ हैं और अत्यन्त मूख हैं। इसके परम फल को आप नही जानते हैं। भुव-र्लोक मे जो शून्यभूत और भास्वर नही देखे गये हैं जो पितृगण हैं वे पिण्ड रूप विमानो से गमन करने वाले हैं जो कि सत्पुत्रो के द्वारा पूण विधि विधान से पिण्ड दान किया गया है ॥३७ ३८॥ वह विमान नभ *म गया हुआ सब प्रकार के आनन्द का प्रदान करने वाला होता है।* पिण्ड पायस रूपी उनकी एक वर्ष पय त वहा स्थिति होती है ॥३९॥ गीता के अठारह अध्यायो के द्वारा तथा दुर्गा सप्त शती के चरित्रो से पावित किया हुआ जो पिण्ड होता है उसकी वह तीन सौ वष तक हुआ करती है ॥४०॥

पुष्यमित्रगते राज्य दशोत्तरशतत्रयम् ।
तस्मिन्काले रूप कप्पुरुत्वाप्रदेशनिवासिन ॥४१

शताद्धाब्द ततो भूमिर्विना राज्ञा बभूव ह ।
तदा क्षुद्रा नरा लुब्धा लुठिताश्चौरदारुणै ॥४२
दारिद्रमगमन्घोर विना स्वर्णं च भूरभूत् ।
पुनर्देवश्च भगवान्प्रार्थितस्तानुवाच ह ॥४३
देशे कौशलके जात सूर्य्यांशाच्च महीपति ।
राक्षसारिरिति ख्यातो देवमार्गपरायण ॥४४
ममाज्ञया स वै राजा भविष्यति महीतले ।
इत्युक्त्वा तदधे विष्णुर्देवलोकानुपागमत् ॥४५
राक्षसारिमयोध्याया स्थापयामासुरेव तम् ।
आध्रराष्ट्र च यद्द्रव्य राक्षसैश्च समाहृतम् ॥४६
तद्द्रव्य राक्षसाञ्जित्वा ग्रामेग्रामे चकार स ।
तारधातो पञ्चमूल्य सुवर्णं भुवि तत्कृतम् ॥४७

पुष्यमित्र के राज्य के चले जाने पर सौ सौ दश वर्ष तक उस समय में आन्ध्र देश के निवासी लोग क्षय को प्राप्त हो गये थे ॥४१॥ उस समय यह भूमि पचास वर्ष तक बिना ही राजा के रही थी। उस समय में क्षुद्र नर दारुण चोरों के द्वारा सताये और लूटे गये थे ॥४२॥ सब लोग बहुत ही अधिक दरिद्रता को प्राप्त हो गये थे और यह भूमि-तल बिना ही सुवर्ण के होगया था। फिर देवों के द्वारा भगवान् की प्रार्थना की गई थी तब भगवान् ने उनसे कहा था ॥४३॥ कोशल देश में सूर्यवंश से एक राजा उत्पन्न हुआ है। वह राक्षसारि—इस नाम से प्रसिद्ध है और देवों के मार्ग का परायण है ॥४४॥ मेरी आज्ञा से वह राजा महीतल में होगा। इतना कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये थे और देव लोकों को चले गये थे ॥४५॥ उस राक्षसारि को अयोध्या में ही स्थापित कर दिया था और आन्ध्र राष्ट्र में जो द्रव्य था उसको राक्षसों ने समाहृत कर लिया था ॥४६॥ उसने उस द्रव्य को राक्षसों को जीतकर ग्राम ग्राम में कर लिया था। उसने भूतल में तार द्रव्य में अर्थात् चाँदी से पचगुना महंगा सुवर्ण को कर लिया था ॥४ ॥

आरधातोः शत मूल्य राजत तेन वै कृतम् ।
ताम्रधातो पञ्चमूल्यमारधातोश्च तत्कृतम् ॥४८
नागधातो पञ्चमूल्यं भुवि तेनैव निर्मितम् ।
ताम्र पवित्रमधिक नागो वगस्तथोत्तम ॥४९
लोहधातो शत मूल्य वगोऽसौ तेन सत्कृत ।
शताद्धाब्द मही भुक्त्वा सूर्यलोकमुपाययौ ॥५०
तदन्वये पष्टिनृपा जाता वेदपरायणा ।
पुष्पमित्रगत राज्ये चाब्दे सप्तशते गते ॥५१
कौशलान्वयसभूता भूपा स्वर्गमुपाययु ।
शताद्धाब्द ततो भूमिर्मण्डलीक नृप विना ॥५२
क्षुद्रभूपाश्च बुभुजे देशेदेशे च भागव ।
तन्नो वैदरदेणीयो नाम्ना भूपो विशारद ॥५३
आर्यदेशमुपागम्य लक्षसैन्यसमन्वित ।
क्षुद्रभूपान्वशीकृत्य मण्डलीको बभूव ह ॥५४
नानाकलैश्च कर्माणि विचित्राणि महीतले ।
ग्रामेग्रामे नराश्चक्रु वर्णसकरकारका ॥५५
ब्रह्मक्षत्रमयोवर्णो नाममात्रेण दृश्यते ।
वैश्यप्राया नरा आर्या शूद्रप्रायाश्च कारिण ॥५६
तद्राष्ट्रे मनुजास्त्वासन्नाममात्र सुरार्चका ।
पष्टिवर्षं पद तेन कर्मभूम्या च सत्कृतम् ॥५७

ताम्रधातु से पच मूल्य और आर धातु से सौ गुना मूल्य राजत धातु का तत्कृत था ॥४८॥ नाग धातु से पचगुना मूल्य भूतल मे उसके ही द्वारा निर्मित किया गया था । ताम्र अधिक पवित्र है, नाग और वग भी उसी प्रकार से उत्तम है ॥४९॥ यह वग लोह धातु से शतगुन मूल्य वाला उसी ने किया था । यह पचास वर्ष तक इस भूमि के सुख का उपभोग करके फिर सूर्य लोक को चला गया था ॥५०॥ उसके वश म साठ राज वेदो मे परम परायण हुए थे । पुष्यमित्र के राज्य को सात सौ वर्ष व्यतीत हो चुके थे ॥५१॥ इस प्रकार स कौशल वश मे होने वाले

उत्तरपर्व



।। मंगलाचरण ।।

कल्याणानि ददातु वो गणपतिर्यस्मिन्नतुष्टे सति
क्षोदीयस्यपि कर्मणि प्रभवितु ब्रह्मापि जिह्मायते ।
भेजे यच्चरणारविन्दमसकृत्सौभाग्यभाग्योदयैस्ते
नैषा जवति प्रसिद्धि मगमद् वेन्द्रलक्ष्मीरपि ।।१
शश्वत्पुण्यहिरण्यगर्भरसनासिहासनाध्यासिनी
सेयं वागधिदेवता वितरतु श्रेयासि भूयासि वः ।
यत्पादामलकोमलागुलिनखज्योत्स्नाभिरुद्वेल्लितः
शब्दब्रह्मसुधाबुधिबुंधमनस्युच्छृ खल खेलति ।।२
नमस्तस्मै विश्वोदयविलयरक्षाप्रकृतये शिवाय
क्लेशौघच्छिद्दुरपद पद्मप्रणतये ।
अमन्दस्वच्छन्दप्रथितपृथुलीलातनुभृते
त्रिवेदीवाचामप्यपथनिजतत्त्वस्थितिकृते ।।३
यस्य गण्डतले भाति विमला षट्पदावली ।
अक्षमालेव विमला स नः पायाद्गणाधिपः ।।४
ॐ नमो वासुदेवाय सशार्ङ्गाय सकेतवे ।
सगदाय सचक्राय सशखाय नमो नम. ।।५
नमः शिवाय सोमाय सगणाय ससूनवे ।
सवृषाय सशूलाय सकपालाय सेन्दवे ।।६
शिवं ध्यात्वा हरिं स्तुत्वा प्रणम्य परमेष्ठिनम् ।
चित्रभानु च भानु च नत्वा ग्रन्थमुदीरयेत् ।।७

मङ्गलाचरणम्—गणपति, व्याप्त्तो, समस्त, कल्याणों, को, देवें ।, जिस
गणेश के असुष्ट होने पर छोटे से कर्म मे भी ब्रह्मा भी करने को समर्थ

नही होते हैं और हिचकिचाते हैं । और जिसके चरणारविन्द का वार-वार सेवन ब्रह्मा ने किया था देवेन्द्र लक्ष्मी भी उसके द्वारा ही सौभाग्य भाग्योदयों से जगत् में प्रसिद्धि को प्राप्त हुई है ॥१॥ सर्वदा परम पवित्र हिरण्यगर्भ की रचना रूपी सिंहासन पर अभ्यास करने वाली वह यह वाग्देवी आपको बहुत अधिक श्रेयों का वितरण करे । जिसके चरणों की अमल और कोमल अंगुलियों के नखो की ज्योत्स्ना से उद्वेलित शब्द ब्रह्म रूपी सुधा के समुद्र बुधों के मन में उच्छृङ्खलता पूर्वक खेला करता है ।।२।। विश्व के उदय–विलय और रक्षा की प्रकृति वाले उस शिव के लिए नमस्कार है जो क्लेशों के समूह के छेदन करने वाले पाद पद्म की प्रणति वाले हैं । वे शिव आनन्द और स्वच्छन्द प्रथित बहुत सी लीलाओं के करने के लिये शरीर को धारण करने वाले हैं और त्रिवेदी वाचाओं के भी अगम्य अपने तत्त्व से स्थिति के करने वाले हैं।।३।। जिसके गण्ड तल पर विमल भ्रमरों की पंक्ति शोभा दिया करती है और वह अक्षों की माला की भांति विमला है वह गणों के स्वामी हमारी रक्षा करें ।।४।। भगवान् वासुदेव के लिए जो शार्ङ्ग धनुष–वेणु–गदा-चक्र और शंख से युक्त हैं बार–बार नमस्कार है ।।५।। शिव के लिये जो सोम–गण–सूनु–वृष–शूल–कपाल और इन्दु के सहित है बार-बार हमारा नमस्कार है ।।६।। सदा शिव का ध्यान करके हरि की स्तुति करके और परमेष्ठी को प्रणाम करके तथा चित्रभानु और भानु को नमस्कार करके ग्रन्थ को उदीरित करते हैं ।।७।।

छत्राभिषिक्तं धर्मज्ञं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
द्रष्टुमभ्यागता हृष्टा व्यासाद्याः परमर्षयः ।।८
मार्कण्डेयः समाण्डव्यःशाण्डिल्यः शाकटायनः ।
गौतमो गालवो गार्ग्यः शातातपपराशरौ ।।९
जामदग्न्यो भरद्वाजो भृगु र्मांगुरिरेव च ।
उद्दालकः संवर्त्तमिति शौनकः शाकटायनिः ।।१०
पुलस्त्यः पुलहो दाल्भ्यो बृहदश्वः सलोमशः ।
नारदः पर्वतो जह्नु स्तामभुपरायणम् ।।११

तान्पौनागतान्दृष्ट्वा वेदवेदाङ्गपारगान् ।
भक्तिमान्भ्रातृभि साद्धं कृष्णधौम्यपुर सर ॥१२
युधिष्ठिर. सप्रहृष्ट समुत्थायाभिवाद्य च ।
अर्घ्यमाचमन पाद्यमासनानि स्वय ददौ ॥१३
उपविष्टेषु तेष्वेव तपस्विषु युधिष्ठिर ।
विनयावनतो भूत्वा व्यास वचनमब्रवीत् ॥१४

एक समय छत्राभिषक्त—धर्म के पूर्ण ज्ञाता— धर्म के पुत्र युधिष्ठिर का दर्शन करने के लिये परम हर्षित होकर व्यास आदि परमर्षिगण आये थे ॥८॥ उन महर्षियो म मार्कण्डेय—माण्डव्य—शाण्डिल्य—शाकटायन गौतम—गालव—गार्ग्य—शातातप—पराशर—जामदग्न्य—भरद्वाज—भृगु—भार्गु रि उत्त क—शख— लिखित— शौनक— शाकटायनि— पुलस्त्य— पुलह—दाल्भ्य— बृहदश्व—सलोमश—नारद—पर्वत—जह्नु—अथावसु—परावसु ये सभी थे । इन ऋषियो का दर्शन कर जोकि वहा आय हुए थे और वेदो तथा वेदाङ्गो का पारगामी महा मनीषी थे राजा युधिष्ठिर अपने भाइयो को साथ लेकर तथा कृष्ण धौम्य को आगे करके परम प्रहृष्ट होता हुआ समुत्थित हुए और उन सब का अभिवादन किया तथा स्वय अर्घ्य—आचमन—पाद्य और सब के लिए आसन राजा ने दिये थे ॥९-१३॥ वे समस्त तपस्वी गण जब यथा स्थान उपविष्ट होगये तो विनय से विनम्र होकर युधिष्ठिर व्यास जी से यह वचन बोले—॥१४॥

भगवस्त्वत्प्रसादेन प्राप्त राज्य मह मया ।
विक्रम्य निहत सख्ये सानुबन्ध सुयोधन ॥१५
सरोगस्य यथा भोग प्राप्तोऽपि न सुखावह ।
हृत्वा ज्ञातीस्तथा राज्य न सुख प्रतिभाति मे ॥१६
यत्सुख पावन प्रीतिवनमूलफलाशिनाम् ।
प्राप्य गा च हताराति न तदस्ति पितामह ॥१७
यो नो बन्धुर्गुरुर्गोप्ता सदा शर्म च वर्म च ।
स मया राज्यलोभेन भीष्म पापेन घातित ॥१८

अविवेकमहं धास्ये मनो मे पापपङ्किलम् ।
क्षालयित्वा तव गिरा बहुदर्शितवारिणा ॥१९
संश्रुतानि पुराणानि वेदास्सांगा मया विभो ।
ममाद्य धर्मसर्वस्वं प्रज्ञादीपेन दर्शय ॥२०
एते सधर्मगोप्तारो मुनयः समुपागताः ।
पिबंतो नेत्रभ्रमरैर्भवतो मुखपंकजम् ॥२१
अर्थशास्त्राणि यावंति धर्मशास्त्राणि यानि वै ।
श्रुतानि सर्वशास्त्राणि भीष्माद्भागीरथीसुतात् ॥२२

हे भगवन् ! आपके ही प्रसाद से मैंने यह महान् राज्य प्राप्त किया है । विक्रम करके अपने अनुबन्ध के सहित सुयोधन युद्ध में निहत होगया है ॥१५॥ जो रोग से युक्त होता है उसको यदि भोग प्राप्त भी होजाता है तो वह जिस तरह सुख प्रदान करने वाला नहीं होता है, उसी भाँति अपने समस्त ज्ञाति के जनों का हनन करके यह प्राप्त राज्य भी मुझे सुख देने वाला नहीं मालूम होता है ॥१६॥ हे पितामह ! जो पावन सुख और प्रीति वन के मूल और फलों के खाने वालों को होती है वह इस विशाल भूमि को प्राप्त करके और शत्रुओं का हनन करके भी वैसी इस समय नहीं है ॥१७॥ जो हम सबका बन्धु-गुरु और रक्षक था तथा सदा कल्याण स्वरूप एवं धर्म रूप था वह भीष्म मैंने राज्य के ही लोभ से महापापी ने मरवा दिया है ॥१८॥ मैंने बहुत बड़ा अविवेक धारण कर लिया है और मेरा मन पाप के कीच से युक्त है । उसे आपकी वाणी से क्षालित करिये जिसने बहुत वारि का दर्शन किया है । हे विभो ! मैंने पुराणों का श्रवण किया है और साङ्गवेद भी सुने हैं । आज आप मुझे अपनी प्रज्ञा के दीप से धर्म के सर्वस्व को दिखा देवें ॥१९-२०॥ ये सभी धर्म की रक्षा करने वाले मुनिमण्डल यहाँ आगये हैं जो आपके मुखरूपी पकज का नेत्र रूपी भ्रमरों के द्वारा पान कर रहे हैं ॥२१॥ जितने भी अर्थशास्त्र हैं और जो भी बताने वाले शास्त्र हैं वे सभी शास्त्र भागीरथ के पुत्र भीष्म प्रपितामह के मुख से श्रवण किए हैं ॥२२॥

स्वर्ग गते शान्तनवे भवान्कृष्णोऽथ यादव ।
सुहृत्त्वाद्बन्धुभावाच्च नान्य शिक्षयिता मम ॥२३
सत्य सत्यवतीसूनुर्द्धर्मराजाय वक्ष्यति ।
विशेषधर्मान्निखिलान्मुनी नाम विशेषत ॥२४
यदाख्येय तदाख्यात मया भीष्मेण तेऽनघ ।
मार्कण्डेयेन धौम्येन लोमशेन महर्षिणा ॥२५
धर्मज्ञो ह्यसि मेधावी गुणवान्प्राज्ञसत्तम ।
न तेऽस्त्यविदित किञ्चिद्धर्माधर्मविनिश्चये ॥२६
पार्श्वस्थिते हृषीकेशे केशवे केशिसूदने ।
कस्यचित्कथने जिह्वा तत्र सपरिवर्तते ॥२७
कर्तापालयिता हर्ता जगता यो जग मय ।
प्रत्यक्षदर्शी सवस्य धर्मान्वक्ष्यत्यसौ तव ॥२८
समादिश्येतिकतव्य भगवान्बादरायण ।
पूजित पाण्डुतनयैर्जगाम स्वतपोवनम् ॥२९
स्वाभाव्य भारतविधातरि सप्रयाते ते कौतु-
काकुलधियो मुनय प्रशान्ता ।
किं पृच्छति क्षपितभारतलोकशोक
किं वक्ष्यतीह भगवा यदुवशवीर ॥३०

महाराज शान्तनु के पुत्र के स्वर्ग मे चले जाने पर भगवान् यादव कृष्ण ही सुहृद् होने के नाते होने से और बन्धु भाव के होने से मेरे शिक्षा देने वाले हैं अन्य कोई भी नहीं है ॥२३॥ सत्यवती के पुत्र धर्म राज के लिये सत्य कहेगे जो कि समस्त विशेष धर्म हैं और विशेष करके मुनियो के हैं ॥२४॥ श्री व्यास जी ने कहा—हे अनघ ! जो कुछ मुझे अब कहना चाहिए या कहना है वह सब तो भीष्म ने तुमको कह ही दिया है मार्कण्डेय–धौम्य और महर्षि लोमश के द्वारा भी कहा गया है ॥२५॥ आप तो धर्म के ज्ञाता हैं और मेधा से भी समन्वित हैं तथा गुणवान् एव प्राज्ञो मे श्रेष्ठतम हैं । धर्म और अधर्म का क्या स्वरूप होता है–इसके विशेष निश्चय करने के विषय मे आपको कुछ भी

अविन्ति नहीं है ॥२६॥ हृषीकेश भगवान् के पास में स्थित होने पर जो कि केशि दैत्य के सूदन और केशव है किसकी जिह्वा कुछ भी कहने के लिए वहा सपरिवर्त्तित होती हैं ? ॥२७॥ जो जगत् की रचना करने वाला—पालन करने वाला और संहरण करने वाला एवं जगन्मय है। यह तो सबका प्रत्यक्षदर्शी है । यही आपको धर्मों को बतायेंगे ॥२८॥ भगवान् बादरायण इति कर्त्तव्य का समादेश करके पाण्डु के पुत्रों द्वारा पूजित होते हुए अपने तपस्या करने वाले वन में चले गये थे ॥२९॥ भारत की रचना करने वाले के अपना कथन करके चल जाने पर वे समस्त मुनिगण कौतुक से आकुल बुद्धि वाले प्रशान्त होगये थे। वे सब यही कौतुक अपने हृदयों में रख रहे थे कि अब भारत महायुद्ध के शोक को क्षपित करने वाले धर्मराज युधिष्ठिर क्या पूछेंगे और यदुवंश के वीर भगवान् यहां पर क्या उत्तर के रूप में कहेंगे ॥३०॥

॥ ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और वर्णन ॥

कस्य प्रतिष्ठा निर्दिष्टा को हेतुः किं परायणम् ।
कस्मिन् तल्लयं याति कस्मादुत्पद्यते जगत् ॥१
कति द्वीपाः समुद्राश्च कियतो हि कुलाचलाः ।
कियत्प्रमाणवनेभ्यं वनानि कियति च ॥२
पौराणश्च व विषयो यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ।
श्रुतोऽनुभूतश्च मया संसारे सरता चिरम् ॥३
अजाय विश्वरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥४
अत्र ते वर्णयिष्यामि शृणु पार्थ पुरातनम् ।
याज्ञवल्क्येन मुनिना भविष्य भास्वतापतिः ।
पृष्टो यदुत्तरं प्रादादृषिभ्यस्तं मया श्रुतम् ॥५
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वाशुभविनाशनम् ।
भविष्योत्तरमेतत्तं कथयामि युधिष्ठिर ॥६

एकात्मक निर्देवत्य चतु पचसुलक्षणम् ।
गुणकालादिभेदेन सदसत्सप्रद शितम् ॥७

इस अध्याय म श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर का सम्वाद और श्रीकृष्ण क द्वारा युधिष्ठिर के प्रति समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के वृत्तान्त कथन का वरान किया जाता है। राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन्! किस की प्रतिष्ठा निर्दिष्ट की गई है ? इसका क्या हेतु है और क्या परायण है । यह जगत् किस म लय को प्राप्त होता है और किससे यह उत्पन्न हाता है ? ॥१॥ इस विश्व म कितन द्वीप हैं—कितने समुद्र हैं और कितने कुलाचल हैं ? इस भूमि का कितना प्रमाण है और कुन भवन कितने होते हैं ? ॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे अनघ! तुमने यह पुराणो का विषय मुझ से पूछा है। यह मैंने इस ससार मे सरण करत हुए सुना है और इसका अनुभव भी चिरकाल तक किया है ॥३॥ उस अज मा—विश्वरूप—निगु ण स्वरूप और गुणात्मा वेधा भगवान् वासुदेव के लिए नमस्कार है। अब यहा पर हे पार्थ! तुम से पुरातन का वणन करू गा। आप इसका श्रवण करिये ॥४॥ याज्ञवल्क्य मुनि न भास्वतापति से भविष्य पूछा था । उस समय मे उनने ऋषियो क लिये उत्तर दिया था वह मैंने श्रवण किया था ॥५॥ हे युधिष्ठिर! यह भविष्य परम धन्य—यश का देने वाला आयु की वृद्धि करने वाला और सम्पूण अशुभो के नाश करने वाला है। अब मैं इसे ही तुमस कहता हू ॥६॥ तीनो देवताओ की एका मता चार पाच सुल क्षण और गुण तथा काल आदि के भेद से सत् और असत् भली भाति प्रदर्शित किया है ॥७॥

एक एव जगद्योनि प्रतियोनिषु सस्थित ।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥८
ब्रह्मा विष्णुर्त्र्यम्बकश्च त्रयो देवा सता मता ।
नामभेद क्रियाभेदैर्भिद्यते नात्मना स्वयम् ॥९
प्रक्रिया चानुषङ्गश्च उपोद्घातस्तथैव च ।
उपसहार इत्येतच्चतुष्पाद प्रकीर्तितम् ॥१०

समता प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैकं पुराणं पंचलक्षणम् ॥११
एष वक्तव्यविषयः सुमहान्प्रतिभाति मे ।
तथाप्युद्देशतो वच्मि सर्गं प्रति तवानघ ॥१२
महदादिविशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम् ।
पञ्चप्रमाणं पट्वक्षं पुरुषाधिष्ठितं जगत् ॥१३
अव्यक्ताज्जायते बुद्धिर्महानिति च सा स्मृता ।
अहंकारास्तु महतस्त्रिगुणः स च पठ्यते ॥१४

इस समस्त जगत् का एक ही योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान है जोकि प्रतियोनियों मे संस्थित होरहा है । वही एक प्रकार से और बहुत प्रकार से जल मे चन्द्रमा की भाँति दिखलाई दिया करता है ॥८॥ ब्रह्मा—विष्णु और वृषाक ये तीन देवता सत्पुरुषों के माने हुए कहे जाते हैं । ये नामों के भेदों के द्वारा तथा कर्म करने के भेदों से भिन्न होते हैं स्वरूप से स्वयं ये भिन्न नहीं हैं ॥६॥ प्रक्रिया—अनुषंग उपोद्घात और उपसंहार ये चार पाद कहे गयेहैं ॥१०॥ समता—प्रतिसर्ग वंश मन्वन्तर और वंशानुचरित ये ही पाँच पुराणों के लक्षण हुआ करते हैं ॥११॥ यही कहने योग्य विषय बहुत बड़ा मुझे प्रतीत होता है । हे अनघ ! तुम्हारे प्रति तथापि उद्देश से सर्ग को बताता हूँ ॥१२॥ महद् आदि से विशेषान्त वाला, वैरूप्य के सहित, लक्षण से युक्त पाँच प्रमाण वाला तथा पट्कर्म पुरुष से अधिष्ठित यह जगत् है ॥१३॥ अव्यक्त से बुद्धि उत्पन्न होती है वह महान् इस नाम से कही गई है । फिर अहंकार महान् से समुत्पन्न होता है और वह त्रिगुण वाला पढ़ा जाया करता है ॥१४॥

तन्मात्राणि च पश्चाहुरहङ्काराच्च सात्त्विकात् ।
जातानि तेभ्यो भूतानि भूतेभ्यः सचराचरम् ॥१५
जलमूर्तिमयं विष्णोः सृष्टेः स्थावरजंगमं ।
भूतात्मकमभूदण्डं महत्तदुदकेशयम् ॥१६

सृष्टया शक्त्या च निर्भिन्न तदण्डमभवद्द्विधा ।
भूकपालमथैक तद्द्वितीयमभवन्नभ ॥१७
उल्व तस्याभवन्मरुजरायु पर्वता स्मृता ।
नद्यो धमन्य सञ्जाता क्लेद सवत्रग पय ॥१८
योजनाना सहस्राणि पोडशाध प्रतिष्ठित ।
उत्सेधे चतुराशीतिर्द्वात्रिंशदूर्ध्वविस्तृत ।
भूमिपकजविस्तीर्णा कर्णिका मेरुरुच्यते ॥१९
आदित्यश्चादिदेवत्वा त्ताभूत्त्रिगुणात्मक ।
प्रात प्रजापतिरसौ मध्याह्ने विष्णुरिष्यत ।
रुद्रोऽपराह्नसमये स एवैकस्त्रिधामत ॥२०

तन्मात्रा पाँच कही गई हैं जो सात्त्विक अहकार से उत्पन्न हुई हैं। उन पाँच तन्मात्राओ से पाच भूत होते हैं। और फिर इन पच महाभूतो स इस चराचर जगत् की समुत्पत्ति हुआ करती है जो यह सब दिखाई देरहा है।।१५।।जल की मूर्ति वाले भगवान् विष्णु मे समग्र स्थावर और जगम जगत् क विनष्ट होजाने पर भूतात्मक महत्त अणु उसी उदक म शयन करन वाला होगया था।।१६।।सृष्टि और शक्ति से निर्मित्त वह दो भागो मे होगया था। उसका एक भाग भू कपाल था और दूसरा भाग नभ था ।।१७।। उसका उल्व मेरु जरायु होगया जो पवत कहे गये हैं। नदियाँ जो थी वे धमनियाँ होगई थी और सवत्र गमनशील पय क्लेद होगया था ।।१८।। सोलह सहस्र योजन नीचे का भाग था। ऊचाई चौरासी सहस्र और ऊर्ध्व विस्तार तीस सहस्र था। भूमि पकज की विस्तीर्ण कर्णिका मेरु कहा जाता है ।।१९।। आदित्य आदिदेव होने के कारण वहा पर त्रिगुणात्मक था। यह प्रात काल मे प्रजापति-मध्याह्न म विष्णु और दोपहर के बाद रुद्र रूप वह एक ही तीन स्वरूपात्मक हुआ था ।।२०।।

स्वायभुवो मनु पूर्व तत स्वारोचिषोऽभवत् ।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषेति पट् ॥२१

वैवस्वतोऽयमधुना वर्तते मनुरुत्तमः ।
यस्य पुत्रैः प्रपौत्रैश्च विभक्तेयं वसुन्धरा ॥२२
आदित्या वसवो रुद्रा एकादश तथाश्विनौ ।
उपत्रयः समाख्याता देव वैवस्वतेऽन्तरे ॥२३
विप्रचित्तिहिरण्याख्यौ दैत्यदानवसत्तमौ ।
तयोर्वंशे तु बहवो दैत्यदानवसत्तमाः ॥२४
पञ्चाशद्गुणितकोटियोजनानां महत्तया ।
सप्तद्वीपसमुद्रायाः प्रमाणमवनेः स्मृतम् ॥२५
पिण्डेन च सहस्राणि सप्ततिर्जलमध्यतः ।
गौरिवैषा सुमहती भ्राजते न च लीयते ॥२६
लोका लोकः परतरः पर्वतोऽग्रमहोच्छ्रयः ।
द्वैतमर्थं स नियतो योऽसौ रविरुचामपि ॥२७
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लयः ।
नित्यश्चतुर्थो विज्ञेयः कालो नित्यापहारकः ॥२८

सबसे पूर्व स्वायम्भुव मनु हुए, उसके पश्चात् स्वारोचिष हुए थे। फिर क्रम से उत्तम–तामस–रैवत और चाक्षुष ये छं मनु हुए हैं। जो यह इस समय वर्तमान है वह वैवस्वत मनु है जोकि सबमे उत्तम कहा जाता है। जिसके पुत्र और पौत्रों से यह वसुन्धरा विभक्त है ॥२१-२२॥ आदित्य–वसुगण–एकादश रुद्र–अश्विनी कुमार और तीन उपा वैवस्वत मन्वन्तर में देव कहे गये हैं ॥२३॥ विप्रचित्ति और हिरण्याक्ष श्रेष्ठ दैत्य दानव थे। उन दोनों के वंश में बहुत–से दैत्यदानव हुए थे ॥२४॥ पचास गुणित करोड योजनों की महत्ता से सातद्वीप और सात समुद्र वाली भूमिका प्रमाण कहा गया है ॥२५॥ और पिण्ड से सत्तर हजार जल के मध्य मे यह गौ की भांति भ्राजमान हुआ करती है और लीन नहीं होती है ॥२६॥ अग्रभाग मे महान् उच्छ्रय वाला लोका लोक पर्वत पर तर है। द्वैत अर्थ मे वह नियत है जो यह रवि

की किरणा म भी है ।।२७।। लय नैमित्तिक–प्राकृतिक और आत्यन्तिक और चौथा नित्य जाना चाहिए । काल नित्य का अपहारक है ।।२८।।

उत्पद्यते स्वय यस्मात्तत्तस्मिन्नेव लीयते ।
रक्षति च परे पु सि भूतानामेष निश्चय ॥२९
यथर्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥३०
प्रतिलीनेषु भूतेषु विबुद्ध सकल जगत् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वर ॥३१
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
ते त विना प्रपद्यते पुनस्तेष्वेव कर्मसु ॥३२
भूर्दशगुणेन पयसा सवृता तच्च तेजसा ।
तेजोऽनिलेन नभसा तद्गुणेनानिलो वृत ॥३३
भूतादिना तथाकाश भूतादिर्महतावृत ।
महान्परिवृतस्तेन पुरुषेणाविनाशिना ॥३४
एव विधानामण्डाना सहस्राणि शतानि च ।
उत्पन्नानि विनष्टानि भावितानि महात्मना ॥३५
वैकुण्ठकोष्ठगतमेतदशेषतायाः ख्यात
जगत्सुरनरोरगसिद्धनद्धम् ।
पश्यति शुद्धमुनयो बहिरतरे च माया
चराचरगुरोरपरैव काचित्॥३६

जिससे स्वय उत्पन्न होता है उसमे ही विलीन हो जाता है और पर पुरुष मे रमा करता है भूतो का यह निश्चय है ।।२९।। जिस तरह ऋतु मे ऋतु के लिंग अर्थात् चिह्न होते हैं और वे पर्यय मे नाना रूप वाले हुआ करते हैं तथा वे ही समय समय पर दिखलाई दिया करते हैं ठीक उसी भाँति युग आदि म भाव भी दिखाई दिया करत हैं ।।३०।। भूतो के प्रतिलीन होजाने पर विबुद्ध वह महेश्वर ही आदि मे इस समस्त जगत् को वेद के शब्दा से ही निर्माण करता है ।।३१।। हिंस्र

और अहिंस–मृदु और क्रूर–धर्म और अधर्म–आवृत और अनृत वे सब फिर उन्हीं कर्मों म प्राप्त होते है ॥३२॥ यह भूमि दशगुने जल से सवृत है वह जल तेज मे और तेज वायु से और वह अनिल तद्गुण आकाश से सवृत है ॥३३॥ तथा भूतादि आकाश और भूतादि महत्तत्व से आवृत होता है। वह महान् उस अविनाशी पुरुष के द्वारा परिवृत होता है ॥३४॥ इस प्रकार के अण्ड सैंकडो और सहस्रो होते हैं। महान् आत्मा वाले के द्वारा उत्पन्न हुए हैं–विनष्ट हुए है और आगे होगे ॥३५॥ यह वैकुण्ठ कोष्ठ गन अशपता मे ख्यात है और यह जगत् सुर–नर–उरग और सिद्धो से नद्ध है। जो शुद्ध मुनिगण है वे बाहि और अन्तर मे देखते हैं। यह चराचर गुरुकी कोई अपरा ही माया है ॥३६॥

॥ सासारिक जीवन के दोष ॥

देवत्व मानुपत्व च तियक्त्व केन कमणा ।
प्राप्नोति पुरुप केन गभवास सुदारुणम् ॥१
गर्भस्थश्च किमश्नाति कथमुत्पद्यत पुन ।
दत्तोत्थानादिका दोषा कथ तरति दुस्तरान् ॥२
बालभावे कथ पुष्टि स्याद्युवा केन कमणा ।
कुलीन केन भवति सुरूप सुधन कथम् ॥३
कथ दारानवाप्नोति गृह सवगुणैर्युतम् ।
पडित पुत्रवास्त्यागी स्यादामर्यविवर्जित ॥४
कथ सुखेन म्रियते कथ मुक्ते शुभाशुभम् ।
सवमेवामलमते गहन प्रतिभाति मे ॥५

इस अध्याय मे जन्म ससार दोषा के आख्यायन का वणन किया जाता है। युधिष्ठिर ने कहा—यह पुरुप देवत्व–मानुपत्व और तियक्त्व किस कम से प्राप्त किया करता है और किस कम के द्वारा सुदारुण गभ म आवास पाया करता है ? ॥१॥ जिस समय यह प्राणी गभ म स्थित होकर रहा करता है वहा यह क्या खाता है और फिर यह कसे उत्पन्न होता है ? दत्त और उत्थान आदि दोषो का जो कि बहुत ही दुस्तर हैं

कैसे पार किया करता है ? ॥२॥ बाल भाव म इसकी पुष्टि कैसे होती है और यह किस कम के द्वारा युवा होता है ? यह कुलीन-सुन्दर रूप वाला-सुधन से युक्त कसे हुआ करता है ? ॥३॥ यह स्त्रियों की प्राप्ति कैसे किया करता है और समस्त गुण गण से समन्वित घर इस किम प्रकार प्राप्त होता है । पण्डित पुत्रो वाला-त्यागी और रोगो से रहित किस तरह होता है ? ॥४॥ किस तरह यह जीवात्मा सुख से मरता है और शुभ तथा अशुभ के भोगो को कैसे भोगता है । इस अमल मत म सभी कुछ मुन बहुत गहन प्रतीत होता है ॥५॥

शुभैर्देवत्वमाप्नोति मिथैर्मानुपता व्रजेत् ।
अशुभैः कमभिर्जन्तुस्तिर्यग्योनिपु जायते ॥६
प्रमाण श्रुतिरेवात्र धर्माधमविनिश्चये ।
पाप पापेन भवति पुण्य पुण्येन कमणा ॥७
ऋतुकाले तदा भुक्त निर्दोप यन सस्थितम् ।
तदा तद्वायुना स्पृष्ट स्त्रीरक्तनैकता व्रजेत् ॥८
विसगकाले शुक्रस्य जीव करणसयुत ।
भृत्य प्रविशत योनिं कमभि स्वैर्नियोजित ॥९
तच्छुक्ररक्तमेकस्थमेकाहात्कलल भवेत् ।
पञ्चरात्रेण कलल बुद्बुदाकारता व्रजेत् ॥१०
बुद्बुद सप्तरात्रेण मासपेशी भवत्तत ।
द्विसप्ताहाद्भवेत्पेशी रक्तमासदृढान्वित ॥११
बीजस्यथाङ्कुरा पेश्या पञ्चविंश तिरात्रत ।
भवति मासमात्रेण पञ्चधा जायते पुन ॥१२

श्रीकृष्ण ने कहा—शुभ कर्मों से यह प्राणी देवत्व की प्राप्ति किया करता है और जो कम शुभ तथा अशुभ से मिश्रित होते हैं उनसे मानुषता को प्राप्त किया करता है । जब बिल्कुल अशुभ ही कम होते हैं तो यह तिर्यक योनियो म उत्पन्न होता है ॥६॥ धम और अधम विशेष निश्चय करने म श्रुति ही यहा पर प्रमाण होता है । पाप (बुरे) कम से पाप होता है और पुण्य कम स पुण्य हुआ करता है ॥७॥ ऋतुकाल म उस

समय जो मुक्त हैं वह निर्दोष है जिसके द्वारा सस्थित उसकी वायु से स्पृष्ट होकर स्त्री के रक्त से एकता को प्राप्त हो जाता है ।।८।। शुक्र के (वीय के) विसग के समय म करणो (इन्द्रियो) से सयुत जीव भृत्य अपने कर्मों से नियोजित होकर योनि मे प्रवेश करता है ।।९।। वह शुक्र और रक्त एकस्थ होकर एक दिन म वह कलल हो जाता है । वह कलल पाँच रात्रि मे बुद्बुदाकार को प्राप्त हो जाता है ।।१०।। वह बुद्बुद सात रात्रि मे मास पेशी के रूप मे होता है । फिर दो सप्ताह मे रक्तमास से दृढाचित पेशी होती है ।।११।। पच्चीस रात्रि म बीज के अकुरो की भाँति पेशी के मास मात्र समय म पाँच फिर खण्ड हो जाते हैं ।।१२।।

ग्रीवा शिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवशस्तथोदरम् ।
मासद्वयेन सर्वाणि क्रमश सभवति च ।।१३
त्रिभिर्मासै प्रजायत सद्रव्याकुरसधय ।
मासैश्चतुर्भिरगुल्य प्रजायते यथाक्रमम् ।।१४
मुख नासा च कर्णौ च जायन्ते पञ्च मासके ।
दतपक्तिस्तथा गुह्य जायते च नखा पुन ।।१५
कर्णौ च रध्रसहितौ षण्मासाभ्यतरेण तु ।
पायुर्मेढ्रमुपस्थश्च नाभिश्चाप्युपजायते ।।१६
सधयोये च गात्रेषु मासैर्जायति सप्तभि ।
अङ्गप्रत्यगसपूर्णं शिर केशसमन्वित ।।१७
विभक्तावयव पुष्ट पुनर्मासाष्टकेन च ।
पचात्मकसमायुक्त परिपक्व स तिष्ठति ।।१८
मातुराहारवीर्येण षडविधेन स तिष्ठति ।
रसेन प्रत्यह वालो वर्धते भरतर्षभ ।।१९
ततो ह सप्रवक्ष्यामि यथाश्रुतमरिंदम ।
नाभिसूत्रनिबन्धेन वर्द्धते स दिनेदिने ।।२०
तत स्मृतिं लभे जीव सपूर्णेऽस्मिञ्छरीरके ।
सुख दु ख विजानाति निद्रास्वप्न पुरा कृतम् ।।२१

फिर दो मास मे ग्रीवा—शिर—स्कन्ध—पृष्ठ वश और उदर सब क्रम से उत्पन्न हो जाते हैं ॥१३॥ फिर तीन मास म द्रव्याकुर स-िधयोंके सहित उत्पन्न हो जाते हैं। चार मासो म यथाक्रम अगुलियाँ उत्पन्न होती हैं ॥१४॥ पाच माम म मुख—नासिका—दो कान, दाँतो की पक्ति-गुह्य और नख उत्पन्न हो जाते हैं ॥१५॥ छिद्र के सहित कान छै मास के अन्दर पैदा होते हैं। पायु (गुदा) मेढ् (मूत्रेन्द्रिय) नाभि भी उत्पन्न हो जाती हैं ॥१६॥ जो इस शरीर म सन्धियाँ होती हैं वे सात मासो मे बन जाया करती हैं और अ ग तथा प्रत्यग से सम्पूण तथा केशो स समन्वित विभक्त अवयवो वाला पूर्ण पुष्ट आठ मास म उदरस्थ शिशु हो जाया करता है और फिर यह पचात्मक समायुक्त होकर गभ म स्थित रहा करता है जो कि पूर्ण-तया परिपक्व होता है ॥१७ १८॥ छै प्रकार क माता के आहार के वीर्य से वह वहा स्थित रहता है। हे भरतषभ ! प्रतिदिन रस के द्वारा बालक वृद्धि का प्राप्त होता है ॥१९॥ हे अरि दय ! यह सब मैं तुमको यथाश्रुत बतला दू गा। नाभि के सूत्र (नाल) के निबन्ध से वह दिनों दिन बढा करता है ॥२०॥ इसके पश्चात् वह जीवात्मा स्मृति की प्राप्ति किया करता है क्योकि उसका यह शरीर साग सम्पूर्ण हो जाता है। उस समय वह सुख और दु ख को भी जानने लगता है और पुराकृत निद्रा स्वप्न का भी उसे ज्ञान हो जाता है ॥२१॥

मृतश्चाहृ पुनर्जातो जातश्चाहृ पुनर्मृ त ।
नानायोनि सहस्राणि मया दृष्टानि तानि वै ॥२२
अधुना जातमात्रोऽहृ प्राप्तसस्कार एव च ।
एतच्छ्रे य करिष्यामि येन गर्भे न सश्रय ॥२३
गर्भस्थ श्चिन्तये देवमह गर्भाद्विनि सृत ।
अध्येष्ये चतुरो वेदान्ससारविनिवर्तकान् ॥२४
एव स गर्भदुखेन महता परिपीडित ।
जीव कर्मवशा दास्ते मोक्षोपाय विचिंतयन् ॥२५
यथा गिरिवराक्रात कश्चिद् ुखेन तिष्ठति ।
तथा जरायुणा देही दु खे तिष्ठति चेष्टित ॥२६

पतितः सागरे यद्वद् ुःखैरास्ते समाकुलः ।
गर्भोदकेन सिक्तांगस्तथास्ते व्याकुलः पुमान् ॥२७
लोहकुंभे यथा न्यस्तः पच्यते कश्चिदग्निना ।
तथा स पच्यते जंतुर्गर्भस्थः पीडितोदरः ॥२८

उसे उस दशा में यह ज्ञान भी हो जाता है कि मैं मर गया था और फिर मैंने जन्म धारण किया था और उत्पन्न होकर भी फिर मेरी मृत्यु हो गई थी। मैंने इस तरह अनेक प्रकार की सहस्रों योनियां देखी हैं ॥२२॥ इस बार अब मैं उत्पन्न होते ही संस्कार प्राप्त करके ही ऐसा कल्याण के मार्ग का कार्य करूंगा कि जिससे फिर मुझे गर्भवास का कष्ट न भोगना पड़े ॥२३॥ इस तरह जीवात्मा गर्भ में स्थित होता हुआ देव का चिन्तन करता है कि मैं इस घोर गर्भ से निकल कर संसार से विशेष निवृत्ति कराने वाले चारो वेदों का अध्ययन करूंगा ॥२४॥ इस तरह से महान् गर्भ के दुःख से परिपीड़ित जीव कर्म वश से मोक्ष-प्राप्ति के उपायों को सोचता हुआ रहा करता है ॥२५॥ जैसे कोई गिरिवर से आक्रान्त हुआ बड़े दुःख से स्थित रहा करता है उसी तरह यह देही जरायु से वेष्टित होता हुआ दुःख में स्थिति रखता है ॥२६॥ सागर में पतित जिन दुःखो से समाकुल अर्थात् पूरा बेचैन होता है उसी तरह से गर्भोदक से सिक्त अंगों वाला पुरुष अत्यन्त व्याकुल रहा करता है ॥२७॥ जैसे कोई लोहे के घड़े में रखा हुआ अग्नि के द्वारा पकाया जाता हो ठीक उसी भाँति गर्भ में स्थित जन्तु पीड़ितोदर होकर वहां पकाया जाया करता है ॥२८॥

गर्भात्कोटिगुण दु ख योनियन्त्रप्रपीडनात् ।
सम्मूर्च्छितस्य जायेत जायमानस्य देहिनः ॥३२
शरवत्पीडचमानस्य यन्त्रेणैव समततः ।
शिरसि ताडचमानस्य पापमुद्गरकेण च ॥३३
गर्भान्निष्क्रम्यमाणस्य प्रबलैः सूतिमारुतैः ।
जायते सुमहद् ुःख परित्राणमतिदत ॥३४
यन्त्रेण पीडिता यद्वन्नि.सरा. स्युस्तिलेक्षवः ।
तथा शरीर निःसार योनियन्त्रप्रपीडितम् ॥३५

अग्नि वर्ण वाली सुइयो से निरन्तर विभिन्न होने वाले अर्थात् छिदे हुए को जो दु ख होता है उससे आठ गुना दु ख गर्भ में रहने की हालत में जीव को हुआ करता है ॥२६॥ गर्भ के आवास से पर कष्ट देने वाला दूसरा कोई भी कही भी आवास नही है। हे राजन् ! यह गर्भ का निवास देहधारियो को अत्यधिक दु ख देने वाला—सुघोर और अत्यन्त सकट से युक्त होता है ॥३०॥ इस तरह से यह गर्भ का दु ख जो प्राणियो को हुआ करता है वह मैंने कह दिया है। यह चर और स्थिर सभी को आत्म गर्भ के अनुसार हुआ करता है ॥३१॥ गर्भ के निवास में जो दु ख होता है उससे करोड गुना दु ख तब होता है जब वह उत्पन्न होता है और उस समय योनि के यन्त्र से उसे बाहिर निकलने में प्रपीडत होता है। स्वर्णकार की तन्त्री से तार की खिचाई की भाँति उसके शरीर को बडी पीडा होती है और जायमान देही मूर्च्छित होकर गिर पडता है। उस समय शर की भाति वह पीडित उस यन्त्र से निकलने में हुआ करता है। ऐसी पीडा होती है मानो उसके शिर में पापरूपा मुद्गर से ताडन किया गया हो ॥३१-३३॥ जब वह जीव गर्भ से निकलने वाला होता है तो उस समय में प्रसव की वायु से जो कि अत्यन्त प्रबल होती हैं उसको महान् दु ख होता है और अपने परित्राण के लिये बुद्धि किया करता है।३४। यन्त्र के द्वारा जैसे तिल और ईख निस्सार होकर निकला करते हैं उसी तरह से जीवात्मा का यह शरीर भी एक प्रकार से सार रहित-सा योनि-यन्त्र से प्रपीडित होकर हो जाता है ॥३५॥

अहो मोहस्य माहात्म्य येन व्यामोहित जगत् ।
जिघ्रन्पश्यन्स्वक दोष कायस्य न विरज्यते ॥३६
एवमेतच्छरीर हि निसर्गादशुचि ध्रुवम् ।
त्वड्मात्रसार नि सार कदलीसारसनिभम् ॥३७
गर्भस्थस्य स्मृतिर्यासीत्सा जातस्य प्रणश्यति ।
सम्मूर्च्छितस्य दु खेन योनियन्त्रप्रपीडनात् ॥३८
वाह्यन वायुना चास्य मोहसज्ञेन देहिन ।
स्पृष्टमात्रेण घोरेण ज्वर समुपजायते ॥३९
तेन ज्वरेण महता महामोह प्रजायते ।
सम्मूढस्य स्मृतिभ्र श शीघ्र सजायते पुन ॥४०
स्मृतिभ्र शात्तु तस्येह पूर्वकर्मवशेन च ।
रति सजायते तूर्णं जतोस्तत्रैव जन्मनि ॥४१
रक्तो मूढस्य लोकोऽयमकार्ये सप्रवर्तते ।
न चात्मान विजानाति न पर विन्दते च स ॥४२

अहो ! बडा आश्चर्य है कि मोह का कैसा अद्भुत यह माहात्म्य है कि जिसने इस समस्त जगत् को अपने प्रभाव से व्यामोहित बना रक्खा है । अपने दोष को सूँघता हुआ और देखता हुआ भी जो कि इस शरीर का होता है फिर भी इससे विरक्त नहीं होता है ॥३६॥ इस प्रकार से यह शरीर स्वभाव से ही निश्चय ही अपवित्र है । त्वचा मात्र ही इसका सार है और कदली सार के समान निस्सार होता है ॥३७॥ गर्भ में स्थित रहते हुए जो इसकी स्मृति होती है वह जैसे ही यह उत्पन्न होता है सब विनष्ट ही जाती है क्योंकि योनियन्त्र के प्रकृष्ट पीडन से जो दुःख का भार होता है उससे मूर्च्छा आने के कारण ही वह सब भूल जाया करता है ॥३८॥ मोह नाम वाला बाहिर की वायु से जो कि अत्यन्त घोर है स्पर्श होते ही एक प्रकार का ज्वर उत्पन्न हो जाता है ॥३९॥ उस महान् ज्वर से महामोह हो जाया करता है । जब महामोह से सम्मूढता होती है तो उस समय की स्मृति का शीघ्र ही भ्रंश हो जाता है ॥४०॥ स्मृति जो कि गर्भ की दशा में थी जब नष्ट हो जाती है तो

उससे उसको यहा पूर्वजन्म मे किये हुए कर्मों से वशीभूत होकर फिर उस जन्तु को उस जन्म मे ही शीघ्र रति उत्पन्न हो जाया करती है ॥४१॥ यह लोक तो रागानुरक्त होता ही है फिर इस मूढ को यह अकार्यों मे प्रवृत्ति करा देता है । यह फिर अपने आपके स्वरूप को नही पहिचानता है और न यह पर को ही प्राप्त कर पाता है ॥४२॥

न श्रूयते पर श्रेय. सति चक्षुषि नेक्षते ।
समे पथि शनैर्गच्छन्स्खलतीव पदेपदे ॥४३
सत्या बुद्धौ न जानाति बोध्यमानो बुधैरपि ।
ससारे क्लिश्यते तेन रागलोभवशानुग. ॥४४
गर्भस्मृतेरभावेन शास्त्रमुक्त महर्षिभिः ।
तद्दु खमथनार्थाय स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् ॥४५
ये सत्यस्मिन्परे ज्ञाने सर्वकामार्थसाधके ।
न कुर्वंत्यात्मन. श्रेयस्तदत्र महदद्भुतम् ॥४६
अव्यक्तेंद्रियवृत्तित्वाद्बाल्ये दु ख महत्पुन' ।
इच्छन्नपि न शक्नोति कर्तुं वक्तु च सत्क्रियाम् ॥४७
दतोत्थाने महद्दु ख मौलेन व्याधिना तथा ।
बालरोगैश्च विविधै. पीडा बालग्रहैरपि ॥४८
तृड्बुभुक्षापरीताग. क्वचित्तिष्ठति रारटन् ।
विण्मूत्रभक्षणमपि मोहाद्बाल. समाचरेत् ॥४९

वह ऐसा मूढ मोह मे अन्धा तथा बधिर हो जाता है कि परम श्रेय की बात को सुनता ही नही है और नेत्रो के होने हुए भी वह कुछ भी नहीं देखा करता है । सम मार्ग मे भी धीरे-धीरे जाता हुआ पैड पैड पर गिरता रहता रहता है ॥४३॥ बुद्धि के होने पर भी बडे-बडे विद्वानो के के द्वारा बोध्यमान होता हुआ भी नही समझ पाता है । इसी कारण से फिर वह इस ससार मे राग और लोभ के वशीभूत होता हुआ क्लेश पाया करता है ॥४४॥ गर्भ में जो स्मृति रहती है उसका अभाव हो जाने के ही कारण से महर्षि महानुभावो ने शास्त्र का कथन किया है जो

उस दु ख के मथन करने के लिये ही है और स्वर्ग तथा दोनो का प्रदान करने वाला भी होता है ॥४५॥ इस परज्ञान के होने पर भी जो समस्त काम और अर्थो का साधक होता है जो इस दु खपूर्ण ससार मे मोह के वशी भूत हैं और अपनी आत्मा के श्रेय का सम्पादन नही किया करते हैं यही एक यहा बडी अद्भुत बात है ॥४६॥ इन्द्रियो की वृत्ति अव्यक्त होने के कारण बचपन मे महान् दु ख तो है किन्तु उसे भोगने पर भी हटाने की इच्छा रखता हुआ भी सत्क्रिया के कहने तथा उसे करने की सामर्थ्य नही रखता है ॥४७॥ दातो के निकलने मे बडा दु ख होना है शिरकी व्याधि से कष्ट असह्य भोगता है । अनक प्रकार के अन्य बहुत-से बाल रोगो से जो कि बाल ग्रह होते हैं पीडा सहन करता है । भूख तथा प्यास से परीत अ ग वाला कोई रटन करता हुआ स्थित रहता है। मोह से बालक विष्ठा और मूत्र का भक्षण भी कर लेता है ॥४८-४६॥

कौमारे कर्णवेधेन मातापित्रोश्च ताडनात् ।
अक्षराध्ययनात्पु सा दु ख स्याद्गुरुशासनात् ॥५०
प्रसन्नेंद्रियवृत्तिश्च कामरागप्रपीडनात् ।
रोगोद्धतस्य सतत कुत सौख्य च यौवने ॥५१
ईर्ष्यया च महद्दु ख मोहाद्रक्तस्य जायते ।
नेत्रस्य कुपितस्यैव रागो दु खाय केवलम् ॥५२
न रात्रौ विदते निद्रा कोपाग्निपरिपीडित ।
दिवा वापि कुत सौख्यमर्थोपार्जनचितया ॥५३
जराभिभूत पुरुष. पत्नीपुत्रादि बाधवै. ।
अशक्तत्वाद्दुराचारैर्भृत्यैश्च परिभूयते ॥५४
धर्ममर्थ च काम च मोक्ष च न जरी यत ।
शक्त साधयितु तस्माच्छरीरमिदमात्मन ॥५५
वातपित्तकफादीना वैषम्य व्याधिरुच्यते ।
तस्माद्याधिमयज्ञेय शरीरमिदमात्मन. ॥५६

जब कौमार अवस्था आ जा ी है ता कर्ण वेध म तथा माता पिता के ताडन म और शाला मे अक्षरों के अध्ययन म एव गुरु क शासन म

भी पुरुषो को दु ख होता है ॥५०॥ प्रसन्न इन्द्रियो की वृत्ति वाला है किन्तु काम राग के प्रपीडन से सतत रोषोद्धत पुरुष को यौवन मे भी सुख कहा है ? अर्थात् कोई सुख युवावस्था मे भी नही होता है ॥५१॥ मोह से रक्त को ईर्ष्या होने से महान् दु ख हुआ करता है । कुपित नेत्र का राग भी केवल दु ख के लिये ही होता है ॥५२॥ कोप की अग्नि से पीडित पुरुष रात्रि मे भी निद्रा प्राप्त नही किया करता है और दिन में भी उसे धन के उपार्जन की बराबर चिन्ता रहने से सुख कहा है ? अर्थात् धनार्जन की सतत चिन्ता बनी रहने के कारण सुख नही होता है ॥५३॥ जब मनुष्य वृद्धावस्था से घिर जाता है तो पत्नी-पुत्र आदि बान्धवो से तथा दुराचार वाले भृत्यो से अशक्त होने के कारण परिभव (तिरस्कार) को प्राप्त होता है ॥५४॥ बुड्ढा पुरुष धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की साधना करने मे अशक्त हो जाता है । इससे यह शरीर ऐसा है जिससे आत्म-कल्याण नहीं हो पाता है ॥५५॥ वात कफ और पित्त आदि की जो विषमता है वही व्याधि के नाम से कही जाती है । इस लिये अपना यह शरीर व्याधिमय ही जानना चाहिए ॥५६॥

वाताद्यव्यतिरिक्तत्वाद्वयाधीना पञ्जरस्य च ।
रोगैर्नानाविधैर्यानि देहदु खान्यनेकधा ।
तानि च स्वात्मवेद्यानि किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥५७
एकोत्तर मृत्युशतमस्मिन्देहे प्रतिष्ठितम् ।
तत्रैक कालसयुक्त शेषाश्चागन्तव स्मृता ॥५८
येस्त्विहागतव प्रोक्तास्ते प्रशाम्यति भेषजै ।
जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्न शाम्यति ॥५९
यदि चापि न मृत्यु स्याद्विषमद्यादशकित ।
न सति पुरुषे तस्मादपमृत्युविभीतय ॥६०
विविधा व्याधय शस्त्र सर्पाद्या प्राणिनस्तथा ।
विषाग्नि जगमाद्यानि मृत्योर्द्वाराणि देहिनाम् ॥६१
पीडित सर्वरोगाद्यैरपि धन्वन्तरि स्वयम् ।
स्वस्थीकर्तुं न शक्नोति प्राप्तमृत्यु च देहिनम् ॥६२

नोपध न तपो दान न मत्रा न च बाधवा: ।
शक्नुवति परित्रातु नर कालेन पीडितम् ।।६३

वाताद्य व्यतिरिक्तत्व होने से व्याधियो के पञ्जर के नाना प्रकार के रोगो से जो देह दु ख हैं वे अनेक प्रकार के होते हैं और वे अपनी ही आत्मा के द्वारा जानने एव अनुभव करने के योग्य होते हैं। मैं अन्य क्या बताऊँ।।५७।।इस देह मे एक सौ एक मृत्यु प्रतिष्ठित हैं। उनमे एक काल से सयुक्त होता है और शेष आगन्तुक होते है ऐसा कहा गया है ।।५८।। जो आगन्तुक मृत्यु होते हैं वे भेषजो के द्वारा प्रशान्त होजाया करते है और जप–होम तथा दान आदि से भी उनका प्रशमन होता है किन्तु जो काल मृत्यु होता है वह किसी भी प्रकार से शान्त नही होता है ।।५९।। यदि काल मृत्यु नही है तो अशक्ति होकर विष भी खालेवे उससे अपमृत्यु के भय पुरुष मे नहीं होते हैं ।।६०।। देह धारियो की मृत्यु के अनेक द्वार होते हैं–बहुत प्रकार ▪ रोग–शस्त्र–सर्प आदि विषैले प्राणीवर्ग–विष–जगम आदि ये सभी मृत्यु प्राप्त होने में साधन हैं ।।६१।। समस्त रोगो से पीडित देहधारी को जिसको कि काल मृत्यु प्राप्त हो गया हो धन्वन्तरि स्वय भी स्वस्थ नही कर सकते हैं ।।६२।। काल के द्वारा पीडित पुरुष की रक्षा करने की सामर्थ्य औषध–तप-दान–मन्त्र और बान्धव किसी मे भी नही होती है ।।६३।।

रसायनतपोजप्यैर्योगसिद्धै र्महात्मभिः ।
कालमृत्युरपि प्राज्ञैस्तीर्यते नालसैर्न रैः ।।६४
नास्ति मृत्युसम दु.ख नास्ति मृत्युसम भयम् ।
नास्ति मृत्युसमस्त्रासः सर्वेषामेव देहिनाम् ।।६५
सद्भार्यापुत्र मित्राणि राज्यैश्वर्यधनानि च ।
अबद्धानि च वैराणि मृत्युः सर्वाणि कृन्तति ।।६६
हे जनाः किं न पश्यध्व सहस्रस्यापि मध्यतः ।
जनाः शतायुषः पञ्चभवति न भवति च ।।६७
अशीतिका विपद्यन्ते केचित्सप्ततिका नराः ।
परमायुष स्थित षष्टिस्तच्चैवानिश्चित पुन. ।।६८

यस्य यावद्भवेदायुर्देहिना पूर्वकर्मभि ।
तस्यार्द्धमायुषो रात्रिर्हरते मृत्युरूपिणी ॥६९
बालभावेन मोहेन वार्द्धक्ये जरया तथा ।
वर्षाणा विंशतिर्याति धर्मकामार्थवर्जिता ॥७०

रसायन—तप—जपो के द्वारा योग सिद्ध महात्माओ से जो परम प्राज्ञ हैं कालमृत्यु का भी तरण किया जाता है किन्तु आलस्य युक्त नरों के द्वारा नही किया जाता है ॥६४॥ इस ससार मे मृत्यु के समान कोई दु ख नही है और मृत्यु के तुल्य अन्य कोई भय भी नही होता है। मृत्यु के बराबर कोई त्रास भी समस्त देह धारियो को अन्य कोई नही हुआ करता है ॥६५॥ सुन्दर सती भार्या—पुत्र—मित्र राज्य—वैभव—ऐश्वर्य—धन और अवद्ध वैर इन सब को एक मृत्यु ही ऐसा है जो काट दिया करता है ॥६६॥ हे जनो ! क्या तुम नही देखा करते हो ? हजारो मनुष्यो के बीच मे सौ वर्ष की आयु वाले पुरुष पाँच ही होते हैं और नही भी हुआ करते हैं ॥६७॥ कुछ तो अस्सी वर्ष की आयु मे ही विपन्न हो जाया करते हैं, कुछ सत्तर वर्ष की उम्र मे समाप्त होजाते हैं। आजकल तो परमायु साठ वर्ष की ही मानी जाती है। वह भी कोई निश्चित नही है ॥६८॥ जिस पुरुष की देहधारियो के पूर्व कर्मों के अनुसार जितनी आयु होती है उस आयु का आधा भाग तो मृत्यु रूप वाली रात्रि ही हरण कर लिया करती है ॥६९॥ बाल भाव से, मोह से और बुढापे मे वृद्धावस्था से वर्षों के बीस तो वैसे ही धर्मकाम और अर्थ से वर्जित हो जाते हैं अर्थात् बीस वर्ष तक वह कुछ धर्मादि का साधन नही कर पाता है ॥७०॥

आगतुकैर्भयै पु सा व्याधिशोकैरनेकधा ।
भक्ष्यतेऽर्द्ध च तत्रापि यच्छेष तच्च जीवति ॥७१
जीवितात च मरण महाघोरमवाप्नुयात् ।
जायते जन्मकोटीषु मृत कर्मवशात्पुन ॥७२
देहभेदेन य पु सा वियोग कर्मसक्षयात् ।
मरण तद्विनिर्दिष्ट नान्यथा परमार्थत ॥७३

महातपप्रविष्टस्य च्छिद्यमानेषु मर्मसु।
यद्दु ख मरणे जतोर्न तस्येहोपमा क्वचित् ।।७४
हा तात मात कातेति रुदन्नेव हि दु खित ।
मडूक इव सर्पेण ग्रस्यते युत्मुना जन ।।७५
बाधवै सपरिष्वक्त प्रियै स परिवारित ।
नि श्वसन्दीर्घमुष्ण च मुखेन परिशुष्यति ।।७६
क्रन्दते चैव खट्वाया परिवर्तन्मुहुर्मुहु ।
समूढ क्षिपतेऽत्यथ हस्तपादावितस्तत ।।७७

आग तुक भयो स जोकि पुरुषो के व्याधि और शोक स्वरूप हुआ करते हैं और अनेक होते हैं आधा भाग आयु का खालिया जाता है उसमे भी जो कुछ शष रहता है उतनी आयु तक वह जीवित रहा करता है ।।७१।। जीवन के अन्त मे यह महान् घोर कष्ट को प्राप्त किया करता है और मृत होकर भी पुन कर्मों के वश यह करोडो जन्मों को धारण कर उत्पन्न हुआ करता है ।।७२।। जो देह के भद होने से पुरुषो का कर्मों के सक्षप होने वियोग होता है उसको ही मरण इस नाम से कहा जाता है अन्यथा परमाथ म यह कुछ भी नही है क्योंकि आत्मा तो नित्य है उसकी मत्यु कभी नहीं होती है ।।७३।। महातप मे प्रविष्ट पुरुष के छिद्यमान मर्मों मे जन्तु को जो दु ख मरण मे होता है उसकी यहा कही भी कोई उपमा नही है अर्थात समानता बनाने वाली वस्तु नही है ।।७४।। हा तात ! हा मात ! हा का त ! इस प्रकार से अत्यन्त दु खित होकर रुदन करता हुआ जन्तु मैंढक को सप की भाति मृत्यु क द्वारा ग्रस लिया जाता है ।।७५।। बान्धवो के द्वारा सपरिष्वक्त होता हुआ और प्रियजनो के द्वारा चारो ओर से घरा हुआ दीघ गम श्वास लता हुआ मुख से परिशुष्यमाण हो जाता है ।।७६।। खाट मे पडा हुआ मरने वाला प्राणो रोता है और बार बार करवटें बदला करता है । यह समूढ अपने हाथ और पैरों को बहुत अधिक इधर उधर उस समय म फकता रहता है ।।७७।।

खट्वांतो काक्षते भूमि भूमेः खट्वां पुनर्महीम् ।
विवशस्त्यक्तलज्जश्च मूत्रविष्ठानुलेपितः ॥७८
याचमानश्च सलिलं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ।
चिंतयानश्च वित्तानि कस्यैतानि मृते मयि ॥७६
पश्चावटान्खन्यमानः कालपाशेन कर्षितः ।
म्रियते पश्यतामेव जनानां घुर्घुरस्वनः ॥८०
जीवस्तृणजलौकेव देहाद्देह विशेत्क्रमात् ।
संप्राप्योत्तरकाल हि देह त्यजति पौर्वकम् ॥८१
मरणात्प्रार्थनादुःखमधिक हि विवेकिनः ।
क्षणिक मरणाद्दुःखमनंत प्रार्थनाकृतम् ॥८२
जगता पतिरर्थित्वाद्विष्णुर्वामनतां गतः ।
अधिक कोऽपरस्तस्माद्यो नया स्यति लाघवम् ॥८३

कभी खाट से भूमि पर पड़ने की इच्छा करता है तो फिर भूमि से खाट पर जाकर पड़ने की चाहना होती है। यह मृत्यु के निकट समय मे विवश-सा होकर लज्जा हीन होजाया करता है तथा मूत्र और विष्ठा से भी लियड़ा हुआ हो जाता है ॥७८॥ कभी पानी की याचना का सकेत किया करता है और निकटतम मृत्यु वाले प्राणी के कण्ठ -ओष्ठ और तालु शुष्क हो जाते हैं। वह यह सोचता रहता है कि मेरे मरजाने पर ये धन के वैभव किसके होंगे ॥७६॥ इस तरह पश्चावटो को खोदता हुआ अर्थात् कान नाक मुख को हाथ से चलाता हुआ जन्तु काल के पाश के द्वारा कर्षित होजाता है और घुरटि की ध्वनि कण्ठ से करता हुआ समस्त मनुष्यो के देखते हुए ही मरजाता है ॥८०॥ यह जीव तृणजलो का की भाँति क्रम से देह से दूसरे देह प्रवेश किया करता है। उत्तर काल को सम्प्राप्त करके पौर्वक देह का त्याग करता है॥८१॥विवेकी को मरण से प्रार्थना दुःख अधिक होता है क्योकि मरण का दुःख तो क्षणिक ही होता है और प्रार्थना कृत दुःख अनन्त हुआ करता है ॥८२॥ संसार का सर्वेश्वर भी अर्थी होने के कारण

भगवान् विष्णु वामनारूप को (बौना) प्राप्त होगया था । उससे अधिक अन्य कौन है जो लाघव को प्राप्त नहीं होगा ॥८३॥

ज्ञातं मयेदमधुना मत भवति यद्गुरु ।
न पर प्रार्थयेद्भूयस्तृष्णा लाघवकारणम् ॥८४
आदौ दुःख तथा मध्ये दु.खमन्ते च दारुणम् ।
निसर्गात्सर्वभूतानामिति दु.खपरपरा ॥८५
वर्तमानान्यतीतानि दु.खान्येतानि यानि तु ।
नरा न भावयन्त्यज्ञा न विरज्यंति तेन ते ॥८६
अत्याहारान्महद्दुःखमनाहारान्महत्तमम् ।
तुलित जीवित कष्टं मन्येऽप्येवं कुत. सुखम् ॥८७
बुभुक्षा सर्वरोगाणा व्याधि. श्रेष्ठतम स्मृतः ।
स चान्नौषधिलेपेन क्षणमात्रं प्रशाम्यति ॥८८
क्षुद्व्याधिवेदनातुल्या नि शेषबलकर्तनी ।
तयाभिभूतो म्रियते यथान्यैर्व्याधिभिर्न हि ॥८९
तद्रसोपि हि कामाद्वा जिह्वाग्रे परिवर्तते ।
तत्क्षणाद्वार्द्धकालेन कठ प्राप्य निवर्तते ॥९०

मैंने अब यह गुरु मत जान लिया है कि पुन दूसरे से प्रार्थना नहीं करनी चाहिए क्योंकि मह तृष्णा ही लाघव करने कारण होता है ॥८४॥ आदि मे दु ख, मध्य मे दु ख और अन्त मे दारुण दु ख होता है । समस्त प्राणियो की स्वभाव से ही यह दुःखो की परम्परा होती है ॥८५॥ वर्तमान—बीते हुए जो ये दु ख हैं उनको अज्ञ नर नहीं ध्यान मे रखते हैं और इसी कारण से वे विरक्त भी नही होते है ॥८६॥ अत्यन्त आहार से महान दु ख होता है और अनाहार से भी महान् कष्ट होता है । तुलित जीवन भी कष्टमय होजाता है । अत यह मानते हैं कि सुख कहा है अर्थात् किसी प्रकार से भी कही सुख है ही नही ॥८७॥ भूख समस्त रोगो की श्रेष्ठ तम व्याधि है—ऐसा कहा गया है और वह अन्न की औषध के लेप से क्षण मात्र के लिये ही प्रशम को प्राप्त हुआ करती है ॥८८॥ क्षुधा की व्याधि वेदना के समान होती है । यह पूर्ण बल को

समाप्त कर देने वाली है। इससे अभिभूत प्राणी मर ही जाया करता है जैसा कि अन्य व्याधियों से नही होता है ॥८६॥ उसका रस भी अथवा काम से जिह्वा के अग्र भाग मे ही परिवर्तित होता है। वह भी क्षण मात्र मे वार्द्धकाल से कण्ठ को प्राप्त करके निवृत्त हो जाता है ॥६०॥

इति क्षुद्व्याधितप्तानामन्नमौषधवत्स्मृतम् ।
न तत्सुखाय मन्तव्य परमार्थेन पडितै ॥६१
मृतोपमो यश्च क्षेत सर्वकार्यविवर्जित ।
तत्रापि च कुत सौख्य तमसाच्छादितात्मन ॥६२
प्रबोधेऽपि कुत सौख्य कार्यैरुपहतात्मन ।
कृषिगोरक्षवाणिज्यसेवाध्वादिपरिश्रमै ६३
प्रातर्मूत्रपुरीषाभ्या मध्याह्ने तु बुभुक्षया ।
तृष्णा कामेन बाध्यन्ते जतवोऽपि विनिद्रया ॥६४
अर्थस्योपाजने दु खमर्जितस्यापि रक्षणे ।
आये दु ख व्यये दु खमर्थेभ्यश्च कुत सुखम् ॥६५
चौरेभ्य सलिलादग्ने स्वजनात्पार्थिवादपि ।
भयमर्थवता नित्य मृत्यो प्राणभृतामिव ॥६६
खे यात पक्षिभिर्मांस भक्ष्यते श्वापदैर्भुवि ।
जले च भक्ष्यते मत्स्यैस्तथा सर्वत्र वित्तवान् ॥६७

इस प्रकार से क्षुधा की व्याधि से तप्त होने वालो के लिए यह अन्न ही औषध के समान कहा गया है। उसे भी पण्डितो के द्वारा सुख के लिए नही मानना चाहिए। जैसा कि परमार्थ रूप से होता है ॥६१॥ समस्त कार्यो से रहित होकर जो एक मृत के समान देखता है वहा पर भी तम से आच्छादित आत्मा वाले को सुख कहा है ? अर्थात् सुख नही होता है ॥६२॥ कृषि–गो पालन–वाणिज्य–सेवा और मार्ग गमन आदि परिश्रम के कार्यो से उपहत आत्मा वाले को प्रबोध हो जाने पर भी कहीं भी सुख नही होता है ॥६३॥ प्रात काल मे मूत्र और पुरीष से तथा मध्याह्न मे भूख से सुख का अभाव होता है।

यदि काम से तृप्त भी हों तो भी जन्तु विनिद्रा से वाधित होते हैं और उन्हें सुख नहीं होता है॥६४॥धन से भी कोई सुख नहीं होता है पहिले तो अर्थ के उपार्जन में महान् कष्ट होता है और अर्जित की रक्षा करने में दुःख होता है। अतः इसके आय और व्यय दोनों में ही दुःख होता है। अर्थ से भी इस संसार में सुख कहीं भी वस्तुतः नहीं होता है ॥६५॥ अर्थ वालों को चोरों से–सलिल से–अग्नि से-अपने जनों से और राजा से नित्य ही भय रहा करता है जैसे प्राणियों का मृत्यु का भय हुआ करता है। ये सभी धनी के धन के प्राप्त करने वाले हुआ करते हैं ॥६६॥ आकाश में गये हुए के मांस का पक्षियों के द्वारा भक्षण किया जाता है। भूमि में श्वापदों के द्वारा उसका मांस खाया जाता है जल में मत्स्यों के द्वारा भक्षण किया जाता है तात्पर्य यह है कि वित्त वाला सभी जगह खाया ही खाया करता है ॥६७॥

विमोहयंति सपत्सु तापयंति विपत्तिपु।
खेदयंत्यर्जनाकाले कदा ह्यर्थाः सुखावहाः ॥६८
यथार्थपतिरुद्विग्नो यश्च सर्वार्थ निःस्पृहः।
यतश्चार्थपतिर्दुःखी सुखी सर्वार्थनिःस्पृहः ॥६९
शीतेन दुःखं हेमंते ग्रीष्मे तापेन दारुणम्।
वर्षासु वातवर्षाभ्यां कालेऽप्येवं कुतः सुखम् ॥१००
विवाहविस्तरे दुःखं तद्गर्भोद्वहने पुनः।
प्रसवेऽपत्यदोषैश्च दुःखं दुःखादिकर्मभिः ॥१०१
दन्ताक्षिरोगैः पुत्रस्य हा कष्टं किं करोम्यहम्।
गावो नष्टाः कृषिर्भग्ना वृषाः क्वापि पलायिताः ॥१०२
अमी प्राघूर्णकाः प्राप्ता भक्तच्छेदे च मे गृहे।
बालापत्या च मे भार्या कः करिष्यति रंधनम् ॥१०३
प्रदानकाले कन्यायाः कीदृशश्च वरो भवेत्।
इति चिन्ताभिभूतानां कुतः सौख्यं कुटुंबिनाम् ॥१०४

जब सम्पत्ति की खूब वृद्धि होती है तो उस दशा में सम्पत्तियाँ प्राणी को विमोहित कर देती हैं। विपत्ति की दशा में ये ताप दिया

करती हैं और अर्जन कर लेने के समय मे खेद करती हैं। य अर्थ प्राणी को कब सुख दह हुए हैं ? अर्थात् कभी भी नही होते हैं ॥६८॥ अर्थपति जो होना है वह उद्विग्न रहता है और सदा दुखी ही बना रहता है जो सर्वार्थ से नि स्पृह होता है वह सुखी होता है। हेमन्त मे शीत से और ग्रीष्म म ताप से दारुण दु ख होता है तथा वर्षा मे वात और वर्षा से दु ख है इस तरह किसी भी काल मे सुख नही है। विवाह के विस्तर मे दु ख तथा उसके गर्भ के उद्वहन मे और प्रसव म दु ख होता है। सतान के द्वारा दु खादि कर्मो से दु ख होना है। गार्हस्थ्य मे दांत और नेत्रो के रोगो से पुत्र को कष्ट है हाय क्या करू ? गायें नष्ट होगई—कृपि मारी गई है, नृप कही चले गये हैं—ये मेहमान आगये हैं मेरे गृह मे बच्चो वाली स्त्री है कौन इनके लिये रन्धन करेगा। ऐसी अनेक चिन्ताओ का दु ख होता है। कन्या के प्रदान काल मे वर कैसा होना चाहिए—इस प्रकार की चिन्ताओ से अभिभूत कुटुम्बियो को सुख कभी नही होता है ॥६६ १०४॥

कुटु बचिंताकुलितस्य पु स श्रुत च शील च गुणाश्च सर्वे ।
अपक्वकु भे निहिता इवाप प्रयातिदेहेनसम विनाशम् ॥१०५
राज्येपि च महद्दु ख सधिविग्रहचिंतया ।
पुत्रादपि भय यत्र तत्र सौख्य हि कीदृशम् ॥१०६
सजातीयाद्भय प्राय सर्वेपामव देहिनाम् ।
एकद्रव्याभिलाषित्वाच्छुनामिव परस्परम् ॥१०७
नाप्रधृष्यबल कश्चिन्नृप ख्यातोस्ति भूतले ।
निखिल यश्तिरस्कृत्य सुख तिष्ठति निर्भय ॥१०८
आ जन्मन प्रभृति दु खमय शरीर
कर्मात्मक तव मया कथित नरेन्द्र ।
दानोपवासा यमैश्च कृतैस्तदव
सर्वोपभोगसुखभाग्भवतीह पु साम् ॥१०६

कुटुम्ब की चिन्ता म आकुलित पुरुष के श्रुत शील और समस्त गुण कच्चे घड़े म रखा हुआ पानी की भांति देह के साथ ही विनाश को

इस अध्याय म अधर्म पाप भेदा का वर्णन किया जाता है । श्रीकृष्ण ने कहा—पुरुषो का अध कर्म अर्थात् नीच कम ही अध से भी अध-पतन होता है । नरको के समुद्र मे जो महान् घोर होते हैं यातना पाना ही पाप कहा जाता है ॥१॥ अधर्म के भेद चित्त वृत्ति क प्रति-प्रभेद से जानने के योग्य होते हैं । स्थूल सूक्ष्म और सुसूक्ष्म अनेक प्रकार के करोडो ही भेद होते हैं ॥२॥ उनम जो पापो के समूह स्थूल होते हैं वे नरक प्राप्त करन के हेतु हुआ करते हैं । उन्हें अब सक्षेप से कहा जाता है । वे मन वाणी और शरीर के साधन स्वरूप होते हैं ॥३॥ पराई स्त्रियो म सकल्प करना—चित से अनिष्ट का चिन्तन करना—न करने योग्य कार्य मे अभिनिवेश यह चार प्रकार का मानस कर्म होता है ॥४॥ अनिबद्ध अर्थात् सम्बन्ध रहित प्रलाप करना—असत्य बोलना—अप्रिय वचन और दूसरो के अपवाद का पैशुन्य अर्थात् दूसरो की बुराई करना यह चार तरह का वाचिक कर्म होता है ॥५॥ जो भक्षण करन के अयोग्य वस्तु है उनका भक्षण करना—हिंसा करना—मिथ्या काम का सेवन करना और दूसरो की धन सम्पत्ति का ले लेना यह चार प्रकार का कायिक कर्म होता है ॥६॥

ये द्विषन्ति महादेव ससारार्णवतारणम् ।
समस्तपापकोपेतास्ते यान्ति नरकाग्निषु ॥७
ब्रह्मघ्नश्च सुराहश्च स्तेयी च गुरुतल्पग ।
महापातकिनश्चैते तत्ससर्गी च पचम ॥८
क्रोधाद्द्वेषाद्भयाल्लोभाद्ब्राह्मण विशसति ये ।
प्राणान्तिको महादोषो ब्रह्मघ्नास्ते प्रकीर्तिता ॥९
ब्राह्मण च समाहूय याचमानमकिञ्चनम् ।
पश्चान्नास्तीति त ब्रूयात्स चैव ब्रह्महा स्मृत ॥१०
यस्तु विद्याभिमानेन नित्य जयति वै द्विजान् ।
समासीन सभामध्ये ब्रह्महा सोऽपि कीर्तित ॥११
मिथ्यागुणै स्वमात्मान नयत्युत्कर्षण बलात् ।
गुरूणा च विरुद्धो य स चैव ब्रह्महा स्मृत ॥१२

क्षुत्तृष्णसतप्तदेहाना द्विजाना भोक्तु मिच्छताम् ।
समाचरति यो विघ्न तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ।।१३

जो पुरुष इस ससार रूपी सागर से तारण करने वाले महादेव हैं उनसे द्वेष किया करते हैं वे सब प्रकार के पातको से युक्त नरको की अग्नियो मे जाकर गिरा करते है ।।७।। ब्राह्मण का हनन करने वाला—सुरा का पान करने वाला—चोरी करने वाला और गुरु पत्नी से प्रसग करने वाला ये चार महापातकी होते है और इनका ससर्ग करने वाला पाँचवाँ भी महापातकी माना जाता है ।।८।। क्रोध से—द्वेष से और लोभ से जो ब्राह्मण का विशसन (ताडन) किया करते हैं प्राणान्तिक महान् दोष होता है वे सब ब्रह्मघ्न कहे गये है ।।९।। ब्राह्मण को बुला कर जो अकिञ्चन और याचना करने वाला हो पीछे उसस यह कह देते हैं कि देने को कुछ भी नही है वह ऐसा कहने वाला भी ब्राह्मण कहा गया है ।।१०।। जो कोई अपने विद्या के अभिमान से नित्य ही ब्राह्मणो को पराजित किया करता है और सभा के मध्य मे बैठकर ऐसा करता है वह भी ब्रह्मा अर्थात् ब्राह्मण का हनन करने वाला ही कहा गया है ।।११।। मिथ्या गुणो के द्वारा अपने आप को जो बलपूर्वक उत्कृष्टता दिया करता है और जो गुरुजनो के विरुद्ध रहता है वह पुरुष भी ब्रह्मा बताया गया है ।।१२।। भूख प्यास से तप्त देहो वाले—ब्राह्मणा को खिलान मे जो इच्छा करने वाले हो उस उनके काय म जो विघ्न डाल देता है उसे भी ब्रह्मघातक कहत हैं ।।१३।।

पिशुन सर्वलोकाना छिद्रान्वेषणतत्पर ।
उद्वेगजनन क्रूर स चैव ब्रह्महा स्मृत ।।१४
गवा तृष्णाभिभूताना जलार्थमुपसर्पताम् ।
समाचरति यो विघ्न स चैव ब्रह्महा स्मृत ।।१५
परदोषमभिज्ञाय नृपकर्णे करोति य ।
पापीयान्पिशुन क्षुद्र स चैव ब्रह्महा स्मृत ।।१६

देवद्विजगवां भूमिं पूर्वभुक्तां हरेत्तु यः ।
प्रनष्टामपि कालेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥१७
द्विजवित्तापहरणे न्यायतः समुपार्जिते ।
ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयं पातकं नात्र संशयः ॥१८
अग्निहोत्रपरित्यागो यस्तु याज्ञिककर्मणाम् ।
मातापितृपरित्यागः कूटसाक्ष्यं सुहृद्वधः ॥१९
गवां मार्गे वने चाग्निं पुरे ग्रामे च दीपयेत् ।
इति पापानि घोराणि सुरापानसमानि तु ॥२०

समस्त लोगों की बुराई करने वाला—लोगों के छिद्रों (छिपी हुई बुराइयों) की खोज-बीन करने के कार्य में परायण रहने वाला—लोगों को उद्वेग उत्पन्न कर देने वाला—क्रूर (निर्दयी) भी पुरुष ब्रह्महा कहा गया है ॥१४॥ प्यास से बेचैन जल के लिये जाने वाली गौओं के जल-पान करने के कार्य में जो विघ्न उत्पन्न कर देता है अर्थात् किसी प्रकार की रुकावट डालता है वह व्यक्ति भी ब्रह्महा बताया गया है ॥१५॥ दूसरे के दोष को भली-भाँति न जान कर ही जो राजा के कानों में दोष बता कर डाल देता है वह बड़ा पापी पिशुन और क्षुद्र है तथा वह भी ब्रह्महा कहा गया है ॥१६॥ ब्राह्मण-देवता और गौ इनकी पूर्व भोग में लाई हुई भूमि का जो हरण कर लेता है चाहे वह समय से प्रनष्ट भी हो गई हो उसको भी ब्राह्मण का घातक कहते हैं ॥१७॥ जो न्याय से भली-भाँति उपार्जित किया गया है ऐसे ब्राह्मण के वित्त का अपहरण करने पर ब्रह्महत्या के तुल्य ही पातक होता है यह जान लेना चाहिए । इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥१८॥ याज्ञिक कर्म करने वालों को अग्नि होत्र का परित्याग कर देना—माता पिता को त्याग देना—झूठी गवाही देना—मित्र का वध कर डालना—गौओं के मार्ग में और बन में अग्नि लगा देना तथा नगर और ग्राम को जला देना इन कर्मों को जो कोई भी करता है ये सब उसके महा घोर पाप होते हैं और सुरा (मदिरा) के पान करने के समान ही माने जाते हैं ॥१९-२०॥

वृषाणा वृषणान्येव पापिष्ठा गालयंति ये ।
वाहयंति च गा वध्या ते महानारका स्मृता ॥२१
आश्रम समनुप्राप्त क्षुत्तृष्णाश्रमपीडितम् ।
येऽतिथि नाभिमन्यते ते वै निरयगामिन ॥२२
अनाथ विकल दीन बाल वृद्ध कृशातुरम् ।
नानुकपति ये मूढास्ते यान्ति निरयार्णवम् ॥२३
अजाविको माहिषक सामुद्रो वृषलीपति ।
शूद्रविट्क्षत्रवृत्तिश्च नारकी स्याद्द्विजाधम ॥२४
शिल्पिन कारुका वैद्या हेमकारा नटा द्विजा ।
कृतकौक्षेय सयुक्तास्तथान्ये नारका स्मृता ॥२५
यश्चोदितमतिक्रम्य स्वेच्छया वा हरेत्करम् ।
नरके तु स पच्येत यश्च दडरुचिर्भवेत् ॥२६
उत्कोचकैरधिकृतैस्तस्करैश्च प्रपीड्यते ।
यस्य राज्ञ प्रजा रुष्टा पच्यते नरकेषु स ॥२७
ये द्विजा प्रतिगृह्णन्ति नृपस्यान्यायवर्तिन ।
प्रयाति तेपि घोराणि नरकाणि न सशय ॥२८

बैलो के वृषणो को जो महापापी गला दिया करते हैं और वध्य (बधिया) गौ को जो वाहित किया करते हैं वे महानारकी होते हैं ऐसा कहा गया है ॥२१॥ जो अपने आश्रम म प्राप्त होगया और भूख-प्यास और श्रम से पीडित है ऐसे अतिथि का जो पालन नही करते हैं अर्थात् सत्कार नही करते हैं वे मनुष्य नरक मे गामी हुआ करते हैं ॥२२॥ जिसका कोई नाथ अर्थात् देख-रेख करने वाला स्वामी न हो ऐसे अनाथ को-विकल अर्थात् किसी भी कारण से बेचैन को--दीन अर्थात् जिसके पास कुछ भी न हो--बालक--वृद्ध--कृश को अर्थात् अत्यन्त दुर्बल एवं क्षीण और आतुर अर्थात् रोग से पीडित को पाकर जो उन पर दया नहीं करते हैं वे महामूढ नरक के समुद्र म जाया करते हैं॥२३॥भेड़-बकरी रखने वाला तथा भैंसो का पालन वाला समुद्र की यात्रा करने वाला, वृषली का पति तथा शूद्र, वैश्य व क्षत्रियो

की वृत्ति को करने वाला अधम द्विज नारकी होता है ।।२४।। शिल्पी कारुक-वैद्य-हेमकार और नट जो द्विज होते हैं तथा वृत कोर्क्षय से सयुक्त होते हैं उस प्रकार से अन्य नारकीय कहे गये हैं।।२५।।जो किसी भी उदित पर अतिक्रमण करके अपनी इच्छा से कर का हरण किया करता है और जो दण्ड देने की रुचि वाला होता है वह नरक मे पच्य-मान होता है । अधिकृत उत्कोचो के द्वारा अर्थात् अपना अधिकार कह कर रिश्वत लेने से तथा तस्करो के द्वारा जिस राजा की पीडित (सताई हुई) की जाती है और इन पीडतो से अधिक वह प्रजा रुष्ट रहा करती है वह राजा नरक मे जाकर वेदना को सहन किया करता है ।।२७।। अन्याय से शासन का व्यवहार करने वाले राजा का जो द्विज दान ग्रहण किया करते हैं, वे ब्राह्मण भी घोर नरको मे जाकर पतन किया करते हैं—इस मे कुछ भी सशय नही है ।।२८।।

पारदारिकचौराणा यत्पाप पार्थिवस्य तत् ।
भवेदरक्षतस्तस्माद्घोरस्तस्य प्रतिग्रह ।।२९
अचौर चौरवत्पश्येच्चोर वाऽचौररूपवत् ।
अविचार्य नृपस्तस्माद्घातयन्नरक व्रजेत् ।।३०
घृततैलान्नपानानि मधुमाससुरासवम् ।
गुडेक्षुक्षारशाकानि दधिमूलफलानि च ।।३१
तृण काष्ठ पुष्पपत्रमौषध कास्यभाजनम् ।
उपानच्छत्रशकटमासन शयनाम्बरम् ।।३२
ताम्र सीस त्रपु काच शखाद्य च जलोद्भवम् ।
वार्क्षं वा वैणवाद्य वा गृहेपूपस्कराणि च ।।३३
ऊर्णाकार्पासकौशेयभगपट्टोद्भवानि च ।
स्थूलसूक्ष्माणि वस्त्राणि ये च लोभाद्धरति च ।।३४
एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च ।
नरकाणि ध्रुव याति नरा वा नात्र सशय ।।३५
यद्वा तद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम् ।
अपहृत्य नरो याति नरक नात्र सशय ।।३६

एवमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्रातेः समनतरम् ।
शरीर यातनार्थाय पूर्वाकारमवाप्नुयात् ।।३७

पराई स्त्री की चोरी करने वालो को जो पाप होता है वही पाप उस राजा को भी होता है जो रक्षा करने वाले नही होते हैं इसलिये उसका जो प्रतिग्रह होता है वह भी महान् चोर हुआ करता है ।।२६।। जो राजा बिना चोरी करने वाले को चोर की भांति समझता है और जो वास्तव मे चोर होता है उसे चोर की भाँति नही देखता है और इस का ठीक विचार न करके ही घात किया करता है वह राजा नरक का गामी होता है ।।३०।। घृत–तैल–अन्नपान–मधु–मास–सुरासव–गुड–ईख–क्षार–शाक–दधि–मूल–फल–तृण– काष्ठ–पुष्प– पत्र औषध–कांसे का पात्र–उपानत्–छत्र–शकट–आसन–शयन के वस्त्र अर्थात् विस्तर–ताम्र–सीसा–त्रपु–काच–शङ्ख आदि जल से उत्पन्न–वार्क्ष–वैणव आदि–गृह के उपस्कर–ऊन–कपास के बने हुए वस्त्र–कौशेय (रेशमी वस्त्र)–भग पट्ट से उद्भव होने वाले स्थूल और सूक्ष्म वस्त्र–इनको जो लोभ से हरण किया करते हैं ।।३१-३४।। और इसी प्रकार के अन्य विविध प्रकार के द्रव्यो को हरण करते हैं वे मनुष्य निश्चय ही नरको मे जाया करते हैं, इसमे कुछ भी सशय नही है ।।३५।। जो कुछ भी हो वह एक सरसो के बराबर भी पराये द्रव्य को अपहरण करने से मनुष्य नरको को प्राप्त होता है–इसमे बिल्कुल भी सशय नही है ।।३६।। इस प्रकार के अन्य पापो से उत्क्रान्ति के अनन्तर मनुष्य यातना भोगने के लिये ही पहिले आकार वाले शरीर को प्राप्त किया करता है ।।३७।।

यमलोक व्रजेत्तेन शरीरेण यमाज्ञया ।
यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमान सुदु खित. ।।३८
तिर्यङ्मानुषदेहानामधर्मनिरतात्मनाम् ।
धर्मराज स्मृतः शास्ता सुघोरैर्विविधैर्वधैः ।।३६
विनयाचारयुक्ताना प्रमादात्स्खलितात्मनाम् ।
प्रायश्चित्तैर्गुरु शास्ता न च तैर्दृश्यते यमः ।।४०

पारदारिकचौराणामन्यायव्यवहारिणाम् ।
नृपतिः शासकस्तेषा प्रच्छन्नाना च धर्मराट् ॥४१
तस्मात्कृतस्य पापस्य प्रायश्चित्त समाचरेत् ।
नाभुक्तस्यान्यथा नाशः कल्पकोटिशतैरपि ॥४२
यः करोति स्वय कर्म कारयेद्वापि मोदयेत् ।
कायेन मनसा वाचा तस्य चाधोगतिः फलम् ॥४३
इति सक्षेपतः प्रोक्ताः पापभेदा. ससाधनाः ।
कथ्यते गतयश्चित्रा नराणा पापकर्मणाम् ॥४४
वाक्कायचित्तजनितैर्बहुभेदभिन्नैः
कृत्यै. शुभाशुभफलोदयहेतुभूतैः ।
भास्वत्सुरेशभुवन नरकाननेकान्
सप्राप्नुवन्ति मनुजा मनुजेंद्रचन्द्र ॥४५

यमराज की आज्ञा से उस शरीर से वह पापी यमलोक को जाता है और महान् घोर यमराज के दूतो के द्वारा ले जाया जाने वाला अत्यन्त दु खित होता हुआ जाया करता है ॥३८॥ अधर्म मे निरत रहने वाले तिर्यक् और मानुप देहो का सुघोर अनेक प्रकार के वधो के द्वारा धर्मराजा शासन करने वाला कहा गया है ॥३९॥ जो विनय और आचार से युक्त हैं और प्रमाद वश स्खलित आत्मा वाले हो जाते हैं अर्थात् किसी भूल से आचार से स्खलन जिनका हो गया है उन का शास्ता गुरु प्रायश्चितो के द्वारा पापो की निवृत्ति करने वाला शासक होता है और फिर उनको यमराज का दर्शन नही करना होता है ॥४०॥ पर दारा की चोरी करने वालो का तथा अन्याय से पूर्ण व्यवहार करने वालो का शासक राजा हुआ करता है। यदि ऐसे कर्म करने वाले लुक छिप कर किया करते हैं और नृपति की दृष्टि मे नही आते है तो फिर उनका शासन एव दण्ड विधान धर्मराज ही किया करता है ॥४१॥ अतएव जो भी कोई पाप किये गये हैं उनका प्रायश्चित्त अवश्य ही करना चाहिए। नही तो पापों का फल बिना भोगे हुए सैकडो करोड कल्पो मे भी नष्ट नही होता है और वह तो

अवश्य भोगना ही पडता है ॥४२॥ जो स्वय पाप का कर्म करता है या किसी से कराता है अथवा उसका समथन करता है चाहे शरीर स या मन से अथवा वचन से किसी भी प्रकार से ऐसा करे उसका फल अवश्य ही अधोगति होता है ॥४३॥ इस तरह से साधन सहित पापो के भेद स क्षेप मे बता दिये गये हैं। पाप कम करने वाले मनुष्यो की विचित्र गतिया कही जाती हैं ॥४४॥ हे मनुजेन्द्र चन्द्र ! वाणी–शरीर और चित्त से उत्पन्न होने वाले बहुत से भदो से विभिन्न शुभ और अशुभ फल के उदय के हेतु स्वरूप कर्मों से मनुष्य देदीप्यमान सुरराज के भवन (स्वग) को तथा अनेक प्रकार के नरका को प्राप्त हुआ करत हैं ॥४५॥

॥ शुभाशुभ गति और यमयातना ॥

अथैभि पातकैर्याति यमलोक चतुर्विधै ।
सत्रासजनन घोर विवशा सर्वदेहिन ॥१
गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमै ।
पु स्त्री नपु सकैर्वृ द्धै र्यातव्य सर्वजतुभि ॥२
शुभाशुभफल तत्त देहिना प्रविचायते ।
चित्रगुप्तादिभि सर्म्यमध्यस्थै सर्वदर्शिभि ॥३
न तेऽत्र प्राणिन सति ये न याति यमक्षयम् ।
अवश्य हि कृत भोक्तव्य तद्विधारितम् ॥४
तत्र ये शुभकर्माण सौम्यचित्ता दयान्विता ।
ते नरा याति सौम्येन पथा यमनिकेतनम् ॥५
म प्रदद्याद्द्विजे द्राणामुपानत्काष्ठपादुकाम् ।
स वराश्वेन महता सुख याति यमालयम् ॥६
अन्नदान विशेपेण धम राजपुरे नरा ।
यस्माद्याति सुखेनैव तस्माद्धर्मं समाचरेत् ॥७

इस अध्याय मे शुभ और अशुभ गति के फलो की प्राप्ति के वर्णन म यम की यातना के प्रकारो का वर्णन किया जाता है। श्रीकृष्ण ने कहा—मृत्यु की प्राप्ति क पश्चात् विवश होकर समस्त देह धारी लोग इन चार प्रकार के पातको से सत्रास के उत्पन्न करने वाले घोर यमलोक का जाया करते हैं ।।१।। गर्भ मे स्थित—जायमान अर्थात् उत्पन्न होने वाले—वालक—तरुण—प्रौढ—वृद्ध पुरुष, स्त्री तथा नपु सक समस्त जन्तुओ के द्वारा जान लेना चाहिए ।।२।। वहा पर सब कुछ देखने और जानने वाले मध्यस्थ सभ्य चित्रगुप्त आदि के द्वारा देह धारियो के अशुभ कर्मों के फल का विचार किया जाता है ।।३।। यहाँ पर ऐसे कोई भी प्राणी नही हैं जो यमराज के घर मे नही जाते हैं अर्थात् एक बार तो वहा सभी प्राणियो को जाना ही पडता है । उनका जो कुछ भी किया हुआ कम है वह अवश्य ही उन्हे भोगना ही पडता है ।।४।। वहा पर जो शुभ कम करने वाले सौम्य चित्त से युक्त और दया से समन्वित प्राणी होते हैं वे नर सौम्य मार्ग के द्वारा ही रामराज के निकेतन मे जाया करते हैं ।।५।। जो पुरुष श्रेष्ठ ब्राह्मणो को उपानत या काष्ठ पादुकाओ का दान किया करते हैं वे बहुत अच्छे अश्व के द्वारा यमालय मे सुख पूर्वक जाते हैं ।।६।। विशेषता से अ न का दान मनुष्यो के लिए धर्मराज के पुर मे महत्व रखता है जिससे कि वे सुख के साथ वहा जाया करते हैं । इससे धम का आचरण अवश्य करना चाहिए ।।७।।

ये पुन क्रूरकर्माण पापा दानविवर्जिता ।
ते घोरेण पथा याति दक्षिणेन यमालयम् ।।८

षडशीतिसहस्राणि योजनानामतीत्य यत् ।
वैवस्वतपुर ज्ञ य नानारूपव्यवस्थितम् ।।९

समीपस्थमिवाभाति नराणा शुभकर्मणाम् ।
पापानामतिदूरस्थ पथा रौद्रेण गच्छताम् ।।१०
तीव्रकटकयुक्तेन शर्करानिचितेन च ।
क्षुरधारानिभैस्तीव्र पाषाणैर्निचितेन च ।।११

क्वचिन्महाजलौकाभि क्वचिच्चाजगरैः पुन ।
मक्षिकाभिश्च रौद्राभि क्वचित्सर्पैर्विषोल्वणै ॥१७
मत्तमातगयूथैश्च बलोन्मत्तै प्रमाथिभि ।
पथानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णशृगैर्महावृषै ॥१८
महाविषाणैर्महिषैरुष्ट्रैर्मत्तैश्च खादकै ।
डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसै ॥१९
व्याधिभिश्च महाघोरैः पीड्यमाना व्रजति च ।
महाधूलीविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना ॥२०
महापाषाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रया ।
क्वचिद्विद्युत्प्रपातेन दीर्यमाणा व्रजति च ॥२१

कही पर इस मार्ग मे फँसे हुए विविध प्रकार के तापो से व्याप्त होता है ऐसा बाँसो का वन है। किसी जगह बालू से परिपूर्ण होता है। बडे ही कष्ट से जिस मे प्रवेश किया जाता है ॥१५॥ कही पर यह मार्ग गर्म पानी से व्याप्त है तथा कही पर कारीष की अग्नि भरी हुई है। कही २ पर सिंह और वृको से समाकीर्ण मार्ग होता है तथा दंश और दारुण कीटो से परिपूर्ण रहता है ॥१६॥ कही पर बडे २ जलौका और कही महान् अजगरो से घिरा हुआ यह मार्ग होता है। कही पर भयानक मक्खियो से भरा हुआ रहता है तो किसी जगह अत्यन्त विषधर सर्पों से परिपूर्ण होता है। किसी जगह बल से अत्यन्त उन्मत्त और प्रमथनशील मत्त हाथियो से घिरा हुआ यह मार्ग मिला करता है। किसी जगह ऐसे विशाल बैल भरे हुए हैं जो मार्ग को अपने तीक्ष्ण सीगो से खोद रहे हैं ॥१७ १८॥ बडे २ विषाणों वाले भैंसे—मदोन्मत्त ऊँट जो खाजाया करते हैं वह मार्ग परिपूर्ण कही पर रहा करता है। भयानक डाकिनी और विकराल राक्षस तथा महाघोर व्याधियाँ इन सबसे पीडित होते हुए पापी लोग यमपुर को जाया करते हैं। बडी भारी धूल मे मिली हुई महान् प्रचण्ड वायु और महान् पाषाणो की वर्षा से हन्यमान होते हुए बिना किसी आश्रय वाले पापी कही पर बिजली का प्रपात से जो बहुत ही बडा होता है वहा जाते हैं ॥१९ २१॥

महता बाणवर्षेण विध्यमानाश्च सर्वशः ।
पतद्भिर्वज्रसंघातैरुल्कापातैश्च दारुणैः ॥२२
प्रतप्तांगारवर्षेण दह्यमाना व्रजंति च ।
तप्तेन पांशुवर्षेण पूर्यमाणा रुदंति च ॥२३
महामेघरवैर्घोरैर्विश्रास्यते मुहुर्मुहु ।
निशितायुधवर्षेण चूर्यमाणा नरंत्र ता. ।
महाक्षाराम्बुधाराभिः सिच्यमानाद्रवंति च ॥२४
महाशीतेन मरुता तीक्ष्णेन परुषेण च ।
समततात्पीडयमानास्ते शुष्यते संकुचंति च ॥२५
इत्थ मार्गेण रौद्रेण पाथेयविरहितेन च ।
निरालंबेन दुर्गेण निर्जनेन समततः ॥२६
अविश्रामेण महता निर्गतापाश्रयेण च ।
तमोरूपेण कष्टेन सर्वदु.खाश्रयेण च ॥२७
नीयते देहिन. सर्वे ये मूढाः पापकर्मिणः ।
यमदूतैर्महाघोरैस्तदाज्ञाकारिभिर्बलात् ॥२८

कही पर मार्ग मे महान् बाणों की वर्षा होती है उससे भिधे हुए होकर और सब ओर से गिरते हुए वज्र के सघातो तथा दारुण उल्कापातो से एव प्रतप्त अ गारो की वर्षा से जलते हुए यमपुर को पापात्मा प्राणी जाया करते हैं। तपी हुई धूल की वर्षा पूरित होते हुए मार्ग मे पापी नर रुदन करते है ॥२२-२३॥ बड़े भारी विशाल मेघो की कड़कदार ध्वनि से बार-बार डराये जाया करते है। तीक्ष्ण आयुधो की वर्षा से चूर्यमाण और नरो से वृत वहा जाते हैं। महाक्षार जल की धाराओ से भीगे हुए द्रवित होते हैं ॥२४-२५॥ बहुत ठण्डी हवा से जो तीखी और कठोर होती है सभी ओर से पीड्यमान होते हुए सूख जाते हैं और सिकुड जाते हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार से यमपुर का पापियो के जाने वाला महान् रौद्र होता है जिसमे कोई भी अन्य राहगीर नही रहता है। यह अवलम्ब मे हीन—दुर्ग और सभी ओर से जल रहित होता है ॥२७॥ विश्राम से शून्य एव जन के आश्रय से

र्जित अन्धकारमय-कष्टप्रद और समस्त दुखो से परिपूर्ण यह मार्ग है स मार्ग से मूढ पाप कर्म करने वाले देह धारी सब ने जाये जाया करते हैं। इनको महान् घोर रामराज की आज्ञा का पालन करने वाले यमदूतो के द्वारा बलात् (जबर्दस्ती से) ले जाये जाते हैं ॥२७-२८॥

एकाकिन पराधीना मित्रबन्धुविवर्जिता ।
शोचन स्वानि कर्माणि रुदतश्च मुहुर्मुहु ॥२६
प्रेतभूता विवस्त्राश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ।
कृशाङ्गा भीतभीताश्च दह्यमाना क्षुधाग्निना ॥३०
बद्धा शृ खलया केचिदुत्ताना पादयोर्नरा ।
आकृष्यते घृष्यमाणा यमदूतैर्बलोत्कटै ॥३१
पुनश्चाधोमुखाश्चान्ये घृष्यमाणा सुदु खिता ।
केशपाशनिबद्धाश्च कृष्यत रज्जुभिर्नरा ॥३२
ललाटे चाकुशैस्तीक्ष्णैर्भिन्ना कृष्यति देहिन ।
उत्ताना रटमानाश्च क्वचिदगारवर्त्मना ॥३३
पाश्चाद्बाहू सबद्धाश्च जठरे च प्रपीडिता ।
पूरिता शृ खलाभिश्च हस्तयोश्च प्रकीलिता ॥३४
ग्रीवायामर्द्धचन्द्रेण क्षिप्यमाणा इतस्तत ।
शिश्ने च वृषणे बद्धा नीयते चर्मरज्जुना ॥३५

पापात्मा प्राणी एकाकी (अकेले)-पराधीन और वहाँ मित्र तथा बन्धुओ से रहित रहन वाले बार बार रोते हुए अपने किए हुए कर्मों के विषय मे चिन्ता किया करते हैं कि हमने ऐसे बुरे कर्म क्यो किये थे जिनके कारण अब उनका यह महान् कष्ट भोगना पड रहा है ॥२६॥ प्रेत भूत वस्त्रो से हीन (नगे) और सूखे हुए कण्ठ-होठ और तालु वाले दुबले अ गो से युक्त-बहुत डरे हुए भूख की आग से दह्यमान होते हैं ॥३०॥ सकलो से बँधे हुए और कुछ मनुष्य पैरो से उत्तान (ऊँचे उठे हुए) बल मे उत्कट यमराज के दूतों के द्वारा जबदस्ती से घिसते हुए खीचे जाया करते हैं ॥३१॥ अन्य लोग फिर नीचे को मुख वाले तथा अन्य रज्जुओ से बँधे हुए केशपाश वाले बहुत ही दु खित

दशा मे घिसटते हुए खींचे जाते हैं ॥३२॥ बहुत ही पैने अकुश से ललाट जिन देह धारियो का भिन्न होरहा है और उत्तान एव रट लगाते हुए कृष्यमाण हो रहे हैं। कही पर अँगारो से पूर्ण मार्ग मे भुजा और कधो मे पीछे से बँधे हुए और उदर मे पीडा प्राप्त करने वाले जाया करते हैं। कहीं सकलो से पूर्णतया बँधे हुए और हाथो मे कीलें लगी हुई हैं ऐसे पापी लोग ले जाये जाते है। किसी जगह गरदन मे हाथ से पकड कर धक्के खाकर फेंके गये इधर-उधर चले जाते हैं। शिश्न और वृषण को चमडे की रस्सी से बाँध कर ले जाये जाया करते हैं ॥३३-३५॥

एव पथातिकष्टेन प्राप्ता यमपुर तदा।
प्रज्ञापितास्तदा दूतैर्निवेश्यते यमाग्रतः ॥३६
तत्र ये शुभकर्माणस्ताश्च समानयेद्यमः।
स्वागतासनदानेन पाद्यार्घेण प्रियेण च ॥३७
धन्या यूय महात्मान आत्मनो हितकारिण।
येनदिव्यसुखार्थाय भवद्भि. सुकृत कृतम् ॥३८
इद विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितम्।
स्वर्गं गच्छध्वमतुल सर्वकामसमन्वितम् ॥३९
ततो भुक्त्वा महाभोगानते पुण्यस्य सक्षयात्।
यत्किञ्चिदल्पमशुभ पुनस्तदिह भोक्ष्यथ ॥४०
ते चापि धर्मराजान नरा पुण्यानुभावतः।
पश्यति सौम्यवदन पितृभूतमिवात्मन. ॥४१
ये पुनः पापकर्माणस्ते पश्यति भयानकम्।
पापाविशुद्धनयना विपरीतात्मबुद्धय ॥४२

इस तरह अत्यन्त कष्टप्रद मार्ग के द्वारा वे पापात्मा मनुष्य यमराज के पुर मे जाकर उस समय प्राप्त होते हुए यमराज के आगे निवेशित किये जाते है ॥३६॥ वहा पर जो सौम्यमार्ग से लाये गये शुभ कर्म वाले प्राणी होते हैं वे तो यमराज के द्वारा सम्मानित होते है। उनका वहा स्वागत किया जाता है और अर्घ्यपाद्य आदि देकर उन्हें प्रेम पूर्वक

आसन दिया जाता है ।।३७।। उनसे कहा जाता है—आप महान् आत्मा वाले धन्य हैं जिन्होंने अपनी आत्मा का हित किया है और दिव्य सुख के लिए आपने सुकृत किया है। आपके लिए यह विमान है जोकि दिव्य स्त्री आदि भोगों से भूषित है। इस पर सवार होकर आप अतुल और समस्त प्रकार के कामनाओं से समन्वित स्वर्ग को जाइए ।।३८-३९।। वहाँ सुखभोग कर फिर भोगों के अन्त में थोड़ा कुछ अशुभ कर्म हो तो उसका फल इसके अन्त में भोग लेना जब कि आपके पुण्यों का क्षय हो जावे ।।४०।। वे लोग अपने किये हुए पुण्यों के अनुभाव से उस धर्मराज को बहुत ही सौम्य मुख वाला अपने पिता के समान देखा करते हैं। जो जहाँ पापपूर्ण कर्मों के करने वाले होते हैं वे उसी यमराज को पाप के कारण अविशुद्ध नेत्रों वाले तथा विपरीत आत्म बुद्धि वाले बहुत ही भयानक रूप वाला देखा करते हैं ।।४१-४२।।

दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटीकुटिलेक्षणम् ।
ऊर्ध्वकेशं महाश्मश्रुप्रस्फुरदधरोत्तरम् ।।४३
अष्टादशभुजं क्रुद्धं नीलाञ्जनचयोपमम् ।
सर्वायुधोद्यतकरं ब्रह्मदण्डेन तर्जकम् ।।४४
महामहिषमारूढं दीप्ताग्निसमलोचनम् ।
रक्तमाल्याम्बरधरं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ।।४५
प्रलयाम्बुदनिर्घोषं पिबतमिव सागरम् ।
ग्रसन्तमिव लोकानामुद्गिरन्तमिवानलम् ।।४६
मृत्युश्च तत्समीपस्थः कालानलसमप्रभः ।
कालश्चाञ्जनसंकाशः कृतान्तश्च भयानकः ।।४७
मारी चोग्रा महामारी कालरात्रिः सुदारुणा ।
विविधा व्याधयः कष्टा नानारूपभयावहाः ।।४८
शक्तिशूलाङ्कुशधराः पाशचक्रासिधारिणः ।
वज्रदण्डधराः रौद्राः क्षुरतूणीधनुर्धराः ।।४९

पापी प्राणियों को यह यमराज दाढ़ों से कराल मुख वाला—तिरछी भौंहों से युक्त नेत्रों वाला—ऊपर को उठे हुए केशों वाला तथा बड़ी ?

दाढ़ी मूंछों में फड़फड़ाते हुए होठों वाला दिखाई देता है ॥४३-४४॥ अठारह भुजाओं से युक्त क्रोधपूर्ण—नीले काजल के ढेर के समान वर्ण वाला—समस्त आयुधों से पूर्ण करों वाला और ब्रह्मदण्ड से तर्जना करते वाला—एक विशाल भैंसे पर सवार तथा जलती हुई अग्नि के समान नेत्रों वाला—लाल वस्त्र धारण करने वाला और महान् मेरु की शिखर के सदृश ऊंचा दिखाई देता है ॥४५॥ प्रलयकाल के मेघ के समान घोष करता हुआ मानों सागर का पान कर रहा हो और समस्त लोकों का ग्रास कर रहा हो तथा अग्नि का उद्वमन कर रहा हो ऐसा उसका स्वरूप भयानक दिखलाई दिया करता है ॥४६॥ कालानल के समान प्रभा वाला मृत्यु उसके समीप में स्थित रहता है जो काले अंजन के सदृश है और कृतांत अति भयानक होता है ॥४७॥ मारी—उग्रा—महामारी—काल रात्रि सुदारुणा अनेक भय देने वाले रूपों को धारण करने वाली व्याधियां एवं अनेक प्रकार के कष्ट वहां उपस्थित रहा करते हैं ॥४८॥ शक्ति-शूल और अंकुश को धारण करने वाले—पाश, चक्र और असि को रखने वाले—वज्र, दण्ड धारी और क्षुद्र तूणीर तथा धनुष लिये हुए महान् रौद्र यम के दूत वहां पर उपस्थित रहा करते हैं ॥४९॥

असंख्याता महावीर्याः क्रूराश्चाञ्जनसंप्रभाः ।
सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानकाः ॥५०
अनेन परिवारेण महाघोरेण संवृतम् ।
यमं पश्यंति पापिष्ठाश्चित्रगुप्तं च भीषणम् ।
निर्भर्त्सयंतं चात्यन्त यमं तदुपकारिणम् ॥५१
चित्रगुप्तश्च भगवान्धर्मवाक्यैः प्रबोधयन् ।
भोभो दुष्कृतकर्माणः परद्रव्यापहारिणः ।
गर्विता रूपवीर्येण परदारविमर्दकाः ॥५२
यत्स्वयं क्रियते कर्म तत्स्वयं भुज्यते पुनः ।
तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतं कृतम् ॥५
इदानीं किं प्रतप्यध्वं ...ाः स्वकर्मभि...
भुञ्जध्वं स्वानि कर्मा... ...योऽस्ति कश्च

एते च पृथिवीपाला सप्राप्ता मत्समीपत ।
स्वकीयै कर्मभिर्घोरैदुष्प्रज्ञा बलगर्विता ॥५५
भोभो नृपा दुराचारा प्रजाविध्वसकारिण ।
अल्पकालस्य राजस्य कृते किं दुष्कृत कृतम् ॥५६

ऐसे काजल के समान कानी प्रभा वाले—महापराक्रमी—क्रूर—सम्पूर्ण आयुध हाथो मे लिये भयानक असख्य दूत वहा पर उपस्थित रहा करते हैं ॥५०॥ ऐसे अनेक परिवार से जो कि महान् घोर है वह यमराज सवृत होता है। ऐसे यम को और महाभीषण चित्रगुप्त को महापापी लोग वहा देखा करते हैं जो कि सदुपकारी यम राजा अत्यन्त डॉट लगाता रहता है ॥५१॥ चित्रगुप्त धर्म युक्त वाक्यो से प्रबोध कराते हुए कहते हैं—हे बुरे पाप पूर्ण कर्म करने वालो ! हे पराये द्रव्य को हरण करने वालो ! आप लोग अपने रूप और वीर्य स बडे ही गर्वित होकर पराई स्त्रियो का विमदन करते थे ॥५२॥ अच्छा आप लोगो ने स्वय ही ऐसे पापकर्म किये हैं उनका अब बुरा फल भी स्वय आप ही भोग रहे है। तुमने अपनी आत्मा के उपघात के लिये ही ये दुष्कृत किये हैं। अब इतने प्रतप्त क्यो हो रहे हैं जब कि अपने किये हुए कर्मो के कारण पीड्यमान हो रहे हैं। अपने कर्मों का ही यह तुमको फल मिल रहा है इसे भोगना ही पडेगा। इसमे किसी अन्य का कोई भी दोष नही है॥५३ ५४॥ देखो, ये पृथिवी के पालक राजा मेरे समीप मे सम्प्राप्त हुए है। ये भी अपने किये हुए दुष्कर्मों से जो कि अत्यन्त घोर है उनसे युक्त महामूढ और बल के गर्व से युक्त हैं। इतना कह कर राजाओ को सम्बोधित करके कहा—हे दुराचार वाले राजाओ ! तुम प्रजा के विध्वस करने वाले हो। तुमने थोडे से समय तक भोगने के योग्य राज्य के लिये इतना बडा दुष्कृत क्यो किया है ? ॥५५ ५६॥

भोभोश्चण्ड महाचण्ड गृहीत्वा नृपतीनिमान् ।
विशोधयध्व पापेभ्य क्रमेण नरकाग्निपु ॥५७
तत शीघ्र समुत्थाय नृपा सगृह्य पादयो ।
भ्रामयित्वातिवेगेन विक्षिप्योर्ध्वं विगृह्य च ॥५८

दाढी मूंछो में फडफडाते हुए होठो वाला दिखाई देता है ॥४३-४४॥ अठारह भुजाओ से युक्त क्रोधपूर्ण—नीले काजल के ढेर के समान वर्ण वाला—समस्त आयुधो से पूर्ण करो वाला और ब्रह्मदण्ड से तर्जना करने वाला—एक विशाल भैंसे पर सवार तथा जलती हुई अग्नि के समान नेत्रो वाला—लाल वस्त्र धारण करने वाला और महान् मेरु की शिखर के तुल्य ऊंचा दिखाई देता है ॥४५॥ प्रलयकाल के मेघ के समान घोष करता हुआ मानों सागर का पान कर रहा हो और समस्त लोको का ग्रास कर रहा हो तथा अग्नि का उद्वमन कर रहा हो ऐसा उसका स्वरूप भयानक दिखलाई दिया करता है ॥४६॥ कालानल के समान प्रभा वाला मृत्यु उसके समीप मे स्थित रहता है जो काले अंजन के सदृश है और कृतांत अति भयानक होता है ॥४७॥ मारी—उग्रा—महामारी—काल रात्रि सुदारुणा अनेक भय देने वाले रूपो को धारण करने वाली व्याधियां एवं अनेक प्रकार के कष्ट वहां उपस्थित रहा करते हैं ॥४८॥ शक्ति-शूल और अंकुश को धारण करने वाले—पाश, चक्र और असि को रखने वाले—वज्र, दण्ड धारी और क्षुद्र तूणीर तथा धनुष लिये हुए महान् रौद्र यम के दूत वहां पर उपस्थित रहा करते हैं ॥४९॥

असंख्याता महावीर्याः क्रूराश्चाञ्जनसंप्रभाः ।
सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानकाः ॥५०
अनेन परिवारेण महाघोरेण संवृतम् ।
यमं पश्यति पापिष्ठश्चित्रगुप्तं च भीषणम् ।
निर्भर्त्सयंतं चात्यन्तं यमं सदुपकारिणम् ॥५१
चित्रगुप्तश्च भगवान्धर्मवाक्यैः प्रबोधयन् ।
भोभो दुष्कृतकर्माणः परद्रव्यापहारिणः ।
गर्विता रूपवीर्येण परदारविमर्दकाः ॥५२
यत्स्वयं क्रियते कर्म तत्स्वयं भुज्यते पुनः ।
तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतं कृतम् ॥५३
इदानीं किं प्रतप्यध्वं पीड्यमानाः स्वकर्मभिः ।
भुञ्जध्वं स्वानि कर्माणि नात्र दोषोऽस्ति कस्यचित् ॥५४

ा रकों में नर अपने कर्मों के अनुरूप विविध प्रकार की यातनाओं से पीड़ित किये जाते हैं जब तक कि उनके कर्मों का क्षय नहीं होता है वार बार भोगते रहा करते हैं ॥६४॥

भृश बुभुक्षया पीडा मूर्च्छयातिपिपासया ।
अत्युष्णेनातिशीतेन पापाना समरेण च ॥६५
एवमादिमहाघोरा यातना पापकारिण ।
एकैक नरक चैव शतशाय सहस्रश ॥६६
प्रत्यक यातनाश्चित्रा सर्वेषु नरकेषु च ।
कष्ट वर्षशतेनापि सोढु सर्वैश्च नारके ॥६७
एत च विविधैर्घोरैर्यात्यमानाश्च कर्मभि ।
म्रियन्ते नैव पापिष्ठा विविधा पापकारिण ॥६८
महाघोराभिघोराख्या कालाग्निसदृशोपमा ।
श्रुतैरेतैर्महारौद्रैर्म्रियन्त मृदुचेतस ॥६९
ततस्तेनात्र कथिता पापा गच्छति तान्स्वयम् ।
पुत्रमित्रकलत्रार्थं यदा पुण्य त्वयाकृतम् ॥७०
एकाकी दह्यते तेन न च पश्यति तानि स ।
आत्मना च कृत पाप भोक्तव्य ध्रुवमात्मना ॥७१

अत्यन्त भूख से पीडा और अत्यन्त पिपासा से मूर्च्छा तथा अति उष्ण और अति शीत पापी के समरण से इस प्रकार की महान् घोर यातनाएं पाप करने वाले एक एक नरक में भोगते हैं जो कि सैंकड़ों और सहस्रों की संख्या में हैं। प्रत्येक नरक मे विचित्र यातनाएं होती हैं। समस्त नरकों में सैकड़ों वर्ष तक कष्ट सहन करना पड़ता है। और सभी का नरक में इसी तरह से भोगना होता है ॥६५ ६७॥ ये नारकी प्राणी नरक में विविध प्रकार के कर्मों से जो कि अत्यन्त घोर होते हैं यातना पाये हुए पाप करने वाले पापी मरते नहीं हैं ॥६८॥ महाघोर और अभिघोर नाम वाले कालाग्नि के सदृश उपमा वाले हैं इन महान् रौद्रों के सुनने से ही मृदु चित्त वाले मर जाया करते हैं। इसीलिये यहां पर कहे हुए पाप स्वयं उनके पास जाते हैं। अब पुत्र मित्र और कलत्र

सर्वप्राणेन महता मुतप्ते तु शिलातले ।
अस्फालयति तरसा वज्रेणेव महाद्रुमम् ।।५९
तत स रक्तस्रोतोभि. स्रवते जर्जरीकृतः ।
स नि.सज्ञस्तदा देही निश्चेष्ट सम्प्रजायते ।।६०
तत. स वायुना स्पृष्ट. शनैरुज्जीवते पुन. ।
तत. पापविशुद्धयर्थं क्षिप्यते नरकार्णवे ।।६१
अष्टाविंशतिरेवाधः क्षितेर्नरककोटयः ।
सप्तमस्य तलस्याने घोरे तमसि सस्थिताः ।।६२
रौरवप्रभृनाना च नरकाणा शत स्मृतम् ।
चत्वारिंशत्समधिक महानरकमडनम् ।।६३
येषु पापा प्रपच्यते नरा. कर्मानुरूपतः ।
यातनाभिर्विचित्राभिरा कमंप्रक्षयाद्भृशम् ।।६४

पच्यमान हुआ करते हैं ।।७६।। इस कारण से इस जीवित में चपल होने पर पाप कभी भी नहीं करना चाहिए । पाप करने पर तो उनमें निश्चय ही नर स्वयं नरकों में जाया करते हैं ।।७७।।

य. करोति नरः पाप तस्यात्मा ध्रुवमप्रियः ।
पापस्येह फल दु ख तद्भोक्तव्यमिहात्मना ।।७८
कथ त पापनिरता नरा रात्रिपु शेरते ।
मरणान्तरिता येषा नारकी तीव्रयातना ।।७९
एवक्लिष्टविशुद्धाश्च सावशेषेण कर्मणा ।
ततः क्षिनि समासाद्य जायन्ते देहिन. पुनः ।
स्थावरा विविधाकारास्तृणगुल्मादिभेदत. ।।८०
तत्रानुभूय दुःखानि जायते कीटयोनिपु ।
निष्क्रान्ताः कीटयोनिभ्यो जायन्ते पक्षिणस्ततः ।।८१
सक्लिष्टाः पक्षि भावेन भवति मृगजादिपु ।
मार्गं दु.खमतिक्रम्य जायते पशुयोनिपु ।।८२
क्रमाद्गोयोनिमासाद्य जायन्ते मानवाः पुनः ।
एव योनिपु सर्वासु परिक्रम्य क्रमेण तु ।
कालातरवशाद्याति मानुष्यमतिदुर्लभम् ।।८३
व्युत्क्रमेणापि मानुष्य प्राप्यते पुण्यगोचरात् ।
विचित्रा गतय. प्रोक्ता. कर्मणा गुरुलाघवात् ।।८४

जो मनुष्य पाप कर्म करता है उसकी आत्मा निश्चय ही अप्रिय होती है क्योंकि यहा पर पाप का उस आत्मा के द्वारा फल भोगने के योग्य होता है ।।७८।। इस प्रकार से बडी क्लिष्टता से विशुद्ध हुए सावशेष कर्म के द्वारा फिर इसके बाद म देहधारी पुन भूमण्डल मे प्राप्त होकर उत्पन्न हुआ करते हैं । वे पापो मे निरत रहने वाले मनुष्य रात्रि मे कैसे सोते हैं क्योकि मृत्यु के पश्चात् ही उनके लिये नारकी तीव्र यातना उपस्थित रहा करती है ।।७९-८०।। भूमण्डल मे भी विविध आकार-प्रकार वाले स्थावर-तृण-गुल्म आदि के भेद वाले जीवन प्राप्त होते हैं । इन सब का अनुभव करके जहा कि बहुत तरह के दु ख रहा

मनुष्य का जीवन ही एक ऐसा है जो स्वर्ग और मोक्ष का प्रदान कराने वाला है। इस अति दुर्लभ मनु के जीवन को प्राप्त करके जो स्वग और मोक्ष दोनो का साधन नहीं किया करता है वह मृत होकर बहुत समय तक तप्यमान हुआ करता है अर्थात् पीडा प्राप्त किया करता है ॥८५॥ देव और असुर इन सभी को मानुष्य जीवन प्राप्त करना अत्यन्त दुलभ है। इस मनुष्य जीवन को प्राप्त करके क्या करनी चाहिए जिससे नरक मे जाना न होवे ॥८६॥ स्वर्ग और अपवर्ग के लाभ करने के लिये यदि समुद्यत नही होता है तो नरकगामी होना पडता है। स्वर्ग का मूल द्वार यह मनुष्य का जीवन होता है। इसलिये इसका बड़े यत्न से अनुपालन करना चाहिए ॥८७॥ धर्म के मूल से ही समस्त अर्थो के साधन करने वाला मनुष्य जीवन प्राप्त हुआ करता है। इसे प्राप्त करके भी यदि तरा लाभ करने मे कोई यत्न नहीं है तो मूल की रक्षा तो यत्न से करनी ही चाहिए ॥८८॥ मनुष्य के जीवन मे भी विप्र का होना तो और भी अधिक दुर्लभ होता है। उसे जो प्राप्त कर लेता है अर्थात् ब्राह्मण का शरीर प्राप्त हो जाता है और इसे प्राप्त करके भी अपनी आत्मा के कल्याण को जो नहीं किया करता है उससे अन्य कौन चेतना शून्य होगा ? ॥८९॥ समस्त देशों मे मध्य देश पर अर्थात् श्रेष्ठ कहा गया है। इसलिये स्वर्ग और मोक्ष तथा यश मनुष्यो के द्वारा प्राप्त किया जाता है ॥९०॥ इस परम पुण्य मय भारतवर्ष मे अध्रुव मनुष्य जीवन प्राप्त करके जिसने किसी ने भी अपनी आत्मा का श्रेय किया है उसने स्वय अपनी आत्मा की रक्षा करली है। जिसने अपनी आत्मा का श्रेयसाधन नही किया है उसने स्वय अपनी आत्मा को वचित एव प्रतारित कर दिया है ॥९१॥

भोगभूमि स्मृत स्वर्ग कर्मभूमिरिय मता।
इह यत्क्रियते कर्म स्वर्गे तदुपभुज्यत ॥९२
यावत्स्वास्थ्य शरीरस्य तावद्धर्मं समाचर।
अस्वस्थश्चातियत्नेन न किञ्चित्कर्तु मुत्सहेत् ॥९३

करते हैं.फिर वे प्राणी कीट पतंग आदि योनियों मे जन्म ग्रहण किया करते हैं। कीट योनियों से निकल कर बाद मे पक्षियों के स्वरूप मे जन्म लिया करते हैं। पक्षिभाव से संश्लिष्ट ये मृग आदि में उत्पन्न हुआ करते हैं। इस तरह दुःख का अतिक्रमण करके फिर पशुओं की योनियों में उत्पन्न होते है ॥८१-८२॥ इस तरह क्रम से गो योनि को प्राप्त करके फिर मानव का शरीर ग्रहण किया करते है। इस तरह समस्त योनियों में क्रम से पूरी परिक्रमा समाप्त करके कालान्तर के वश से यह अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जीवन की प्राप्ति हुआ करती है ॥८३॥ पुण्य गोचर होने से इस नियम के व्युत्क्रम से भी कभी-कभी मनुष्य जीवन प्राप्त किया जाता है। ये कर्मों का जाल बड़ा ही अद्‌भुत होता है और इनकी गलियाँ भी बहुत विचित्र हुआ करती है। कर्मों का गौरव और लाघव भी हुआ करता है ॥८४॥

मानुष्यं यः समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् ।
द्वयोर्न साधयत्येकं स मृतस्तप्यते चिरम् ॥८५
देवासुराणां सर्वेषां मानुष्यमतिदुर्ल्लभम् ।
तत्संप्राप्य कथाः कुर्यान्न गच्छेन्नरकं यथा ॥८६
स्वर्गापवर्गलाभाय यदि नास्ति समुद्यतः ।
स्वर्गस्य मूलं मानुष्यं तद्यत्नादनुपालयेत् ॥८७
धर्ममूलेन मानुष्यं लब्ध्वा सर्वार्थसाधकम् ।
यदि लाभे न यत्नस्ते मूलं रक्षस्व यत्नतः ॥८८
मनुष्यत्वे च विप्रत्वं यः सप्राप्यातिदुर्ल्लभम् ।
न करोत्यात्मनः श्रेयः कोन्यस्तस्मादचेतनः ॥८९
सर्वेषामेव देशानां मध्यदेशः परः स्मृतः ।
अतः स्वर्गश्च मोक्षश्च यशः संप्राप्यते नरैः ॥९०
एतस्मिन्भारते पुण्ये प्राप्य मानुष्यमध्रुवम् ।
यः कुर्यादात्मनः श्रेयस्तेनात्मा रक्षितःस्वयम् ।
यः कुर्यान्नात्मनः श्रेयस्तेनात्मा वंचितःस्वयम् ॥९१

होते चले जाते हैं अर्थात् टुकडे २ करके यह आयु समाप्त देखते-देखते होती रहा करती है। रातदिन के बहाने से यह आयु ही तो समाप्त हुआ करती है किन्तु किस लिये तुम्हें इसका ज्ञान नहीं होता है ? ॥६५॥ जबकि यह नहीं जाना जाता है कि यह मृत्यु किस समय में किसकी हो जायगी तो जब अचानक ही मृत्यु प्राप्त होगी तो उस समय में कौन तुम्हें धीरज प्राप्त करायेगा ? ॥६६॥ उस समय में तो यहाँ पर ही यह सभी कुछ ठाट-बाट छोडकर अकेले ही निश्चय रूप से जायगा। इसलिये उस समय के वास्ते पाथेय के लिये इस धन को क्यों नहीं दान किया करता है ? ॥६७॥ जो तू यहाँ दान धर्म करता है वही तुम्हें उस यमपुर के महामार्ग में पाथेय का काम देता है। जो दान धर्म के पाथेय को ग्रहण करने वाले व्यक्ति हैं वे सुख पूर्वक उस महामार्ग में जाया करते हैं। इसके अभाव में यह जन्तु पाथेय से रहित होता हुआ उस मार्ग में क्लेश प्राप्त किया करता है ॥६८॥

येषां द्विजेन्द्रवाहिनी पूर्णभाण्डा तु गच्छति ।
स्वर्गदेशस्य पुरतास्तेषां लाभः पदेपदे ॥६६

इति ज्ञात्वा नरः पुण्यं कुर्यात्पापं विवर्जयेत् ।
पुण्येन याति देवत्वमपुण्यान्नरकं व्रजेत् ॥१००

ये मनागपि देवेशं प्रपन्नाः शरणं शिवम् ।
तेपि घोरं न पश्यंति यमस्य वदनं नराः ॥१०१

किं तु पापैर्महाघोरैः किञ्चित्कालं शिवाज्ञया ।
भवतिप्रेत राजानस्ततो याति शिवालयम् ॥१०२

ये पुनः सर्वभावेन प्रतिपन्ना महेश्वरम् ।
न ते लिप्यंति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१०३

तस्माद्विवर्धयेद्भक्तिमीश्वरे सततं बुधः ।
तन्माहात्म्यविचारेण भवदोषविरागतः ॥१०४

आरोग्येण शरीरेण ह्यायुष्यं च प्रसाधयेत् ।
ह्रस्वं तस्य परिभ्रष्टध्रुवं नष्टमेव च ॥९४
आयुषः खंडखंडानि निपतंति तवागतः ।
अहोरात्रापदेशेन किमर्थं नावबुध्यसे ॥९५
यदा न ज्ञायते मृत्युः कदा कस्य भविष्यति ।
आकस्मिके हि मरणे धृतिं विंदेत कस्तदा ॥९६
परित्यज्य यदा सर्वमेकाकी यास्यसि ध्रुवम् ।
न ददासि तदः कस्मात्पाथेयार्थमिदं धनम् ॥९७
गृहीतदानपाथेया सुखं यांति महाध्वनि ।
अन्यथा क्लिश्यते जंतुः पाथेयरहितः पथि ॥९८
स्वर्ग में समस्त प्रकार के सुखों का साम्राज्य रहता है और पुण्य के

होते चले जाते हैं अर्थात् टुकड़े २ करके यह आयु समाप्त देखते-देखते होती रहा करती है। रातदिन के बहान से यह आयु ही तो समाप्त हुआ करती है किन्तु किस लिये तुझे इसका ज्ञान नहीं होता है ? ॥९५॥ जबकि यह नहीं जाना जाता है कि यह मृत्यु किस समय में किसकी हो जायगी तो जब अचानक ही मृत्यु प्राप्त होगी तो उस समय मे कौन तुझे धीरज प्राप्त करायेगा ? ॥९६॥ उस समय मे तो यहा पर ही यह सभी कुछ ठाट-बाट छोडकर अकेले ही निश्चय रूप से जायगा। इसलिये उस समय के वास्ते पाथेय के लिये इस धन को क्यो नहीं दान किया करता है ? ॥९७॥ जो तू यहा दान धर्म करता है वही तुझे उस यमपुर के महामार्ग मे पाथेय का काम देता है। जो दान धर्म के पाथेय को ग्रहण करने वाले व्यक्ति हैं वे सुख पूर्वक उस महामार्ग मे जाया करते हैं। इसके अभाव मे यह जन्तु पाथेय से रहित होता हुआ उस मार्ग मे क्लेश प्राप्त किया करता है ॥९८॥

येपा द्विजेन्द्रवाहिनी पूर्णभाडा तु गच्छति ।
स्वर्गदेशस्य पुरतास्तेपा लाभ. पदेपदे ॥९९

इति ज्ञात्वा नरः पुण्य कुर्यात्पाप विवर्जयेत् ।
पुण्येन याति देवत्वमपुण्यान्नरक व्रजेत् ॥१००

ये मनागपि देवेश प्रपन्नाः शरण शिवम् ।
तेपि घोर न पश्यन्ति यमस्य वदन नरा. ॥१०१

किं तु पापैर्महाघोरै. किञ्चित्काल शिवाज्ञया ।
भवतिप्रेत राजानस्ततो याति शिवालयम् ॥१०२

ये पुनः सर्वभावेन प्रतिपन्ना महेश्वरम् ।
न ते लिप्यति पापेन सद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१०३

तस्माद्विवर्धयेद्भक्तिमीश्वरे सतत बुधः ।
तन्माहात्म्यविचारेण भवदोषविरागतः ॥१०४

अध्रुवेण शरीरेण ह्यध्रुव य प्रसाधयेत् ।
ध्रुव तस्य परिभ्रष्टध्रुव नष्टमेव च ॥६४
आयुष खडखडानि निपतति तवाग्रत ।
अहोरात्रापदेशेन किमर्थं नावबुध्यसे ॥६५
यदा न ज्ञायते मृत्यु कदा कस्य भविष्यति ।
आकस्मिके हि मरणे धृति विदेत कस्तदा ॥६६
परित्यज्य यदा सर्वमेकाकी यास्यसि ध्रुवम् ।
न ददासि तदा कस्मात्पाथेयार्थमिद धनम् ॥६७
गृहीतदानपाथेया सुख याति महाध्वनि ।
अन्यथा क्लिश्यते जतु पाथेयरहित पथि ॥६८

स्वग मे समस्त प्रकार के सुखो का साम्राज्य रहता है और पुण्य के प्रभाव से उन सुखो का उपभोग करने के लिये मनुष्य वहा जाकर सीमित समय तक रहा करते हैं अत वह केवल भोगो की ही भूमि होता है। यह भूमण्डल अर्थात् मनुष्य लोक कर्मो के करने का क्षेत्र है इसलिये यह कम भूमि कहा गया है। यहा शुभ कम किये जाते हैं उनका फल ही स्वग मे प्राप्त होकर भोगा जाया करता है ॥६२॥ शरीर मे रोगादि की अनक बाधाऐ साथ रहा करती हैं अतएव जब तक इस शरीर की स्वस्थता है तभी तक धम का आचरण कर लेना चाहिए। जब यह शरीर रोग एव वाढ क्य आदि से अस्वस्थ हो जाता है तो फिर अत्यन्त यत्न करने पर भी कुछ भी करने का उत्साह एव शक्ति नही रहा करती है ॥११॥ यह शरीर तो अध्रुव अर्थात् अनित्य ही है इस अध्रुव शरीर से जो अध्रुव का ही अर्थात् अनित्य नाशवान् वस्तुओ का ही साधन किया करता है उसका ध्रुव मोक्ष आदि तो परिभ्रष्ट हो ही जाता है क्योकि उसने उनके प्राप्त करने का कोई प्रयत्न ही नही किया है और अध्रुव है जिसके प्राप्त करने मे सारा जीवन व्यय कर दिया वह तो अध्रुव अर्थात् अनित्य ही है अथात् नष्ट हो ही जाता है। तात्पय यह है कि इस तरह उसे जीवन मे कुछ भी सार सम्प्राप्त नही होता है और वह यो ही चला जाता है ॥६४॥ इस आयु के खण्ड खण्ड तेरे आगे निपतित

होते चले जाते हैं अर्थात् टुकड़े २ करके यह आयु समाप्त देखते-देखते होती रहा करती है। रातदिन के बहाने से यह आयु ही तो समाप्त हुआ करती है किन्तु किस लिये तुझे इसका ज्ञान नहीं होता है ? ॥९५॥ जबकि यह नहीं जाना जाता है कि यह मृत्यु किस समय में किसकी हो जायगी तो जब अचानक ही मृत्यु प्राप्त होगी तो उस समय मे कौन तुझे धीरज प्राप्त करायेगा ? ॥९६॥ उस समय मे तो यहा पर ही यह सभी कुछ ठाट-बाट छोडकर अकेले ही निश्चय रूप से जायगा। इसलिये उस समय के वास्ते पाथेय के लिये इस धन को क्यो नही दान किया करता है ? ॥९७॥ जो तू यहा दान धर्म करता है वही तुझे उस यमपुर के महामार्ग मे पाथेय का काम देता है। जो दान धर्म के पाथेय को ग्रहण करने वाले व्यक्ति हैं वे सुख पूर्वक उस महामार्ग मे जाया करते हैं। इसके अभाव मे यह जन्तु पाथेय से रहित होता हुआ उस मार्ग मे क्लेश प्राप्त किया करता है ॥९८॥

येषा द्विजेन्द्रवाहिन्नी पूर्णभाडा तु गच्छति ।
स्वर्गदेशस्य पुरतास्तेषा लाभः पदेपदे ॥९९

इति ज्ञात्वा नरः पुण्यं कुर्यात्पाप विवर्जयेत् ।
पुण्येन याति देवत्वमपुण्यान्नरक व्रजेत् ॥१००

ये मनागपि देवेश प्रपन्नाः शरण शिवम् ।
तेपि घोर न पश्यति यमस्य वदनं नरा ॥१०१

कि तु पापैर्महाघोरै. किञ्चित्काल शिवाज्ञया ।
भवतिप्रेत राजानस्ततो याति शिवालयम् ॥१०२

ये पुनः सर्वभावेन प्रतिपन्ना महेश्वरम् ।
न तं लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाभसा ॥१०३

तस्माद्विवर्धयेद्भक्तिमीश्वरे सतत बुधः ।
तन्माहात्म्यविचारेण भवदोषविरागतः ॥१०४

पापानि पच परमार्थतयैव पार्थ
दु ख प्रदानि सुचिर पितृ राजलोके ।
अन्यानि यानि चिरकालभयानकानि
यवतु न याति किल तानि परिस्फुटानि ।।१०५

जिनकी द्विजेन्द्र वाहित्री पूर्ण भाण्ड वाली जाती है उनको स्वर्ग देश के आगे पद-पद पर लाभ होता है ।।६६।। यह जानकर मनुष्य को पुण्य ही करना चाहिए और पाप को विवर्जित कर देना चाहिए । पुण्य से मानव देवत्व को प्राप्त होता है और अपुण्य अर्थात् पाप से नरक म जाया करता है ।।१००।। जो थोड़ा भी देवो के ईश शिव की शरण मे प्रपन्न हो गय हैं वे मनुष्य भी यमराज के महा घोर मुख को नही देखा करते हैं ।।१०१।। किन्तु महान् घोर पापो से शिव की आज्ञा से कुछ काल पर्यन्त प्रेत राजा होते है और इसके पश्चात् शिव के आलय को चले जाया करते हैं ।।१०२।। जो सबवो भाव से भगवान् महेश्वर की प्रपत्ति मे प्राप्त हो जाते है वे पाप से जल से पद्मपत्र की भाँति लिप्त नही हुआ करते हैं ।।१०३।। इसलिय बुध पुरुष को ईश्वर मे अपनी भक्ति निरन्तर बढानी चाहिए । यह भय दोष के विराग से अथवा उसके माहात्म्य को विचार करके शिव म भक्ति भाव करना चाहिए ।।१०४।। हे पार्थ ! पाँच पाप परमायता से ही पितृराज के लोक म अधिक समय तक दु खप्रद होते हैं । अन्य जो भी पाप हैं वे चिरकाल तक भयानक होते हैं वे परिस्फुट रूप स कहने में नहीं आते हैं ।।१०५।।

।। शकट व्रत का माहात्म्य ।।

यदेतत्ते समाख्यात गभीर नरकार्णवम् ।
व्रतोपवासनियमप्लवेमोत्तीर्यंत सुखम् ।।१
दुर्लभ प्राप्य मानुष्य विद्युत्पतनचञ्चलम् ।
तथात्मान समादध्याद्भ्रश्यते न पुनर्यथा ।।२
दानव्रतमयी कीर्तिर्यस्य स्यादिह देहिन ।
परलोकेऽपि स तथा ज्ञायते ज्ञातिवर्द्धन. ।।३

ज्ञायते नेह नामुत्र व्रतस्वाध्यायवर्जित ।
पुरुष पुरुषव्याघ्र तस्माद्व्रतपरो भवेत् ॥४
अत्र ते कथयिष्यामि इतिहास पुरातनम् ।
सिद्धेन सह सवादमवत्या ब्राह्मणस्य हि ॥५
योगर्द्धिसिद्धचा ससिद्ध कश्चित्सिद्धो महीतलम् ।
चचार विकृत कृत्वा वपु परमभीषणम् ॥६
निर्गीर्णदतो लम्बोष्ठः पिंगाक्षस्तनुमूर्द्धज. ।
त्रुटितैककर्णो दुर्वर्ण. शीर्णवस्त्रो महोदरः ॥७
चिपिटाक्ष स्फुटितपाज्जघाढ्य कृशकूर्पर. ।
दिश पश्यति सहृष्टो वभ्रामोद्भ्रातचित्तवत् ॥८

इस अध्याय मे शकट व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। श्रीकृष्ण ने कहा—आपको यह गम्भीर नरको के सागर का वर्णन करके बता दिया है। जिस समुद्र को व्रत-उपवास और नियमो के प्लव (नौका) से सुख पूर्वक उत्तीर्ण किया जाता है ॥१॥ यह मनुष्य का जीवन अत्यन्त दुर्लभ होता है इसको प्राप्त करके जो कि विद्युत के पतन के समान चचल है उस प्रकार से अपने आपको सावधान रखना चाहिए जिससे फिर भ्रष्ट न होने पावे ॥२॥ इस ससार मे जिस देहधारी की व्रत और दान से परिपूर्ण कीर्त्ति विद्यमान रहा करती है वह परलोक मे भी उसके द्वारा ज्ञाति का वर्धन करने वाला जाना जाता है ॥३॥ हे पुरुष व्याघ्र ! व्रत और स्वाध्याय से रहित पुरुष इस लोक मे और परलोक मे नही जाना जाता है। इससे व्रत परायण होना ही चाहिए ॥४॥ इस विषय मे मैं तुमको एक अति रमणीय पुराना इतिहास कहता हूँ जो कि अवन्ती पुरी मे एक ब्राह्मण का सिद्ध के साथ सम्वाद हुआ था ॥५॥ योगर्द्धि सिद्धि से ससिद्ध कोई सिद्ध अपने शरीर को अत्यन्त विकृत और परम भीषण बना कर भूतल मे विचरण किया करता था ॥६॥ निर्गीर्ण दाँतो वाला—लम्बे होटो से युक्त पीली आँखो वाला—बडे केशो से समन्वित—एक कान से त्रुटित—दुर्वर्ण—जीर्ण वस्त्रो वाला और महान् उदर वाला एव चिपिट नेत्रो वाला—स्फुटित पैर और आँखो से युक्त—कृशकूर्पर वाला तथा

दिशाओं को देखकर परम प्रसन्न होता हुआ एक उद्भ्रान्त चित्त वाले की तरह भ्रमण किया करता था ॥७-८॥

मूलजालिकविप्रेण दृष्टः पृष्टश्च को भवान् ।
कदा स्वर्गात्समायातः केन कार्येण मे वद ॥६
कच्चिद्दृष्टा त्वया रम्भा भाभासितदिगन्तरा ।
चित्तसंमोहनकरी देवानामेकसुन्दरी ॥१०
गत्वा मद्वचनाद्वाच्या निर्वाच्या दोषदर्शिभिः ।
आवन्त्यस्त्वां कुशलिनीं पृच्छति स्म द्विजोत्तमः ॥११
सिद्धः प्रसिद्धं तं विप्रं प्राहेदं विस्मयान्वितः ।
कथं त्वयाहं विज्ञातः स्वर्गादभ्यागतः स्फुटम् ॥१२
ब्राह्मणस्तं मथोवाच विज्ञातोऽसि मया यथा ।
तथा तेऽहं प्रवक्ष्यामि क्षीणाघौघावधारय ॥१३
गात्रत्रयं विरूपं स्याद्द्वितीयं वा स्वरूपतः ।
दृष्ट्वा सर्वांगं वैरूप्यं विज्ञातोऽसि ततो मया ॥१४

मूल जालिक नाम वाले विप्र ने उसको देखा तो उसने उससे पूछा—आप कौन हैं ? आप स्वर्ग से कब आये हैं ? आप यहाँ किस कार्य से आये हैं—यह सब मुझे बताइये ॥६॥ क्या आपने कहीं पर रम्भा को देखा है ? जो कि अपनी दीप्ति से दिगन्तरों को भासित करने वाली है। तथा चित्त के समोहन कर देने वाली है और देवों की एक ही सुन्दरी है ॥१०॥ आप जाकर मेरे वचन उससे कहें जो कि दोषदर्शियों के द्वारा निर्वाच्या है। एक अवन्ती पुरी का रहने वाला ब्राह्मण तुम्हारी कुशलता पूछता था ॥११॥ वह सिद्ध विस्मय में भरकर उस प्रसिद्ध विप्र से यह बोला—आपने मुझे कैसे जान लिया है कि मैं स्वर्ग से स्पष्टतया आया हूँ ॥१२॥ इसके अनन्तर उस ब्राह्मण ने उससे कहा कि मैंने जिस तरह से तुमको जान लिया है। अब मैं उसी को आपको है क्षीण पापों के समूह वाले ! बताता हूँ आप अवधारण करिये ॥१३॥ तीन गात्र तो विरूप हैं अथवा द्वितीय स्वरूप से है। आपके सर्वांगों की विरूपता को देख कर मैंने आपको पहिचान लिया है ॥१४॥

दुर्लंघ्या प्रकृति साक्षादनुभूतकरी भवेत् ।
प्रकृतेरन्यथाभाव सर्वथा लक्ष्यते जनं ॥१५

विप्रस्यैववच श्रुत्वा जगामादर्शन शनै ।
पुन कंश्चिदहोरात्रं राजगाम स ता पुरीम् ॥१६

मूलजालकविप्रेण पृष्ट प्राहामगवतीम् ।
गतोऽह पृष्टवास्तत्र रंभा विभ्रमकारिणीम् ॥१७
शक्रस्यावसरे वृत्ते व्रजन्त्या स्वगृह मया ।
स्वरसदेश समाख्यात सावदत्को न वेद्मि तम् ॥१८
विद्यया कलया चापि पौरुषेण व्रतेन च ।
तमसा वा पुमान्मर्त्यो दिवि विज्ञायते चिरम् ॥१९
ब्राह्मणस्तमथोवाच मुग्धा दग्धाग्निसभवा ।
न भक्षयामि शकट व्रतेनैतेन वेत्ति माम् ॥२०
तस्यैतद्वचन श्रुत्वा स सिद्ध सुविशुद्धधी ।
प्रहस्यामन्त्र्य त विप्र जगामादर्शन पुन ॥२१

साक्षात् दुर्लंघ्या प्रकृति अनुभूत करने वाली होती है । प्रकृति का जो अन्यथा भाव है वह मनुष्यो के द्वारा लक्षित हो जाया करता है ॥१५॥ विप्र के इस प्रकार के वचनो का श्रवण कर वह सिद्ध धीरे से अदर्शन को प्राप्त होगया था । फिर कुछ अहोरात्र के पश्चात् उस पुरी मे वह आया था ॥१६॥ मूल जालिक विप्र के द्वारा पूछे गये उसने कहा—मैं अमरावती को गया था और वहाँ पर मैंने विभ्रम कारिणी रम्भा से पूछा था ॥१७॥ इन्द्र की सभा का समय समाप्त होजाने पर जिस समय वह अपने घर को जारही थी मैंने उस समय मे आपका सन्देश उससे कहा था। उसने कहा मैं उसको नही जानती हूँ ॥१८॥ विद्या से—कला से—पौरुष से और व्रत से अथवा तप से मनुष्य पुमान् स्वर्ग मे चिरकाल मे जाना जाया करता है ॥१९॥ इसके पश्चात ब्राह्मण ने उस सिद्ध से कहा—वह दग्ध अग्नि से उत्पन्न होने वाली मुग्धा 'मैं शकट को नही खाता हूँ'—इस व्रत से मुझको जानती है ॥२०॥ उस

ब्राह्मण के इस वचन को सुन कर सुविशुद्ध बुद्धि वाला वह सिद्ध हँसकर उस विप्र को आमन्त्रित कर फिर अदर्शन को प्राप्त होगया था ॥२१॥

कदाचिद्विचरता तेन स्वर्गमार्गं यदृच्छया ।
दृष्ट्वा रंभा द्विजप्रोक्तं सर्वमेव निवेदितम् ॥२२
को न जानामि तं विप्रं शकटव्रतचारिणम् ।
मूलजालैर्वर्तयंतं महाकालवनाश्रयम् ॥२३
दर्शनादथ संभाषादुपकारात्सहासनात् ।
चतुर्धा स्नेहनिर्बंधो नृणां संजायतेऽधिकः ॥२४
न दर्शनं न संभाषा कदाचित्सह तेन मे ।
नामश्रवणमात्रेण स्नेहः संदर्शितो महान् ॥२५
इत्येवमुक्त्वा रंभोरू रंभा जगमारिणोतिकम् ।
विस्मयोत्फुल्लनयना जगाम गजगामिनी ॥२६
गत्वा निवेदयामास स्नेहव्रतविचेष्टितम् ।
पुरतो रुद्रहृदया ब्राह्मणस्य च धीमतः ॥२७
शक्रं प्रोवाच चार्वंगी गीर्वाणहृदयंगमाम् ।
किमानयामि तं विप्रं समीपं तव सुव्रतम्॥२८

किसी समय यदृच्छा से स्वर्ग के मार्ग में विचरण करते हुए उसने रम्भा को देखा और उसने द्विज के द्वारा कहा हुआ समस्त वृत्तान्त उससे निवेदन कर दिया था ॥२२॥ रम्भा ने कहा—मैं उस शकट व्रत के करने वाले ब्राह्मण को नहीं जानती हूँ कि वह कौन है। जोकि मूल जालों का अपवर्त्तन करने वाला है और महाकाल के वन में आश्रय करने वाला है ॥ २३ ॥ दर्शन से—सम्भाषण करने से—उपकार करने से–साथ बैठने से चार प्रकार से ही मनुष्यों का अधिक निर्बन्ध होता है ॥२४॥ न तो कभी दर्शन ही हुआ और न कभी सम्भाषण हुआ तथा किसी समय साथ रहना भी मेरा उसके साथ नहीं हुआ है। केवल नाम के श्रवण से ही ऐसा महान् स्नेह दिखाया है–इतना ही कहकर रम्भा के समान ऊरुओं वाली जगमारिणाऽन्तिक रम्भा विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाली गज की भाँति गमन करने वाली चली गई थी

॥२५-२६॥ उसने जाकर इन्द्र के आगे रुद्ध हृदय वाली रम्भा ने धीमान् ब्राह्मण का स्नेह व्रत का विचेष्टित निवेदन कर दिया था ॥२७॥ इन्द्र ने सुन्दर अंगो वाली और देवो की हृदयङ्गमा रम्भा से कहा—क्या उस सुव्रत विप्र को तुम्हारे पास ले आवें ? ॥२८॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यस्रगनुलेपनम् ।
विमानवरमारोप्य दर्शयामास त पुन ॥२९
शकटव्रतमाहात्म्यमित्येतत्त मयोदितम् ॥३०
राज्यश्रियं जगति सर्वजनोपभोग्यामा-
प्नोति शक्रशिवकेशवयोर्निवासम् ।
नाप्राप्यमस्ति भुवने सुदृढव्रताना
तस्मात्सदा व्रतपरेण नरेण भाव्यम् ॥३१

इसके पश्चात् दिव्य माल्य और दिव्य वस्त्र धारण करने वाले दिव्य स्रक् और अनुलेपन वाले उस विप्र को एक श्रेष्ठ विमान पर चढा कर दिखलाया था ॥२९॥ यह शकट व्रत का माहात्म्य है जोकि मैंने तुमको बता दिया है ॥३०॥ व्रत के प्रभाव से मनुष्य सब जनो के उपभोग करने के योग्य राज्य श्री को प्राप्त किया करता है । इस व्रत के प्रभाव स इन्द्र शिव और केशव के निवास स्थान की प्राप्ति कर लेता है । जो सुदृढ व्रत वाले हैं उनको भुवन मे कुछ भी अप्राप्य तो होता ही नही है । इसीलिए मनुष्य को सदा व्रत परायण अवश्य ही होना चाहिए ॥३१॥

———

॥ तिलक व्रत का माहात्म्य ॥

ब्रह्मेश केशवादीना गौर्या गणपतेस्तथा ।
दुर्गासूर्याग्निसोमाना व्रतानि मधुसूदन ॥१
शास्त्रातरेषु दृष्टानि तव बुद्धिगतानि च ।
तानि सर्वाणि मे देववद देवकिनन्दन ॥२

प्रतिपत्क्रमयोगेन विहिता यस्य या तिथि. ।
देवस्य तस्या यत्कार्यं तदशेषेण कीर्तय ।।३

वसन्ते किंशुकाशोकशोभने प्रतिपत्तिथि ।
शुक्ला तस्या प्रकुर्वीत स्नान नियमतत्परः ।।४

नारी नरो वा राजेन्द्र सतर्प्य पितृदेवता. ।
नद्यास्तीरे तडागे वा गृहे वा नियतात्मवान् ।।५

पिष्टातकेन विलिखेद्वत्सर पुरुषाकृतिम् ।
ततश्चन्दनचूर्णेन पुष्पधूपादिनार्चयेत् ।।६

दीपैश्चापि सनैवेद्यैः पूजयेद्वत्सर तदा ।
मासतु नामभिः पश्चान्नमस्यारातयोजितैः ।
पूजयेद्ब्राह्मणान्विद्वान्मन्त्रं वेदोदितैं शुभैः ।।७

इस अध्याय में तिलक व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है । युधिष्ठिर ने कहा—हे मधुसूदन ! ब्रह्मा—ईश—केशव आदि का तथा गौरी और गणपति का एव दुर्गा—सूर्य—अग्नि और सोम का व्रत शास्त्रान्तरों में देखा गया है और ये सब व्रत आपके बुद्धिगत ही हैं । हे देवकि नन्दन ! हे देव ! उन सब को कृपा कर मुझे बताइये ।।१-२।। प्रति महा तिथि के क्रम से जिस देवता की जो भी तिथि हो उस तिथि में देवता का जो भी कार्य हो वह पूर्ण रूप से वर्णन कीजिएगा ।।३।। श्रीकृष्ण ने कहा—वसन्त ऋतु म आ कि ढाक और अशोक के वृक्षों से परम शोभाशाली ऋतु होती है प्रतिपत तिथि यह भी शुक्ला हो उसमें स्नान नियम से तत्पर होकर करना चाहिए ।।४।। हे राजेन्द्र ! नारी हो अथवा नर हो पहिले पितृगण का भली भांति तर्पण कर । नियत आत्मा वाला होकर नदी के तट पर—तड़ाग पर अथवा गृह में तर्पण करना चाहिए ।।५।। गुड़पिष्ट से वत्सर को एक पुरुष की आकृति वाला लिखना चाहिए । फिर उसका चन्दन का चूरा और पुष्पादिक धूप आदि पूजन के समस्त उपचारों के द्वारा अर्चन करना चाहिए ।।६।। उस समय वत्सर की दीप और नैवेद्य के द्वारा पूजा करनी चाहिए । मास-

ऋतु के नामो से आरात योजियो के द्वारा पीछे नमस्कार करके विद्वान् ब्राह्मणो की शुभ वैदिक मन्त्रो द्वारा पूजा करनी चाहिए ॥७॥

सवत्सरोऽसि परिवत्सरोसीडावत्सरोऽ-
भित्सरोऽसि उपसस्ते कल्पता
अहोरात्रास्त कल्पतामधमासस्ते
कल्पता मासास्त कल्पतामृत
वस्त कल्पन्ता सवत्सरस्ते कल्पताम् ॥८
एवमभ्यर्च्य वासोभि पश्चात्तमभिवेष्टयेत् ।
कालोद्भवैर्मूलफलैर्नैवद्यैर्मोदकादिभि ॥९
ततस्त प्रार्थयेत्पश्चात्पुर स्थित्वा कृताजलि ।
भगवस्त्वत्प्रसादेन वर्षं शुभदमस्तु मे ॥१०
एवमुक्त्वा यथाशक्ति दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।
ललाटपट्टे तिलक कुर्यच्चादनपकजम् ॥११
तत प्रभृत्यनुदिन तिलकालकृत मुखम् ।
धाय सवत्सर यावच्छशिनेव नभस्तलम् ॥१२
एव नरो वा नारी वा व्रतमेतत्समाचरेत् ।
सदैव पुरुष व्याघ्र भोगान्भुवि भुनक्त्यसौ ॥१३
भूता प्रेता पिशाचाश्च दुर्वारा वैरिणो ग्रहा ।
निरथका भवत्येते तिलक वीक्ष्य तत्क्षणात् ॥१४

आप सम्वत्सर है—परिवत्सर है– इडावत्सर है–अभित्सर है–आपके उपा कल्पित होव । आपके अहोरात्र कल्पित होवें । आपके अर्ध मास कल्पित होव । आपके अहोरात्र अधमास मास और सम्वत्सर कल्पित होवें । इस प्रकार से उसकी अभ्यर्चना करके वस्त्रो से उसको अभिवेष्टित करना चाहिए । समय पर उत्पन्न होने वाले फल–मूल–नैवेद्य और मोदक आदि को समर्पित करे ॥८ ६॥ इसके पश्चात् उसकी प्राथना करनी चाहिए और उसके आगे हाथो को जोड कर स्थित हावे । हे भगवन् ! आपके प्रसाद से मुझ यह पूरा वष शुभ देने वाला होवे ॥१०॥ इस प्रकार से कह कर यथा शक्ति ब्राह्मण के लिये दक्षिणा देनी

चाहिए। ललाट पट्ट में चान्दन पकज तिलक करे। उस दिन से लेकर अनुदिन मुख को तिलक से अलकृत करना चाहिए ॥११॥ जब तक सम्वत्सर हो तब तक नभस्तल को शशि की भाँति धारण करना चाहिए इस प्रकार से नर या नारी इस व्रत का समाचरण करे। हे पुरुषव्याघ्र ! यह व्यक्ति सदा ही भूतल म भोगो का उपभोग करता है ॥१२-१३॥ भूत प्रेत और पिशाच दुर्वाह शत्रुगण और ग्रह उसी क्षण मे तिलक को देख कर ये सब निरर्थक हो जाया करते है ॥१४॥

पूर्वमासीन्महीपालो नाम्ना शत्रुजयो जयी ।
चित्रलेखेति तस्याभूद्भार्या चारित्रभूषणा ॥१५
तया व्रतमिद चैत्रे गृहीत द्विजसन्निधौ ।
सवत्सर पूजयित्वा धृत्वा हृदि जनार्दनम् ॥१६
असूयु क्षेप्तुकामो वा समागच्छति य पुर ।
प्रयाति प्रियकृत्तस्या दृष्ट्वा मुखमधोमुख ॥१७
सपत्नीदर्पापहरा वशीकृतमहीतला ।
भर्तुरिष्टा प्रहृष्टा च सुखमास्ते निराकुला ॥१८
तावत्करेणाभिभूतो भर्ता पुत्र सवेदन ।
शिरोऽर्त्या नाश प्रयात सुहृदा दुखदायक ॥१९
धर्मराजपुर प्राप्तु सर्वभूतापहारक ।
तस्मि क्षणे महाराज धर्मराजस्य किकरा ॥२०
तस्य द्वारमनुप्राप्ता प्रवेष्टु गृहमञ्जसा ।
शत्रु जय समानेतु कालमृत्युपुर सरा ॥२१

पहिले जब शील शत्रुओ को जीतने वाला महीपाल नाम वाला राजा था। उसकी चारित्र भूषण वाली चित्रलेखा नाम की भार्या थी ॥१५॥ उसने ब्राह्मण की सन्निधि म चैत्र मे मही मे इस व्रत को ग्रहण किया था और एक सम्वत्सर पर्यन्त पूजन करके हृदय म भगवान् जनार्दन का ध्यान किया था ॥१६॥ कोई भी असूया (निन्दा) करने वाला क्षेप करने की कामना वाला जन उसके आगे आता था तो उसका मुख देख कर नीचे को मुँह करके उसका प्रिय होकर चला

जाया करता था ॥१७॥ वह चित्रलेखा अपनी सपत्नियों के दर्प को हरण करने वाली और समस्त महीतल को वशीकृत करने वाली थी। परम प्रसन्न और अपने स्वामी की अत्यन्त इष्ट होकर निराकुल सुख पूर्वक रहा करती थी ॥१८॥ तब तक कर से अभिभूत स्वामी और वेदना से युक्त पुत्र शिर की आर्ति (दु ख) से नाश को प्राप्त होगया जोकि सुहृदो को बहुत ही दु ख दायक हुआ था ॥१९॥ उसी क्षण में समस्त प्राणियो के अपहरण करने वाले महाराज धर्मराज के सेवक धर्मराज के पुर को प्राप्त करने के लिए उसके द्वार पर आये थे जो कि तुरन्त ही उसके घर मे प्रवेश करने वाले थे। वे काल मृत्यु को आगे लिये हुए थे और शत्रुञ्जय को लेने को आये थे ॥२१॥

पार्श्वस्थिता चित्रलेखा तिलकालकृताननाम् ।
दृष्ट्वा प्रनष्टसंकल्पा परावृत्य गताः पुनः ॥२२
गतेपु तेपु स. नृप पुत्रेण सह भारत।
नीरुजो बुभुजे भोगा-पूर्वकर्मार्जिताञ्छुभान् ॥२३
एतद्व्रत महाभाग कीर्तित ते महोदयम् ।
शकरेण समाख्यातं मम पूर्व युधिष्ठिर ॥२४
एतत्त्रिलोकतिलकालकभूपण ते
ख्यात व्रत सकलदु ख हरं पर च ।
इत्य समाचारति यः स सुख विहृत्य
मर्त्यं प्रयाति. पदमापदि पद्मयोनेः ॥२५

उस समय उसके समीप मे स्थित तिलक से अलकृत मुख वाली चित्रलेखा वहाँ पर थी उसको देख कर वे अपने साथ लिवा ले जाने वाले सकल्प को नष्ट करके पुन वापिस लौट कर चले गये थे। उनके चले जाने पर हे भारत ! वह राजा पुत्र के साथ रोग रहित होकर पूर्व कर्म से अर्जित शुभ भोगों को भोगने लगा था ॥२२-२३॥ हे महाभाग ! यह महान् उदय वाला व्रत तुमको बतला दिया है। हे युधिष्ठिर ! मुझे पहिले शकर ने यह व्रत कहा था ॥२४॥ यह त्रिलोक तिलकालक भूपण मैंने तुम से कह दिया है। यह व्रत समस्त दु खो का हरने वाला

प्रधान है । जो कोई भी पुरुष इस व्रत का समाचरण किया करता है वह मनुष्य सुख पूर्वक विहार करके मृत्यु होने पर भगवान् पद्मयोनि के पद को प्राप्त किया करता है ॥२५॥

॥ अशोक व्रत का माहात्म्य ॥

आश्वयुच्छुक्लपक्षस्य प्रथमेऽह्नि दिनोदये ।
अशोक पूजयेद्वृक्षं प्ररूढशुभपल्लवम् ॥१
विरूढै सप्तधान्यैश्च गुरण कैर्मोदकं शुभैः ।
फलैः कालोद्भवैर्दिव्यैर्नालिकेरैः सदाडिमैः ॥२
पुष्पधूपादिना तद्वत्पूजयेत्तद्दिनेऽनघ ।
अशोक पाण्डवश्रेष्ठ शोक नाप्नोति कुत्रचित् ॥३
पितृभ्रातृपतिश्वश्रूश्वशुराणा तथैव च ।
अशोक शोकशमनो भव सर्वत्र न. कुले ॥४
इत्युच्चार्य ततो दद्यादर्घ्यं श्रद्धासमन्वितम् ।
पातकाभिरलङ्कृत्य प्रच्छाद्य शुभवाससा ॥५
दमयती यथा स्वाहा यथा वेदवती सती ।
तथाशोकव्रतादस्माज्जायते पतिवल्लभा ॥६
वने प्रजरया सद्धर्मः सीतया सम्प्रदर्शित ।
दृष्ट्वाऽशोक वने प्रार्थं पल्लवालङ्कृतावरम् ॥७
कृत्वा समीपे भर्तार देवर च तिलाक्षतैः ।
दीपालंकृतनैवेद्यधूपसूत्रफलार्च्चनैः ॥८
अर्चयित्वा ह्यर्पितोऽसौ रक्ताशोको युधिष्ठिर ।
मैथिल्या प्राञ्जलिर्भूत्वा शृण्वतो राघवस्य च ॥९

इस अध्याय में अशोक व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है । श्रीकृष्ण ने कहा—आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में, प्रथम दिन मे दिन के उदय होने के समय में ही प्ररूढ़ शुभ पल्लवों से समन्वित अशोक वृक्ष का पूजन करना चाहिए ॥१॥ विरूढ़ किये हुए सात प्रकार के धान्यों से—

गुणको से तथा शुभ मोदको के द्वारा एव फल—उस समय मे समुत्पन्न होने वाले दिव्य नारियलो से जो कि दाडिमो के सहित हो—पुष्प—धूप—दीप—गन्ध—अक्षत आदि सम्पूर्ण पूजन करने के समुचित उपचारो से हे अनघ ! उसी की भाँति उस दिन म उसका पूजन करना चाहिए। हे पाण्डव श्रेष्ठ ! वह अशोक की पूजा करने वाला व्यक्ति कही पर भी कभी शोक को प्राप्त नही हुआ करता है अर्थात् उसे कभी शोक होने का अवसर ही नही आता है ॥२-३॥ अशोक का अर्चन करने के समय मे पूजा करने वाले को उससे प्रार्थना करनी चाहिए—हे अशोक ! आप हमारे कुल म शोक के शमन करने वाले सवन्न होवें ॥४॥ मह प्राथना करके इसके अन तर फिर अशोक को अर्घ्य देवें जो कि पूर्ण श्रद्धा के भाव से समन्वित होना चाहिए। पताकाओ से खूब अच्छी तरह अलकृत करके सु दर वस्त्र से उसका प्रच्छादन करना चाहिए ॥५॥ जिस प्रकार से राजा नल की स्त्री दमयन्ती थी—और स्वाहा तथा सती वेदवती थी वैसे ही इस अशोक के व्रत से स्त्री पति वल्लभा हो जाया करती है ॥६॥ वन मे गमन करने वाली जनक नन्दिनी सीता ने सद्धर्म भली भाँति दर्शित किया था। उसने वन मे अशोक वृक्ष को देख कर जो कि पल्लवो से अलकृत अम्बर वाला था समीप मे स्वामी को और देवर को स्थित करके तिल—अक्षत—दीप—अलकार—नैवेद्य—धूप—सूत्र और फलो से जो अचन के उपचार थे अशोक का पूजन करके हे युधिष्ठिर ! उस रक्ताशोक से जानकी ने प्राथना की थी। श्रीराघवेन्द्र के श्रवण करते हुए मैथिली ने हाथ जोडकर यह प्रार्थना की थी ॥७ ६॥

चिर जीवतु मे वृद्ध श्वशुर कोशलेश्वर ।
भर्ता मे देवराश्चैव जीवतु भरतादय ।
कौशल्यामपि जीवन्ती पश्येयमिति मैथिली ॥१०
ययाचे त महाभागा द्रुम सत्योपयाचनम् ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य ततस्ते प्रययु पुन ॥११
एवमन्यापि या नारी पूजयेद्द्रु वि त नगम् ।
तिलतडुलसमिश्रैयवगोधूमसर्षपै ॥१२

क्षमाप्य वन्दयेन्मूलं पादपं रक्तपल्लवम् ।
मन्त्रेणानेन कौंतेय प्रणम्य स्त्री पतिव्रता ।।१३
महावृक्ष महाशाख मकरध्वजमन्दिर ।
प्रार्थये त्वां महाभाग वनोपवनभूषण ।।१४
एवमाभाष्य तं वृक्षं दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ।
सखीभिः सहिता साध्वी ततः स्वभवनं व्रजेत् ।।१५
याः शोकनाशनमशोकतरुं तरुण्यः
संपूजयति कुसुमाक्षतधूपदीपैः ।
ताः प्राप्य सौख्यमतुलं भुवि भर्तृजातं
गौरीपदं प्रमुदिताः पुनराप्नुवंति ।।१६

भूतल मे स्वामी से प्राप्त होने वाला अतुल सुख प्राप्त करके फिर प्रमुदित होकर गौरी के पद को प्राप्त किया करती हैं ॥१६॥

॥ वृहत्तपोव्रत का माहात्म्य ॥

अथ पापापहं वक्ष्ये बृहद्व्रतमनुत्तमम् ।
सुरासुरमुनीना च दुल्लभ विधिना शृणु ॥१
पर्वण्याश्वयुजस्यान्ते पायस घृतसयुतम् ।
नक्त भुञ्जीत शुद्धात्मा ओदन वंक्षवान्वितम् ॥२
आचम्याथ शुचिर्भूत्वा बिल्वज दतधावनम् ।
भक्षयित्वा महादेव प्रणम्येदमुदीरयेत् ॥३
अहं देवव्रतमिद कर्तुमिच्छामि शाश्वतम् ।
त्वदाज्ञया महादेव यथा निर्वहते कुरु ॥४
इत्येव नियम कृत्वा यावद्वर्षाणि षोडश ।
तिथय प्रतिपत्पूर्वा भजिष्यामीत्यनुक्रमात् ॥५
ततो मार्गशिरे मासि प्रतिपद्यपरेऽहनि ।
पृष्ट्वा गुरु चोपवास महादेव स्मरन्मुहु ॥६
स्नात्वा देव समभ्यर्च्य रात्रौ प्रज्वाल्य दीपकान् ।
यमुना च महादेव नत्वा पञ्चाग्निमक्षयत् ॥७
महादेवरतान्विप्रान्सपत्नीकान्यतव्रतान् ।
षोडशाष्टौ तदर्धं वा एक वा शक्त्यपेक्षया ॥८
आमत्र्य स्वगृह गत्वा महादेव स्मरन्क्षितौ ।
शुचिवस्त्रास्तृतायां तु निराहारो निशिस्वपेत् ॥९

इस अध्याय मे वृहत्तपोव्रत के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है । भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—इसके अनन्तर मैं सम्पूर्ण पापो के अपहरण करने वाले सर्वोत्तम वृहद् व्रत के विषय मे वर्णन करता हू । यह व्रत सुर और असुर और मुनिगण सब के लिये ही अत्यन्त दुर्लभ है । अब इसे विधि पूर्वक श्रवण करो ॥१॥ आश्विन मास के अंतिम पर्व में घृत से

सयुक्त पायस रात्रि के समय मे खानी चाहिए। शुद्ध आत्मा वाले को वैश्वदेवान्वित ओदन का भोजन करना चाहिए ।।२।। आचमन करके और परम पवित्र होकर बिल्व वृक्ष की दाँतुन चबा कर श्रीमहादेव को प्रणाम करके यह कहे ।।३।। मैं इस शाश्वत देव व्रत को करने की इच्छा करता हूँ। हे महादेव! आपकी आज्ञा ऐसी है उसी कारण से इसे मैं करना चाहता हूँ जिस तरह से इस व्रत का पूर्ण साग सम्पादन हो जावे और मैं पूरी तरह से इसका निर्वाह कर लू आप ऐसी कृपा करें ।।४।। इस प्रकार से नियम करके जब तक सोलह वर्ष हो पहिली प्रतिपदा तिथियों का भजन करू गा—इस अनुक्रम से करे ।।५।। इसके अनन्तर मार्गशीर्ष मास मे प्रतिपदा मे दूसरे दिन गुरु से उपवास के विषय मे पूछकर श्रीमहादेव का बार-बार स्मरण करे। स्नान करके देवता की अर्चना करे। रात्रि मे *दीपकों को प्रज्वलित करके यमुना और महादेव को प्रणाम करके पीछे* निमन्त्रित करना चाहिए ।।६-७।। श्रीमहादेव मे रति रखने वाले—यत-व्रत विप्रों को जो अपनी पत्नियों के सहित हों, सोलह–आठ या इसके भी आधे चार या जैसी शक्ति हो उसके अनुसार एक ही विप्र को आमन्त्रित करके अपने घर जावे। श्रीमहादेव का स्मरण करता हुआ रात्रि मे पवित्र वस्त्र के बिछौने वाली भूमि मे निराहार शयन करना चाहिए ।।८-६।।

।। यमद्वितीया-व्रत का माहात्म्य ।।

मरयन्यास्तिथय. पार्थ द्वितीयाद्या परिश्रुता।
मासैश्चतुर्भिश्चत्वारः प्रावृट्काले कल्मषापहा ।।१
गोपिताश्च सदा लोके न प्रोक्ताश्च मया क्वचित्।
प्रकाशयामि ता. पार्थ शृणु सर्वा मता हि ना. ।।२
एका तु श्रावणे मासि अन्या भाद्रपदे तथा।
आश्वयुजे मासि चतुर्थी कीर्तिके भवेत् ।।३

श्रावणे कलुषा नाम प्रोष्ठपादे च गीमला ।
आश्विने प्रेतसचारा कार्तिके च यमा स्मृता ॥४
कस्मात्सा कलुषा प्रोक्ता कस्मात्सागीर्मला मता ।
कस्मात्सा प्रेतसचारा कस्माद्याम्या प्रकीर्तिता ॥५
पुरा वृत्रवधे वृत्त प्राप्तराज्ये पुरवरे।
ब्रह्महत्यापनोदाथमश्वमेधे प्रवर्तिते ॥६
क्रोधादिन्द्रेण वज्रेण ब्रह्महत्या निपूदिता ।
पट्खण्डा च कृता क्षिप्ता वृक्षे तोये महीतले ॥७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ ! द्वितीया से आदि लेकर अन्य तिथियाँ बहुत ही परिश्रुत हैं । चार मासो के द्वारा वर्षा काल के शुक्ल कलम के अपहरण करने वाले होत हैं ॥१॥ ये सदा लोक मे परम गुप्त रक्खे गये हैं और मैने कही भी इनको नही कहा है । हे पार्थ ! उनको मैं अब प्रकाश मे लाता हूं उन सबको मेरे द्वारा तुम श्रवण करो ॥२॥ एक तिथि तो श्रावण मास मे होती है—अन्य भाद्रपद मे है—दूसरी आश्विन मे होती है एव चौथी कार्तिक मास है ॥३॥ श्रावण मे जो है उसका कलुगा नाम है । भाद्र पद मास मे गीमला नाम वाली होती है। आश्विन में प्रेत सञ्चारा नाम स युक्त होती है । कार्तिक मास मे यमा नाम वाली कही गयी है ॥४॥ युधिष्ठिर ने कहा—किस कारण से वह कलुपा कही जाती है और किस हेतु के होने से दूसरी का नाम गीमला कहा गया है ? प्रेतसञ्चारा—इम नाम होने का भी क्या कारण है और किस हेतु वश यमा कही गयी है ? ॥५॥ श्रीकृष्ण ने कहा—प्राचीन काल मे जव वृत्रासुर का वध होगया था तो इन्द्र ने अपना राज्यासन पुन प्राप्त कर लिया था । किन्तु ब्रह्महत्या का पाप अवश्य ही हुआ था उसके दूर करने के लिये अश्वमेध यज्ञ प्रवृत्त हुआ था ॥६॥ इन्द्र ने क्रोध से वज्र के द्वारा ब्रह्महत्या का निपूदन कर दिया था और उसके छै खण्ड कर दिये थे तथा उनको क्रम से वृक्ष-जल महीतल नारी ब्रह्महन और अग्नि मे डाल दिया था ॥७॥

नार्यां ब्रह्महने वह्नौ सविभज्य यथाक्रमम् ।
तत्पाप श्रावणे व्यूहं द्वितीयाया दिनोदये ॥८
नारीवृक्षनदीभूमिवह्निब्रह्महनेष्वथ ।
निर्मलीकरण जातमतोर्थं कलुषा स्मृता ॥६
मधुकैटभयो रक्ते पुरा मग्नेति मेदिनी ।
अष्टागुला पवित्रा सा नारीणा तु रजो मलम् ॥१०
नद्य पूरमला. सर्वा वह्ने धूमशिखा मलः ।
कलुषाणि चरत्यस्या तेनैषा कलुषा मता ॥११
गीर्गिरा भारती वाणी वाचा मेधा सरस्वती ।
गीर्मल वहते यस्माद्द्वितीया गीर्मला मता ॥१२
देवर्षिपितृधर्माणा निंदका नास्तिकाः शठाः ।
तेषा सा वाग्मलव्यूढा द्वितीया तेन गीर्मला ॥१३
अनध्यायेषु शास्त्राणि पाठयंति पठति च ।
शाब्दिकास्तार्किका.श्रौतास्तेषाशब्दापशब्दजा ।
मला व्यूढा द्वितीयायामतोर्थं गीर्मला च सा ॥१४

वही पाप श्रावण मास मे द्वितीया मे दिन के उदय समय मे व्यूह रूप मे नारी–वृक्ष–नदी–भूमि–वह्नि और ब्रह्महन मे होता है ॥८॥ यह निर्मलीकरण अर्थ उत्पन्न हुआ था इसी लिये यह कलुषा कही गयी है ॥६॥ पहिले समय मे यह मेदिनी मधु कैटभ के रुधिर मे मग्न होगई थी । केवल आठ अंगुल वाली पवित्र रही थी । नारियो का जो रज होता है वही मल है ॥१०॥ सभी नदियाँ पूरमल वाली हैं और अग्नि की जो धूँआ की शिखा है यही मल होता है । इसमे सभी कलुष चरण किया करते हैं इसी कारण से इसको कलुषा माना गया है ॥११॥ गी:–गिरा–भारती–वाणी–वाचा–मेधा और सरस्वती ये सभी उसके नाम हैं । गी जिससे मल का वहन करती है इसीलिए उसका नाम गीर्मला कहा गया है ॥१२॥ देव–ऋषि–पितृगण के धर्मो के जो निन्दक–नास्तिक और शठ लोग होते हैं वह उनके वाग्मल से व्यूढ द्वितीया है अतएव उसे गीर्मला कहा गया है ॥१३॥ अनध्याय के दिनों में जो शास्त्रों की

स्वय पढ़ते हैं तथा दूसरो को पढ़ाया करते हैं ऐसे शाब्दिक-तार्किक और जो श्रोत हैं उनके शब्दो के द्वारा अपशब्दो से उत्पन्न मन व्यूढ द्वितीया मे होते हैं इसी अर्थ के कारण वह गीर्मला कही गयी है ॥१४॥

प्रेतास्तु पितर प्रोक्तास्तेषा तस्या तु सचर ।
द्वितीयाया च लोकेषु तेन सा प्रेतसचरा ॥१५
अग्निष्वात्ता बर्हिपद आज्यपा सोमपास्तथा ।
पितृपितामहप्रेतसचरात्प्रेतसचरा ॥१६
पुत्रै पौत्रैश्च दौहित्रै स्वधामत्रै सुपूजिता ।
श्राद्धदानमखैस्तृप्ता यात्यत प्रेतसचरा. ॥१७
कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयाया युधिष्ठिर ।
यमो यमुनया पूर्व भोजित स्वगृहे सदा ॥१८
द्वितीयाया महोत्सर्गे नारकीयाश्च तर्पिता ।
पापेभ्यो विप्रमुक्तास्ते मुक्ता सर्वे विबधना ।
भ्रामिता नर्तितास्तुष्टा स्थिता सर्वे यदृच्छया ॥१९
तेषा महोत्सवो वृत्तो यमराष्ट्रे सुखावह ।
ततो यमद्वितीया सा प्रोक्ता लोके युधिष्ठिर ॥२०
अस्या निजगृहे पार्थ न भोक्तव्यमतो बुधै ।
स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्य पुष्टिवर्द्धनम् ॥२१

जो प्रेत हैं वे तो पितर ही कहे गये हैं उनका उसमे सञ्चार होता है इसी कारण वह द्वितीया लोको मे प्रेत सञ्चरा नाम से प्रसिद्ध है ॥१५॥ *अग्निष्वात-बर्हिपद-आज्यप-सोमप* और *पितृ पितामह प्रेतो* के सञ्चारण होने से इसको प्रेत सञ्चरा कहा जाता है ॥१६॥ पुत्रो पौत्रो दौहित्रो और स्वधा मन्त्रों के द्वारा भलीभाति समर्चित होकर श्राद्धो के दान रूपी मखो से सतृप्त होते हुए सब जाते हैं, अतएव यह प्रेत सञ्चरा इस नाम वाली है ॥१७॥ हे युधिष्ठिर ! कार्त्तिक मास म शुक्ल पक्ष की द्वितीया म यमराज यमुना बहिन के द्वारा पहिले भोजन कराया गया था और उस समय म अपने गृह मे ही उसे खिलाया था ॥१८॥ *द्वितीया म महोत्सर्ग म* जो भी नारकीय प्राणी थे, वे तर्पित हुए

ये और पापों मे विमुक्त होकर सभी बन्धनो से रहित होते हुए छुटकारा पागये थे (वे सब स्वच्छन्दता से भ्रमण करने वाले प्रसन्नता से नृत्य करते हुए यह कृत से परम सन्तुष्ट होकर स्थित होगये थे ।।१९।।) उनका एक यमराज के राज्य मे बडा महोत्सव होगया था जो बहुत ही सुख देने वाला था । हे युधिष्ठर ! तभी से लोक मे वह तिथि यमद्वितीया इस नाम कही गयी है ।।२०।। हे पार्थ ! बुध पुरुषों को इस यमद्वितीया मे अपन घर मे भोजन नही करना चाहिए । स्नेह के साथ अपनी बहिन के हाथ से ही पुष्टि का बढाने वाला भोजन करना चाहिए ।।२१।।

दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानत ।
स्वर्णालिकारवस्त्राद्यै पूजासत्कारभोजनै ।।२२
सर्वा भगिन्य सपूज्या अभावे प्रतिपत्तिगा ।
पितृव्यभगिनी हस्तात्प्रथमाया युधिष्ठिर ।।२३
मातुलस्य सुताहस्ताद्द्वितीयाया पुनर्नृ प ।
पितृमातृस्वसारो ये तृतीयाया तयो करात् ।।२४
भोक्तव्य सहजायाश्च भगिन्या हस्तत परम् ।
सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्य बलवर्द्धनम् ।।२५
धन्य यशस्यमायुष्य धर्मकामार्थवर्द्धनम् ।
व्याख्यात सकल स्नेहात्सरहस्य मया तव ।।२६
यस्या तिथौ यमुनया यमराजदेव
सम्भो जितो जगति सत्वरसौहृदेन ।
तस्या स्वसु करतलादिह यो भुनक्ति
प्राप्नोति वित्तमथ भोज्यमनुत्तम स ।।२७

फिर बहिनो के लिये विधान पूर्वक दानों का प्रदान करना चाहिए उनका सुवर्ण—अलकार और वस्त्र आदि से तथा उत्तम भोजनो के द्वारा पूजन एव सत्कार करना चाहिए ।।२२।। सभी बहिनो का पूजन करना चाहिए । यदि अपनी सगी सहोदर भगिनी न हो तो इस अभाव मे इस विधान की प्रतिपत्ति करन वाली अपने पितृव्य (चाचा) की पुत्री बहिनें भी होती हैं । उनके ही हाथ मे हे युधिष्ठिर ! पहिली

द्वितीया मे या प्रथमा तिथि मे भोजनादि करे ॥२३॥ मामा की पुत्री के हाथ से फिर हे नृप ! द्वितीया मे करे । जो पिता माता की जो बहिनें हैं तृतीया मे उनके हाथ से करे ॥२४॥ जो सहज भगिनी हो उसके हाथ से भोजन करना परमोत्तम है अत उसी के हाथ से करे । सबो मे भगिनी के हाथ से ही पुष्टि के बढाने वाला भोजन करना चाहिए ॥२५॥ यह परमधन्य—यश के बढाने वाला—आयु की वृद्धि करने वाला तथा धर्म-काम और अर्थ के वर्द्धन करने वाला है । मैंने रहस्य के साथ स्नेह से इस सब की व्याख्या की है और तुमको बता दिया है॥२६॥जिस तिथि म यमराज देव बहिन यमुना के द्वारा भली भाति भोजन कराया गया था जगत् म सत्वर सौहार्द्र क साथ उस तिथि मे अपनी बहिन के करतल से जो भी कोई भोजन करता है वह यहा पर उत्तम भोजन-धन और सुख की प्राप्ति किया करता है ॥२७॥

॥ अशून्यशयन व्रत का माहात्म्य ॥

भगवन्भवता प्रोक्त धर्मार्थादि सुसाधनम् ।
गार्हस्थ्य तच्च भवति दपत्यो प्रीयमाणयो ॥१
पत्नीहीन पुमाग्पत्नी भर्त्रा विरहिता तथा ।
धर्मकामार्थसमिद्धी न स्याता मधुसूदन ॥२
तद्ब्रूहि देवदेवेश विधवा स्त्री न जायते ।
व्रतेन येन गोविद पत्न्याऽविरहितो नर ॥३
अशून्यशयनी नाम द्वितीया शृणु ता मम ।
यामुपोष्य न वैधव्य प्राप्नोति स्त्री युधिष्ठिर ॥४
पत्नीविमुक्तश्च नरो न कदाचित्प्रजायते ।
शेते जगत्पतिर्विष्णु स्त्रिया सार्द्ध यदा किल ॥५
अशून्यशयम नाम तदा ग्राह्या च सा तिथि ।
उपवासेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥६

कृष्णपक्षे द्वितीयाया श्रावणे नृपसत्तम ।
स्नान नद्या तडागे वा गृहे वा नियतात्मवान् ॥७

युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन् ! आपने गार्हस्थ्य आश्रम को धर्म-अर्थ आदि का सुन्दर साधन स्वरूप बतलाया है किन्तु वह तभी होता है जब दोनो दम्पत्तियो मे परम प्रेम हो ॥१॥ हे मधुसूदन ! जो पुरुष पत्नी से हीन हो और जो स्त्री अपने भर्त्ता से विरहित हो उनको तो धर्म-अर्थ और काम की सिद्धि ही नही होगी ॥२॥ हे देव देवेश ! ऐसा कुछ बतलाइये कि स्त्री कभी विधवा ही न होवे तथा ऐसा कोई व्रत हो जिसके द्वारा पुरुष कभी अपनी पत्नी के विरह वाला न होवे ॥३॥ श्रीकृष्ण ने कहा —अब तुम मुझसे अशू य शयनी नाम वाली द्वितीया के विषय में श्रवण करो । हे युधिष्ठिर ! इसका उपवास करके स्त्री कभी भी वैधव्य के दु ख को प्राप्त नही करती है ॥४॥ पुरुष भी कभी इससे अपनी पत्नी स विमुक्त कभी भी नहीं होता है जिस समय मे जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु अपनी स्त्री के साथ मे शयन किया करते हैं ॥५॥ यह तिथि अशून्य शयन के नाम से ही ग्राह्य होती है जिसमे उपवास से रहा जावे अथवा रात्रि मे अयाचित के द्वारा भोजन किया जावे ॥६॥ हे नृपश्रेष्ठ ! श्रावण म कृष्ण पक्ष मे द्वितीया के दिन किसी नदी मे अथवा तालाब मे या गृह म नियत आत्मा वाले पुरुष को स्नान करना चाहिए ॥७॥

कृत्वा पितृन्मनुष्यांश्च देवान्सतर्प्य भक्तिमान् ।
स्थडिल चतुरस्र तु मृन्मय कारयेत्तत ॥७
तत्रस्थ श्रीधर श्रीश भक्त्याभ्यर्च्य श्रिया सह ।
नैवेद्यपुष्पधूपाद्यै फलैं बालोद्भवै शुभै ॥८
इममुच्चारयेन्मन्त्र प्रणम्य जगत पतिम् ।
श्रीवत्सधारिञ्छ्रीकात श्रीधामञ्छ्रीपतेऽव्यय ॥१०
गार्हस्थ्य मा प्रणाश मे यातु धर्मार्थकामदम् ।
अग्नयो मा प्रणश्यतु मा प्रणश्यन्तु देवता ।
पितरो मा प्रणश्यतु मत्तो दापत्यभेदत ॥११

लक्ष्म्या वियुज्यते कृष्ण न कदाचिद्यथा भवान् ।
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे प्रणश्यतु ॥१२
लक्ष्म्या न शुन्य वरद यथा ते शयन सदा ।
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनिजन्मनि ॥१३
एव प्रसाद्य पूजा च कृत्वा लक्ष्म्या हरेस्तथा ।
चन्द्रोदये स्नानपूर्वं पञ्चगव्येन सयुतम् ।
विप्राय दक्षिणा दद्यात्स्वशक्त्या फलसयुताम् ॥१४

भक्तिभाव से समन्वित पुरुष को पितृगण-मनुष्य वृन्द और देवों का भली-भाँति तर्पण करके एक चौकोर मिट्टी का स्थण्डिल बनवाना चाहिए ॥८॥ उसमे विराजमान श्री के स्वामी श्रीधर भगवान् का श्री के साथ भक्तिभाव पूर्वक अभ्यर्चन करे जो कि नैवेद्य-पुष्प-धूप-फल आदि से करना चाहिए । उस काल मे जो भी शुभ फलादि उत्पन्न हो उन्हे ही ग्रहण करे ॥९॥ जगत् के स्वामी को प्रणाम करे और इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए—हे श्रीवत्स के धारण करने वाले ! श्री के कान्त ! हे श्री के धाम ! श्री के स्वामिन् ! हे अव्यय ! धर्म-काम और अर्थ के प्रदान करने वाला मेरा यह गार्हस्थ्य आश्रम कभी नाश को प्राप्त न होवे । ये अग्नियाँ इसका नाश न करें तथा देवगण प्रनष्ट न करें । ये पितृगण इसका नाश न करें और मुझ से कभी भी मेरे दाम्पत्य जीवन का विछोह न होवे ॥१० ११॥ हे श्रीकृष्ण ! आप जिस प्रकार से लक्ष्मी से कभी भी वियुक्त नही हुआ करते हैं हे देव ! उसी भाँति यह मेरा भी कलत्र का सम्बन्ध कभी नष्ट न होवे ॥१२॥ हे वरों के दाता ! जिस तरह आपकी शय्या सदा ही लक्ष्मी से शून्य नही रहती है वैसे ही मेरी शय्या भी जन्म जन्मान्तर म मेरी पत्नी से शून्य कभी न होवे ॥१३॥ इस प्रकार से लक्ष्मी नारायण को प्रसन्न करके तथा उनकी लक्ष्मी और हरि दोनो की पूजा करके चन्द्रमा के उदय के समय मे पहिले स्नान करके जो कि पंचगव्य से सयुत हो विप्र को अपनी शक्ति के अनुसार फलो से सयुत दक्षिणा देनी चाहिए ॥१४॥

अनेन विधिना राजन्यावन्मासचतुष्टयम् ।
कृष्णपक्षे द्वितीयायां प्रागुक्तविधिमाचरेत् ॥१५
कार्त्तिके चाथ सम्प्राप्ते शय्यां श्रीकांतसंयुताम् ।
सोपस्करां सोदकुंभां सान्नां दद्याद्द्विजातये ॥१६
प्रतिमासं च सोमाय अर्घ्यं दद्यात्समन्त्रकम् ।
दध्यक्षतैर्मूलफलै रत्नैः सौवर्णभाजनैः ॥१७
गगनाङ्गणसद्दीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव ।
आभासितदिगाभोग रमानुज नमोस्तु ते ॥१८
एवं करोति यः सम्यङ्नरो मासचतुष्टयम् ।
तस्य जन्मत्रयं यावद्गृहभङ्गो न जायते ॥१९
अशून्यशयनश्चैव धर्मकामार्थसाधकः ।
प्रवत्स्यद्याहृतैश्वर्यं पुरुषो नात्र संशयः ॥२०
नारी च पार्थ धर्मज्ञा व्रतमेतद्यथाविधि ।
या करोति न सा शोच्या बन्धुवर्गस्य जायते ॥२१
वैधव्यं दुर्भगत्वं च भर्तृत्यागं च सत्तम ।
प्राप्नोति जन्मत्रितयं न सा पाण्डुकुलोद्वह ॥२२
एषा ह्यशून्यशयना नृपते द्वितीया ख्याता
समस्तकलुषापहराऽद्वितीया ।
एतां समाचरति यः पुरुषोऽथ योषित्प्राप्नो-
त्यसौ शयनममहाग्र्यबहुभोग्यम् ॥२३

इस विधान से हे राजन् ! जब तक मे प्रावृट् काल के चार मास रहें बराबर कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि में पहिले बताई हुई विधि का समाचरण करना चाहिए ॥१५॥ कार्तिक मास के प्राप्त हो जाने पर सभी उपस्करों के सहित जल के कुम्भ से युक्त श्रीकान्त से संयुक्त शय्या को जो कि अन्न के भी सहित हो द्विजाति को दान में देनी चाहिए ॥१६॥ प्रत्येक मास में सोम के लिये दधि–अक्षत–मूल–फल–रत्न और सुवर्ण के पात्रों के द्वारा मन्त्रों के सहित अर्घ्य देना चाहिए ॥१७॥ हे रमानुज ! आप गगन रूपी आँगन के सुन्दर एवं समुज्ज्वल दीप हैं । आपकी उत्पत्ति

क्षीर सागर के मन्थन से हुई है और आप दिशाओ के आभोग को भासासित करने वाले हैं। आपके लिये नमस्कार है ॥१८॥ जो मनुष्य इस प्रकार से भली-भाँति चार महीने तक किया करता है उसके तीन जन्म पर्यन्त गृह का भग नही हुआ करता है ॥१६॥ यह अशून्य शयन व्रत धर्म–अर्थ और काम का साधक होता है। इससे पुरुष अव्याहत वैभव वाला होता है—इसमें कुछ भी सशय नही है ॥२०॥ हे पार्थ ! जो नारी धर्म के जानने वाली है वह इस व्रत को यथाविधि किया करती है वह कभी भी बन्धु वर्ग के लिये शोच्य नहीं होती है ॥२१॥ वैधव्य–दुर्भगत्व और भर्तृत्याग को हे श्रेष्ठ पाण्डुकुलोद्वह ! तीन जन्म पर्यन्त नही प्राप्त किया करती है ॥२२॥ हे नृपते ! यह द्वितीया अशून्य शयना नाम वाली प्रसिद्ध है। यह समस्त कलुषो के अपहरण करने वाली अद्वितीय होती है। इसका जो भी कोई पुरुष या स्त्री समान्चरण करती है व महान् उत्तम भोगने के योग्य शयन को प्राप्त किया करते हैं ॥२३॥

॥ गोष्पद तृतीया–व्रत का माहात्म्य ॥

पार्थ भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे दिनोदये ।
तृतीयाया चतुर्थ्यां च शुद्धाया प्रतिवत्सरम् ॥१
उपवासेन गृह्णीयाद्व्रत नाम्ना तु गोपदम् ।
स्नात्वा नरो वा नारी वा पुष्पधूपविलेपनै ॥२
दध्यक्षतैश्च मालाभिः पिष्टकैर्वनालया ।
अभ्यजयेद्गवा शृ ग खुर पुच्छान्तमेव च ॥३
दद्याद्गवाह्निक भक्त्या तासा पूर्वापराह्णयोः ।
अनग्निपाक भुञ्जीत तैलक्षारविवर्जितम् ॥४
व्रजतीना गवा नित्यमायातीना च भारत ।
पुरद्वारेथ वा गोष्ठे मन्त्रेणानेन मत्रवित् ।
अर्घ्यं प्रदद्याद्गृष्टया वा गवा पादेषु पाडव ॥५

माता रुद्राणा दुहिता वसूना स्वसादित्यानाममृतस्य नाभि॰ ।
प्रनुवोच चिकितुपे जनाय मा गामनागामदिति वधिष्ट ॥६

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ ! भाद्रपद मास मे शुक्ल पक्ष में दिन के उदय काल मे प्रति वर्ष शुद्ध तृतीया या चतुर्थी तिथि मे उपवास के साथ गोपद नाम वाले व्रत का ग्रहण करे । नर हो अथवा नारी हो स्नान करके पुष्प–धूप–दीप–विलेपन–दही–अक्षत–माला एव पिष्टक के द्वारा बनालया गायो के शृ ग–खुर और पू छ के अन्त भाग का अभ्यञ्जन करना चाहिए ॥१-३॥ भक्तिभाव से उनको पूर्वाह्ण और अपराह्ण मे आह्निक देवे और तैल तथा क्षार से रहित अनग्नि पाक का भोजन करना चाहिए ॥४॥ हे भारत ! जाती हुई और आती हुई गायो का नित्य ही पुर के द्वार पर–गोष्ठ मे निम्न मन्त्र के द्वारा मन्त्र वेत्ता को अर्घ्य अथवा पुष्पा देना चाहिए । हे पाण्डव ! अथवा गौओ के चरणो मे देवे ॥५॥ यह मन्त्र है–रुद्रो की माता–वसुओ की दुहिता–आदित्यों की स्वसा और आप अमृत की नाभि है । अभीष्ट जन के कभी प्रतिकूल मत होओ । अनागा अदिति गाय का वध करो ॥६॥

गावो मे अग्रत सन्तु गावो मे सतु पृष्टत ।
गावो मे हृदये सतु गवा मध्ये वसाम्यहम् ॥७

इत्थ सपूज्य दत्त्वार्घ ततो गच्छेद्गृहाश्रमम् ।
पचम्या क्रोधरहितो भुञ्जीत गोरस दधि ॥८

शालिपिष्ट फल शाक तिलमन्न च शोभनम् ।
भुक्तावसाने राजेन्द्र सयतस्ता निशा स्वपेत् ॥९
प्रभाते गोपद दत्त्वा ब्राह्मणाय हिरण्मयम् ।
क्षमयेद्य गवा नाथ गोविंद गरुडध्वजम् ॥१०
अच्युतेऽत्र यथा गावस्तथा गोवधनो गिरि ।
प्रणम्याच्युतमुद्दिश्य शृणु यत्फलमाप्नुयात् ॥११

गौऐ मेर आगे रहं–गौऐ ही मेरे पृष्ट भाग मे हावें–गौऐ मेरे हृदय म रहें और गौओ के मध्य मे ही मैं सदा निवास किया करू ॥७॥ इस

प्रकार से गौओं का भली भाँति पूजन करके तथा अर्घ्य देकर फिर गृहाश्रम मे चले जाना चाहिए। पत्र की तिथि म क्रोध से रहित होकर गोरस दधि का भोजन करे। शालि पिष्ट-फल-शाक-तिल और शोभन अन्न का भोजन करे। हे राजेन्द्र ! मुक्त के अवसान मे सयत होकर उस रात्रि मे शयन करे ॥८ ६॥ प्रभात के समय मे ब्राह्मण के लिये हिरण्मय गोपद का दान करके गौओ के नाथ गरुडध्वज गोविन्द से क्षमापन करावे ॥१०॥ यहा पर जिस प्रकार गायो का अर्चन किया जाता है उसी भाँति गोवर्द्ध न गिरि का भी समचन होता है। भगवान् अच्युत का उद्देश्य लेकर प्रणाम करे। इसका जो भी फल प्राप्त करे-उसका श्रवण करो ॥११॥

गोभक्तो गोव्रत कृत्वा भक्त्या शक्त्या च गोष्पदम् ।
सौभाग्य रूपलावण्य प्राप्नोति पृथिवीतले ॥१२
गोतणकाकुल गेह गोकुल च समासत ।
धनधान्यसमोपेतशालीक्षुरसमृद्धिमान् ॥१३
सतान पूजित लब्ध्वा तत स्वर्गेऽमरो भवेत् ।
द्विव्यरूपधर स्रग्वी दिव्यालकारभूषित ॥१४
गन्धर्वैर्गीतवाद्यम सेव्यमानोऽप्सरोगणे ।
दिव्य युगशत छित्वा ततो विष्णुपुर व्रजेत् ॥१५
यो गोपदव्रतमिद कुरुते त्रिरात्र गा
गा वै प्रपूजयति गोरसपूजनाच्च ।
गोविंदमादिपुरुप प्रणत सवित्रामालोक
मुत्तममुपैति गवा पवित्रम् ॥१६

गौ का भक्त भक्तिभाव से गो व्रत करके और शक्ति से गोष्पद करके इस पृथिवी तल मे परम सौभाग्य एव रूप लावण्य की प्राप्ति किया करता है ॥१२॥ गौओ के वत्सो से समाकुल गृह और सक्षप से गोकुल-धन-धान्य से समुपेत-शाली इक्षु रस की समृद्धि वाला हो जाता है ॥१३॥ प्रतिष्ठित सतति का लाभ होता है फिर इसके पश्चात् स्वर्ग मे अमर हो जाया करता है। जो दिव्यरूप के धारण करने वाला-स्रग्धारी

तथा दिव्य भूषणो से विभूषित होता है ।।१४।। वहा पर गन्धर्वो के द्वारा गीत वाद्यो से और अप्सराओ के द्वारा सेव्यमान हुआ करता है । वहा पर दिव्य सौ युग काटकर फिर वह विष्णुपुर को गमन किया करता है ।।१५।। जो इस गोपद व्रत को त्रिरात्र किया करता है और गायो का गोरस पूजन से प्रकृष्ट रूप से पूजन करता है तथा आदि पुरुष गोविन्द का प्रणाम किया करता है वह सावित्र उत्तम लोक को प्राप्त करता है जो गौओ से परम पवित्र है ।।१६।।

।। हरितालीतृतीया–व्रत का माहात्म्य ।।

शुक्ले भाद्रपदस्यैव तृतीयायां समचयेत् ।
सर्वधान्यैस्तां विरूढां भूतां हरितशाद्वलाम् ।
हरकाली देवदेवी गौरी शकरवल्लभाम् ।।१
गन्धै पुष्पै फलैर्धूपैर्नैवेद्यैर्मोदकादिभि ।
प्रीणयित्वा समाच्छाद्य पद्मरागेन भास्वता ।।२
घण्टावाद्यादिभिर्गीतै शुभैर्दिव्यकथानुगै ।
कृत्वा जागरण रात्रौ प्रभाते ह्युद्गते रवौ ।।३
सुवासिनीभि सा नेया मध्ये पुण्यजलाशये ।
तस्मिन्विसर्जयेत्पाथ हरकाली हरिप्रियाम् ।।४
भगवन्हरकालीति का देवी प्रोच्यत भुवि ।
आद्र धान्यै स्थिता कस्मात्पूज्यते स्त्रीजनेन सा ।
पूजिता किं ददातीह सर्वं मेवब्रूहि केशव ।।५
सवपापहरा दिव्या मत्त श्रृणु कथामिमाम् ।
आसीद्दक्षस्य दुहिता कालीनाम्नी तु कन्यका ।।६
वर्णेनापि च सा कृष्णा नवनीलोत्पलप्रभा ।
सा च दत्ता त्र्यबकाय महादेवाय शूलिने ।।७

श्रीकृष्ण ने कहा—भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष म तृतीया तिथि मे उस विरूढ भूता हरितशाद्वला का सवधान्यो से अचन करना चाहिए ।

हरकाली-देवदेवी-गौरी-शंकर वल्लभा वह है ॥१॥ गन्ध-पुष्प-फल-धूप और मोदक आदि नैवेद्य से उस देवी को प्रसन्न करके तथा भासमान पद्मराग से उसका समाच्छादन करके ॥२॥ घण्टा वाद्य आदि से-गीतो से-शुभ एवं दिव्य कथानुगो से रात्रि मे जागरण करके प्रभात मे जब रवि का उदय होता है ॥३॥ उसी समय मे सुवासिनियो के द्वारा उसको किसी परम पुण्य जलाशय के मध्य मे पहुँचाना चाहिए। हे पार्थ ! उस हरकाली हरि प्रिया का उसमे विसर्जन कर देवे ॥४॥ युधिष्ठिर ने कहा-हे भगवन् ! इस भूमण्डल मे हरकाली कौनसी देवी कही जाती है ? आर्द्र धान्यो से स्थित वह स्त्री जनो के द्वारा ही क्यो पूजी जाया करती है ! जब यह पूजित होती है तो फिर यह क्या दिया करती है ? हे केशव ! यह सभी कुछ मुझे आप बतलाइये ॥५॥ श्रीकृष्ण ने कहा-यह समस्त पापो के हरण करने वाली परम दिव्य कथा है। इसको अब तुम मुझ से श्रवण करो। दक्ष की पुत्री एक काली नाम की कन्या थी। वह वर्ण से भी कृष्ण थी और नवीन नील कमल के समान आभा वाली थी। वह कन्या त्र्यम्बक शूलधारी महादेव के लिये दी गई थी ॥६ ७॥

विवाहिता विधानेन शखतूर्यानुनादिना ।
यत्कुर्यादागतैर्देवैर्ब्राह्मणाना च निस्वनै ॥८
निर्वर्तिते विवाहे तु तया सार्धं त्रिलोचन ।
क्रीडते विविधैर्भोगैर्मनस प्रीतिवर्धनै ॥९
अथ देवसमानस्तु कदाचित्स वृषध्वज ।
आस्थानमडपे रम्ये आस्ते विष्णुसहायवान् ॥१०
तत्रस्थश्चाह्वयामास नर्मणा त्रिपुरातक ।
काली नीलोत्पलश्यामा गणमातृगणावृताम् ॥११
एह्येहि त्वमिन कासि कृष्णाजनसमन्विते ।
कालसुदरि मत्पार्श्वे धवले त्वमुपाविश ॥१२
एवमुत्क्षिप्तमनसा देवी सक्रुद्धमानसा ।
श्वासयामास ताम्राक्षी बाष्पगद्गदया गिरा ॥१३

हरकर्मसमुत्पन्न हरकाये हरप्रिये ।
मा त्राहीशस्य मूर्तिस्थे प्रणतास्तु नमोनमः ॥२०
इत्थ सपूज्य नैवेद्य दद्याद्विप्राय पाडव ।
ता च प्रातर्जले रम्ये मत्रेणैव विसर्जयेत् ॥२१

शकर ने जिस कारण से मेरी उपमा कृष्ण वर्ण से दी है अथवा हरकाली को बुलाया है जो देवर्षिगण से सेवित है । इसलिये मैं अब इस कृष्ण देह को जलती हुई अग्नि मे हवन कर डालू गी । इतना कह कर वह निषिद्ध भी की गइ थी तो भी रोष से युक्त होकर अपने निर्णय पर दृढ ही बनी रही थी ॥ १५-१६॥ उमने हरित छाया कान्ति को हरित शाद्वल मे छोड दिया था और जलती हुई अग्नि मे दोष को राग से क्षिप्त कर दिया ॥१७॥ फिर वह पर्वत राज के घर मे गौरी हुई थी जो महादेव के देह के अर्द्ध भाग में स्थित होती हुई सुरों के द्वारा भली-भाँति पूजित होती है ॥१८॥ इस प्रकार से वह हरकाली—इस नाम से गौरीश की व्यवस्थित हुई । हे पाण्डव ! वह महादेवी इस निम्न मन्त्र से पूजने के योग्य है ॥१९॥ मन्त्रार्थ—हे हर के कर्म से समुत्पन्न होने वाली ! आप तो हर की काया हैं और हर की प्रिया हैं । ईश की मूर्त्ति मे स्थित रहने वाली ! मेरी रक्षा करो । हम प्रणत हैं । आपको बारम्बार नमस्कार है ॥२०॥ हे पाण्डव ! इस भाँति अच्छी तरह अर्चना करके नैवेद्य विप्र को देवे । और प्रात काल में उसको रम्य जल के भीतर इसी मन्त्र के द्वारा विसर्जन कर देना चाहिए ॥२१॥

अर्चितासिमया भक्त्या गच्छ देवि सुरालयम् ।
हरकाले शिवे गौरि पुनरागमनाय च ॥२२
एव य पाडवश्रेष्ठ हरकालीव्रत चरेत् ।
वर्षेवर्षे विधानेन नारी नरपत शुभा ॥२३
सा यत्फलमवाप्नोति तच्छृणुष्व नराधिप ।
मर्त्यलोके चिर तिष्ठेत्सर्वरोगविवर्जिता ॥२४
सवभोगसमायुक्ता सौभाग्यबलगर्विता ।
पुत्रपौत्रसुहृन्मित्रनप्तृदौहित्रसकुला ॥२५

साग्र वर्षशत यावद्भोगान्भुक्त्वा महीतले ।
ततोवसाने देहस्य शिवज्ञाना महामुने ॥२६
चिरभद्रा महाकालनदीश्वरविनायका ।
तदाज्ञाकिंकरा सर्वे महादेवप्रसादतः ॥२७
सपूर्णसूर्यगणसप्तविरूढशस्या
ता वै हिमाद्रितनया हरकालिकाख्याम् ।
सपूज्य जागरमनुद्धतगीतवाद्यै
र्यच्छति या इह भवति पतिप्रियास्ता ॥२८

हे देवि ! मेरे द्वारा आप भक्ति के सहित पूजित हुई हो, अब आप सुरालय मे गमन करो । हे हरकाले ! शिवे ! हे गौरि ! फिर आगमन करने के लिये ही यह आपका इस समय विसर्जन है ॥२२॥ हे पाण्डव श्रेष्ठ ! इस प्रकार से जो इस हरकाली व्रत का समाचरण किया करता है । हे नरपते ! प्रतिवर्ष मे जो शुभा नारी इसको किया करती है ॥२३॥ हे नराधिप ! यह नारी जो इसका फल प्राप्त करती है उसका श्रवण करो । वह इस मनुष्य लोक में चिरकाल पर्यन्त सब रोगों से रहित होकर स्थित रहा करती है ॥२४॥ सभी प्रकार के भोगों से समायुक्त होकर सौभाग्य के बल से गर्व वाली होती है । वह पुत्र-पौत्र-सुहृत्-मित्र-नाती और धेवतों से समाकुल होती है ॥२५॥ वह उत्तम सौ वर्ष पर्यन्त इस महीतल मे सभी भोगो का उपभोग करके फिर देह के अन्त में वह शिव के ज्ञान वाली हे महामुने ! चिरभद्रा-महाकाल-नन्दीश्वर-विनायक आदि सब महादेव के प्रसाद से उसकी आज्ञा मे किंकर हुआ करते हैं ॥२६-२७॥ सम्पूर्ण सूर्यगण के सप्त से विरूढ़ शस्य वाली उस हरकालिका नाम स युक्त हिमाद्रि तनया का पूजन करके जो अनुद्धत गीत वाद्यो के द्वारा जागरण किया करती हैं वे नारी इस लोक मे पति की परम प्रिया होती हैं ॥२८॥

।। ललिता तृतीया व्रत का माहात्म्य ।।

अथ पृच्छामि भगवन्व्रत द्वादशमासिकम् ।
ललिताराधन नाम मासमासक्रमेण वा ।।१
शृणु पाडव यत्नेन यथा वृत्त पुरातनम् ।
शकरस्य महादेव्या सवाद कुरुसत्तम ।।२
कैलासशिखरे रम्ये बहुपुष्पफलोपग ।
सहकारद्रुमच्छन्ने चपकाशोकभूषिते ।।३
कदबबकुलामोदवशीकृतमधुव्रते ।
मयूररवसघुष्टे राजहसोपशोभिते ।।४
मृगक्षगजसिंहैश्च शाखामृगगणावृते ।
गधर्वयक्षदेवर्षिसिद्धकिन्नरपन्नगैः ।।५
तपस्विभिर्महाभागे सेवमान समतत ।
सुखासीन महादेव भूतसघै समावृतम् ।।६
अप्सरोभि सरिवृतमुमा नत्वाब्रवीदिदम् ।
भगवन्देवदेवेश शूलपाणे वृषध्वज ।।७

युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन् ! इसके उपरान्त अब मैं बारह मासो मे होने वाले व्रत के विषय मे पूछता हूँ। ललिता के आराधन नाम वाले व्रत को जो क्रम से मास मास मे होता है ।।१।। श्रीकृष्ण ने कहा—हे पाण्डव ! यत्न पूवक श्रवण करो । हे कुरुश्रेष्ठ ! एक परम पुरातन शकर और महादेवी का सम्वाद हुआ था ।।२।। कैलास पवत का शिखर परम रम्य है जहा बहुत से पुष्प एव फल वाले वृक्ष हैं। वह शिखर आम के वृक्षों से एव दम ढका हुआ सा है तथा चम्पक और अशोक के वृक्षों से भी स्विभूषित रहता है ।।३।। कदम्ब-बकुल की गन्ध से मधुकर वहा पर वशीभूत रहा करते हैं। चारो ओर मोरों की ध्वनियो से परिपूण रहता है। राजहंस भी वहा उसकी शोभा बढ़ाने वाले हैं ।।४।। मृग रीछ-हाथी-सिंह और शाखामृग के समूहों से वह घिरा रहता है । गन्धर्व—यक्ष देव ऋषि-सिद्ध-किन्नर और पन्नग तथा महान्

भाग वाले तपस्विगण के द्वारा चारों ओर वह कैलास का शिखर सेवित रहता है। वहां पर भूतगणों के द्वारा समावृत महादेव सुख पूर्वक विराजमान रहा करते हैं ॥५-६॥ अप्सराओं के गण से परिवृत रहने वाले शिव से एक बार उमा देवी ने नमस्कार करके वचन कहा था ॥७॥

कथयस्व महेशान तृतीयावृतमुत्तमम् ।
सौभाग्यं लभते येन धन पुत्रान्पशून्सुखम् ॥८
नारी स्वर्गं शुभं रूपमारोग्यं श्रियमुत्तमाम् ।
एवमुक्तो दयितया भार्यया प्रीतिपूर्वकम् ।
विहस्य शंकरः प्राह किं व्रतेन तव प्रिये ॥९
ये कामास्त्रिषु लोकेषु दिव्या भूम्यंतरिक्षजाः ।
सर्वेपि तेन चायत्ता वश्यस्तेहं ततः पतिः ॥१०
सत्यमेतत्सुरेशान त्वयि दृष्टे न दुर्लभम् ।
किंचित्त्रिभुवनाभोगभूषणे शशिभूषणे ॥११
भक्त्या स्त्रियो हि मां देव प्रजपंति शुभाशुभम् ।
विरूपाः सुलभाः काश्चिदपुत्रा बहुपुत्रकाः ॥१२
सुशीलास्तपसा काश्चिच्छ्वश्रूभिः पीडिता भृशम् ।
शौचाचारसमायुक्ता न रोचन्तेथ कस्यचित् ॥१३
एवं बहुविधैर्दुःखैः पीड्यमानास्तु दारुणैः ।
शरणं मां प्रपन्नास्ताः कृपाविष्टा ततो ह्यहम् ॥१४

उमादेवी ने कहा—हे भगवन् ! देव देवेश ! हे शूलपाणे ! हे वृषध्वज ! आप तो महान् ईश है। मुझे उत्तम तृतीया के व्रत को बतलाइये जिसके द्वारा सौभाग्य-धन-पुत्र-पशु और सुख का लाभ होता है ॥८॥ नारी शुभ स्वर्गरूप-आरोग्य तथा उत्तम श्री की प्राप्ति किया करती है इस प्रकार से दयिता के द्वारा पूछने पर जोकि भार्या ने बहुत ही प्रीति के साथ प्रश्न किया था भगवान् शंकर हसकर बोले—हे प्रिये ! आपको इस व्रत से क्या प्रयोजन है ॥९॥ तीनों लोकों में जो भी कामनाऐं हैं वे दिव्य-भूमि और अन्तरिक्ष में उत्पन्न वाली वे सभी आपके अधीन ही

हैं क्योंकि मैं आपका स्वामी ही आपके वशगत रहता हूँ ॥१०॥ उमा ने कहा—हे सुरेशान ! यह बिल्कुल सत्य ही है कि आपके दर्शन प्राप्त करने पर फिर कुछ भी दुर्लभ नहीं रहा करता है क्योंकि आप तो त्रिभुवन के आभोगों के भूषण हैं और शशि के भूषण वाले हैं ॥११॥ स्त्रियाँ भक्ति से हे देव ! शुभाशुभ मेरा जाप किया करती हैं। कुछ विचारी विरूपा हैं कुछ सुलभा हैं। कोई बिना पुत्र वाली हैं तो कुछ बहुत पुत्रों से युक्त होती हैं ॥१२॥ कोई सुशीला तप से युक्त हैं और कुछ सासों के द्वारा बहुत ही उत्पीड़ित रहने वाली हैं। शौच और आचार से युक्त है किन्तु कुछ भी प्रिय नहीं लगा करता है ॥१३॥ इस प्रकार से बहुत तरह के दुःखों से जोकि परम दारुण हैं पीड्यमान होती हुई वे मेरी शरणागति ग्रहण किया करती हैं तब उन पर मुझे कृपा करने के लिए विवश होना पड़ता है ॥१४॥

येन ता सुखसभोगरूपलावण्यसपदा ।
पुत्रैः सौभाग्यवित्तौघैर्युक्ता. स्यु सुरसत्तम ।
तन्मे कथय तत्त्वेन व्रतानामुत्तम व्रतम् ॥१५
माघे मासि सिते पक्षे तृतीयायां यतव्रताः ।
मुख प्रक्षाल्य हस्तौ च पादौ चैव समाहिता ॥१६
उपवासस्य नियम दतधावनपूर्वकम् ।
मध्याह्ने तु तत स्नान विल्वैरामलकै शुभै ॥१७
स्नात्वा तीर्थजले शुभ्रे वाससी परिधाय च ।
सुगधै सुमनोभिश्च प्रभूतै कु कुमादिभिः ॥१८
अर्चयति सदा देवि त्वा भक्त्या भक्तवत्सले ।
धपू रार्चस्तथा धूपैर्नैवेद्यै शर्करादिभि. ॥१९
यदृच्छानाभसपन्नै र्घृतदीपार्चनादिभि. ।
नाम्नेशानी गृहीत्वा तु प्रतीक्षद्धस्थिता तत ॥२०
पात्रे ताम्रमये शुद्धे जलाक्षतविमिश्रिते ।
सहिरण्य द्विज कृत्वा मन्त्रपूर्वं समाधिना ॥२१

हे सुरसत्तम ! जिसके द्वारा वे सुख-सम्भोग–रूप–लावण्य की सम्पदा तथा पुत्र एवं सौभाग्य वित्तो के समूहो से युक्त होती हैं। उस व्रतों में अत्युत्तम व्रत को आप तत्त्व पूर्वक मुझे बतलाइये ॥१५॥ ईश्वर ने कहा—माघ मास के शुक्ल पक्ष मे तृतीया तिथि के दिन मे यतव्रत होकर मुख धोवें और समाहित होकर दोनों हाथों पैरों को धो डाले ॥१६॥ दन्त धावन पूर्वक उपवास के नियम को ग्रहण करे। मध्याह्न के समय मे बिल्व–आँवले के शुभ फलो से फिर स्नान करे ॥१७॥ किसी शुभ तीर्थ के जल मे स्नान करके वस्त्रों का परिधान करे। इसके अनन्तर सुन्दर गन्ध वाले पुष्पों से तथा प्रचुर कुकुम आदि उपचारों से आपका पूजन करते हैं ॥१८॥ हे देवि ! आप तो भक्तों पर पूर्ण वत्सलता रखने वाली हैं। फिर भक्ति भाव से सदा आपका अर्चन किया करते हैं। पूजन के उपचारों में कपूर आदि–धूप–नैवेद्य और शर्करा प्रभृति सब का ग्रहण किया जाता है ॥१९॥ यदृच्छा लाभ से जो भी सम्पन्न हो धूप–दीप आदि अर्चनीय चार उन्हीं से ईशानी के नाम से ग्रहण करके एक घटिका पर्यन्त प्रतीक्षा करे ॥२०॥ परम शुद्ध ताम्रमय पात्र मे जो जल एवं अक्षतो से विमिश्रित हो समाधि से मन्त्र पूर्वक सहिरण्य द्विज को करे ॥२१॥

शिरसि प्रक्षिपेत्तोयं ध्यायती मनसेप्सितम् ।
ब्रह्मावर्तात्समायाता ब्रह्मयोनेर्विनिर्गता ॥२२
भद्रेश्वरा ततो देवी ललिता शंकरप्रिया ।
गंगाद्वाराद्वर प्राप्ता गङ्गाजलपवित्रिता ॥२३
सौभाग्यारोग्यपुत्रार्थमर्थार्थं हरवल्लभे ।
आयाता घटिका भद्रे प्रतीक्षस्व नमोनमः ॥२४
दत्वा हिरण्यं तत्तस्मै प्राश्नीयाद्गुणोदकम् ।
आचम्य प्रयतो भूत्वा भूमिस्था क्षपेरक्षपाम् ॥२५
ध्यायमाना उमां देवीं हरिते प्रकुमस्तरे ।
द्वितीयेह्नि गत स्नाग्या तथैवाभ्यर्च्य पार्वतीम् ॥२६

यथाशक्ति द्विजान्पूज्य ततो भुञ्जीत वाग्यता ।
एव तु प्रथमे मासि पूजनीयासि कालिके ॥२७
द्वितीये पार्वती नाम तृतीये शकरप्रिया ।
भवान्यथ चतुर्थे त्व स्कदमाताथ पञ्चमे ॥२८

मन मे अपने अभीष्ट मनोरथ का ध्यान करते हुए शिर पर जल का प्रक्षेप करे ब्रह्मावर्त से समायात और ब्रह्मयोनि से विनिर्गत भद्रेश्वरा ललिता शकर की प्रिया देवी गगाजल से पवित्र होकर गगाद्वार से भगवान् हर को प्राप्त हुई थी॥२२-२३॥हे हरवल्लभे ! सौभाग्य-आरोग्य पुत्र और अर्थ के लिये आप समायात हुई हैं । हे भद्रे ! एक घडी पर्यन्त प्रतीक्षा करिए । आपको बारम्बार नमस्कार है ॥२४॥ फिर उनको हिरण्य देकर कुशोदक का प्राशन कराना चाहिए । आचमन करके प्रयत होवे । तथा भूमि मे ही स्थित होकर उस रात्रि को बितावे ॥२५॥ हरितयव सस्तर में उमादेवी का ध्यान करे । फिर दूसरे दिन मे स्नान करके उसी भाँति पार्वती का अभ्यर्चन करना चाहिए ॥२६॥ यथाशक्ति द्विजो का पूजन करके फिर मौन व्रत पूर्वक स्वय भोजन करे। हे कालिके ! इसी प्रकार से प्रथम मास मे पूजनीय है ॥२७॥ दूसरे मास में पार्वती नाम से तथा तीसरे मे शकर प्रिया नाम से और पाचवें मास में स्कन्दमाता इस नाम से पूजन करें ॥२८॥

दक्षस्य दुहिता षष्ठे मैनाकी सप्तमे स्मृता ।
कात्यायन्यष्टमे मासि नवमे तु हिमाद्रिजा ॥२९
दशमे मासि विख्याता देवि सौभाग्यदायिनी ।
उमा स्वेकादशे मासि गौरी तु द्वादशे परा ॥३०
कुशोदक पय- सर्पिर्गोमूत्रं गोमय फलम् ।
निवपस कंटकारी गवा शृंगोदकं दधि ॥३१
पञ्चगव्य तथा शाक: प्राशनानि क्रमादमी ।
मासिमासि स्थिता ह्येवमुपवासपरायणा ॥३२
ददाति श्रद्धयैतानि वाचके ब्राह्मणोत्तमे ।
कुसु भमाज्य लवण जीरकं गुडमेव च ॥३३

दत्तैरेभि. सूर्यस्था त्व सूर्यस्था तुष्यसि प्रिये ।
मासिमासि भवेन्मन्त्रो गकारो द्वादशाक्षर: ।।३४
ओङ्कारपूर्वको देवि नमस्कारात ईरित. ।
एभिस्त्व पूजिता मन्त्रैस्तुष्यसि व्रतत: प्रिये ।।३५

छटे मास मे दक्ष की दुहिता नाम से और सातवें मे मैनाकी नाम से बताई गई है। आठवें मास मे कात्यायनी नाम से—नवम मास मे हिमाद्रिजा नाम से पूजन करे ।।२९।। दशम मास मे हे देवि ! सौभाग्यदायिनी विख्यात है। ग्यारहवें मास मे परा गौरी नाम से भजन करना चाहिए ।।३०।। कुशोदक-पय-घृत-गोमूत्र-गोमय-फल-नीम के पत्र-कटकारी गौओं के शृंग का उदक-दधि-पञ्चगव्य तथा शाक ये क्रम से प्राशन होते हैं। मास-मास मे इस प्रकार से उपवास करने मे परायण होकर स्थित रहे ।।३१-३२।। जो वाचन करने वाला ब्राह्मण हो उसे श्रद्धा के सहित कुसुम्भ-आज्य-लवण-जीरा और गुड देना चाहिए ।।३३।। इससे सूर्यलोक मे स्थित होवे। हे प्रिये ! सूर्यस्था आप परम सतुष्ट होती हैं। मास मास मे द्वादशाक्षर गकार मन्त्र होता है ।।३४।। हे देवि ! इसके पूर्व मे ओंकार है और अन्त मे नमस्कार बतलाया गया है। इन मन्त्रों से पूजित आप हे प्रिये ! परम सन्तुष्ट हो जाती है ।।३५।।

तुष्टा त्वभीप्सितान्नामान्ददासि प्रीतिपूर्वकम् ।
समाप्ते तु व्रते तस्मिन्ब्राह्मण वेदपारगम् ।।३६
सहित भार्ययाभ्यर्च्य गधपुष्पादिभि शुभै ।
द्विज महेश्वर कृत्वा उमा भार्यां तथैव च ।।३७
अन्न सदक्षिण दद्यात्तथा शुक्ले च वाससी ।
रक्त वासोयुग दद्यात्त्वामुद्दिश्य हरप्रिये ।।३८
ब्राह्मणे श्रद्धया युक्तस्तस्या फलमिद शृणु ।
दशवर्षसहस्राणि लोका-प्राप्य परापरान् ।।३९
मोदते भर्तृसहिता यथेंद्रेण शची तथा ।
मानुपत्व पुन प्राप्य म्वेन भर्ता सहैव सा ।।४०

हो जाया करती है ॥४२॥ जो वाचन किये हुए इस ललिता देवी के व्रत की कथा भक्ति भाव से श्रवण करती है जिसको मैंने स्नेह के साथ कहा है वह भी व्रतोपवास करने के ही फल की भागिनी होती है ॥४३॥ जो ललितांग यष्टि लक्ष ललिता का भलीभाँति पूजन करके गन्धोदक अमृत घटी को शिर पर प्रक्षिप्त किया करती है वह स्वर्ग में पहुँच कर ललिताओं में ललाम भूता होती है और भूपों के स्वामी पति को प्राप्त कर इस भूमण्डल का सुखोपभोग किया करती है ॥४४॥

॥ अक्षय तृतीया–व्रत का माहात्म्य ॥

बहुनात्र किमुक्तेन किं बह्वक्षरमालया ।
वैशाखस्य सितामेकां तृतीयां शृणु पाण्डव ॥१

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
यदस्यां क्रियते किञ्चित्सर्वं स्यात्तदिहाक्षयम् ॥२

आदौ कृतयुगस्येयं युगादिस्तेन कथ्यते ।
सर्वपापप्रशमनी सर्वसौख्यप्रदायिनी ॥३

शाकले नगरे कश्चिद्धर्मनामाभवद्वणिक् ।
प्रियंवदः सत्यरतो देवब्राह्मणपूजकः ॥४

तेन श्रुतं वाच्यमानं तृतीया रोहिणी युता ।
यदा स्याद्बुधसंयुक्ता तदा साच महाफला ॥५

तस्यां यद्दीयते किञ्चित्तत्सर्वं चाक्षयं भवेत् ।
इति श्रुत्वा स गंगायां सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥६

गृहमागत्य करकान्मान्नानुदकसंयुतान् ।
अंबुपूर्णान्गृहे कुंभान्क्रमान्निःशेषतस्तदा ॥७

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पाण्डव ! यहाँ पर बहुत अधिक कथन से क्या लाभ है जिनमें बहुत से अक्षरों की माला का प्रयोग हो ऐसी वाणी से

तथाप्यक्षयमेवास्य क्षय याति न तद्धनम् ।
श्रद्धापूर्वं तृतीयाया यद्दत्त विभव विना ॥१४

यव-गोधूम-चणक-सक्तु-दधि-ओदन ईख क्षीर विकार आदि पदार्थ जो कि हिरण्य से युक्त थे शक्ति पूर्वक वणिक् ने पवित्र और शुद्ध मन से ब्राह्मणो को दान मे समर्पित किये थे । भार्या ने उसे रोका भी था क्योकि वह अपने कुटुम्ब मे आसक्त चित्त वाली थी ॥८ ६॥ सब कुछ को नाशवान् मानकर तब तक वह सत्त्व मे स्थित रहा था । धम-अथ और काम मे समासक्त रहा फिर जब तक बहुत समय व्यतीत हो गया था ॥१०॥ तो यह बारम्बार वासुदेव का स्मरण करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ था । इसके पश्चात् वह कुशावती में नरेश्वर क्षत्रिय होकर समुत्पन्न हुआ था ॥११॥ उसके धम से समर्जित अक्षय समृद्धि हो गई थी । उसने श्रेष्ठ दक्षिणा से समन्वित जिनकी समाप्ति की गई थी ऐसे महान् यज्ञो का यजन किया था ॥१२॥ इसमे गौ भूमि और सुवण आदि के अहर्निश बहुत से दान दिये थे । दीन जनो को तृप्त करते हुए तथा आर्तों के दु ख हटाते हुए कामपूवक भोगो का उपभोग किया था ॥१३॥ इतना दानादि सब कुछ करने पर भी उसका धन क्षीण नही हुआ था । क्योकि बिना विभव के भी तृतीया मे श्रद्धा पूवक दान किया था ॥१४॥

एतद्व्रत मयाख्यात श्रूयतामत्र यो विधि ।
उदकु भा सकरका स्नानसर्वरसैर्यु तान् ॥१५
ग्रै ष्मिक सवमेवात्र सस्यदान प्रशस्यते ।
छत्रोपानत्प्रदान च गोभूकाचनवाससाम् ॥१६
यद्यदिष्टतम चान्यत्तद्दे यमविशकया ।
एतत्त सवमाख्यात किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१७
अनाज्यय न मे कि ञ्चिदस्ति स्वस्त्यस्तु तऽनघ ॥१८
अस्या तिथौ क्षयमुपैति हुत न दत्त तेनाक्षया
च मुनिभि कथिता तृतीया ।
उद्दिश्य यत्सुरपितॄ न्क्रियते मनुष्यैस्त
च्चाक्षय भवति भारत सर्वमेव ॥१६

यह व्रत मैंने बतला दिया है इसमे जो विधि है उसका श्रवण करो। उदक के पूर्ण कुम्भो को जिसमे करक (ओरा के लड्डू) पडे हुए हो--स्नान के सर्व रसो से युक्त हो उनका दान करे। ग्रीष्म में उपयोगी सभी कुछ इसमे दान देवे तथा शस्य दान की भी बहुत प्रशसा की गई है। छाता--उपानत का दान तथा गो--भूमि और सुवर्ण का दान एव वस्त्रो का दान करे ॥१५-१६॥ जो-जो भी इष्टतम पदार्थ है और अन्य पदार्थ हैं उनको बिना किसी शका के देना चाहिए। यह सभी कुछ तुमको बतला दिया है। अब अन्य तुम क्या श्रवण करना चाहते हो ? ॥१७॥ हे अनघ ! मुझे तुम्हारे सामने न कहने के योग्य कुछ भी नही है। तुम्हारा कल्याण होवे ॥१८॥ इस तिथि मे हवन किया हुआ और दान दिया हुआ कभी क्षय को प्राप्त नही होता है। इसी कारण से मुनियो ने इसको अक्षय कहा है। जो सुर और पितृगण का उद्देश्य करके मनुष्यो के द्वारा किया जाता है हे भारत ! वह सभी अक्षय हो जाता है।

॥ विनायक चतुर्थी व्रत का माहात्म्य और विधान ॥

यन्नसिद्धयन्ति कर्माणि प्रारब्धानि नरोत्तमै ।
तत्केन कारणेनैतत्पृष्टो मे ब्रूहि माधव ॥१
विनायकोर्थसिद्धयर्थं लोकस्य विनियोजित ।
गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥२
तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोधत ।
स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जल मुण्डाश्च पश्यति ॥३
काषायवाससश्चैव क्रव्यादाश्चाधिरोहति ।
अन्त्यजैर्गर्भरुष्ट्रै सहैकत्रावतिष्ठते ॥४
व्रजमानस्तथात्मान मन्यते तु गत परै ।
विमना विफलारभ ससीदत्यनिमित्तत ॥५
पातकी विहीनच्छायो म्लानत्वहेतुलक्षण ।
करभारूढमात्मान महिषखरग तथा ॥६

यातुधानाश्रितं यानं श्मशानस्यांतिकं नृप ।
वीक्षेत कुरुशार्दूल स्वप्नांते नात्र संशयः ।
तैलार्द्रमात्रं स्वं देहं करवीरविभूषितम् ॥७

युधिष्ठिर ने कहा—हे माधव ! जो श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा आरम्भ किये हुए कर्म्म सिद्ध नहीं होते हैं इसका क्या कारण है—यह मैं आपसे पूछना चाहता हूँ सो आप कृपया मुझे बतला दीजिए। श्रीकृष्ण ने कहा—लोक के अर्थों की सिद्धि के लिये विनायक को विशेष रूप से नियोजित किया गया है। गणों के आधिपत्य पर भगवान् रुद्र तथा ब्रह्मा ने इनकी ही नियुक्ति की है ॥१-२॥ उसके द्वारा जो उपसृष्ट होता है उसके लक्षणों को समझ लो। स्वप्न में अत्यन्त जो अवगाहन किया करता है तथा मुण्डों को जो देखता है ॥३॥ काषाय वस्त्र धारियों को देखता है तथा क्रव्यादों का अधिरोहण करता है। स्वप्न में अन्त्यज—गर्दभ और उष्ट्रों के साथ एक ही स्थान में अवस्थित होता है ॥४॥ व्रजमान होता हुआ जो परों के द्वारा आत्मा को गण मानता है वह उदास और विफल आरम्भ वाला होता हुआ बिना ही निमित्त के दुःख पाता है ॥५॥ पातकी—विहीन कान्ति वाला तथा म्लानत्व हेतु के लक्षण वाला होता है। करभ पर आरूढ़ अपने आपको देखता है तथा महिष और खर से गमन करने वाला देखा करता है ॥६॥ यातुधानों के आश्रित यान तथा श्मशान के समीप में हे नृप ! हे कुरुशार्दूल ! जो स्वप्न के अन्त में देखता है—इसमें संशय नहीं है। तैल से आर्द्र अपने देह को एवं करवीर से भूषित शरीर को देखता है ॥७॥

तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनंदनः ।
कुमारी न च भर्तारमपत्यं गर्भमंगना ॥८
आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा ।
वणिग्लाभं न चाप्नोति कृषिं चैव कृषीवलः ॥९
स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ।
गौरसर्षपकल्केन वस्त्रेणाच्छादितस्य तु ॥१०

सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसस्तथा ।
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु वारे वा धिषणस्य तु ॥११
पुष्ये च वीरनक्षत्रे तस्यैव पुरतो नृप ।
भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिर्वाच्या द्विजैः शुभैः ॥१२
चत्वार ऋग्यजु सामाथर्वणप्रवणास्ततः ।
व्योमकेशं तु सपूज्य पार्वती भूमिजं तथा ॥१३
कृष्णस्य पितर चाथ अवतारं सित तथा ।
धिषण क्लेदपुत्र च कोण लक्ष्मी च भारत ।
विधु तुद वाहुलेय नदकस्य च धारिणम् ॥१४

उससे उपसृष्ट राजा का पुत्र राज्य को प्राप्त नही करता है । कुमारी स्वामी को और अगना गर्भ में अपत्य को प्राप्त नही किया करती है ॥८॥ श्रोत्रिय आचार्य पद को तथा शिष्य अध्ययन को—वणिक् लाभ को और किसान कृषि को प्राप्त नहीं करता है ॥९॥ उसका स्नपन किसी भी पुण्यदिन में विधि पूर्वक करना चाहिए । गौर सर्षप (सरसो) के कल्क से आच्छादित होवे ॥१०॥ सर्वौषधों से—सर्वगन्धो से विलिप्त शिर वाला होवे । शुक्ल पक्ष मे चतुर्थी तिथि में अथवा धिषण के वार में—पुष्य और वीर नक्षत्र में हे नृप ! उसके ही आगे स्थित होवे । भद्रासन पर उपविष्ट होवे तथा फिर शुभ द्विजों के द्वारा स्वस्ति वाचन करना चाहिए ॥११-१२॥ चार ऋक्-यजु-साम और अथर्व के प्रवण विप्र होवें इसके पश्चात् व्योमकेश का तथा पार्वती और भूमिज का भली-भाँति पूजन करें ॥१३॥ कृष्ण के पिता सित अवतार—धिषण—क्लेद पुत्र—कोण—लक्ष्मी—विधुन्तुद—वाहुलेय और नन्दक के धारण करने वाले का हे भारत ! पूजन करे ॥१४॥

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्सगमाद्ध्रदात् ।
मृत्तिका रोचना रत्न गुग्गुल चाप्सु निक्षिपेत् ॥१५
यदाहृत ह्येकवर्णैश्चतुर्भि कलशैर्ह्रदात् ।
चर्मण्यानडुहे रक्ते स्थाप्य भद्रासन तथा ॥१६

सहस्राक्ष शतधारमृषिभि. पावन कृतम् ।
तेन त्वामभिषिचामि पावमान्य पुनतु मे ॥१७
ॐ भग ते वरुणो राजा भग सूर्यो वृहस्पति ।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भग सप्तर्षयो ददु ॥१८
यत्ते केशेपु दौभाग्य सीमते यच्च मूर्द्ध नि ।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नतु सर्वदा ॥१९
स्नातस्य सार्षप तैल स्रु वेरणोदु बरेण तु ।
जुहुयान्मूर्ध्नि शकलान्सव्येन प्रतिगृह्य च ॥२०
मितश्च सम्मितश्चै व तथा शालकटकटौ ।
कूष्माण्डो राजपुत्रश्चे त्यते स्वाहासमन्वितै. ॥२१

अश्वो के रहने के स्थान से—गजो के बँधने के स्थान से—वल्मीक से—सगम से—ह्रद से मृत्तिका लावे उसको रोचना—रत्न और गूगल को जल में प्रक्षिप्त करे ॥१५॥ एक वर्ण वाले चार कलो से ह्रद से जो आहृत है उसे आनडुह चर्म में रक्त में स्थापित करे तथा भद्रासन लगावे ॥१६॥ सहस्राक्ष शतधार ऋषियो ने पावन किया है । उससे आपका अभिषेचन करता हूँ । पवमानी वे मुझे पवित्र करें ॥१७॥ तुझे राजा वरुण ने भग दिया है—सूर्य—वृहस्पति ने इन्द्र और वायु ने तथा सप्तर्षियो ने भग दिया है ॥१८॥ जो तेरे केशो में दौर्भाग्य है—सीमन्त में तथा मूर्द्धा में है । ललाट में कानो में और आँखो में दौर्भाग्य विद्यमान है उसे ये जल सर्वदा के लिये विनष्ट कर देवे ॥१९॥ नवस्नात हो जावे तो औदुम्बर स्त्रुव से सार्षप तैल की मूर्द्धा में आहुतियाँ देवे और शकलो को सव्य से प्रति ग्रहण करे ॥२०॥ मित—सम्मित—शाल—कटकट—कूष्माण्ड और राज पुत्र अन्त में स्वाहा पद से समन्वित मन्त्रो से देवे ॥२१॥

नामभिर्वलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितै. ।
दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वत ॥२२
कृताकृतांस्तडुलाश्चपल लौदनमेव च ।
मत्स्यान्द्व्यपक्वाश्च तथा मासमतावदेव तु ॥२३

पुष्पान्वित्त सुगन्ध च सुरा च त्रिविधामपि ।
मूलक पूरिका पूपास्तथैवोडेरकस्रज ॥२४
दध्यन्न पायस चैव गुडवेष्टितमोदकम् ।
विनायकस्य जननीमुपतिष्ठे त्ततोविकाम् ।
दूर्वासर्षप पुष्पाणा दत्त्वार्घ्यं पूर्णमञ्जलिम् ॥२५
रूपदेहि जय देहि भग भवति देहि मे ।
पुत्रान्देहि धन देहि सर्वा कामाश्च देहि मे ॥२६

नमस्कार से युक्त नामा तथा बलि के मन्त्रो के द्वारा चतुष्पथ में सब ओर कुशो को प्रसारित कर शूप म बलि देनी चाहिए ॥२२॥ कृता कृत तण्डुल–चेपन–ओदम अपक्व मत्स्य इतना ही मास होवे ॥२३॥ पुष्पों से समन्वित सुगन्ध–तीनो प्रकार की सुरा–मूलक–पूरिका–पूप–ओडेरक स्रज–दधि अन्न–पायस–गुडवेष्टित मोदक हो। इसके पश्चात् *विनायक की जननी अम्बिका का उपस्थान करे और* दूर्व–सरसो पुष्पो से पूर्ण अञ्जलि करके अर्घ्य देना चाहिए ॥२४ २५॥ हे देवि ! आप रूप–लावण्य प्रदान करें–भग देवें–पुत्रो को देवें–धन देवें और मेरी सभी कामनाओ को पूण कर देवें ॥२६॥

प्रबल कुरु मे देवि बलविख्यातिसम्भवम् ।
शुक्लमाल्याम्बरधर शुक्लगन्धानुलेपन ।
भोजयेद्ब्राह्मणा दद्याद्वस्त्रयुग्म गुरोरपि ॥२७

एव विनायक पूज्य ग्रहाश्चैव विधानन ।
कमणा फलमाप्नोति श्रिय प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥२८

आदित्यस्य सदा पूजा तिलक स्वामिनस्तथा ।
महागणपतेश्चैव कुर्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२९
वैनायक विनयसत्त्ववता नराणा
स्नान प्रशस्तमिह विघ्नविनाशकारि ।
कुर्वंति ये विधिवदत्र भवति तेषा
कार्याण्यभीष्टफलदानि न सशयोऽत्र ॥३०

हे देवि ! मेरा बल-विख्याति आदि अति प्रबल कर देवें। फिर शुक्ल माल्य और अम्बरधारी तथा शुक्ल गन्ध का अनुलेपन करने वाला होकर ब्राह्मणों का भोजन करावे और गुरु को भी करावे तथा दो वस्त्र देवे ॥२७॥ इस प्रकार से विनायक का पूजन करके एवं विधि पूर्वक ग्रहों का भी यजन करके मनुष्य कर्मों का फल प्राप्त किया करता है और उत्तम श्री को भी पा जाता है ॥२८॥ सदा भगवान् आदित्य की पूजा तथा स्वामी का तिलक एवं महागणपति की पूजा करने वाला मनुष्य सिद्धि की प्राप्ति करता है ॥२९॥ विनय सत्व वाले पुरुषों का वैनायक स्नान यहाँ पर परम प्रशस्त होता है और विघ्नों के विनाश का करने वाला है। जो मनुष्य यहाँ पर इसको किया करते हैं उनके सार्थं अभीष्ट फलों के देने वाले अवश्य ही होते हैं—इसमें बिल्कुल भी संशय नहीं है ॥३०॥

अथाविघ्नकरं राजन्कथयामि व्रतं तव ।
येन सम्यक्कृतेनेह न विघ्नमुपजायते ॥३१
चतुर्थ्यां फाल्गुने मासि गृहीतव्यं व्रतं त्विदम् ।
नक्ताहारेण राजेन्द्र तिलान्नं पारणं स्मृतम् ॥३२
तदेव वह्नौ होतव्यं ब्राह्मणाय च तद्भवेत् ॥३३
शूराय वीराय गजाननाय लम्बोदरायैकरदाय चैव ।
एवं तु संपूज्य पुनश्च होमं कुर्याद्व्रती विघ्नविनाशहेतो. ॥३४
चातुर्मास्या व्रतं चैव कृत्वैवं पञ्चमे तथा ।
सौवर्णं गजवक्त्रं तु कृत्वा विप्राय दापयेत् ॥३५
ताम्रपात्रैः पायसपूर्तैश्चतुर्भिः सहितं नृप ।
पञ्चमनं तिलैः सार्द्धं गणेशाधिष्ठितेन च ॥३६
मृन्मयान्यपि पात्राणि वित्तहीनस्तु कारयेत् ।
हेरम्बं राजतं तद्वद्विधिनाऽनेन दापयेत् ।
इत्थं व्रतमिदं कृत्वा सर्वविघ्नैः प्रमुच्यते ॥३७

कर लेने पर यहाँ कोई भी किसी प्रकार का विघ्न उठता ही नहीं है ॥३१॥ फाल्गुन मास म चतुर्थी तिथि मे इस व्रत को ग्रहण करना चाहिए। हे राजेन्द्र ! इसम नक्ताहार (रात्रि में भोजन) होता है और तिलान्न का धारण किया जाता है ॥३२॥ वही वह्नि म हवन करे और वही ब्राह्मण के लिये होवे ॥३३॥ शूर के लिये-वीर के लिये-गजानन के लिये-लम्बोदर और एक रद के लिये है। इस प्रकार से भली भाँति पूजन करके व्रत धारण करने वाले को विघ्नों के विनाश करने के हेतु से पुन होम करना चाहिए॥३४॥ इस व्रत को चार मास तक करे और पाँचवें मास म एक सुवण का निर्मित गजवक्त्र लाकर विप्र को दिलाना चाहिए ॥३५॥ हे नृप ! पायस से भरे चार ताम्र पात्रो के सहित एक पाँचवाँ पात्र ग्रहण करे जो तिलो म तथा गणेश स अधिष्ठित होवे ॥३६॥ यदि धनकी हीनता हो तो मिट्टी के पात्रो से भी इस क्रिया को करा सकता है उसी भाँति राजत हेरम्ब को उसी विधि-विधान से दिलाना चाहिए। इस प्रकार से इस व्रत को करके मनुष्य समस्त विघ्नो से छुटकारा पा जाया करता है ॥३७॥

हयमेधस्य विघ्ने तु सजाते सगर पुरा ।
एतदेव व्रत चीर्वा पुनरश्व प्रलब्धवान् ॥३८

तथा रुद्रेण देवेन त्रिपुर निघ्नता पुरा ।
एतदेव कृत यस्मात्त्रिपुरस्तेन घातित ॥३९

मया समुद्र विशता एतदेव व्रत कृतम् ।
तेनाद्रिद्रुमसयुक्ता पृथिवी पुनरुद्धृता ॥४०

अन्यैरपि महीपालैरेतदेव कृत पुरा ।
तपोऽर्थिभियज्ञ सिद्धर्यं निर्विघ्न स्यात्परतप ॥४१

अनेन कृतमात्रेण सवविघ्नै प्रमुच्यते ।

विघ्नानि तस्य न भवति गृहे कदाचि-
द्धर्मार्थकामसुखसिद्धिविघातकानि ।
य. सप्तन्दुशकलाकृतिका तदत
विघ्नेशमर्चयति नक्तकृती चतुर्थ्याम् ।।४३

प्राचीन काल मे हयमेधयज्ञ के कर्म मे विघ्न उपस्थित हो जाने पर राजा सगर ने इसी व्रत का समाचरण विधि पूर्वक किया था और फिर गुम हुए अश्व की प्राप्ति की थी ।।३८।। पहिले समय मे महान् देव रुद्र ने त्रिपुरासुर का हनन करने के समय मे भी इसी व्रत को किया था जिसका फल यह हुआ कि उन्होंने त्रिपुर का वध निर्विघ्न कर दिया था ।।३६।। मैंने भी जिस समय म समुद्र म प्रवेश किया था उस समय मे यही व्रत किया था । इससे पर्वतो और द्रुमो से सयुक्त पृथिवी का पुनरुद्धार किया था ।।४०।। पहिले अन्य बडे-बडे राजाओं ने भी यही व्रत किया था । हे परन्तप ! अर्थियो के द्वारा यज्ञ की सिद्धि के लिये तप निर्विघ्न हुआ करता है ।।४१।। इस व्रत के करने भर से ही सभी विघ्नो स मनुष्य छुटकारा पा जाया करते हैं । भगवान् वराह का वचन है कि इस व्रत के करने वाला मृत हो जाने पर रुद्रपुर की प्राप्ति करता है ।।४२।। उस पुरुष के घर मे किसी समय मे भी विघ्न नही हुआ करत हैं जो धर्म-अर्थ-काम-सुख-सिद्धि के विघात करने वाले हैं । जो सप्तमी मे इन्दु के खण्ड की आकृति वा चतुर्थी मे नक्त-व्रती तदत विघ्नेश का समर्चन करता है उस विघ्नो का सर्वथा अभाव होता है ।।४३।।

।। शान्ति व्रत का माहात्म्य ।।

शान्तिव्रत प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाधुना ।
यन चीर्णेन शान्ति स्यात्सवदा गृहमेधिनाम् ।।१
पचम्या शुक्लपक्षस्य कार्तिके मासि पार्थिव ।
आरभ्य वर्षमेकं तु ह्यश्नीयान्नम्लवर्जितम् ।।२

नक्तं देवं च संपूज्य हरिं शेषोपरिस्थितम् ।
अनंतायेति पादौ तु धृतराष्ट्राय वै कटिम् ॥३
उदरं तक्षकायेति उरः कर्कोटकाय च ।
पद्माय कर्णौ संपूज्य महापद्माय दोर्युगम् ॥४
शंखपालाय वक्षस्तु कुलिकायेति वै शिरः ।
एवं विष्णुं सर्वगतं पृथगेव प्रपूजयेत् ॥५

श्रीकृष्ण ने कहा—अब हम शान्ति व्रत के विषय में वर्णन करते हैं। आप एक निष्ठ मन वाले होकर उसका श्रवण करिये। यह एसा अद्भुत व्रत है जिसके भाँति सम्पादन करने पर गृहस्थियों के घर में सर्वदा पूर्ण शान्ति स्थित रहा करती है ॥१॥ हे पार्थिव ! कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में पचमी तिथि मे इस व्रत का आरम्भ करें और फिर एक वर्ष तक अम्ल से रहित ही भोजन करना चाहिए ॥२॥ रात्रि के समय में शेष की शय्या पर विराजमान हरि देव का समर्चन करे—अनन्त के लिये चरणों का यजन करे—धृतराष्ट्र के लिए कटि का पूजन करे ॥३॥ तक्षक के लिये उदर का करे—कार्कोटक के लिये उर स्थल का अर्चन करे—पद्म संज्ञक सर्प के लिये दोनों कानों का करे—महापद्म के लिये दोर्युग का पूजन करना चाहिए ॥४॥ शंखपाल के लिये वक्ष स्थल का और कुलिक लिये शिर का पूजन करे। इस प्रकार से सब में रहने वाले विष्णु का पृथक् ही पूजन करे ॥५॥

क्षीरेण स्नपनं कुर्याद्धरिमुद्दिश्य वाग्यतः ।
तदग्रे होमयेत्क्षीरं तिलैः सह विचक्षणः ॥६
एवं संवत्सरस्यांते कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
अच्युतं कांचनं कृत्वा सुवर्णं तु विचक्षणः ॥७
गां सवत्सां वस्त्रयुगं कांस्यपात्रं सपायसम् ।
हिरण्यं च यथाशक्ति ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥८
एवं यः कुरुते भक्त्या व्रतमेतन्नराधिप ।
तस्य शांतिर्भवेन्नित्यं नागानामभयं तथा ॥९

शेषाहिभोगशयनस्थमयोगसूर्ति
सपूज्य यज्ञपुरुष पतगेंद्रनाथम् ।
य पूजयति मधुरै सितपचमीषु
तेषा न नागजनित भयमभ्युपैति ॥१०

वाग्यत अर्थात् मौन होकर हरि का उद्देश्य लेकर क्षीर से स्नपन करे और विचक्षण पुरुष को उनके आगे तिलो के साथ क्षीर का हवन करना चाहिए ॥६॥ इस तरह से जब सम्वत्सर का अन्त हो तब ब्राह्मणो को भोजन करावे । कचन की अच्युत प्रभु की मूर्त्ति निर्मित करा कर उसे और सुवर्ण ब्राह्मण को देवे ॥७॥ गौ जो वत्स के सहित हो–दो वस्त्र–कांसी का पात्र–पायस से परिपूर्ण–यथा शक्ति सुवर्ण ब्राह्मण को उपपादित करे ॥८॥ हे नराधिप ! इस तरह से जो भक्ति भाव से इस व्रत को किया करता है उसको नित्य ही शान्ति होती है और नागो का सदा भय नही होता है ॥६॥ शेष नाग के भोग पर शयन म सस्थित–अयोग सूति–पतगेन्द्र नाथ यज्ञ पुरुष का भली भांति पूजन करके शुक्ल पक्ष की पचमी तिथियो मे उनका मधुरा के द्वारा पूजन किया करते हैं वे नागों से उत्पन्न होने वाले भय को कभी प्राप्त नही होते हैं ॥१०॥

॥ नाग पचमी व्रत का माहात्म्य ॥

पचमी दयिता राजन्नागानदविवर्द्धनी ।
पञ्चम्या किल नागाना भवतीत्युत्सवो महान् ॥१
वासुकिस्तक्षकश्चैव कालियो माणिभद्रक ।
धृतराष्ट्रो रैवतश्च कर्कोटकधनजयो ।
एत प्रयच्छन्त्यभय प्राणिनां प्राणजीविनाम् ॥२
पञ्चम्या स्नपयन्तीह नागान्क्षीरेण ये नरा ।
तेषां कुले प्रयच्छन्ति अभय प्राणिनां सदा ॥३

शप्ता नागा यदा मात्रा दह्यमाना दिवानिशम् ।
निर्वापिता गवा क्षीरैस्ततः प्रभृति वल्लभाः ॥४
मात्रा शप्ताः कथं नागाः किमुद्दिश्य च कारणम् ।
कथं वा तस्य शापस्य विनाशोऽभूज्जनार्दन ॥५
उच्चैःश्रवाश्वराजश्च श्वेतवर्णोऽमृतोद्भवः ।
तं दृष्ट्वा चाब्रवीत्कद्रूर्नागानां जननी स्वसाम् ॥६
अश्वरत्नमिदं श्वेतं पश्यपश्यामृतोद्भवम् ।
कृष्णाश्च वीक्ष्यसे वालान्सर्वश्वेतानुताद्य वै ॥७

श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन् ! दयिता पंचमी नागों के आनन्द को बढ़ाने वाली है। इस पञ्चमी में नागों का एक महान् उत्सव होता है ॥१॥ वासुकि—तक्षक—कालिक—मणिभद्रक- धृतराष्ट्र—रैवत- कर्कोटक-ये सब प्राणों से जीवी प्राणियों को अभय प्रदान किया करते हैं ॥२॥ जो मनुष्य पञ्चमी तिथि में यहां लोक में नागों को क्षीर से स्नपन करते हैं उनके कुल में सदा प्राणियों को अभय का दान दिया करते हैं ॥३॥ माता के द्वारा जब नाग शाप दिये गये थे तो वे अहर्निश दह्यमान् रहा करते हैं। गायों के क्षीर से जब वे निर्वापित होते हैं तो तभी से लेकर वे प्रिय होजाया करते हैं ॥४॥ युधिष्ठिर ने कहा—माता के द्वारा नागों को क्यों और कैसे शाप दिया गया था। इस शाप देने का क्या उद्देश्य था और इसका कारण भी क्या हुआ था फिर किस तरह से उस दिये हुए शाप का विनाश हुआ था ? हे जनार्दन ! यह कृपया बतलाइये ॥५॥ श्रीकृष्ण ने कहा—उच्चैःश्रवा अश्वों का राजा है। वह श्वेत वर्ण वाला है और अमृत से उसकी उत्पत्ति हुई है। उसको देखकर नागों की जननी कद्रू अपनी बहिन से बोली—॥६॥ इस श्वेत अश्वरत्न को देख-देख। यह अमृत से उद्भव प्राप्त करने वाला है। कृष्ण वर्ण वाले बाल भी सब श्वेत ही दिखलाई देते हैं ॥७॥

सर्वश्वेतो हयवरो नाय कृष्णो न लोहितः ।
कथं त्वं वीक्षसे कृष्णं विनतोवाच तां स्वसाम् ॥८

वीक्षेऽहमेकनयना कृष्णवाल समन्वितम् ।
द्विनेत्रा च त्वं विनते न पश्यसि पण कुरु ॥६
अहं दासी भविनी ते कृष्णकेशे प्रदर्शिते ।
नचेद्दर्शयसे कद्रु मम दासी भविष्यसि ॥१०
एव ते विपण कृत्वा गते क्रोधसमन्विते ।
सुपुप्ते प्राज्यदोपे तु कद्रूर्जिह्ममचिंतयत् ॥११
आहूय पुत्रान्प्रोवाच वाला भूत्वा हयोत्तमे ।
तिष्ठध्व विपणी जेष्ये विनता जयगृद्धिनीम् ॥१२
प्रोचुस्ते जिह्मवुद्धि ता नागा कद्रू विगृह्य च ।
अधर्म एप तु महा-करिष्यामो न ते वच ।
अशपद्रुषिता कद्रू पावको व प्रधक्ष्यति ॥१३
गते बहुतिथे काले पाडवो जनमेजय ।
सर्पसत्र स कर्ता वै भूमावन्यै सुदुष्करम् ॥१४

विनता ने कहा—यह हयवर सभी श्वेत है । न तो यह कृष्ण वर्ण वाला कहीं भी है और न लोहित है । तुम इस को कैसे कृष्ण वर्ण वाला देख रही हो—विनता ने इस तरह अपनी बहिन से कहा था ॥८॥ कद्रू ने कहा—एक नयन वाली मैं इसको कृष्ण वालो से समन्वित देख रही हूँ । हे विनते ! आप तो दो नत्रो वाली है फिर भी नहीं देख रही हो—लाओ कुछ शर्त्त बद लो ॥६॥ विनता ने कहा—यदि कृष्ण केश हम के दिखला दिये तो मैं आपकी दासी हो जाऊँगी और यदि हे कद्रू ! तुम ऐसा नही दिखा सकी तो फिर मेरी दासी तुम को होना होगा ॥१०॥ इस प्रकार से वे दोनो शर्त्त लगाकर क्रोध से समन्वित होती हुई चली गईं थी । प्राज्यदोप के सुपुप्त हो जाने पर कद्रू ने एव जिह्म (कुटिलता) का चिन्तन किया था । अपने पुत्रो को बुला कर कहा—तुम सब बाल बन कर उस उत्तम अश्व मे स्थित हो जाओ । तुम वही पर स्थित रहोगे । मैं शर्त्त मे जीत जाऊगी क्योंकि यह विनता जय-गृद्धिनी हो रही है ॥११–१२॥ नागो ने जिह्म बुद्धि वाली उस कद्रू को पकड कर कहा—यह तो महान् अधर्म का काम है । हम आपका यह

वचन नही करेंगे । तव तो कद्रू न रोप मे भर कर उन पुत्रो को शाप दे दिया था कि पावक तुमको जलावेगा ॥१३॥ बहुत-समय व्यतीत हो जाने पर पाण्डव जनमेजय सर्प सत्र करेगा जोकि अन्य लोगो के द्वारा महान् कठिन है ॥१४॥

तस्मिन्सत्रे च तिग्माशु पावको भक्षयिष्यति ।
एव शप्त्वा तदा कद्रू प्रत्युवाच न किंचन ॥१५
माता शप्तस्तदा नाग कर्तव्य नान्वपद्यत ।
वासुकिर्दु खसतप्त पपात भुवि मूर्छित ॥१६
वासुकि दु खित दृष्ट्वा ब्रह्मा प्रोवाच सात्वयन् ।
मा शुचो वासुकेऽत्यर्थं शृणु मद्वचन परम् ॥१७
यायावरकुले जातो जरत्कारुरिति द्विज ।
भविष्यति महातेजास्तस्मिन्काले तपोनिधि ॥१८
भगिनी च जरत्कारु तस्य त्व प्रतिदास्यसि ।
भविता तस्य पुत्रोऽसावस्तीक इति विश्रुत ॥१९
स तत्सत्र प्रवृद्ध वै नागाना भयद महत् ।
निषेधयिष्यति मुनिर्वाग्भि सपूज्य पार्थिवम् ॥२०
तदिय भगिनी नाग रूपौदार्यगुणान्विता ।
जरत्कारुर्जरत्कारो प्रदेया ह्यविचारत ॥२१

उस सत्र मे तिग्म किरणो वाला पावक खाजायगा एवमादि रीति से शाप देकर कद्रू ने फिर कुछ भी नही कहा था ॥१५॥ माता के द्वारा शाप दिये गये नाग उस समय मे कुछ भी अपना कर्त्तव्य न खोज सके थे । वासुकि तो इसके महान् दु ख स सतप्त होकर मूर्च्छित होकर भूमि म गिर गया था ॥१६॥ वासुकि को इस भाँति अति दु खित देख कर ब्रह्मा जी ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—हे वासुके ! इसका तुम अत्यन्त रज मत करो और मेरा जो परम वचन है उसका श्रवण करो ॥१७॥ यायावर कुल म जरत्कारु नाम वाला द्विज उत्पन्न हुआ है । उस समय म वह तपोनिधि महान् तेजस्वी हो जायगा ॥१८॥ उस जरत्कारु को तुम अपनी भगिनी होग । उसका एक पुत्र आस्तीक नाम

से प्रसिद्ध होगा ॥१९॥ वह मुनि इस प्रवृद्ध और नागों को महान् भय का देने वाले सत्र का अपनी वाणियों से पार्थिव का सम्पूजन करके निषेध करेगा ॥२०॥ सो हे नाग ! रूप और औदार्य गुण से युक्त भगिनी को जरत्कारु को बिना कुछ विचारें किये अवश्य ही दे देनी चाहिए ॥२१॥

यदासौ प्रार्थ्यतेऽरण्ये यत्किञ्चित्प्रवदिष्यति ।
तत्कर्तव्यमशेषेण इच्छेच्छ्रेयस्तथात्मनः ॥२२
पितामहवचः श्रुत्वा वासुकिः प्रणिपत्य च ।
तथाकरोद्यथा चोक्तं यत्न परममास्थितः ॥२३
तच्छ्रुत्वा पन्नगाः सर्वे प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः ।
पुनर्जातमिवात्मानं मेनिरे भुजगोत्तमाः ॥२४
अप्लवे तु निमग्नाना घोरे यज्ञाग्निसागरे ।
आस्तीकस्तत्र भविता प्लवभूतोऽभयप्रदः ॥२५
श्रुत्वा स चाग्निराजानमृत्विजस्तदनन्तरम् ।
निवर्तयिष्यति याग नागाना मोहन परम् ॥२६
पञ्चम्या तत्र भविता ब्रह्मा प्रोवाच लेलिहान् ।
तस्मादियं महाराज पञ्चमी दयिता शुभा ॥२७
नागाना हर्षजननी दत्ता वै ब्रह्मणा पुरा ।
दत्त्वा तु भोजनं पूर्वं ब्राह्मणाना तु कामतः ॥२८

जिस समय में यह अरण्य में प्रार्थ्यमान हो और जो कुछ भी कहेंगी वह पूर्णतया कर डालना चाहिए यदि अपना श्रेय तुम चाहते हो॥२२॥ पितामह के इस वचन का श्रवण कर वासुकि ने उनको प्रणाम किया था और परम यत्न में समास्थित होकर वही किया था जो कुछ भी उससे कहा गया था ॥२३॥ यह सुन कर सभी पन्नग हर्ष से उत्फुल्ल नेत्रों वाले होगये थे । सब भुजगोत्तमों ने अपने आपको पुनः जन्म प्राप्त करने वाला माना था ॥२४॥ बिना किसी प्लव के घोर यज्ञ की अग्नि रूपी सागर में डूबने वालों को वहाँ पर आस्तीक अभय प्रदान करने वाला प्लव (तरण का साधन) के समान होगा ॥२५॥ वह अग्नि इसे

सुन कर तदनन्तर ऋत्विजगण नागो का परम मोहन यज्ञ को निवृत्त कर देंगे ।।२६।। ब्रह्माजी ने उन सर्पो से कहा—वह पचमी मे होगा । हे महाराज ! इसी कारण से यह पञ्चमी शुभा दयिता कही जाती है ।।२७।। यह नागो को हर्ष के उत्पन्न करने वाली है और ब्रह्माजी ने ही पहिले इसे दिया था । कामना से पहिले ब्राह्मणो को भोजन का दान करे ।।२८।।

विसृज्य नागा प्रीयता ये केचित्पृथिवीतले ।
हिमाचले ये वसन्ति येऽन्तरिक्ष दिविस्थिता ।
ये नदीषु महानागा ये सर स्वभिगामिन ।।२६
ये वापीषु तडागेषु तेषु सर्वेषु वै नमः ।।३०
नागान्विप्राश्च सपूज्य विसृज्य च यथार्थत ।
तत पश्चाच्च भुञ्जीयात्सह भृत्यैर्न राधिप ।।३१
पूर्वं मधुरमश्नीयात्स्वेच्छया यदनतरम् ।
एव नियमयुक्तस्य यत्फल यन्निबोध मे ।।३२
मृतो नागपुर याति पूज्यमानोऽप्सरोगणै. ।
विमानवरमारूढो रमते कालमीप्सितम् ।।३३
इह चागत्य राजासौ सर्वराजवरो भवेत् ।
सर्वरत्नसमृद्धश्च वाहनाढ्याश्च जायते ।।३४
पञ्चजन्मन्यसौ राजा द्वापरेद्वापरे भवेत् ।
आधिव्याधिविनिर्मुक्त पत्नीपुत्रसहायवान् ।
तस्मात्पूज्याश्च नागाश्च घृतक्षीरादिना सदा ।।३५

विसर्जन करके समस्त नाग जो भी इस पृथिवी तल मे कोई स्थित हैं प्रसन्न होवें । जो हिमालय मे निवास करते हैं या अन्तरिक्ष मे एव दिवलोक म स्थित हैं । जो महानाग नदियो मे स्थित रहते हैं । और जो सरोवरो मे विराजमान हैं ।।२६।। जो वावडियो मे-तालावो मे स्थित है उन सबके लिये नमस्कार है ।।३०।। नागो का और विप्रो का भली भाँति अचन करके फिर उन सबका विसर्जन कर देवे जोकि वास्तविक रूप से किया जावे इसके पश्चात् हे नराधिप ! अपने भृत्यो के सहित

भोजन करे।३१।सब से पूर्व जो मधुर पदार्थ हो उनका भक्षण करे उसके अनन्तर फिर स्वेच्छा से भोजन करे। इस प्रकार से जो नियम में युक्त होता है उसका जो फल प्राप्त होता है उसे भी मुझ से जानलो ॥३२॥ मरने के पश्चात् वह नागपुर को प्राप्त होता है जहाँ पर अप्सराओं के समूहों द्वारा पूज्यमान हुआ करता है। एक परम श्रेष्ठ विमान पर समारूढ़ होकर अपने अभीष्ट समय पर्यन्त रमण किया करता है ॥३३॥ फिर जब भूमि में प्राप्त होता है तो वह समस्त राजाओं में श्रेष्ठ राजा होता है जो समस्त रत्नों से समृद्ध और वाहनों से आढ्य हुआ करता है ॥३४॥ द्वापर द्वापर में वह पाँच जन्मों तक राजा होता है जो सभी आधि और व्याधियों से विमुक्त होकर पत्नी तथा पुत्रों की सहायता वाला हुआ करता है। इस कारण से नागों का मन्त्र घृत और क्षीर आदि के द्वारा पूजन अवश्य ही करना चाहिए ॥३५॥

यह आप मेरे सामने विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ॥३६॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन् ! जो मनुष्य नाग के द्वारा दष्ट होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है वह अध पतित होता है। अधोभाग मे जाकर वह निर्विष सर्प होता है—इसमे कुछ भी सशय नही है ॥३७॥ युधिष्ठिर ने कहा—जिसका पिता नाग से दष्ट हो—भाई—माता सुहृत्-पुत्र भगिनी-पुत्री-भार्या कोई भी तो फिर उसका क्या कर्त्तव्य है—यह मुझे बतलाइये ॥३८॥ हे गोविन्द ! उस दष्ट हुए प्राणी के मोक्ष के लिए कोई दान—व्रत या उपवास हो तो हे यदुशार्दूल ! मुझे बतलाइये जिससे वह स्वर्गति को प्राप्त कर सके ॥३९॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन् ! नागो के पुष्टि का वर्द्धन करने वाली यही पञ्चमी है इसी का उपवास उसे करना चाहिए। यह उपवास भी पूरे एक वर्ष पर्यन्त करे। हे राजेन्द्र ! इसका जो विधान है उसका आप अब श्रवण करिये ॥४०॥ हे महीपते ! भाद्रपद मास मे शुक्ल पक्ष मे जो पञ्चमी है वह परम पुण्यतम कही गयी है। सद्‌गति की कामना से इसका ही ग्रहण करना चाहिए ॥४१॥ हे भरतर्षभ ! वर्ष के अन्त तक बारह पञ्चमी तिथियाँ जाननी चाहिए। चतुर्थी के एक बार उसमे रात्रि मे बताया गया है अर्थात् भोजन करे ॥४२॥

भूरिचन्द्रमय नागमथवा कलधौतजम् ।
कृत्वा दारमग चापि उताहो मृन्मय नृप ॥४३
पञ्चम्या मर्चयेद्भक्त्या नाग पञ्चफण शृणु ।
करवीरैस्तथा पद्मै र्जातीपुष्पै सुशोभनै. ॥४४
गन्धपुष्पै सनैवेद्यै पूज्य पन्नगसत्तमम् ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद् घृतपायसमोदकै ॥४५
नारायणबलि कार्य सर्पदष्टस्य देहिन ।
दाने पिण्डप्रदाने च ब्राह्मणाना च तर्पयेत् ॥४६
वृषोत्सर्गस्तु कर्तव्यो गते सवत्सरे नृप ।
स्नान कृत्वोदक दद्यात्कृष्णोऽत्र प्रीयतामिति ॥४७
अनन्तो वासुकि: शेष. पद्म. कम्बल एव च ।
तथा तक्षक नागश्च नागश्चाश्वतरो नृप ॥४८

धृतराष्ट्र शखपाल कालियस्तक्षकस्तथा ।
पिगलश्च महानागो मासिमासि प्रकीर्तिता ।
वत्सराते पारणस्यान्महाब्राह्मणभोजनम् ॥४६

भूरि चन्द्रमय अथवा सुवर्ण का निर्मित तथा काष्ठ से विरचित या हे नृप ! मिट्टी का बनाया हुआ नाग पचमी तिथि म पाँच फणा वाले नाग का भक्तिभाव स अचन करे—उसका विधान सुनो । कर वीर के पुष्प हो—पद्मपुष्प हो अथवा परम शोमन जाती के पुष्प हो जो गन्ध युक्त हो उ ही से मनन करना चाहिए ॥४३-४४॥ नैवेद्य भी उनके साथ म नेकर श्रेष्ठ पन्नग का पूजन करके पीछे ब्राह्मणो को घृतपायस से तथा मोदकों से भोजन करावे ॥४५॥ जो मनुष्य सर्प के द्वारा काटा गया हो और उससे उसकी मृत्यु हुई हो उस देहधारी की नारायण बलि अवश्य ही करानी चाहिए । दान मे तथा पिण्ड प्रदान के कम्म मे ब्राह्मणो को तृप्त करे ॥४६॥ हे नृप ! जब एक वत्सर समाप्त होजाय तो उसी के उद्देश्य से वृष का उत्सग करे । स्नान करके उदक देकर यहा पर श्रीकृष्ण प्रसन्न होवें—यह कह कर करे ॥४७॥ अनन्त—वासुकि शख—पद्म कम्बल—तथा तक्षक नाग और हे नृप ! अश्वतर नाग धृतराष्ट्र महानाग मास मास मे कीर्त्तित किये गये हैं । वर्ष के अन्त मे पारण करे तथा महा ब्राह्मण भोजन करावे ॥४८ ४६॥

इतिहासविदे नाग काचनेन कृतो नृप ।
तथार्जुनी प्रदातव्या सवत्सा कास्यदोहना ॥५०
एष पारणके पाथ विधि प्रोक्तो विचक्षणैं ।
कृते व्रतवरे तस्मिन्सद्गति याति बान्धवा ॥५१
ये दन्दशूकरदनदष्टा प्राप्ता ह्यधोगतिम् ।
वर्षमेक चरिष्यति भक्त्या ये व्रतमुत्तमम् ।
दाष्ट्रिक मोक्ष्यते तेषा शुभ स्थानमवाप्स्यति ॥५२
यश्च द शृणुयान्नित्य पठेद्भक्त्या समन्वित ।
न वै कुटुम्बे नागेभ्यो भय भवति कुत्रचित् ॥५३

तद्वद्भाद्रपदे मासि पञ्चम्या श्रद्धयान्वित ।
यस्त्वालिख्य नरो नागान्कृष्णवर्णादिवर्णकै ।
पूजयेद्गन्धपुष्पैस्तु सर्पिर्गुग्गुलुपायसै ॥५४
तस्य तुष्टि समायाति पन्नगास्तक्षकादय ।
आसप्तमात्कुलात्तस्य न भय नागतो भवेत् ॥५५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नागान्सपूजयेद्बुध ॥
तथा चाश्वयुजे मासि पञ्चम्या कुरुनदन ॥५६

हे नृप ! इतिहास के ज्ञाता के लिए काञ्चन से निर्मित कराया हुआ नाग तथा अर्जुनी सवत्सा और कास्य दोहना प्रदान करनी चाहिए ॥५०॥ हे पार्थ ! विचक्षण पुरुषो के द्वारा यही पारण मे विधि बतलाई गई है । इस श्रेष्ठ व्रत के करने पर जो वान्धव सर्प दष्ट होकर दुर्गतिक हो वे सद्गति को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥५१॥ जो दन्द शूक के दाँतो से दष्ट होकर अधोगति को प्राप्त हुए हो उनकी सद्गति के लिये एक वर्ष पर्यन्त भक्तिभाव से जो इस व्रत का समाचरण करेंगे उनका दाष्ट्रिक मोक्ष हो जाया करता है और फिर शुभ स्थान भी प्राप्त होता है ॥५२॥ जो इस महा शुभ व्रत की कथा का नित्य ही श्रवण किया करता है या भक्ति से समन्वित होते हुए पाठ करता है उसके कुटुम्ब मे नागो से फिर कही पर भी कोई भय नही रहता है ॥५३॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—इसी भाँति भाद्रपद मास मे पञ्चमी तिथि मे श्रद्धा भाव से सयुत होकर जो मनुष्य कृष्ण वर्ण वाले रगो से नागो का आलेखन करे और फिर गन्धाक्षत पुष्पादि से एव सर्पि (घृत) गूगल पायस आदि से पूजन करना चाहिए ॥५४॥ उसके इस पूजन से तक्षकादि पन्नग परम तुष्टि को प्राप्त हुआ करते हैं और उसके सात कुलो तक कभी भी नाग से भय नही होता है ॥५५॥ इससे सब प्रकार के प्रयत्न से बुध पुरुष को हे कुरु नन्दन ! आश्विन मास मे पञ्चमी मे नागो का भले प्रकार से पूजन करना चाहिए ॥५६॥

कृत्वा कुशमयान्नागानिन्द्राण्या सह पूजयेत् ।
घृतोदकाभ्या पयसा स्नपयित्वा विशापते ॥५७

गोधूमैं पयसा स्विन्नैं भक्ष्यैंश्च विविधैंस्तथा ।
यस्त्वस्या विविधानागान्छुचिर्भक्त्या समन्वित ॥५८

पूजयेत्कुरुशार्दूल तस्य शेषादयो नृप ।
नागा प्रीता भवन्तीह शांति प्राप्नोति शोभनाम् ।
स शांति लोक मासाद्य मोदत शाश्वती समा ॥५६

इत्येतत्कथित वीर पञ्चमीव्रतमुत्तमम् ।
तत्रायमुच्यते मन्त्र सर्वदोषनिषेधक ॥६०

(ॐ कुरुकुल्ले हु फट् स्वाहा)

भक्तेन भक्ति सहिता शतपञ्चमीषु ये
पूजयंति भुजगान्कुसुमोपहारैं ।
तेषा गृहेष्वभयदा हि सदैव सर्पा शश्वत्प्र
मोदपरमा रुचयो भवंति ॥६१

कुशमय नागो का निर्माण करके इन्द्राणी के साथ पूजन करे । हे विशापते ! पहिले घृत—उदक और पय से स्नपन कराकर ही अर्चन करे ॥५७॥ पयसे स्विन्न गोधूम तथा अनेक प्रकार के भक्ष्यो से जो पुरुष पचमी म विधि विधान पूवक शुचि होकर भक्ति की भावना से समन्वित होकर पूजा किया करता है हे कुरु शार्दूल नृप ! उस पर शेष आदि नाग परम प्रसन्न होते हैं और उ हे परम शोभन शाति की प्राप्ति होती है । फिर वह पुरुप शाति लोक की प्राप्ति करके शाश्वती समा पय त परमान द प्राप्त किया करता है ॥५८ ५६॥ हे वीर ! यह परमोत्तम पचमी के व्रत का विधान हमने आपको बतला दिया है । वहा पर सर्पों के दोष का निवारण करने वाला यह म त्र भी कहा जाता है—' ॐ कुरुकुल्ले [redacted] फट् स्वाहा —यह म त्र का आकार है । जो भक्तिभाव के सहित शत पचमियो मे कुसुमो के उपहारो के द्वारा भुजगो का पूजन किया करते हैं उनके घर मे सदा ही सप निरन्तर प्रमोद युक्त होकर अति प्रसन्न रुचि वाले अभय देने वाले होते हैं ॥६० ६१॥

।। श्री पचमी के व्रत का नाहात्म्य ।।

कथमासाद्यते लक्ष्मीर्दुर्ल्लभा भुवनत्रये ।
दानेन तपसा वापि व्रतन नियमेन वा ।।१
जपहोमनमस्कारैं सस्कारैर्वा पृथग्विधैं ।
एतद्वद यदुश्रेष्ठ सर्वविस्त्व मतो मम ।।२
भृगो ख्यात्या समुत्पन्ना पूर्वं श्री श्रूतते शुभा ।
वासुदेवाय सा दत्ता मुनिना मानवृद्धये ।।३
वासुदेवोऽपि ता प्राप्य पीनोन्नतपयोधराम् ।
पद्मपत्रविशालाक्षी पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।।४
भाभासितदिगाभोगा साक्षाद्भानो प्रभामिव ।
नितवाडवरवती मत्तमातगगामिनीम् ।
रेमे सह तया राजन्विभ्रमोद्भ्रातचित्तया ।।५
सा च विष्णु जगज्जिष्णु पति त्रिजगता पतिम् ।
प्राप्य कृतार्थमात्मान मेने मानयशोधना ।।६
हृष्ट पुष्ट जगत्सर्वमभवद्भावित तया ।
लक्ष्म्या निरीक्षित चैव सानद हि महीतलम् ।।७

युधिष्ठिर ने कहा—यह लक्ष्मी जो तीनो भुवनो मे महा दुर्लभा है किस प्रकार से प्राप्त की जाया करती है ? इसके प्राप्त करने के लिये कोई दान है–तप है–व्रत है या कोई नियमों का पालन होता है ? ।।१।। जाप–होम–नमस्कारो के द्वारा या कोई पृथक् प्रकार के सस्कारो के द्वारा इसकी प्राप्ति होती है ? हे यदु श्रेष्ठ ! आप तो सभी कुछ के ज्ञाता हैं । अतएव मुझे यह बतलाने की कृपा करें ।।२।। श्रीकृष्ण ने कहा—पहिले यह परम शुभा श्री भृगु मुनि से ख्याति म समुत्पन्न हुई थी—ऐसा सुना जाता है । उस मुनि न मान की वृद्धि क लिये उस श्री को वासुदेव भगवान् क लिये दे दिया था ।।३।। वासुदव ने भी उस पीन एव उन्नत स्तनों वाली–पद्म दलो के समान नत्रो वाली–पूर्ण चन्द्र के तुल्य मुख से सम्पन्न अपनी कान्ति स दिशाओ क आभोगो को भासित करन वाली–

नितम्बो के आडम्बर से पूर्ण—मस्त हाथी के समान गमन करने वाली साक्षात् सूर्य की प्रभा के ही तुल्य उसे प्राप्त करके विभ्रमो से उद्‌भ्रान्त चित्त वाली उसके साथ रमण किया था ।।४-५।। उसने भी जगत् विष्णु-तीनो लोको के स्वामी भगवान् विष्णु को अपना पति प्राप्त करके मान और यश के धनवाली यह अपने आपको परम कृतार्थ मानती थी ।।६।। उसक द्वारा भावित यह सम्पूर्ण जगत् हृष्ट पुष्ट हो गया था । लक्ष्मी के द्वारा केवल निरीक्षित होने पर ही यह महीतल आनन्द सयुक्त था ।।७।।

क्षेम सुभिक्षमारोग्यमनाक्रन्दमनाकुलम् ।
जगदासीदनुद्‌भ्रान्त प्रशातोपद्रव तथा ।।८
दिवि देवा मुमुदिरे दानवा दैत्यमागता.
विस्फारितफणाभोगा नागाश्चैव रसातले ।।६
हृदये ब्राह्मणैर्वह्नौ भुज्यते त्रिदिवैर्हवि ।
चातुर्वर्ण्यमसकीर्णं पाल्यते पार्थ पार्थिवै ।।१०
विरोचनप्रभृतिभिर्दृष्ट्वैव दैत्यसत्तमै ।
तपस्तप्तुमथारब्धमग्निमाश्रित्य सयतै. ।।११
सोमसस्थाहविसस्थापाकसख्यादिभिर्मखै ।
सदाचारै समारब्धमिष्टं स्वेष्टाभिलाषिभि ।।१२
एव धर्मप्रधानैस्तैर्वेदवादरतात्मभि ।
जगदासीरसमाक्रात विक्रमेण क्रमेण तु ।।१३
लक्ष्मीविलासप्रभवो देवानामभवन्मद ।
मदाच्छील च शौच च सत्य सद्यो व्यनीनशन् ।।१४

उस देवी लक्ष्मी के दृष्टिपात से ही क्षेम—सुभिक्ष—आरोग्य—अनाक्रन्द और अनाकुल—अनुद्‌भ्रान्त तथा प्रशात उपद्रवो वाला यह जगत था ।।८।। दिशाओ मे देवगण परमानन्द पूर्ण हो गये थे और दैत्यगण दीनता को प्राप्त हो गये थे । रसातल मे नागवृन्द विस्फारित फणा वाले थे ।।६।। हे पार्थ ! हृदय मे ब्राह्मणो के द्वारा अग्नि म देवगण हवि का भोग किया करते थे तथा राजाओ क द्वारा चारो वर्णों का असकीर्णता से पालन किया जाता था ।।१०।। विरोचन प्रभृति श्रेष्ठ दैत्यो ने इस प्रकार

की अवस्था को देख कर परम सयत होकर तपश्चर्या का करना अग्नि का आश्रय ग्रहण करके करा दिया था ।।११।। अपने अभीष्ट की प्राप्ति की अभिलाषा वाले दैत्यो ने सोम सस्था—हवि सस्था एव पाक सस्था आदि मखो के द्वारा सदा धारो से इष्ट करना आरम्भ कर दिया था ।।१२।। इस प्रकार से धर्म की ही प्रधानता वाले—वेदो के वाद रत आत्मा वाले उन दैत्यो के द्वारा क्रम से विक्रम से यह सम्पूर्ण जगत् समाक्रान्त हो गया था ।।१३।। लक्ष्मी के विलास से समुत्पन्न देवो को उग्र मद हो गया था । उस मद का ऐसा प्रभाव हुआ कि शील—शौच और सत्य सभी तुरन्त ही विनष्ट हो गये थे ।।१४।।

सत्यशौचविहीनास्तान्देवान्सत्यज्य चञ्चलान् ।
जगाम दानवकुल कुलदेवानुरागत ।।१५
लक्ष्म्या भावितदेहैस्तैं पुनरुद्धतमानसैं ।
यवहर्तुं समारब्धमन्यायेन मदोद्धतैं ।।१६
वय वेदा वय यज्ञा वय विद्या वय जगत् ।
ब्रह्माविष्णुशकराद्या वय सर्वे दिवौकस. ।।१७
अहकारविमूढास्ताञ्ज्ञात्वा दानवसत्तमान् ।
सागर सा विवेशाथ भ्रातचित्ता भृगो. सुता ।।१८
क्षीराब्धिमध्यगतया लक्ष्म्या क्षीणार्थसचयम् ।
निरानन्दगतश्रीकमभवद्भुवनत्रयम् ।।१९
गतश्रीकमथात्मान मत्वा शबरसूदनः ।
पप्रच्छाङ्गिरस विप्र ब्रूहि किञ्चिद्व्रत मम ।।२०
येन सप्राप्यते लक्ष्मीर्लब्धा न चलते पुन. ।
निश्चलापि सुहृन्मित्रैर्भोग्या भवति सा मुने ।।२१

सत्य और शौच से जब देवगण विहीन हो गये तो उन चचल देवो का त्याग करके वह लक्ष्मी कुल देवों के अनुराग से दानव कुल मे चली गयी थी ।।१५।। जब लक्ष्मी समावित देहों वाले वे हो गये थे तो उन्होंने भी मद से उद्धतता प्राप्त करली थी और यवहरण करना अन्याय से उन मद से उद्धतों ने आरम्भ कर दिया था ।।१६।। हम ही वेद हैं—हम

हो यज्ञ हैं—हम ही विद्या और जगत् हैं तथा ब्रह्मा-विष्णु और शंकर आदि सब देव भी हम ही हैं ॥१७॥ इस तरह का अहंभाव उनमें लक्ष्मी के विलास से समुत्पन्न हो गया था तब लक्ष्मी ने अहंकार से विमूढ़ उन दानवों को समझ कर वह भ्रान्त चित्त वाली भृगुमुनि की पुत्री सागर में प्रवेश कर गयी थी ॥१८॥ जब लक्ष्मी देवी क्षीर सागर के मध्य में चली गई तो यह प्रभाव हुआ कि उनके यहां न रहने पर क्षीण अर्थ के संचय वाला—निरानन्द में प्राप्त—श्री शून्य यह भुवन नष्ट हो गया था ॥१९॥ फिर शम्बर के सूदन करने वाले ने श्रीविहीन अपने आपको मानकर आंगिरस विप्र से पूछा था—यह बतलाओ कि इसके लिये मुझे क्या व्रत ग्रहण करना चाहिए ॥२०॥ जिसके करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होवे और प्राप्त हुई वह फिर चल न हो सके। हे मुने ! वह निश्चला होकर रहे जिसका मेरे सभी सुहृत् और मित्र भली-भांति भोग कर सकें अर्थात् सब ही के भोग के योग्य होवे ॥२१॥

न सा श्रीरत्यभिमन्तव्या कन्या सा पाल्यते गृहे ।
परार्थं या सुहृन्मित्रभृत्यैर्नैवोपभुज्यते ॥२२

शक्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा बृहस्पतिरुदारधीः ।
कथयामास संचिन्त्य शुभं श्रीपञ्चमीव्रतम् ॥२३

यत्पुरा कस्यचित्प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।
तदस्मै कथयामास सरहस्यमशेषतः ॥२४

तच्छ्रुत्वा कर्तुमारब्धं सुरेशेन सुरैस्तथा ।
दैत्यदानवगंधर्वैर्यक्षैः प्रक्षीणकल्मषैः ॥२५

सिद्धैः प्रसिद्धचरितैर्विष्णुना प्रभविष्णुना ।
ब्राह्मणैर्ब्रह्मतत्त्वज्ञैः समर्थैः पार्थिवैः सह ॥२६
कैश्चित्सात्त्विकभावेन राजसेनापरैरपि ।
तामसेन तथा कैश्चित्कृतं व्रतमिदंतथा ॥२७
व्रते समाप्ते भूयिष्ठे निष्ठया परया प्रभो ।
देवानां दानवानां च युद्धमासीदथोद्धवम् ॥२८

मुझे ऐसा श्री अभिमतत्व नही है जो एक कन्या की भाँति अपने ही घर मे पाली जाया करती है और दूसरो के अर्थ मे न आवे तथा सुहृद् एव मित्रो के द्वारा जिसका कोई भी उपभोग न किया जा सके ॥२२॥ शक्र के इस वचन का श्रवण करके उदार बुद्धि वाले वृहस्पति ने भली-भाँति विचार करके यह परम शुभ तथा व्रतो मे उत्तम श्री पचमी का व्रत कहा था। और उस व्रत को रहस्य के सहित पूर्ण रूप स जो कि पहिल किसी को बताया हुआ था इन्द्र के लिये अच्छी तरह से बतला दिया था ॥२३-२४॥ यह श्रवण करके सुरेश ने तथा अन्य सुरो न और दैत्य दानव-गन्धर्व और यक्षो ने इसका करना आरम्भ कर दिया था जिससे सभी प्रक्षीण कल्मषो वाले हो गये थे ॥ २५॥ सिद्धो मे जिनक चरित परम प्रसिद्ध थे-विष्णु ने जो प्रभा विष्णु थे—ब्राह्मणो ने जो ब्रह्म के तत्त्व के पूर्ण ज्ञाता थे और समग्र राजाओं ने भी इसे करना आरम्भ कर दिया था ॥२६॥ इन सभी व्रत क करन वालो म कुछ तो एस थे जो इस व्रत को परम सात्त्विक भाव स कर रहे थ-कुछ राजस भाव म ही इसको करते थे तथा कुछ ऐस भी जो व्रत तो करते थे किन्तु उनका तामस भाव ही था ॥२७॥ इस भूयिष्ठ के व्रत के समाप्त होने पर ही हे प्रभो ! जो कि परानिष्ठा स किया गया था देवो और दानवो का महान् उद्धत युद्ध हो गया था ॥२८॥

निमथ्य भुजवीर्येण सागर सरिता पतिम् ।
समाहरामो ह्यमृत हिताय त्रिदिवौकसाम् ॥२९
इत्येव समय कृत्वा ममथुवरुणालयम् ।
मथान मदर कृत्वा नेत्र कृत्वा तु वासुकिम् ॥३०
मथ्यमानजलाज्जात श्चन्द्र शीतांशुरुज्ज्वल ।
अनतर समुत्पन्ना लक्ष्मी क्षीराब्धिमध्यत ॥३१
तया विलोकिता सर्वे दैत्यदानवसत्तमा ।
आलोक्य सा जगामाशुविष्णोवक्ष स्थलशुभम् ॥३२
विधिना विष्णुना भोग्य व्रत तनाब्धिसभवा ।
शरीरस्था बभूवास्य विभ्रमोद्भ्रातलोचना ॥३३

किं च राजसभावेन शक्रेणैतत्कृतं यतः ।
ततस्त्रिभुवनैश्वर्यं प्राप्तं तेन महर्द्धिकम् ॥३४
तमसावृतचित्तैस्तु संचीर्णं दैत्यदानवैः ।
तेन तेषामथैश्वर्यं दृष्टनष्टमभूत्किल ॥३५
एवं सश्रीकमभवत्सदेवासुरमानुषम् ।
जरच्च जगतां श्रेष्ठ व्रतस्यास्य प्रभावतः ॥३६

भुजाओं के वीर्य्य के द्वारा सरिताओं के स्वामी इस विशाल सागर का निर्मन्थन करके देवों के हित के लिये अमृत का समाहरण करें—इस प्रकार का परस्पर में समय करके उन्होंने वरुणालय सागर का मन्थन किया था । उस मन्थन की क्रिया में मन्दर गिरि को मंथान बनाया था और वासुकि सर्पराज को उसकी डोरी (नेत्र) बनाया था ॥२९-३०॥ जब वह सागर मन्थन किया गया तो उसके जल से शीत किरणों वाला अति उज्ज्वल चन्द्रमा उत्पन्न हुआ था । इसके पश्चात् उस क्षीर सागर के मध्य से लक्ष्मी उत्पन्न हुई थी ॥३१॥ उस लक्ष्मी ने वे वहाँ पर उपस्थित सभी देवों तथा दानवों को देखा था । उसने देख कर वह शीघ्र ही भगवान् विष्णु के शुभ वक्षःस्थल में चली गयी थी ॥३२॥ विष्णु में विधि पूर्वक उस व्रत को किया था इसी से वह अब्धि से समुत्पन्न होने वाली इनके शरीर मे विभ्रम से उद्भ्रान्त चित्त वाली होती हुई संस्थित हो गई थी ॥३३॥ क्योंकि इन्द्र ने इसी व्रत को राजस भाव से किया था इसलिये उसने महान् ऋद्धि मे सम्पन्न त्रिभुवन का ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था ॥३४॥ जो तम से समावृत चित्त वाले दैत्य दानव थे उन्होंने इसी व्रत को किया था इसी कारण से उनका सम्पूर्ण ऐश्वर्य दृष्ट-नष्ट हो गया था ॥३५॥ इस प्रकार से देवासुर मानुष सभी हे जगतों में श्रेष्ठ ! इस व्रत के प्रभाव से श्री से सुसम्पन्न हो गये थे ॥३६॥

कथमेतद्व्रतं कृष्ण क्रियते मनुजैः कदा ।
प्रारभ्यते पार्यते च सर्वं वद यदूत्तम ॥३७
मार्गशीर्षे सिते पक्षे पंचम्यां पतगोदये ।
उपवासस्य नियमं कुर्यादाशु सुहृद्भिः ॥३८

स्वर्णरौप्यारकूटोत्था ताम्रमृत्काष्ठजाथ वा ।
चित्रपट्टगता देवी लक्ष्मी क्षमापाल कारयेत् ।।३९
पद्महस्ता पद्मवर्णा पद्मा पद्मदलेक्षणाम् ।
दिग्गजेन्द्रैः स्नाप्यमाना काचनैः कलशोत्तमैः ।।४०
ततो यामत्रये जाते निम्नगाया गृहेऽथ वा ।
स्नान कुर्यादसभ्रान्त शक्रवदुपचारत ।।४१
देवान्पितृंश्च सतर्प्य ततो देवगृह व्रजेत् ।
तत्रस्था पूजयेद्देवी पुष्पैः स्तत्कालसभवैः ।।४२

राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे श्री कृष्ण ! मनुष्यो को किस समय मे और किस रीति से इस व्रत को करना चाहिए । हे यदूत्तम ! किस विधि से इसका आरम्भ किया जाता है—कैसे पारण किया जाता है—यह सभी कुछ कृपा करके मुझे बतलाइये ।।३७।। श्रीकृष्ण ने कहा— मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष म पञ्चमी तिथि म सूर्योदय हो जाने पर सुहृद् को शीघ्र ही इस उपवास का नियम करना चाहिए ।।३८।। स्वर्ण–रौप्य–आर कूट–ताम्र–मृत्तिका अथवा काष्ठ की या चित्रपट पर रहने वाली लक्ष्मी देवी की प्रतिमा का निर्माण हे क्षमापाल ! कराना चाहिए ।।३९।। उस प्रतिमा का स्वरूप ऐसा हो–हाथों मे पद्म–पद्म के समान–पद्ममयी और पद्म के दलो के तुल्य लोचन दिशामे स्थित गजेन्द्रो के द्वारा सुवर्ण के सुन्दर एव उत्तम कलशो से स्नाप्य मान होने वाली हो ।।४०।। फिर तीन प्रहरो के समाप्त हो जाने पर चौथे प्रहर मे किसी नदी मे अथवा गृह मे ही शक्र की भाँति उपचार मे सम्भ्रान्ति शून्य होकर स्नान करना चाहिए ।।४१।। फिर देवगण तथा पितरो का तर्पण करके देवगृह मे गमन करे । वहा पर विराजमाना लक्ष्मी देवी का उस समय मे सम्प्राप्त पुष्पों से पूजन करना चाहिए ।।४२।।

चपलायै नमः पादौ चचलायै च जानुनी ।
कटि कमलवासिन्यै नाभि ख्यात्यै नमोनम ।।४३
स्तनौ मन्मथ वासिन्यै ललितायै भुजद्वयम् ।
उत्कण्ठितायै कण्ठ च माधव्यै मुखमण्डलम् ।।४४

नम श्रियै शिर पूज्य दद्यान्नैवेद्यमादरात् ।
फलानि च यथालाभ विरूढान्धान्यसचयान् ॥४५
तत सुवासिनी पूज्या कुसुमै कुकु मेन च ।
भोजयेन्मधुरान्नेन प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥४६
ततस्तु तडुलप्रस्थ घृतपात्रेण सयुतम् ।
ब्राह्मणाय प्रदातव्य श्रीश सप्रीयतामिति ॥४७
निवर्त्य तदशेषेण ततो भुञ्जीत वाग्यत ।
मासानुमास कर्तव्य विधिनानेन भारत ॥४८
श्रीलक्ष्मी कमला सपद्मा नारायणी सदा ।
पद्मा धृति स्थिति पुष्टिर्ऋद्धि सिद्धिर्यथाक्रमम् ।
मासानुमास राजेन्द्र प्रीयतामिति कीर्तये ॥४९

चपला के लिये चरणो म नमस्कार है । चचला के लिये जानुओ मे मेरा नमस्कार है । कमलवासिनी की सेवा म कटि को नमस्कार समर्पित है । ख्याति देवी के लिये नाभि का बारम्बार नमस्कार है ॥४३॥ मन्मथ वासिनी के लिये स्तनो को मेरा नमस्कार है । ललिता देवी के लिये दोनो भुजाओ को मेरा प्रणाम है । उत्कण्ठिता के लिये कण्ठ को मेरा नमस्कार है तथा माधवी देवी के लिये मुख मण्डल को मेरा प्रणाम निवेदित है ॥४४॥ श्रीदेवी के लिये शिर को मेरा नमस्कार है—इस प्रकार से पूजन करके आदर के साथ नैवेद्य समर्पित करना चाहिए । यथा लाभ फल तथा विरूढ धान्य सञ्चयो को निवेदित करे ॥४५॥ इसके पश्चात् कुसुमो से और कुकुम से सुवासिनियों का पूजन करना चाहिए । उनको मधुर अन्न से भोजन करावे और अन्त में प्रणिपात करके उनका विसर्जन करे ॥४६॥ इसके पश्चात् एक प्रस्थ तण्डुल घृत पात्र से युक्त करके किसी योग्य ब्राह्मण को देना चाहिए और उस समय मे यह कहना चाहिए कि श्री के ईश प्रभु मुझ पर प्रसन्न होवें ॥४७॥ यह सभी कृत्य समाप्त करके पीछे अन्त मे मौन होकर पूर्वक स्वय भोजन करे । हे भरत ! मासानुमास अर्थात् प्रतिमास मे इसी विधान से यह करना चाहिए ॥४८॥ श्री—लक्ष्मी—कमला—सपद्मा—नारायणी—पद्मा—

धृति–स्थिति–पुष्टि–ऋद्धि और सिद्धि इन नामो का उस समय मे यथा-क्रम कीर्तन करके हे राजेन्द्र ! आप प्रसन्न होवें–ऐसा मासानुमास मे कहना चाहिए ।।४६।।

ततश्च द्वादशे मासि सप्राप्ते पचमे दिने ।
वस्त्रमडपिका कृत्वा पुष्पगन्धाधिवासिताम् ।।५०
शय्यायां स्थापयेल्लक्ष्मीं सर्वोपस्करसयुताम् ।
मौक्तिकाष्टकसयुक्ता नेत्रपट्टावृतस्तनीम् ।।५१
सप्तधान्यसमोपेता रसधातुसमन्विताम् ।
पादुकोपानहच्छत्रभाजनासनसत्कृताम् ।।५२
दद्यात्सपूज्य विधिवद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
व्यासाय वेदविदुषे यस्य वा रोजते स्वयम् ।
सोपस्करा सवत्सा च धेनु दत्त्वा क्षमापयेत् ।।५३
क्षीराब्धिमथनोद्भूते विष्णोवक्ष स्थलालये ।
सर्वकामप्रदे देवि ऋद्धि यच्छ नमोऽस्तु ते ।।५४

इसके उपरान्त बारहवें मास के प्राप्त होने पर पाँचवें दिन मे वस्त्रो के द्वारा एक मनुष्य की रचना करके जो कि पुष्पो और गन्ध से अधि-वासित किया गया हो ।।५०।। एक शय्या पर सम्पूर्ण उपकरों के सहित लक्ष्मी देवी को स्थापित करे। मौक्तिकाष्टक से समन्वित तथा नेत्र पट से आवृत स्तनो वाली लक्ष्मी देवी होनी चाहिए ।।५१।। सप्त धान्यो से उपेत एव रस धातुओ से सयुत-पादुका, उपानत्, छत्र, भाजन और आसन आदि से सत्कृत देवी को करे ।।५२।। उस देवी का विधि-विधान से भली-भाँति समर्चन करके किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को दे देना चाहिए। वह विप्र व्यास हो–वेदो का विद्वान् हो अथवा जो कोई भी सुयोग्य पात्र हो जिसको स्वय पसन्द किया जावे। उपस्करों से युक्त-वत्स वाली धेनु का भी दान करके अन्त मे क्षमापन करना चाहिए ।।५३।। हे क्षीर सागर के मथन करने पर समुत्पन्न होने वाली देवि ! आपका आलय तो भगवान् विष्णु का वक्ष स्थल है। आप सम्पूर्ण कामनाओ का पूर्ण

करने वाली हैं। हे देवि ! आप मुझे ऋद्धि प्रदान कीजिए। आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार है ॥५४॥

ततः सुवासिनीः पूज्य वस्त्रै राभरणैः शुभैः ।
भोजयित्वा स्वयं पश्चाद्भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥५५

एवं यः कुरुते पार्थ भक्त्या श्रीपञ्चमीव्रतम् ।
तस्य श्रीर्भवने भाति कुलानामेकविंशतिः ॥५६

नारी वा कुरुते या तु प्राप्यानुज्ञां स्वभर्तृतः ।
सुभगा दर्शनीया च बहुपुत्रा च जायते ॥५७

श्रीपञ्चमीव्रतमिदं दयितं मुरारेर्भक्त्या
समाचरति पूज्यभृगोस्तनूजाम् ।
राज्यं निज स भुवि भव्यजनोपभोगान्-
भुक्त्वा प्रयाति भुवन मधुसूदनस्य ॥५८

इसके पश्चात् सुवासिनी नारियो का पूजन करे और वस्त्र तथा आभरण उन्हें समर्पित करे जो परम शुभ हो। उनको भोजन कराकर पीछे बन्धुओ के साथ स्वय भोजन करना चाहिए ॥५५॥ हे पार्थ ! इस विधि से जो भी कोई भक्ति से श्री पंचमी का यह व्रत किया करता है उसके भवन में इक्कीस पुश्तो तक श्री शोभा दिया करती है ॥५६॥ अथवा कोई नारी अपने स्वामी से अनुज्ञा प्राप्त करके इस व्रत को किया करती है वह परम सुभगा—दर्शन करने के योग्य और बहुत से पुत्रो वाली होती है ॥५७॥ यह श्री पचमी का व्रत भगवान् मुरारि का अति प्रिय व्रत है। इसका पूज्य भृगु मुनि की पुत्री के व्रत को जो कोई भक्तिभाव से समाचरित किया करता है वह मनुष्य इस भूमण्डल में अपना निज का राज्य प्राप्त किया करता है और यहां पर वह भव्य जनो के भोगने योग्य उपभोगों का सुख भोग कर अन्त में मधुसूदन प्रभु के भुवन में प्राप्त हो जाया करता है ॥५८॥

॥ विशोकषष्ठी व्रत का माहात्म्य ॥

षष्ठीविधानमधुना कथयस्व जनार्दन ।
सर्वव्याधिप्रशमन सर्वकर्मफलप्रदम् ॥१
श्रुत मया पूज्यमानो भानु सर्वं प्रयच्छति ।
दिवाकराराधन मे तस्मात्कथय केशव ॥२
विशोक षष्ठीमतुला वक्ष्यामि मनुजोत्तम ।
यामुपोष्य नर शोक न कदाचिदिह जायते ॥३
माघे कृष्णतिलै स्नात पञ्चम्या शुक्लपक्षत ।
कृताहार कृशरया दतधावनपूर्वकम् ॥४
उपवासव्रत कृत्वा ब्रह्मचारी भवेन्निशि ।
तत प्रभात चोत्थाय कृतस्नानस्तत शुचि ॥५
कृत्वा तु काञ्चन पद्ममर्कोऽयमिति पूजयेत् ।
करवीरेण रक्तेन रक्तवस्त्रयुगेन च ॥६
यथा विशोक भवन त्वयैवादित्यसर्वदा ।
तथा विशोकता मे स्यात्त्वद्भक्तिर्जन्मजन्मनि ॥७

युधिष्ठिर ने कहा—हे जनार्दन ! अब आप षष्ठी के विधान का वर्णन कीजिए जो समस्त व्याधियो का प्रशमन करने वाला है और समस्त कामनाओ के फलो का प्रदान करने वाला है ॥१॥ मैने ऐसा सुना है कि पूज्यमान भानु सभी कुछ प्रदान किया करते हैं । हे केशव ! अतएव भगवान् दिवाकर के आराधन करने का सभी विधान मुझे बतलाइये ॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे मनुजो मे श्रेष्ठ ! इस अतुलनीय विशोक-षष्ठी के विषय मे मैं बतलाता हूँ जिसका उपवास करके मनुष्य इस ससार मे कभी भी शोक को प्राप्त नही होता है ॥३॥ माघ मास के शुक्ल पक्ष की पचमी मे काले तिलो से स्नान कर और कृशर का आहार दन्त धावन करने के पश्चात् करना चाहिए ॥४॥ उपवास व्रत को करके रात्रि मे ब्रह्मचर्य का पालन करे । फिर प्रभात मे उठकर

स्नान करके शुचि हो जाना चाहिए ।।५।। एक सुवर्ण के पद्म की रचना कराकर उसी को यह सूर्यदेव हैं–ऐसा मान कर पूजित करना चाहिए । रक्त करवीर के पुष्पों से और रक्त दो वस्त्रों के द्वारा पूजन करे। जिससे हे आदित्य देव ! सर्वदा आपके ही द्वारा शोक से रहित रहे और मेरी ऐसी विशोकता ही सर्वदा बनी रहनी चाहिए तथा जन्म जन्मान्तर आपके चरणों में मेरी भक्ति रहे ।।६-७।।

एवं संपूज्य षष्ठ्यां तु शक्त्या संपूजयेद्द्विजान् ।
सुप्त्वा संप्राश्य गोमूत्रमुत्थाय कृतनिश्चय ।।८
संपूज्य विप्रमन्त्रेण गुडपात्रसमन्वितं ।
सुसूक्ष्मवस्त्रयुगलं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।६
अतैललवणं भुक्त्वा सप्तम्यां मौनसंयुतः ।
ततः पुराणश्रवणं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।।१०
अनेन विधिना सर्वमुभयोरपि पक्षयोः ।
कुर्याद्यावत्पुनर्माघशुक्लपक्षस्य सप्तमी ।।११
व्रतान्ते कलशं दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् ।
शय्यां सोपस्करां तद्वत्कपिलां च पयस्विनीम् ।।१२
अनेन विधिना यस्तु वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
विशोकषष्ठीं कुरुते स याति परमां गतिम् ।।१३

इस भाँति षष्ठी तिथि में पूजन करके अपनी शक्ति के अनुसार द्विजों की भी अर्चना करनी चाहिए । सोकर भली भाँति गोमूत्र का सम्प्राशन करके निश्चय करके उठ जावे।।८।।गुड़ पात्र से समन्वित होकर मन्त्र के द्वारा विप्र का पूजन करे तथा बारीक वस्त्रों का एक जोड़ा ब्राह्मण के लिए समर्पित करना चाहिए ।।६।। तैल और लवण से रहित पदार्थ का भोजन करके सप्तमी तिथि में मौन रहना चाहिए । इसके पश्चात् भूति की इच्छा वाले पुरुष को पुराणों का श्रवण करना चाहिए ।।१०।। इस विधि से दोनों पक्षों में सब करना चाहिए जब तक फिर माघ मास की शुक्ल पक्ष की सप्तमी न आवे।।११।। व्रत के अन्त में सुवर्ण कमल से युक्त कलश देना चाहिए । उपस्करों से युक्त एक शय्या और पयस्विनी

कपिला गौ का भी दान करे ।।१२।। इस विधि से वित्त पाठ्य स रहित होकर अर्थात् धन होते हुए कजूसी न कर जो पुरुष इस विशोक षष्ठी को करता है वह परम गति को प्राप्त होता है ।।१३।।

यावज्जन्मसहस्राणा साग्रकोटिशत भवेत् ।
तावन्न शोकमभ्येति रोगदौर्गत्यवर्जित ।।१४
यय प्रार्थयते काम तत प्राप्नोति पुष्कलम् ।
निष्काम कुरुत यस्तु स पर ब्रह्म गच्छति ।।१५
य पठेच्छृणुयाद्वापि षष्ठी शोकविनाशिनीम् ।
सोपीद्र लोकमाप्नोति न दु खी जायते क्वचित् ।।१६
ये भास्कर दिनकर करवीरपुष्पै
सपूजयत्यभिनमति कृतोपवासा ।
ते दु खशोकरहिता सहिता सुहृद्भिर्भूमौ
विहृत्य रविलोकमवाप्नुवति ।।१७

जब तक सहस्र जन्म धारण करे और अग्र कोटिशत से सहित होवे तब तक वह पुरुष कभी भी शोक को प्राप्त नहीं होता है तथा रोग एव दुर्गति स भी वर्जित रहता है ।।१४।। जिस जिस कामना के पूर्ण होने की प्रार्थना करता है उस–उसी को पुष्कलता के साथ प्राप्त कर लेता है । जो बिलकुल निष्काम होकर इस विधान को करता है वह तो पर-ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ।।१५।। जो कोई भी इस विधान का पाठ करता है या श्रवण किया करता है जोकि यह षष्ठी शोकों का विनाश करने वाली है वह भी इन्द्र लोक को प्राप्त हो जाया करता है और कभी भी किसी समय म दुःखित नहीं हुआ करता है ।।१६।। जो लोग दिनकर भास्कर भगवान् का करवीर क पुष्पों के द्वारा पूजन किया करते हैं और उपवास करके उनका अभिनमन करते हैं वे दु ख एव शोक से रहित होते हुए मित्रो के साथ इस भूमण्डल में निवास किया करते हैं और जब अन्त में इसका त्याग करते है तो फिर मोक्ष सूर्यलोक को प्राप्त करते हैं ।।१७।।

॥ कमलषष्ठी व्रत का माहात्म्य ॥

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि पद्मषष्ठीं शुभां तथा ।
यामुपोष्य नरः पापविमुक्तः स्वर्गं भाग्भवेत् ॥१
मार्गशीर्षे शुभे मासि पञ्चम्यां नियतव्रतः ।
षष्ठीमुपोष्य कमलं कारयित्वा सुकाञ्चनम् ॥२
शर्करासंयुतं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
रूपं च कांचनं कृत्वा फलस्यैकस्य धर्मवित् ॥३
दद्यात्प्रातः कृतस्नानो भानुर्मे प्रीयतामिति ।
भक्त्या तु विप्रान्संपूज्य सप्तम्यां क्षीरभोजनम् ॥४
कृत्वा कुर्यात्फलत्यागं या च स्यात्कृष्णसप्तमी ।
एतामुपोष्य विधिवदनेनैव क्रमेण तु ॥५
यद्वै हैमं फलं दत्त्वा सुवर्णं कमलान्वितम् ।
शर्करापात्रसंयुक्तं वस्त्रमालासमन्वितम् ॥६
पक्षयोरुभयोर्महाराज [illegible] ततः ।
उपोष्य दद्यात्क्रमशः [illegible] येत ॥७

शर्करा के पात्र से युक्त तथा वस्त्र एवं माला से समन्वित दान करे ॥६॥ हे महाराज ! दोनो पर्वों की पष्ठियो मे जब तक एक वर्ष पूर्ण हो उपवास करके क्रम से दान करे और सूर्य के मन्त्रा का उच्चारण करना चाहिए ॥७॥

भानुरर्को रविर्ब्रह्मा सूर्य शुक्रो हरि शिव ।
श्रीमान्विभावसुस्त्वष्टा वरुण प्रीयतामिति ॥८
प्रतिमास च सप्तम्यामेकैक नाम कीतयेत् ।
प्रतिपक्ष फलत्यागमेतत्कुवन्समाचरेत् ॥६
व्रताते विप्रमिथुन पूजयेद्वस्त्रभूषणै ।
शर्कराकलश दद्याद्धेमपद्मफलान्वितम् ॥१०
यथा फलकरो मासस्त्वद्भक्ताना सदा रव ।
तथानतफलावाप्तिरस्तु जन्मनिजन्मनि ॥११
इमामनतफलदा फलषष्ठी करोति य ।
स सर्वपापनिर्मुक्त सूर्यलोके महीयते ॥१२
सुरापानादिक किञ्चिद्यदत्रामुत्र वा कृतम् ।
तत्सर्वं नाशमायाति सूर्यलोक स गच्छति ॥१३
भूताभव्याश्च पुरुषास्तारयेदेकविंशतिम् ।
शृणुयाद्य पठेद्वापि सोपि कल्याणभाग्भवेत् ॥१४
हैम फल सकमल कलश सिताया
षष्ठीमुपोष्य विधिवद्द्विजपु गवाय ।
दद्यात्सुरासुरशिरोमणिघृष्टपाद भानु
प्रणम्य फलसिद्धिमुपति मर्त्य ॥१५

भानु–अर्क–रवि–ब्रह्मा–सूर्य–शुक्र–हरि–शिव–श्रीमान्–विभावसु त्वष्टा और वरुण प्रसन्न होवें ॥८॥ प्रत्येक मास म सप्तमी तिथि मे उपयुक्त नामो मे से एक नाम का कीर्त्तन करे । प्रतिपक्ष मे फल का त्याग करे । और यह करते हुए इस व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥६॥ व्रत के अन्त मे विप्र के जोडे का वस्त्र–भूषणो से पूजन करे । सुवर्ण के पद्म एव फल से युक्त शर्करा के कलश का दान करना

॥ कमलषष्ठी व्रत का माहात्म्य ॥

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि पद्मषष्ठीं शुभां तथा ।
यामुपोष्य नरः पापविमुक्तः स्वर्गभाग्भवेत् ॥१
मार्गशीर्षे शुभे मासि पञ्चम्यां नियतव्रतः ।
षष्ठीमुपोष्य कमलं कारयित्वा सुकाञ्चनम् ॥२
शर्करासयुतं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
रूपं च काचनं कृत्वा फलस्यैकस्य धर्मवित् ॥३
दद्यात्प्रातः कृतस्नानो भानुर्मे प्रीयतामिति ।
भक्त्या तु विप्रान्सपूज्य सप्तम्यां क्षीरभोजनम् ॥४
कृत्वा कुर्यात्फलत्यागं या च स्यात्कृष्णसप्तमी ।
एतामुपोष्य विधिवदनेनैव क्रमेण तु ॥५
यद्वै हैमं फलं दत्त्वा सुवर्णकमलान्वितम् ।
शर्करापात्रसंयुक्तं वस्त्रमालासमन्वितम् ॥६
पक्षयोरुभयोर्महाराज यावत्संवत्सरं ततः ।
उपोष्य दद्यात्क्रमशः सूर्यमन्त्रानुदीरयेत् ॥७

श्रीकृष्ण ने कहा—मैं एक अन्य भी परम शुभ पद्मषष्ठी के विषय में तुमको बतलाता हूँ। जिसका उपवास करके मनुष्य पापों से विमुक्त होकर स्वर्गवास का अधिकारी हो जाया करता है ॥१॥ मार्गशीर्ष परम शुभ मास में पंचमी तिथि में नियत व्रत वाला रहकर षष्ठी का उपवास करे। एक सुवर्ण का कमल निर्माण करावे ॥२॥ शर्करा से उसे समन्वित करके किसी योग्य कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये दान में देवे। चाहे रूपा का (चाँदी का) हो या सुवर्ण का हो एक ही का फल प्राप्त होता है। धर्म के वेत्ता पुरुष को देना चाहिए ॥३॥ प्रातःकाल में स्नान करके इसका दान देवे और भानुदेव मुझ पर प्रीतिमान् होवें—यह उच्चारण करके कहे। भक्ति भाव से विप्रों का पूजन करके सप्तमी तिथि में क्षीर का भोजन करे ॥४॥ क्षीर खाकर फल त्याग करे। और जो कृष्ण पक्ष की सप्तमी होती है। इसी क्रम से विधि पूर्वक उपवास करना चाहिए ॥५॥ हैम देकर जो कि सुवर्ण के कमल से सहित होवे।

शर्करा के पात्र से युक्त तथा वस्त्र एवं माला से समन्वित दान करे ॥६॥ हे महाराज ! दोनों पक्षों की षष्ठियों में जब तक एक वर्ष पूर्ण हो उपवास करके क्रम से दान करे और सूर्य के मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए ॥७॥

भानुरर्को रविर्ब्रह्मा सूर्यः शुक्रो हरिः शिवः ।
श्रीमान्विभावसुस्त्वष्टा वरुणः प्रीयतामिति ॥८
प्रतिमासं च सप्तम्यामेकैकं नाम कीर्तयेत् ।
प्रतिपक्षं फलत्यागमेतत्कुर्वन्समाचरेत् ॥९
व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूजयेद्वस्त्रभूषणैः ।
शर्कराकलशं दद्याद्धैमपद्मफलान्वितम् ॥१०
यथा फलकरो मासस्त्वद्भक्तानां सदा रवे ।
तथानन्तफलावाप्तिरस्तु जन्मनि जन्मनि ॥११
इमामनन्तफलदां फलषष्ठीं करोति यः ।
स सर्वपापनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ॥१२
सुरापानादिकं किञ्चिद्यदत्रामुत्र वा कृतम् ।
तत्सर्वं नाशमायाति सूर्यलोकं स गच्छति ॥१३
भूतान्भव्यांश्च पुरुषांस्तारयेदेकविंशतिम् ।
शृणुयाद्यः पठेद्वापि सोपि कल्याणभाग्भवेत् ॥१४
हैमं फलं सकमलं कलशं सितायाः
षष्ठीमुपोष्य विधिवद्द्विजपुङ्गवाय ।
दद्यात्सुरासुरशिरोमणिघृष्टपादं भानुं
प्रणम्य फलसिद्धिमुपैति मर्त्यः ॥१५

भानु-अर्क-रवि-ब्रह्मा-सूर्य-शुक्र-हरि-शिव-श्रीमान्-विभावसु-त्वष्टा और वरुण प्रसन्न होवें ॥८॥ प्रत्येक मास में सप्तमी तिथि में उपर्युक्त नामों में से एक नाम का कीर्त्तन करे । प्रतिपक्ष में फल का त्याग करे । और यह करते हुए इस व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥९॥ व्रत के अन्त में विप्र के जोड़े का वस्त्र-भूषणों से पूजन करे । सुवर्ण के पद्म एवं फल से युक्त शर्करा के कलश का दान करना

चाहिए ।।१०।। हे रवे ! जिस प्रकार से आपके भक्तो का यह मास सदा फल के करने वाला है उसी प्रकार से जन्म ज म मे अनन्त फल की प्राप्ति होवे ।।११।। इस अनन्त फलो के प्रदान करने वाली फलषष्ठी को जो कोई भी पुरुष किया करता है वह सभी पापों से छुटकार पाकर सूर्य लोक म प्रतिष्ठित होता है ।।१२।। सुरापान आदि जो कुछ भी इस में लोक मे या परलोक मे किया हो उस सब का नाश हो जाता है और वह सूर्यलोक को जाताहै ।।१३।। पहिले हुए और आगे होने वाले इक्कीस पुरुषो का तारण कर देता है जो इसका श्रवण करता है, या पाठ किया करता है । वह भी कल्याण प्राप्त करने का भागी होता है ।।१४।। शुक्ल पक्ष की षष्ठी का उपवास करके सुवर्ण का कलश-फल और कमल का विधि पूर्वक किसी श्रेष्ठ द्विज को दान म देने चाहिए । सुरो एव असुरो के शिरो रत्न से घृष्ठ चरण वाले भानु को प्रणाम करके मनुष्य फलों की सिद्धि का लाभ प्राप्त किया करता है ।।१५।।

।। विजय सप्तमी माहात्म्य ।।

सप्तमी च यदा देव केन कालेन पूज्यते ।
विफला नियम. वक्षिद्वद देवकिनन्दन ।।१
शुक्लपक्षे तु सप्तम्या यदादित्यदिन भवेत् ।
सप्तमी विजया नाम तत्र दत्त महाफलम् ।।२
स्नान दान जपो होम उपवासस्तथैव च ।
सर्वं विजयसप्तम्या महापातकनाशनम् ।।३
प्रदक्षिणा य कुरुते फलै पुष्पदिवाकरम् ।
स सर्वगुणसपन्न पुत्र प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।।४
प्रथमा नालिकेरैस्तु द्वितीया रक्तनागरै ।
तृतीया मातुलु गैश्च चतुर्थी कदलीफलै ।।५

पञ्चमी वरकूष्माण्डैः षष्ठी पक्वैस्तु तैंदुकैः ।
वृन्ताकैः सप्तमी देया अष्टोत्तरशतेन च ॥६
मौक्तिकैः पद्मरागैश्च नीलैः कर्कतनैस्तथा ।
गोमेदैर्वज्रवैडूर्यै. शतेनाष्टाधिकेन तु ॥७

युधिष्ठिर ने कहा—हे देव ! जब यह सप्तमी हो तो उसका पूजन किस समय मे किया जाता है । इसके पूजन करने का क्या फल होता है और उसके क्या नियम हैं ? हे देवकी नन्दन ! यह सब आप बतलाइये ॥१॥ श्रीकृष्ण ने कहा—शुक्ल पक्ष मे जब सप्तमी तिथि मे आदित्य का दिन हो वह सप्तमी विजया नाम वाली होती है । उस समय मे दिया हुआ महान् फल वाला होता है ॥२॥ स्नान–दान–जप–होम तथा उपवास यह सब विजय सप्तमी मे जो किया जाता है उससे महापातकों का नाश हो जाया करता है ॥३॥ जो पुरुष फलो और पुष्पों से दिवाकर की परिक्रमा करता है वह समस्त सद्गुणो से सम्पन्न परमोत्तम पुत्र का लाभ किया करता है ॥४॥ प्रथम प्रदक्षिणा नारिकेरों से देवे–दूसरी रक्त नागरो से–तीसरी मातु ग फलो से और चौथी परिक्रमा कदली के फलो से देनी चाहिए ॥५॥ पाँचवी वरकूष्माण्डों से–छटवी पके हुए तैन्दुकों से देवे । सातवी वृन्ताकों से प्रदक्षिणा देनी चाहिए तथा अष्टोत्तर शत से देवे ॥६॥ मौक्तिक–पद्मराग–नील–कर्कतन–गोमेद–वज्रवैडूर्य इन रत्नों से अष्टाधिक शत देवे ॥७॥

अक्षोटैर्वदरैर्बिल्वै करमर्द. सनवरै ।
आम्राम्रातकजंबीरैर्जंबुवकोटिकाफलैः ॥८
पुष्पैर्धूपै फलै. पत्रै र्मोदकैर्गुणकै शुभै ।
एभिर्विजयसप्तम्या भानो. कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥९
अन्यै फलैश्च काम्यैश्च ऐक्षवैर्ग्रथिवर्जितै. ।
रवे प्रदक्षिणा देया फलेन फलमादिशेत् ॥१०
न विशेन्न च सजल्पेन्न च कञ्चिद्वदेदपि ।
एकचित्ततया भानुश्चिन्तनाय प्रयच्छति ॥११

वसोर्धारा प्रदातव्या भानोर्गव्येन सर्पिषा ।
चन्द्रातपत्रं बध्नीयाज्जय किंकिणिकायुतम् ॥१२
कुंकुमेन समालभ्य पुष्पधूपैश्च पूजयेत् ।
शुभं निवेद्य नैवेद्य तत. पश्चात्क्षमापयेत् ॥१३
भानो भास्कर मार्तण्ड चण्डरश्मे दिवाकर ।
आरोग्यमायुर्विजयं पुत्रं देहि नमोऽस्तुते ॥१४

अक्षोट–बदर–विल्व–करमर्द–सवर्बर–आम्रा–आम्रातक–जम्बीर–जम्बुक–कोटिका फल से तथा पुष्पों से–धूपों से–फलों और पत्रों से–मोदकों से एव शुभ गुणकों से इन सबसे विजय सप्तमी में भानुदेवी की प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥८-९॥ अन्य फलों से–काम्य ऐक्षवों से एव जो ग्रन्थि से रहित हो रविदेव की प्रदक्षिणा देनी चाहिए। फल से फल का आदेश करे ॥१०॥ प्रवेश न करे–भाषण भी नहीं करे और किसी से भी बातचीत न करे। एक चित्तता से यह सब करे तो भानु जो भी चिन्तित हो उसे देते हैं ॥११॥ भानुदेव के लिये गाय के घृत से वसुधारा देवे। चन्द्रातपत्र देवे एवं किंकिणिका युत जय सूत्र बाँधे ॥१२॥ कुंकुम से समालभन कर पुष्प और धूप से पूजन करना चाहिए। परम शुभ नैवेद्य को निवेदित करके इसके पश्चात् क्षमापन करना चाहिए ॥१३॥ हे भानो ! भास्कर ! हे मार्त्तण्ड ! चण्ड रश्मे ! हे दिवाकर ! आप मुझको आरोग्य–आयु–विजय और पुत्र प्रदान कीजिये। आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है ॥१४॥

उपवासेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।
कृता नियमयुक्तेन या त्वियं जयसप्तमी ॥१५
रोगी विमुच्यते रोगाद्दरिद्रः श्रियमाप्नुयात् ।
अपुत्रो लभते पुत्रं विद्यां विद्यार्थिनो भवेत् ॥१६
शुक्लपक्षे यदा पार्थ सादित्यसप्तमी भवेत् ।
तदा नक्तेन मुद्गाशी क्षपयेत्सप्त सप्तमीः ॥१७
भूमौ पलाशपत्रेषु स्नात्वा हुत्वा यथाविधि ।
समाप्ते तु व्रते दद्यात्सौवर्णं मुद्गमिश्रितम् ॥१८

मुद्ग श्रेष्ठाय विप्राय वाचकाय विशेषत ।
सप्तिम्या सप्तिसयुक्त आदित्येन नरोत्तम ॥१६
उपोष्य विधिनानेन मन्त्रप्राशनपूजनं ।
षडक्षरेण मन्त्रेण सर्वं कार्यं विजानता ॥२०
अचन वह्निकार्यं च शतमष्टोत्तर नर ।
समाप्ते तु व्रते पश्चात्सुवर्णेन घटापितम् ॥२१

उपवास रात्रि का करे तथा अयाचित भोजन का करना चाहिए। इस तरह नियम से युक्त होकर की हुई यह विजय सप्तमी है। इसका फल यह है कि रोगी रोग से विमुक्त हो जाया करता है—दरिद्र श्री का लाभ प्राप्त करता है—जो पुत्र से रहित है वह पुत्र पाता है और विद्या के अर्थी को विद्या हो जानी है ॥१५ १६॥ हे पार्थ [शुक्ल पक्ष मे जब भी यह आदित्य सप्तमी होवे तब रात्रि मे मुद्गा का अशन करे। इस प्रकार सात सप्तमी बिता देनी चाहिए ॥१७॥ इस व्रत के समाप्त होने पर जो भूमि मे शयन—पलाश के पत्तो पर भोजन—स्नान करके यथा विधि हवन कर मुद्गो से मिश्रित सुवण विरचित का दान करना चाहिए ॥१८॥ हे नरोत्तम ! किसी श्रेष्ठ विप्र के लिये और विशेष करके वाचक के लिये मुद्ग को सात सप्तमियो से सयुक्त आदित्य के साथ ही देवे ॥१६॥ इस विधि से उपवास करके जो कि मन्त्र—प्राशन—और पूजन से समन्वित हो करे। ज्ञाता पुरुष को छै अक्षरो वाले मन्त्र से ही सम्पूण काय करना चाहिए ॥२०॥ अचना—अग्नि का काय और अष्टोत्तर शत जप मनुष्य को करना चाहिए जब कि यह व्रत समाप्त हो आवे तो फिर पीछे सुवण के द्वारा घटापित सुवण का ही सूय बनवावे ॥२१॥

सौवर्णं भास्कर पार्थ रुक्मपात्रगत शुभम् ।
रक्तावर च काषाय ग ध दद्यात्सदक्षिणम् ॥२२
मन्त्रेणानेन विप्राय कर्मसिद्धयै द्विजातये ।
ॐ भास्कराय सुदेवाय नमस्तुभ्य यशस्कर ॥२३
ममाद्य समीहितार्थप्रदो भव नमोनम ।
दानानि च प्रदेयानि गृहाणि शयनानि च ॥२४

श्राद्धानि पितृदेवाना शाश्वती तृप्तिमिच्छता ।
यात्राप्रशस्ता यातृणा राज्ञा च जयमिच्छताम् ॥२५
विजयो जायतेऽवश्य यतीना च नृणा तदा ।
अतोर्थं विश्रुता लोके सदा विजयसप्तमी ॥२६
एवमेषा तिथि पार्थं इह कामप्रदा नृणाम् ।
परत्र सुखदा सौम्या सयलोकप्रदायिनी ॥२७
दाता भोगी च चतुरो दीर्घायुर्नीरुज सुखी ।
इहागत्य भवेद्राजा हस्त्यश्वधनरत्नवान् ॥२८
नारी वा कुरुते या तु सापि तत्पुण्यभागिनी ।
भवत्यत्र न सदेह कार्यं पार्थं त्वया क्वचित् ॥२९
स्वर्ग्या समीहितसुखार्थफलप्रदा च या
सृष्यते मुनिवरैं प्रवरा तिथीनाम् ।
सा भानुपादकमलार्चनचिंतकाना पु सा
सदैव विजया विजय ददाति ॥३०

हे पार्थ ! इस सुवर्ण के भास्कर को किसी शुभ सुवर्ण के पात्र म स्थित करे । लाल वस्त्र और काषाय तथा गन्ध दक्षिणा के सहित दान करे ॥२२॥ कर्म की सिद्धि के लिये द्विजाति विप्र के लिये इस निम्न-लिखित मन्त्र से ही देना चाहिए । हे यशस्कर ! सुदेव भास्कर के आपके लिये नमस्कार है । यह मन्त्र का अर्थ है ॥२३॥ आज मेरे समभीप्सित अर्थ के प्रदान करने वाले आप होवें । आपको बारम्बार नमस्कार है । गृह और शयन आदि के दान देने चाहिएँ ॥२४॥ शाश्वती (सवदा स्थित रहने वाली) तृप्ति की इच्छा रखने वाले पुरुष को पितृ गण और देवो का श्राद्ध भी करना चाहिए । यात्रा करने वालों की यात्रा प्रशस्त होती है तथा जय की इच्छा रखने वाले राजाओ की जय होती है ॥२५॥ यतिगण और मनुष्यो का उस समय मे अवश्य ही विजय होती है । इसी लिये ही सदा यह विजय सप्तमी—इस नाम से लोक मे प्रसिद्ध हुई है ॥२६॥ इस प्रकार से हे पार्थ ! यह तिथि यहा ससार म मनुष्यो की कामनाओ का प्रदान करने वाली है । परलोक म भी सुख देने वाली

परम सौम्य एव सूर्यलोक को दिलाने वाली होती है ॥२७॥ दानशील–भोता–दीर्घायुष्य–नीरोग एव सुख सम्पन्न यहाँ ससार में आकर हाथी घोडे धन और रत्नो से परिपूर्ण राजा हुआ करता है ॥२८॥ जो भी कोई नारी इस व्रत को किया करती है वह भी उसके पुण्य की अधिकारिणी होती है—इसमे कुछ भी सन्देह नही करना चाहिए । हे पार्थ ! आप इसको सवथा सत्य ही समझें ॥२९॥ बडे २ मुनिवरो के द्वारा इस स्वर्ग देने वाली–मनोहित सुख और अर्थों का प्रदान कराने वाली—समस्त अन्य तिथियो म परम श्रेष्ठ तिथि की खोज की जाया करती है । वह भानुदेव के पद कमल के अर्चन का चिन्तन करने वाले पुरुषो का यह विजया तिथि सदा ही विजय प्रदान करती है ॥३०॥

॥ आदित्य मण्डल विधान ॥

अथान्यदपि ते वच्मि दान श्रेयस्कर परम् ।
आदित्यमडल नाम सर्वाशुभविनाशनम् ॥१
यवचूर्णेन शुभ्रेण कुर्यादगोधूमजेन वा ।
सुपक्व भानुबिबाभ गुडगव्याज्यपूरितम् ॥२
सपूज्य भास्कर भक्त्या तदग्रे मडल शुभम् ।
रक्तचन्दनज कुर्यात्कुकुम वा विशेषत ॥३
मण्डल तत्र सस्थाप्य रक्तवस्त्रे सुपूजितम् ।
ब्राह्मणाय प्रदातव्य मन्त्रेणानेन पाडव ॥४
आदित्यतेजसोत्पन्न राजत विधिनिर्मितम् ।
श्रेयसे मम विप्र त्व प्रतिगृह्णेदमुत्तमम् ॥५
कामद धनद धर्म्य पुत्रद सुखद तव ।
आदित्यप्रीतये दत्त प्रतिगृह्णामि मडलम् ॥६
एव दत्वा नरो राज-सूर्यवद्दिवि राजते ।
सर्वकामसमृद्धार्थो मडलाधिपतिर्भवेत् ॥७

दातव्य जयसप्तम्या तदारभ्य दिनेदिने ।
भास्करस्य महाराज शक्त्या भावेन भावित ॥८
गोधूमचूर्णजनित यवचूर्णज वा
आदित्यमडलमखण्डगुडाद्यपूर्णम् ।
कृत्वा द्विजाय विधिवत्प्रतिपादयेद्यो ।
भूमो भवत्यमितमडलमडितोऽसौ ॥९

श्रीकृष्ण ने कहा—इसके उपरान्त एक अन्य भी दान मैं आपको बतलाता हूँ जो परम श्रेय करने वाला दान है। उस दान का नाम आदित्य मण्डल दान है जो सभी प्रकार के अशुभों का विनाश करने वाला है ॥१॥ परम शुभ्र जौ के चून से अथवा गैंहू के चून से ही करना चाहिए। एक सुपक्व भानु के विम्ब की आभा वाला गुड गव्य आज्य से पूरित करे ॥२॥ भास्कर देव का भली भांति भक्ति से पूजन करके उसके आगे उस शुभ मण्डल को रक्त चन्दन से युक्त अथवा विशेष रूप से कु कुम युक्त करे ॥३॥ वहा पर मण्डल को सस्थापित करके रक्त वस्त्रो से सुपूजित करे और फिर हे पाण्डव ! इस मन्त्र से किसी ब्राह्मण को प्रदान कर देना चाहिए ॥४॥ आदित्य के तेज से समुत्पन्न राजत एव विधि द्वारा निर्मित हे विप्र ! इस उत्तम मण्डल को जो परम श्रेयस्कर है मेरे श्रेय सम्पादन करने के लिये आप ग्रहण कीजिए ॥५॥ यही दान देने का मन्त्र है ब्राह्मण को भी फिर यह कहना चाहिए—कामनाओ को पूर्ण करने वाला–धन दाता–धम से युक्त पुत्र और सुख का प्रदान करने वाला तुम्हारा दिया हुआ यह मण्डल आदित्य देव की प्रीति के लिये मैं अब ग्रहण करता हूँ ॥६॥ यही प्रतिग्रह का मन्त्र होता है। हे राजन् ! इस प्रकार से मनुष्य दान करके दिव लोक मे सूर्य की भाँति ही विराज मान होता है और सम्पूर्ण कामना तथा अर्थों से समृद्ध होकर मण्डल का अधिपति हुआ करता है ॥७॥ जय सप्तमी मे ही इस दान का आरम्भ करे और फिर दिनोदिन देना चाहिए। हे महाराज ! भास्कर की शक्ति तथा भाव से भावित होकर ही इसका दान करे ॥८॥ गोधूम के चूर्ण से जनित अथवा जौ चून से रचित अखण्ड गुड आदि मे परिपूर्ण यह

आदित्य मण्डल बना कर किसी द्विज को विधि पूर्वक जो होता है वह इस भूमि मे अमित मण्डल से मण्डित हुआ करता है ॥६॥

५८। अचला सप्तमी व्रत माहात्म्य ॥

अध्रुवेण शरीरेण सुपक्वेनापि किं फलम् ।
मघस्नानविहीनेन यत्त्यक्तं यदुनन्दन ॥१
प्रात:स्नानासमर्थाया शरीरं पश्य देहिनाम् ।
किं तेन वद कर्तव्य माघे ससारभीरुणा ॥२
कायक्लेशसहा नार्यो न भवति यदूत्तम ।
सौकुमार्यं शरीरस्य अचलत्वात्तथैव च ॥३
कथ च ता: सुरूपा.स्यु सुभगा:सुप्रजास्तथा ।
सुकृतस्येह पुण्यस्य सर्वमेतत्फल यत: ॥४
अल्पायासेन सुमहद्येन पुण्यमवाप्यते ।
स्त्रीभिर्माघिमम ब्रूहि स्नानं तत्त्व रमाधव ॥५

युधिष्ठिर ने कहा—हे यदुनन्दन ! इस अध्रुव अर्थात् अनिश्चित काल तक रहने वाले सुपक्व शरीर से भी क्या फल प्राप्त होता है यदि माघ स्नान से रहित रहकर ही इसका त्याग कर दिया जाता है ॥१॥ देहधारियो के इस शरीर को देखो जो प्रात काल मे स्नान करने मे असमर्थ हैं। उस पुरुष के द्वारा जो माघ मे स्नान नही करता है और ससार से भीरु भी है क्या करना चाहिए—यह बतलाइये ॥२॥ नारियाँ हे यदूत्तम ! काया के क्लेश को सहन करने वाली नही होती हैं। क्योंकि उनका शरीर सुकुमार होता है तथा उसमे अचलता भी होती है ॥३॥ तो वे फिर किस प्रकार से सुन्दर रूप वाली—सुभगा और सुन्दर सन्तति वाली होगी क्योंकि इस सुकृत पुण्य का ही यह सब फल हुआ करता है ॥४॥ जिस किसी थोडे परिश्रम से सुमहान् पुण्य की प्राप्ति की जा सके और स्त्रियो के द्वारा माघ मास मे वह हो जावे हे रमाधव ! वह तत्त्व स्नान आप मुझे बतला दीजिए ॥५॥

श्रूयता पाडवश्रेष्ठ रहस्यमृषिभाषितम् ।
यन्मया कस्यचिन्नोक्तमचलासप्तमीव्रतम् ॥६
वेश्या चेन्दुमती नाम रूपौदार्यगुणान्विता ।
आसीत्कुरुकुलश्रेष्ठ मगधस्य विलासिनी ॥७
तनुमध्या सुजघना पीनोन्नतपयोधरा ।
सम्यग्विभक्तावयवा पूर्णचन्द्रनिभानना ॥८
सौंदर्यं सौकुमार्यं च तस्या कामेन गीयते ।
यस्या सदर्शनादेव काम कामातुरो भवेत् ॥९
मूर्ति शशधरस्येव नयनानन्दकारिणी ।
वशीकरणविद्येव सर्वलोकमनोहरा ॥१०
एकस्मिन्दिवसे प्रात सुमुखस्थितया तया ।
चिंतिताहृदये सजन्ससारस्यानवस्थिति ॥११
सन्निमज्य जगदिद विषये कायसागरे ।
जन्ममृत्युजराग्राह न कश्चिदवबुद्धयते ॥१२
अपाके भूतभाण्डाना धातृशिल्पिविनिर्मितम् ।
स्वकर्मेधनसवीत पच्यत कालवह्निना ॥१३

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पाण्डवो मे परम श्रेष्ठ ! इस ऋषियो के द्वारा कहे हुए परम रहस्य का आप श्रवण करिये जो कि मैंने अब तक किसी से भी नही कहा है । वह यह अचला सप्तमी का व्रत होता है ॥६॥ हे कुरुकुल मे श्रेष्ठ ! एक इन्दुमती नाम वाली वेश्या थी जो रूप लावण्य की विलासिनी थी ॥७॥ उसका सौन्दर्य बतलाते हैं—उसका मध्य भाग अर्थात् कटि कृश थी—जघन बहुत ही सुन्दर थे—पीन और उन्नत उसके स्तन थे—उसके सभी अ ग भली-भाति विभक्त एव सुडोल थे तथा वह पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाली थी ॥८॥ उसकी सुन्दरता और सुकुमारता तो ऐसी थी जिसको स्वय कामदेव भी बखान किया करता है । जिसके दशन मात्र से ही कामदेव स्वय कामातुर हो जाया करता है ॥९॥ चन्द्रमा की मूर्ति के समान नयनों को आनन्द करने वाली उसकी मूर्ति थी मानों वह एक वशीकरण करने की विद्या हो के समान सब लोगो

की परम मनोहर लगती थी ॥१०॥ एक दिन में प्रातः काल में सुख-पूर्वक स्थित रहने वाली उसने अपने हृदय में इस सम्पूर्ण संसार की अनवस्थिति पर विचार किया था ॥११॥ यह सम्पूर्ण जगत् विषयों में काया रूपी समुद्र में डूबता चला जा रहा है। जन्म और मृत्यु तथा बुढ़ापा ये ही इस सागर में ग्राहों के समान हैं जो उसे घेरे रहा करते हैं और यह कोई भी नहीं समझता है ॥१२॥ शिल्पी धाता के द्वारा निर्मित यह भूत रूपी भाण्डों का अपाक अपने कर्म रूपी ईंधन से युक्त होकर काल वह्नि द्वारा पकाया जाया करता है ॥१३॥

ये याति दिवसाः पुंसां धर्मकामार्थवर्जिताः ।
न ते पुनरिहायाति हरभक्ता नरा यथा ॥१४
स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
यस्मिन्दिने न क्रियते वृथा स दिवसो नृणाम् ॥१५
पुत्राणां दारगृहकर्ममासक्तमिह मानसम् ।
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युर्द्धाराय गच्छति ॥१६
इत्येवं चिंतयित्वा तु वेश्या चेन्दुमती ततः ।
वशिष्ठस्याश्रमं पुण्यं जगाम गजगामिनी ॥१७
वशिष्ठमृषिमासीनं प्रणम्य विनयात्ततः ।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥१८

पुरुषों के जो दिन धर्म काम और अर्थ से रहित होकर व्यतीत हो जाया करते हैं वे फिर कभी वापिस लौट कर नहीं आते हैं जिस तरह भगवान् हर के भक्त फिर संसार में नहीं आते हैं ॥१४॥ स्नान-दान-तप-होम-स्वाध्याय और पितृ तर्पण जिस दिन में भी नहीं किये जाते हैं वह पूरा दिन ही मनुष्यों का वृथा होता है ॥१५॥ मनुष्यों का मन पुत्रों-दारा और गृह आदि में ऐसा समासक्त रहा करता है कि उरण को प्राप्त करने की भाँति मृत्यु द्वार के लिये जाया करता है ॥१६॥ इस प्रकार से चिन्तन करके वह इन्दुमती वेश्या फिर गजगामिनी वहाँ से वशिष्ठ के पुण्य आश्रम को चली गयी थी ॥१७॥ वहाँ पर विराज-

मान वसिष्ठ ऋषि को विनय पूर्वक प्रणाम करके दोनो हाथों को जोड कर इन्दुमती ऋषि से यह वचन बोनी ॥१८॥

दक्षसूनासमश्चक्री दशचक्रिसमो ध्वज ।
दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृप ॥१९
मया न दत्त न हुत नोपवासो व्रत कृतम् ।
भक्त्या न पूजित शम्भु श्रितो नेको धनी नर ॥२०
साप्रत वतमानाया व्रत किंचिद्वदस्व मे ।
येन दु खाबुपापौघादुत्तरामि भवार्णवात् ॥२१
एतदस्या सुबहुश श्रुत्वा धर्म परतप ।
वशिष्ठ कथयामास महाकारुणिको मुनि ॥२२
माघस्य सितसप्तम्या सर्वकामफलप्रदम् ।
रूप सौभाग्यजनन स्नान तव वरानने ॥२३
कृत्वा षष्ठ्यामेकभक्त सप्तम्या निश्चल जलम् ।
राज्यते चालयेथास्त्व दत्त्वा शिरसि दीपकम् ॥२४
माघस्य सितसप्तम्यामचल चालित मया ।
जलामलाना सर्वेषा कृत न चलन तथा ॥२५
वशिष्ठवचन श्रुत्वा तस्मिन्नहनि भूपते ।
सर्वं चकारेन्दुमती स्नान दान यथाविधि ॥२६
स्यहस्नानप्रभावेण भुक्त्वा भोग्यान्यथप्सितान् ।
इन्द्रलोकप्सर सघे नायिकात्वमवाप सा ॥२७
अचलासप्तमीस्नान कथित च विशापते ।
सर्वपापप्रशमन सुखसौभाग्यवर्द्धनम् ॥२८

इन्दुमती ने कहा—दक्ष सूना के समान चक्री होता है और दश चक्रियो के समान ध्वज हुआ करता है। दशध्वजो के तुल्य एक वेश्या होती है और दश वश्याओ के तुल्य एक नृप हुआ करता है ॥१९॥ मैंने अपने जीवन म न तो कभी कुछ दान ही दिया है—न हवन किया है—न कोई उपवास किया है और न कोई व्रत ग्रहण किया है। मैंने भक्ति भाव से कभी भगवान् शम्भु का अचन नही किया है और न कोई धन

सम्पन्न पुरुष का ही आश्रय ग्रहण किया है॥२०॥हे मुनिवर ! अब ऐसी दशा मे वर्त्तमान रहने वाली मुझको कोई एक व्रत करने का उपदेश दीजिए जिससे दु खाम्बु पापो के समूह वाले इस ससार सागर से मैं पार लग जाऊँ ॥२१॥ परन्तप वसिष्ठ मुनि ने इसके बहुत बार कहे हुए धर्म को सुनकर महान् दयालु मुनि ने कहा था ॥२२॥ वसिष्ठ मुनि बोले—हे वरानने ! माघ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी मे समस्त कामनाओ के फल को प्रदान करने वाला तथा रूप और सौभाग्य जन्माने वाला तुम्हारा एक मात्र स्नान ही होगा ॥२३॥ षष्ठी तिथि मे एक बार भोजन करके सप्तमी मे जल निश्चय होता है। रात्रि के अन्त मे तुम शिर पर दीपक रख कर उसका चालन करो ॥२४॥ माघ मास की सित सप्तमी मे मैंने अचल को चालित किया है तथा सब जलामलो का चलन नहीं किया है ॥२५॥ हे भूपते ! वसिष्ठ के इस वचन का श्रवण कर के उस दिन मे इन्दुमती ने सभी स्नान दान आदि विधि पूर्वक किया था ॥२६॥ तीन दिन के स्नान के प्रभाव से यथेप्सित भोगो का उपभोग करके उसने इन्द्रलोक की अप्सराओ के समुदाय मे नायिकात्व के पद की प्राप्ति की थी ॥२७॥ हे विशापते ! मैंने यह सप्तमी का स्नान वर्णित कर दिया है जो सम्पूर्ण पापो का प्रशमन करने वाला तथा सुख और सौभाग्य बढाने वाला है ॥२८॥

सप्तमीस्नानमाहात्म्य श्रुत न च विशेषत ।
साप्रत श्रोतुमिच्छामि विधिमन्त्रसमन्वितम् ॥२९
एवभक्तेन सतिष्ठेत्षष्ठया सपूज्य भास्करम् ।
सप्तम्या तु व्रजेत्प्रात सुगभीर जलाशयम् ॥३०
सरित्सग तडाग च देवखातमथापि वा ।
सुखावगाहसलिल दुष्टसत्त्वैरदूषितम् ॥३१
पशुभि पक्षिभिश्चैव जलजैर्मत्स्यकच्छपै ।
न जल चाल्यते यावत्तावत्स्नान समाचरेत् ॥३२
नमस्ते रुद्ररूपाय रसाना पतये नम ।
वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरिवास नमोऽस्तु ते ॥३३

यावज्जन्म कृत पाप मया जन्मसु सप्तसु ।
तन्मे रोग च शोक च माकरी हतु सप्तमी ॥३४
जननी सर्वभूताना सप्तमी सप्तसप्तिके ।
सर्वव्याधिहरे देवि नमस्ते रविमण्डले ॥३५

युधिष्ठिर ने कहा—मैंने सप्तमी के स्नान का माहात्म्य विशेष रूप से नही सुना है। अब मैं इसको श्रवण करना चाहता हूँ जोकि विधि पूर्वक म त्रो से समन्वित हो ॥२९॥ श्रीकृष्ण ने कहा—भगवान् भास्कर देव का पूजन करके षष्ठी तिथि मे एक ही बार भोजन करके रहे। सप्तमी तिथि मे प्रात काल मे किसी गम्भीर जलाशय को चला जाना चाहिए ॥३०॥ वह जलाशय सरिताओ का सगम हो—तालाब हो अथवा देवखात किन्तु सुख पूवक अवगाहन करने वाले जल से युक्त होना चाहिए तथा दुष्ट जीवो से दूषित न होवे ॥३१॥ पशुओ के द्वारा पक्षियो से और जल मे ही ज म ग्रहण करने वाले म स्य कच्छप आदि के द्वारा जब तक जल चालित न होवे तभी तक उसम स्नान करना चाहिए ॥३२॥ वहा पर यह प्राथना करे—हे रुद्र के रूह वाले! आपके लिए नमस्कार है। रसो के पति के लिये नमस्कार है। वरुण देव के लिए प्रणाम है। हरि भगवान् के निवास स्थान आपके लिए नमस्कार है ॥३३॥ जब से मैंने ज म धारण किया है तब से पूरे जीवन मे जो पाप मैंने किये हैं और व्यतीत हुए सात ज मो मे जो पाप किये हैं उसको और मेरे रोग तथा शोक को माकरी सप्तमी हनन कर देवे ॥३४॥ हे सप्तसप्तिके! सप्तमी समस्त भूतो की जननी हैं। हे सम्पूर्ण व्याधियो के हरण करने वाली देवि! रविमण्डल मे आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥३५॥

जलोपरीतर दीप स्नात्वा सतर्प्य देवता ।
चदनेन लिखेत्पद्ममष्टपत्र सकर्णिकम् ॥३६
मध्ये शव सपत्नीक प्रणवेन तु पूजयेत् ।
भानु शक्र दले पूज्य रवि वश्वानर दले ॥३७

याम्ये चिवम्वार्त्ने ऋंत्ये भास्करस्येति पूजयेत् ।
पश्चिमे सविता पूज्य पूज्योर्को वायुना जले ॥३८
सौम्ये सहस्रकिरण शेषे सर्वात्मनेति च ।
पूज्या प्रणवपूर्वास्तु नमस्कारातयोजिता ॥३९
पुष्पैं सुगन्धेधूपैश्च वस्त्रैराच्छाद्य भास्करम् ।
विसर्जयेत्तत पश्चात्स्वस्थान गम्यतामिति ॥४०
ताम्रपात्रे सुविस्तीर्णे मृन्मये वा युधिष्ठिर ।
स्थापयेत्तिलचूर्णं च सघृत सगुड तथा ॥४१
काञ्चन तालक कृत्वा ह्यासक्तस्तिलचूर्णकम् ।
सस्थाप्य रक्तवस्त्रैस्तु पुष्पैंधूंपैस्तथार्चयेत् ॥४२

जल के ऊपर इतर दीप रक्खे और स्नान करके देवगण का भली भाँति तर्पण करे फिर चन्दन से आठ दलो वाला कर्णिका से युक्त पद्म का लेखन करे ॥३६॥ उस पद्म के मध्य भाग मे पत्नी के सहित शम्भु का प्रणव से अर्चन करे। शक्रदल मे भानु और वैश्वानर दल मे देवि का पूजन करे ॥३७॥ याम्य दल मे विवस्वान् का तथा नैऋत्य दिशा वाले दल म भास्कर का पूजन करना चाहिए । पश्चिम म सविता पूजन करने के योग्य है और वायव्य जल मे अर्क का यजन करे ॥३८॥ सौम्य दिशा मे सहस्र किरण का अर्चन करे और शेष मे सर्वात्मा से यजन करे । पूजन मे प्रणव को आदि मे तथा अन्त मे नमस्कार लगाकर ही पूजा करे ॥३६॥ पुष्पो से सुन्दर गन्ध वाली धूपों से यजन करे और वस्त्र से भास्कर देव का सामाच्छादन कर फिर उनका विसजन 'अपने स्थान को जाइये'—यह कह कर करना चाहिए।।४०।।हे युधिष्ठिर ! एक किसी ताम्र पात्र मे अथवा मृन्मय पात्र मे घृत और गुड के सहित तिलो का चूर्ण स्थापित करन चाहिए ॥४१॥ सुवण का तालक बनवाकर असिक्त हो तिला के चूर्ण को सस्थापित कर रक्तवर्ण के वस्त्रो और पुष्प तथा धूप से उसी भाति अर्चना करनी चाहिए ॥४२॥

ततस्त ब्राह्मणे दद्यादृत्वा मत्रेण तालकम् ।
आदित्यस्य प्रसादन प्रात स्नानफल भजेत् ॥४३

दुष्टदौर्भाग्यदु खेभ्यो मया दत्त पु तालकम् ।
ततस्तत्तालक कृत्वा ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।४४
सपुत्रपशुभृत्यायमेऽर्कोय प्रीयतामिति ।
ततो व्रतोपदेष्टार पूजयेद्वस्त्रगोतिलै ।।४५
विप्रानन्यान्यथाशक्त्या पूजयित्वा गृह व्रजेत् ।
एतत्त कथित कार्यं रूपसौभाग्यकारकम् ।।४६
अचलासप्तमीस्नान सवकामफलप्रदम् ।।४७
इति पठति य इत्थ य श्रृणोति प्रसगात्क
लिकलुषहर वै सप्तमीस्नानमेतत् ।
मतिमपि नयनाना यो ददाति प्रसगात्सुर-
भवनगतोऽसौ पूज्यते देवसघै ।।४८

इसके पश्चात् उसको ब्राह्मण को दे देवे। मन्त्र से तालक को देकर फिर भगवान् आदित्य के प्रसाद से प्रात काल ही मे स्नान के फल का सेवन करे ।।४३।। दुष्ट दौर्भाग्य के दु खो से मैंने तालक को दिया है। इसके अनन्तर उस तालक को करके ब्राह्मण के लिये उपपादित करना चाहिए ।।४४।। पुत्र पशु और भृत्यो के लिये यह एक ही अक प्रसन्न होवे। इसके उपरा त व्रत के उपदेश देने वाले का वस्त्र गौ और तिलों से पूजन करना चाहिए ।।४५।। अन्य जो भी विप्र हो उनको भी यथा शक्ति पूजित करके गृह को चला जावे। यह काम मैंने आपको बतला दिया है जो रूप और सौभाग्य का करने वाला है ।।४६।। अचला सप्तमी का स्नान समस्त कामों के फल को प्रदान करने वाला होता है ।।४७।। इसको इस प्रकार से जो भी पढता है और जो कोई प्रस ग से इसका श्रवण किया करता है उसको यह कलियुग के कलुषो का हरण करने वाला सप्तमी स्नान होता है। जो कोई नयनो की मति भी प्रसग वश देता है वह सुरभवन म जाकर देवो क समुदाय के द्वारा यह पूजा जाता है ।।४८।।

॥ बुधाष्टमी व्रत माहात्म्य ॥

बुधाष्टमीव्रत भूयो ब्रवीमि शृणु पाडव ।
येन चीर्णेन नरक नर पश्यति न क्वचित् ॥१
पुरा कृतयुगस्यादौ इलो राजा बभूव ह ।
बहुभृत्यसुहृन्मित्रमन्त्रिभि परिवारित ॥२
जगाम हिमवत्पार्श्वे महादेवेन वारित ।
योऽन्य प्रविशते भूमौ सा स्त्री भवति निश्चितम् ॥३
स राजा मृगसगेन प्राविशत्तदुमावने ।
एकाकी तुरगोपेत क्षणात्स्त्रीत्व जगाम ह ॥४
सा बभ्राम वने शून्ये पीनोन्नतपयोधरा ।
कुतोऽहमागतेत्येव न त्वबुध्यत किंचन ॥५
ता ददर्श बुध सौम्या रूपौदार्यगुणान्विताम् ।
अष्टम्या बुधवारेण तस्यातुष्टो बुधो ग्रह ॥६
दधौ गर्भं तदुदरे इलाया रूपतोषित ।
पुत्रमुत्पादयामास योऽसौ ख्यात पुरूरवा ॥७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे पाण्डव ! फिर मैं तुम से बुधाष्टमी के व्रत को बोल रहा हूँ—इसका तुम श्रवण करो इसके चीर्ण कर लेने से मनुष्य किसी समय मे भी नरक का मुँह नही देखता है ॥१॥ पहिले समय म कृतयुग के आदि म इल नाम वाला राजा हुआ था जो बहुत से मित्र भृत्य—सुहृत् और मन्त्रियो के द्वारा परिवारित था ॥२॥ महादेव के द्वारा जिसका वारण कर दिया गया था उस हिमवान् गिरि के पार्श्व म वह चला गया था । जो कोई भी अन्य पुरुष वहाँ पर प्रवेश किया करता है वह निश्चित ही स्त्री हो जाया करता है ॥३॥ वह राजा भी एक मृग की शिकार के सङ्ग से उस उमा देवी के वन मे प्रवेश कर गया था । वह अकेला ही था । केवल उसके पास एक अश्व था जिस पर वह सवार था । दोनो ही एक क्षण मे स्त्रीत्वभाव को प्राप्त हो गये थे ॥४॥ वह स्त्री के स्वरूप म पीन एव उन्नत स्तनो वाली

बन कर उस नितान्त शून्य वन में भ्रमण करने लगी थी। मैं वहाँ से आया था—इसको भी कुछ वह नहीं जान पाया था ॥५॥ उस रूप लावण्य से एवं उदारता से समन्वित परम सौम्या ललना को बुध ने देखा था। बुधवार से युक्त अष्टमी तिथि में उससे वह बुध ग्रह अत्यन्त प्रसन्न हो गया था ॥६॥ इला के रूप से अत्यन्त प्रसन्न उसने उसके उदर में गर्भ धारण कर दिया था। उसने जो पुत्र उत्पन्न किया था वह पुरूरवा नाम से विख्यात हुआ था ॥७॥

चन्द्रवंशकरो राजा आद्य सर्वमहीक्षिताम् ।
तत प्रभृति पूज्ये यमष्टमी बुधसयुता ॥८
सर्वपापप्रशमनी सर्वोपद्रवनाशिनी ।
अथान्यदपि ते वच्मि धर्मराज कथानकम् ॥९
आसीद्राजा विदेहाना मिथिलाया स वैरिभि ।
सग्रामे निहतो वीरस्तस्य भार्या दरिद्रिणी ॥१०
ऊर्मिला नाम बभ्राम मही बालकसयुता ।
अवती विषय प्राप्ता ब्राह्मणस्य निवेशने ॥११
चकारोदपूत्यर्थं नित्य कडनपेषणे ।
हृत्वा सा स्तोकगोधूमा ददौ बालकयोस्तदा ॥१२
कारुण्यान्मातृवात्सल्यात्क्षुधासपीड्यमानयो ।
कालेन बहुना साध्वी पञ्चत्वमगमच्छुभा ॥१३
पुत्रस्तस्या विदेहाया गत्वा स्वपितुरासने ।
उपविष्ट सत्त्वयोगाद्भुजे ग्राममनाकुल ॥१४

यह राजा चन्द्र वंश का करने वाला सब राजाओं में प्रथम राजा था। तभी से लेकर यह बुध से सयुता अष्टमी पूज्य हो गई थी ॥८॥ यह बुधाष्टमी सब प्रकार के पापों का प्रशमन करने वाली है और सम्पूर्ण उपद्रवों का नाश करती है। इसके उपरान्त हे धर्मराज! एक अन्य भी इस सम्बन्ध में कथानक बतलाता हूँ ॥९॥ एक राजा विदेहा का मिथिला में हुआ था। वह वीर उसके शत्रुओं के द्वारा संग्राम में निहत हो गया था। उसकी भार्य्या दरिद्रिणी थी ॥१०॥ ऊर्मिला नाम वाली वह बालक

से सयुक्त होकर मही मण्डल मे भ्रमण किया करती थी। अवन्ती नामक देश म वह एक ब्राह्मण के घर मे पहुच गई थी ॥११॥ वह कण्डन पेषण के कर्म मे नित्य ही अपने उदर की पूर्त्ति किया करती थी। थोडे से गोधूमो (गेंहूओ) का हरण करके उस समय मे उसने बालको को दे दिये थे ॥१२॥ उसके हृदय मे माता का वात्सल्य हो गया था और कुछ करुणा का भाव आ गया था। इसी के वश में आकर यह अपहरण किया था। जो कि बालक क्षुधा से पीड्यमान हो रहे थे। बहुत काल के व्यतीत हो जाने पर वह साध्वी शुभा मृत्यु को प्राप्त हो गई थी ॥१३॥ उसका पुत्र विदेह पुरी में जाकर अपने पिता के आसन पर बैठ गया था। सत्व के योग से उसने अनाकुल होकर भूमि का भोग किया था ॥१४॥

अन्विष्य धर्मराज्ञो वै सा कन्या मिथिवशजा ।
विवाहिता हिता भर्तु सा महानायिकाऽभवत् ॥१५
श्यामला नाम चार्वंगी प्रसिद्धा श्रूयते श्रुतौ ।
तामुवाच वरारोहा धर्मराज स्वय प्रियाम् ॥१६
वहस्व सर्वव्यापार श्यामले त्व गृहे मम ।
कुरु स्वजनभृत्याना दानक्षेप यथेप्सितम् ॥१७
कि त्वेते पजरा सप्त कीलकैरतियन्त्रिता ।
कदाचिदपि नोद्घाट्यास्त्वयावैदेहनदिनि ॥१८
एवमस्त्विति साप्युक्त्वा निज कर्म चकार ह ।
कदाचिद्व्याकुलीभूते धर्मराजे विदेहजा ।
उद्घाटयित्वा प्रथम ददर्श जननी स्वकाम् ॥१९
सा पच्यमाना रुदती भीषणैर्यमकिंकरै ।
हेलया क्षिप्यत बद्धा तप्ततैले पुन पुन ॥२०
तथैव तालक दत्त्वा व्रीडिता सा मनस्विनी ।
द्वितीये पजरे तद्वत्सा तामेव ददर्श ह ॥२१

धर्मराजा ने एक मिथि वश में समुत्पन्न कन्या की खोज करके उसने उसके साथ विवाह किया था। वह अपने स्वामी के परम हित चाहने

वाली थी और महातापिका हो गई थी ॥१५॥ उसका श्यामला नाम था। उसके सभी अंग प्रत्यंग बहुत ही सुन्दर थे। श्रुति में वह परम प्रसिद्ध सुनी जाती थी। धर्मराज उस वरारोहा प्रिया से स्वयं एक दिन बोला था ॥१६॥ हे श्यामले ! तुम अब इस मेरे घर में सब व्यापार का वहन करो। स्वजन और भृत्यों को जैसा भी तुम चाहो दान का क्षेप किया करो ॥१७॥ किन्तु ये सात पञ्जर कीलकों से यन्त्रित है। क्या ये किसी समय में खोलने के योग्य नहीं हैं ? हे वैदेह नन्दिनि ! जिनको कि तुम्हीं अपने हाथ से उद्घारित कर सकोगी ॥१८॥ इसी प्रकार से होगा—यह कह कर उसने अपना कार्य किया था। किसी समय मे जबकि धमराज व्याकुली भूत हो गया था तब उस विदेहजा ने प्रथम पंजर को खोल कर अपनी जननी को देखा था ॥१९॥ वह बिचारी नरक म पच्यमान हो रही थी और रुदन कर रही थी। यम के किंकरो के द्वारा बारम्बार तप्त तैल मे बाँध कर हेला से फेंकी जा रही थी ॥२०॥ उसी प्रकार से तालक देकर वह मनस्विनी अत्यन्त पीडित हो गई थी। फिर दूसरे पञ्जर मे उसी के समान उसने उसको इसी प्रकार से देखा था ॥२१॥

सुधावल्लिप्यमाना ता शिलातल्पेष्टकेन तु ।
तृतीयपञ्जरे तद्वत्ता ददर्श स्वमातरम् ।
ऋकचं पाटयते मूर्ध्नि घण्टायुक्तं करोल्वणे. ॥२२
चतुर्थे पञ्जरे स्थाने भीपणैर्दारणाननै ।
भक्ष्यमाणा श्वापदैश्च क्रदती ता पुन पुन ॥२३
पचमे निहिता भूमौ कण्ठे पादेन पीडिता ।
सदर्शवनघातैश्च विदीर्णा क्रियते रुपा ॥२४
पष्ठे वेक्षुयन्त्रगता मस्तके मुद्गराहताम् ।
सपीडयमानामनिश सुदृढामिक्षुखण्डवत् ॥२५
सप्तमे पञ्जरे चोणस्वना पूतिवगंधिनीम् ।
दृष्ट्वा तथा गता ता तु मातरं दु ख कर्षिता ।
श्यामला म्लानवदना किंचिन्नोवाच भामिनी ॥२६

अथागत यम प्राह सरोषा श्यामला पतिम् ।
किं तवापहृत राजन्ममाता सुदारुणम् ।
येनेय विविधैर्घातैर्वध्यते बहुधा त्वया ॥२७
यमः प्राह प्रिया दृष्ट्वा भद्रे ह्युद्घाटितास्त्वया ।
एते पञ्जरका सप्त निषिद्धा त्व मया पुरा ॥२८

शिलातल्पेष्टक से सुधा की भाँति लिप्यमान उसको तीसरे पञ्जर में उसी के समान उस अपनी माता को देखा था । क्रकचो के द्वारा जो कि घण्टा से युक्त और करोत्वण थे उसके मूर्धा मे पाटित की जा रही थी ॥२२॥ चतुर्थ पञ्जर के स्थान मे परम भीषण और दारुण मुखो वाले श्वापदो के द्वारा भक्ष्यमाण और बार-बार क्रन्दन करती हुई देखा था ॥२३॥ पाँचवें मे भूमि मे निहित और कण्ठ मे पाद से पीडित तथा सदशन और घन घातो से क्रोध से विदीर्ण की जा रही थी ॥२४॥ छटवें मे इक्षु यन्त्र मे लगाई हुई और मस्तक मे मुद्गरो द्वारा आहत की गई एव निरन्तर सम्पीड्यमान तथा ईख के खण्ड की भाँति सुदृढा देखा था ॥२५॥ सातवें पजर मे चीर्ण स्वन वाली एव पूतिक गन्ध से युक्त उस माता को उस दशा मे देख कर वह दुःख से अत्यन्त कंपित हुई थी । वह श्यामला उदास मुख वाली हो गई थी और फिर वह भामिनी कुछ भी नही बोली थी ॥२६॥ इसके पश्चात् आगत यम को वह रोष से समन्वित होकर श्यामला पति से बोली—हे राजन् ! क्या आपने मेरी माता को अपहृत किया है जो कि सुदारुण पीडा सह रही है ! यह यहा पर बहुधा आपके द्वारा अनेक प्रकार के घातो से वध्यमान हो रही है ॥२७॥ यम प्रिया को देख कर बोला—भद्रे ! क्या तू ने इनको उद्घाटित कर लिया है । ये सात पजरो के उद्घाटन करने के लिये मैंने आपको पहिले ही निषेध कर दिया था ॥२८॥

तव मात्रा सुतस्नेहाद्गोधूमा ये हृता. किल ।
किं न जानामि तद्रुद्रे येन दृष्टा ममोपरि ॥२९
प्रहास्य प्रणयाद्भुक्त दहत्यासप्तम कुलम् ।
तदेव चौर्यरूपेण दहत्याचन्द्रतारकम् ॥३०

गोधूमास्त इमे भूता. कृमिरूपा. सुदारुणा. ।
ये पुरा ब्राह्मणगृहे हृतास्तव कृतेऽनया ॥३१
जानामि तदहं सर्वं यन्मे मात्रा कृत पुरा ।
तथापि त्वं समासाद्य सा च जामातर शुभम् ।
मुच्यते कृमिराशित्वाद्यथा तदधुना कुरु ॥३२
तच्छ्रुत्वा चिन्तयाविष्टश्चिरं स्थित्वा जगाद ताम् ।
धर्मराज सहासीना प्रिया प्राणधनेश्वरीम् ॥३३
इतश्च सप्तमेऽतीते जन्मनि ब्राह्मणी शुभा ।
आसीस्तस्मिस्त्वया सगात्सखीना पर्युपासिता ।
बुधाष्टमी सुसपूर्णा यथोक्तफलदायिनी ॥३४
तत्फल यद्ददास्यस्यै सत्य कृत्वा ममाग्रत ।
तेन मुच्येत ते माता नरकात्पापसकटात् ॥३५

तुम्हारी माता ने सुत के स्नेह से जो गोधूमो का हरण किया था क्या हे भद्रे ! उसे तुम नही जानती हो ? जिसके कारण मेरे ऊपर अब ऐसी रुष्ट हो रही हो ॥२६॥ प्रणय से जो ब्रह्मस्व का भोग किया था वह तो सात कुल तक दहन किया ही करता है । वही यदि चोरी के रूप मे हरण किया जावे तो जब तक आकाश मे चन्द्र और तारे विद्यमान रहते हैं तब तक दहन करता है ॥३०॥ वे ये गोधूम ही सुदारुण कृमि के रूप वाले हैं जिनको कि आप के ही लिये इसने एक ब्राह्मण के घर मे से हरण किया था ॥३१॥ श्यामला ने कहा—मैं इस सब को भली भाँति जानती हूँ जो मेरी माता ने पहिले किया था तो भी आपको परम शुभ जामाता उसने प्राप्त किया था । उस कृमि राशित्व से वह छुटकारा प्राप्त करे अब वैसा ही आप करिये ॥३२॥ यह सुनकर चिन्ता मे आविष्ट होते हुए धर्मराज ने चिरकाल तक स्थित रहकर उससे कहा था जो कि साथ मे बैठी हुई प्रिया और प्राण धनेश्वरी थी ॥३३॥ इससे सातवें अतीत जन्म म परम शुभा ब्राह्मणी तुम थी । उसमे तुमने सखियों के सग म बुधाष्टमी का सुसम्पूर्ण पर्युपासना की थी जो यथोक्त फल के देने वाली है ॥३४॥ उसका फल यदि आप इसको दे देंगी और मेरे ही

आगे सत्य करके ऐसा करेंगी तो उससे यह आपकी माता पाप संकट से युक्त नरक से मुक्त हो जायगी ॥३५॥

तच्छ्रुत्वा त्वरितं स्नात्वा ददौ पुण्यं स्वकंकृतम् ।
स्वमातुः श्यामला तुष्टा तेन मोक्षं जगाम सा ॥
ऊर्मिला रूपसंपन्ना दिव्यदेहधरा शुभा ।
विमानवरमारूढा दिव्यमाल्याम्बरावृता ॥३६
भर्तुः समीपे स्वर्गस्था दृश्यतेऽद्यापि सा जनैः ।
बुधस्य पार्श्वे नभसि मिथिराजसमीपतः ।
विस्फुरती महाराजबुधाष्टम्याः प्रभावतः ॥३७
यद्यैव प्रवरा कृष्ण सा तिथिर्वै बुधाष्टमी ।
तस्या एव विधिं ब्रूहि यदि तुष्टोसि मे प्रभो ॥३८
शृणु पाण्डव यत्नेन बुधाष्टम्या विधिं शुभम् ।
यदायदा सिताष्टम्यां बुधवारो भवेद्यदि ।
तदा तदा च सा ग्राह्या एकभक्ताशनैर्नृभिः ॥३९
स्नात्वा नद्यां तु पूर्वाह्णे गृहीत्वा कलशं नवम् ।
जलपूर्णं तु सद्रव्यं पूर्णपात्रसमन्वितम् ॥४०
अष्टवारान्प्रकर्तव्या विधानैस्तु पृथक्पृथक् ।
प्रथमा मोदकैः कार्या द्वितीया फेणकैस्तथा ॥४१
तृतीया घृतपूरैश्च चतुर्थी वटकैर्नृप ।
पञ्चमी शुभ्रवारैश्च षष्ठी सोहालकैस्तथा ॥४२

यह श्रवण करके तुरन्त ही स्नान करके अपना वह किया हुआ पुण्य उसने अपनी माता को दे दिया था। उससे वह परम सन्तुष्ट हो गई और मोक्ष को प्राप्त हो गई थी। ऊर्मिला रूप से सम्पन्न होकर दिव्य देह धारण करने वाली हो गई थी और शुभा वह एक श्रेष्ठ विमान पर समारूढ हो गई थी तथा दिव्य माल्य एवं वस्त्रों से समावृत हो गई थी ॥३६॥ वह अपने स्वामी के समीप में आकाश में अब भी मनुष्यों के द्वारा दिखलाई दिया करती है। बुध के पार्श्व में नभ में मिथिराज के ही समीप में हे महाराज! इस बुधाष्टमी के प्रभाव से वह विस्फुरमाणा

है ।।३७।। युधिष्ठिर ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! यदि वह बुधाष्टमी इस प्रकार से परम प्रवर है तो हे प्रभो ! यदि परमतुष्ट हैं तो उसकी पूरी विधि बतला दीजिए ।।३८।। श्रीकृष्ण ने कहा—हे पाण्डव ! अब आप यत्न-पूर्वक बुधाष्टमी की परम शुभ विधि का श्रवण कीजिए । जब जब भी शुक्ल पक्ष की अष्टमी मे यदि बुधवार का योग होता है तब-तब ही एक वक्त में भोजन करने वाले मनुष्यों के द्वारा उसका ग्रहण करना चाहिए ।।३६।। पूर्वाह्न मे नदी में स्नान करके एक नूतन कलश का ग्रहण करे। वह जल से भरा हुआ द्रव्यों के सहित और पूर्णपात्र से समन्वित होना चाहिए ।।४०।। आठ बारो तक पृथक् पृथक् विधानो से उसे करना चाहिए । प्रथम मोदको से करे-दूसरी फेणको से करे ।।४१।। तीसरी घृत के पूपो से करे–हे नृप ! चौथी वटको से करे-पाँचवी शुभ्रकारो से करे और छटवी सुहालियो से करनी चाहिए ।।४२।।

अशोकवर्तिभि शुभ्रं सप्तमी खडसयुतै ।
अष्टमी फलपुष्पैश्च केवलाखण्डफेणिकं ।
एव क्रमेण कर्तव्या सुहृत्स्वजनबाधवै ।।४३
सह कृत्वा स्थितं भोज्य भोक्तव्य स्वस्थमानसै ।
उपोष्याणामिद श्रेष्ठ कथयद्भि शनै शनै ।।४४
श्रुत्वाष्टमीबुधस्यापि माहात्म्य भोजन त्यजेत् ।
तावदेव न भोक्तव्य कथा यावत्समाप्यते ।।४५
तथा भुक्त्वा बुधस्याग्रे आचम्य च पुन पुन ।
विप्राय वेदविदुषे त ब्रुवन्प्रतिपादयेत् ।।४६
साक्षत सहिरण्य च जातरूपमय शुभम् ।
अर्चित विविधै पुष्पैर्धूपदीपै सुगधिभि ।।४७
पीतवस्त्रं समाच्छन्न बुध सोमात्मजाकृतिम् ।
मापकेण सुवर्णेन तदर्धार्धेन वा पुन ।।४८
ॐ बुधाय नम । ॐ सोमात्मजाय नम ।
ॐ दुबु द्धिनाशनाय नम । ॐ सुबुद्धिप्रदाय नम ।
ॐ ताराजाताय नम । ॐ सौम्य ग्रहाय नम ।

ॐ सर्वसौख्यप्रदाय नम । एतेपूजामन्त्र ।
अष्टमी तु यदा पूर्णा तदा राजर्षिसत्तम ।
ब्राह्मणान्भोजयेदष्टौ गा दद्याच्च सवत्सिकाम् ॥४८

सातवीं शुभ्र खाँड से युक्त अशोक वर्तियों से करे। आठवीं फलों और पुष्पों से और केवला खण्ड फेणिकों से करे। इसी प्रकार के क्रम से सुहृत-स्वजन और बान्धवों के साथ करनी चाहिए ॥४३॥ सबके साथ मे मिल कर करे तथा स्वस्थ मन वाले होकर भोज्य का भोजन करना चाहिए तथा उपोष्यमाणा को धीरे २ श्रेष्ठ कहते हुए ही भोजन करें ॥४४॥ इस बुधाष्टमी के व्रत का माहात्म्य श्रवण करके भोजन का त्याग कर देवे। तावत ही भोजन करे जब तक कथा की समाप्ति होवे ॥४५॥ उस प्रकार से बुध के आगे भोजन करके पुन-पुन. आचमन करके किसी वेदों के वेत्ता विप्र के लिये उसको बोलते हुए प्रतिपादन करे ॥४६॥ अक्षत-हिरण्य के सहित-सुवर्ण मय-परम शुभ अनेक प्रकार के पुष्पों से अर्चित-धूप-दीप और सुगन्धियों से युक्त तथा पीत वर्ण के वस्त्रों से समाच्छादित सोम के आत्मज की आकृति वाले बुध को एक मासा सुवर्ण या उससे आधा अथवा उसका भी आधा भाग से युक्त करके देवे। पूजन करने के मन्त्र निम्न लिखित हैं—ओं बुधाय नम अर्थात् बुध के लिये नमस्कार हैं—ॐ सोमात्मजाय नम —ॐ दुर्बुद्धि नाशाय नम —ॐ सुबुद्धि प्रदाय नम —ओ तारा जाताय नम —ओ सौम्य ग्रहाय नम —ओ सर्व सौख्य प्रदाय नम —। ये इतने मन्त्र होते हैं। जब यह बुधाष्टमी का व्रत हे राजर्षि श्रेष्ठ ! पूर्ण समाप्त हो जावे तो फिर आठ ब्राह्मणों को भोजन करावें और वत्स के सहित गौ का दान करे ॥४७ ४८॥

वस्त्रालंकरणै सर्वैर्भूषणैर्विविधैरपि ।
सपत्नीक समभ्यर्च्य कर्णमात्राङ्गुलीयकैः ।
मन्त्रेणानेन कौन्तेय दद्यादेव समाचरन् ॥५०
बुधोऽयं प्रतिगृह्णातु द्रव्यस्थोऽयं बुध स्वयम् ।
दीयते बुधराजाय तुष्यतां च बुधो मम ॥५१

बुध सौम्यस्तारकेयो राजपुत्र इलापति ।
कुमारो द्विजराजस्य य पुरूरवस पिता ॥५२
दुर्बुद्धिबाधजनित नाशयित्वा च मे बुध ।
सौख्य च सौमनस्य च करोतु शशिनदन ॥५३
इत्युच्चार्य गृहीत्वा तु दद्यान्मन्त्रपुर सरम् ।
सप्तजन्मति राजेन्द्र जातो जातिस्मरो भवेत् ॥५४

वस्त्र एव अलकारो के द्वारा तथा विविध प्रकार के समस्त भूषणों से पत्नी के सहित कर्णमालागुलीयको से भली-भांति पूजन करके हे कौन्तेय ! इस अधोलिखित मन्त्र के द्वारा समाचरण करता हुआ दान करे ॥५०॥ यह बुध है इसको आप ग्रहण करें। यह बुध स्वय ही द्रव्यस्थ है। बुधराज के लिये दिया जाता है। यह बुध मुझ पर परम तुष्ट होवे ॥५१॥ यही दान देने का मन्त्र है। यह बुध सौम्य है—तारा का पुत्र है—राजपुत्र है और इला का पति है—द्विजराज का कुमार है और पुरूरवा का पिता है ॥५२॥ यही प्रतिग्रहण का मन्त्र होता है। यह बुध दुर्बुद्धि की बाधा से जनित का मेरा नाश करके यह शशि नन्दन परम सौख्य और सौमनस्य भाव करे ॥५३॥ ऐसा उच्चारण मुख से करके ग्रहण करके मन्त्र पूर्वक दान करना चाहिए। हे राजेन्द्र ! वह सात जन्म तक जाति स्मर जन्म लेने वाला होता है ॥५४॥

धनधान्यसमायुक्त पुत्रपौत्रप्रवर्द्धन ।
दीर्घायुर्विपुलान्भोगान्भुक्त्वा चैव महीतले ॥५५
तत सुतीर्थे मरण ध्यात्वा नारायण विभुम् ।
मृतोऽसौ स्वर्गमाप्नोति पुरदरसमो नर ॥५६
वसते यावदाभूतं पुनराभूतसप्लवम् ।
एवमेतन्मया ख्यात व्रतानामुत्तम व्रतम् ॥५७
एषैव च मयाख्याता गुह्या पार्थ बुधाष्टमी ।
या श्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्न सर्वपापै प्रमुच्यते ॥५८

यश्चाष्टमी बुधयुता समवाप्य भक्त्या
सम्पूजयेद्विधुसुत कनपृष्ठसस्थम् ।
पक्वान्नपात्रसहितै. सहिरण्यवस्त्रै:
पश्येदसौ यमपुर न कदाचिदेव ।।५६

धन-धान्य से भली-भाँति सुसम्पन्न-पुत्र और पौत्रादि का बढाने वाला-दीर्घ आयु से युक्त-इस महीतल मे बहुत से भोगो का उपभोग करके रहता है ।।५५।। फिर किसी सुन्दर तीर्थ स्थल मे विभु नारायण का ध्यान करके ही उसका मरण हुआ करता है । मृत हो जाने पर यह नर इन्दु के समान होकर स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है ।।५६।। वहा पर भी सृष्टि से आरम्भ करके पुन मृत सप्लव जब तक होता है निवास किया करता है । यह इस प्रकार से मैंने तुमको बतला दिया है । यह अन्य सभी व्रतो मे परम उत्तम व्रत है ।।५७।। यह इस तरह से हे पार्थ ! अत्यन्त गोपनीय बुधाष्टमी का मैंने आपके समक्ष मे वर्णन कर दिया है । इसकी इस कथा एव विधान का श्रवण करके चाहे कोई ब्रह्म हत्या का पापी हो या गोहत्या करने वाला हो अपने सभी पापो से छुटकारा पा जाया करता है ।। ८।। जो कोई पुरुष बुधवार से युक्त अष्टमी के व्रतादि को भक्ति की भावना से समाप्त करके कन पृष्ठ पर विराजमान विधु के पुत्र बुध का अच्छी तरह पूजन किया करता है वह पक्वान्न के पात्रो के सहित हिरण्य तथा वस्त्रो से युक्त होता है और वह यमपुर को कभी भी नही देखा करता है ।।५६।।

।। जन्माष्टमी व्रत माहात्म्य ।।

जन्माष्टमीव्रत ब्रूहि विस्तरेण ममाच्युत ।।
कस्मिन्काले समुत्पन्न किं पुण्य को विधि स्मृत ।।१
हते कसासुरे दुष्टे मथुराया युधिष्ठिर ।
देवकी मा परिष्वज्य कृ ोत्सगे रुरोद ह ।।२

तत्रैव रङ्गवाढेन मञ्चारूढजनोत्सवे ।
मल्लयुद्धे पुरावृते समेते कुकुराऽधके ॥३
स्वजनैर्बंधुभि स्निग्धै सम स्त्रीभि समावृते ।
वसुदेवोऽपि तत्रैव वात्सल्यात्प्ररुरोद ह ॥४
समाकृष्ण परिष्वज्य पुत्रपुत्रेत्युवाच ह ।
सगद्गदस्वरो दीनो वाष्पपर्याकुलेक्षण ॥५
बलभद्र च मा चैव परिष्वज्य मुदा पुन ।
अद्य मे सफल जन्म जीवित यत्सुजीवितम् ॥६
यदुभाम्या सुपुत्राभ्या समुद्भूत समागम ।
एव वर्षेण दापत्ये हृष्ट पुष्ट तथा ह्यभूत् ॥७

युधिष्ठिर ने कहा—हे अच्युत ! अब आप कृपा करके मुझे जन्माष्टमी व्रत का विधान विस्तार पूर्वक बतलाइये । यह व्रत किस समय मे उत्पन्न हुआ था—इस व्रत का क्या पुण्य होता है और इसके करने की क्या विधि बतलायी गयी है ॥१॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे युधिष्ठिर ! जिस समय मे मथुरा पुरी मे अत्यन्त दुष्ट कसासुर मारा जा चुका था तो उस समय मे माता देवकी ने मुझ अपनी गोद मे बिठा कर एव समालिङ्गन करके रुदन किया था ॥२॥ वही पर रङ्ग वाढ से सभी जनो के मचो पर समारूढ होने क उत्सव म कुकुराधक के समेत मल्ल युद्ध के पहिले हो जाने पर अपने जन—बन्धुगण—स्नेही वर्ग और स्त्रियो से समावृत होने पर पिता वसुदेव भी वही रोने लग गये थे ॥३ ४॥मुझ उ होने खीच कर मेरा परिष्वजन किया और ह पुत्र—ऐसा कहने लगे थे । उस समय मे उनका कण्ठ सगदगद हो गया था अथवा दीनता के भाव से युक्त थे तथा आसुओ से उनके नेत्र भर गये थे ॥५॥ मेरे बडे भाई बलभद्र को और मुझको पुन पुन छाती से लगाकर आन द मग्न हो गये थे और यह कह रहे थे कि आज मेरा जन्म सफल हुआ है और मेरा जीवन भी सुन्दर जीवन बन गया है ॥६॥ इन दोनो यदुकुल मे समुत्पन्न सुपुत्रो के साथ मेरा समागम हो गया है । इस प्रकार से वर्ष भर वह दम्पति परम हृष्ट—पुष्ट हो गया था ॥७॥

प्रणिपत्य जना सर्वे बभूवुस्ने प्रहर्षिता ।
एव महोत्सव दृष्ट्वा मामाह सकलो जन ॥८
प्रसाद क्रियता नाथ लोकस्यास्य प्रसादत ।
यस्मिन्दिने जगन्नाथ देवकी त्वामजीजनत् ॥९
तद्दिने देहि वैकुण्ठ कुर्मस्तेत्र नमोनम ।
सम्यग्भक्तिप्रपन्नाना प्रसाद कुरु केशव ॥१०
एवमुक्ते जनौघेन वसुदेवोऽतिविस्मित ।
विलोक्य बलभद्र च मा च कृत्वा रुरोद ह ।
एवमस्त्विति लोकाना कथयस्व यथातथा ॥११
ततश्च पितुरादेशात्तथा जन्माष्टमीव्रतम् ।
मथुराया जनौघाग्रे पार्थ सम्यक्प्रकाशितम् ॥१२
पौरजना जन्मदिन वर्षेवर्षे ममोदितम् ।
पुनर्जन्माष्टमी लोके कुर्वंतु ब्राह्मणादय ।
क्षत्रिया वैश्यजातीया शूद्रा ये येऽपि धार्मिका ॥१३
सिंहराशिगते सूर्ये गगने जलदाकुले ।
मासि भाद्रपदेऽष्टम्या कृष्णपक्षेऽर्धरात्रके ।
वृषराशिस्थिते चन्द्रे नक्षत्रे रोहिणीयुते ॥१४

सभी मनुष्यों ने प्रणिपात किया था और महोत्सव देख कर सभी जन समुदाय ने उस समय म मुझसे कहा था ॥८॥ हे नाथ ! अब ऐसा प्रसाद हम सब पर कीजिए कि इस लोक के ऊपर प्रसन्नता से हे जगन्नाथ ! जिस दिन म माता देवकी ने आपको जन्म ग्रहण कराया था ॥९॥ उस दिन म वैकुण्ठ लोक को प्रदान कीजिए। वहाँ पर ऐसा ही कुछ हम किया करें आपको बारम्बार प्रणाम है। हे केशव ! भली भाँति भक्ति म प्रपन्न हमारे ऊपर आप अपनी कृपा कीजिए ॥१०॥ इस प्रकार स उस जन समुदाय के द्वारा कहने पर वसुदेव अत्यन्त ही विस्मित होगये थे। फिर भाई बलभद्र और मेरी ओर व विलोकन करके रुदन करने लगे थे। लोकों के लिए ऐसा ही होवे—ऐसा यथा तथा आप कथन करिये ॥११॥ इसके अनन्तर पिता के आदेश से मैंने ही हे

पार्थ ! मथुरा पुरी में उस महान् जन समुदाय के समक्ष में भली भाँति प्रकाशित किया था ।।१२।। पुर के निवासी जन मेरे कहे हुए उस जन्म के दिन को प्रत्येक वर्ष में लोक में पुनः जन्माष्टमी ब्राह्मण आदि सभी लोग करें । चाहे क्षत्रिय हो या वैश्य एवं शूद्र और जो अन्य भी धार्मिक पुरुष हैं सभी इसे करें ।।१३।। जिस समय में सिंह राशि पर सूर्य आते हैं और आकाश एक दम मेघों से समाकुल हो जाता है तब भाद्रपद मास में कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में अर्ध रात्रि के समय में वृष राशि पर चन्द्रमा के उदय होने पर तथा रोहिणी नक्षत्र के योग में मेरा जन्म हुआ था ।।१४।।

वसुदेवेन देवक्यामहं जातो जनाः स्वयम् ।
एवमेतत्समाख्यातं लोके जन्माष्टमीव्रतम् ।।१५
भगवत्पार्श्वतो राजन्बहु रूपं महोत्सवम् ।
मथुरायास्ततः पश्चाल्लोके ख्यातिं गमिष्यति ।
शान्तिरस्तु सुखं चास्तु लोकाः सन्तु निरामयाः ।।
तत्कीदृशं व्रत देव लोकैः सर्वैरनुष्ठितम् ।
जन्माष्टमीव्रतं नाम पवित्रं पुरुषोत्तम ।।१७
येन त्वं तुष्टिमायासि लोकानां प्रभुरव्ययः ।
एतन्मे भगवन्ब्रूहि प्रसादान्मधुसूदन ।।१८
पार्थ तद्दिवसे प्राप्ते दंतधावनपूर्वकम् ।
उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्तिभावितः ।।१९
एकेनैवोपवासेन कृतेन कुरुनंदन ।
सर्वजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।।२०
उपावृत्तस्य पापेभ्योयस्तु वासो गुणैः सह ।
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ।।२१

वसुदेव के द्वारा देवकी के उदर में मैं समुत्पन्न हुआ था और स्वयं ही मैंने जन्म ग्रहण किया था । मनुष्यों ने इस प्रकार से कहा था और लोक में जन्माष्टमी का व्रत हुआ था ।।१५।। हे राजन् ! भगवान् के पार्श्व में यह बहुत से रूप वाला महान् उत्सव होगया था । इसके पश्चात्

यह उस मथुरा पुरी से सम्पूर्ण लोक म ख्याति को प्राप्त होगया था । शांति होवे—सुखोदय होवे और सभी लोग निरामय होवें ॥१६॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे देव ! वह कैसा व्रत है जो सभी लोको ने किया था ? हे पुरुषोत्तम ! जन्माष्टमी नाम वाला यह व्रत परम उत्तम व्रत होता है ॥१७॥ हे मधुसूदन ! आप तो अविनाशी समस्त लोको के प्रभु हैं । जिससे आपको तुष्टि प्राप्त हो वही विधान मुझे बतलाइये । हे भगवन् ! आपकी परम कृपा होगी ॥१८॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ ! जब वह पूर्वोक्त ग्रहगण से युक्त दिन प्राप्त होवे तो द त धावन पूर्वक भक्तिभाव से इस उपवास के नियम को ग्रहण करना चाहिए । हे कुरु-नन्दन ! यह एक ही उपवास ऐसा अद्भुत गुणो वाला है कि इसके करने पर मनुष्य सम्पूर्ण जन्मो म किये हुए सभी प्रकार के पापो से छुटकारा पाजाया करता है—इसमे कुछ भी सशय नही है ॥२०॥ उपावृत्त पापो से जो गुणो के सहित वास होता है उसी को उपवास जानना चाहिए । जो सभी भोगो से विशेष रूप से वर्जित हुआ करता है ॥२१॥

तत स्नात्वा च मध्याह्ने नद्यादौ विमले जले ।
देव्या सुशोभन कुर्याद् वक्या सूतकागृहम् ॥२२
पद्मरागै पत्रनेन मंडित चर्चित शुभे ।
रम्य तु वनमालाभी रक्षामणिविभूषितम् ॥२३
सर्वं गोकुल वत्कार्यं गोपीजनसमाकुलम् ।
घण्टामदलसङ्गीतमाङ्गल्यकलशान्वितम् ॥२४
यवार्धं स्वस्तिका कुड्यं शखवादित्रसकुलम् ।
बद्धासुरा लोहखड्गं प्रियच्छागसमन्वितम् ॥२५
धान्य विन्यस्य मुसल रक्षित रक्षपालकैं ।
षष्ठ्या देव्या च सपूर्णनैवेद्यैर्विविधै वृतं ॥२६
एवमादि यथाशेष कर्तव्य सूतिकागृहम् ।
एतन्मध्ये प्रतिष्ठाप्या सा चाप्यष्टविधा स्मृता ॥२७
काचनी राजनी ताम्री पैत्तली मृन्मयी तथा ।
दार्वी मणिमयी चैव वर्णिका लिखिताथ वा ॥२८

पार्थ ! मथुरा पुरी मे उस महान् जन समुदाय के समक्ष मे भली भाँति प्रकाशित किया था ॥१२॥ पुर के निवासी जन मेरे कहे हुए उस जन्म के दिन को प्रत्येक वर्ष मे लोक मे पुन जन्माष्टमी ब्राह्मण आदि सभी लोग करें । चाहे क्षत्रिय हो या वैश्य एव शूद्र और जो अन्य भी धार्मिक पुरुष है सभी इसे करें ॥१३॥ जिस समय मे सिंह राशि पर सूर्य आते है और आकाश एक दम मेघो से समाकुल हो जाता है तब भाद्रपद मास मे कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि मे अर्ध रात्रि के समय मे वृष राशि पर चन्द्रमा के उदय होने पर तथा रोहिणी नक्षत्र के योग मे मेरा जन्म हुआ था ॥१४॥

वसुदेवेन देवक्यामह जातो जना स्वयम् ।
एवमेतत्समाख्यात लोके जन्माष्टमीव्रतम् ॥१५
भगवत्पार्श्व तो राजन्बहु रूप महोत्सवम् ।
मथुरायास्तत पश्चाल्लोक ख्याति गमिष्यति ।
शांतिरस्तु सुख चास्तु लोका सन्तु निरामया ॥
तत्कीदृश व्रत देव लोके सर्वेरनुष्ठितम् ।
जन्माष्टमीव्रत नाम पवित्र पुरुषोत्तम ॥१७
येन त्व तुष्टिमायासि लोकाना प्रभुरव्यय ।
एतन्मे भगवन्ब्रूहि प्रसादान्मधुसूदन ॥१८
पार्थ तद्दिवसे प्राप्त दतधावनपूर्वकम् ।
उपवासस्य नियम गृह्णीयाद्भक्तिभावित ॥१९
एकेनैवोपवासेन कृतेन कुरुनदन ।
सवजन्मकृते पापैर्मुच्यते नात्र सशय ॥२०
उपावृत्तस्य पापेभ्योयस्तु वासो गुणै सह ।
उपवास स विज्ञेय सवभोगविवर्जित ॥२१

वसुदेव के द्वारा देवकी के उदर मे मैं समुत्पन्न हुआ था और स्वय ही मैंने जन्म ग्रहण किया था । मनुष्यो ने इस प्रकार मे कहा था और लोक मे जन्माष्टमी का व्रत हुआ था ॥१५॥ हे राजन् ! भगवान् के पार्श्व से यह बहुत से रूप वाला महान् उत्सव होगया था । इसके पश्चात्

यह उस मथुरा पुरी से सम्पूर्ण लोक मे ख्याति को प्राप्त होगया था। शान्ति होवे—सुखोदय होवे और सभी लोग निरामय होवें ॥१६॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे देव ! वह कैसा व्रत है जो सभी लोको ने किया था ? हे पुरुषोत्तम ! जन्माष्टमी नाम वाला यह व्रत परम उत्तम व्रत होता है ॥१७॥ हे मधुसूदन ! आप तो अविनाशी समस्त लोको के प्रभु हैं। जिससे आपको तुष्टि प्राप्त हो वही विधान मुझे बतलाइये। हे भगवन् ! आपकी परम कृपा होगी ॥१८॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ ! जब वह पूर्वोक्त ग्रहगण से युक्त दिन प्राप्त होवे तो दन्त धावन पूर्वक भक्तिभाव से इस उपवास के नियम को ग्रहण करना चाहिए। हे कुरुनन्दन ! यह एक ही उपवास ऐसा अद्भुत गुणो वाला है कि इसके करने पर मनुष्य सम्पूर्ण जन्मो मे किये हुए सभी प्रकार के पापो मे छुटकारा पाजाया करता है—इसमे कुछ भी सशय नही है ॥२०॥ उपावृत्त पापो से जो गुणो के सहित वास होता है उसी को उपवास जानना चाहिए। जो सभी भोगो स विशेष रूप से वर्जित हुआ करता है ॥२१॥

तत स्नात्वा च मध्याह्ने नद्यादौ विमले जले।
देव्या सुशोभन कुर्याद् वक्या सूतकागृहम् ॥२२
पद्मरागै पद्मनेत्रै मंडित चर्चित शुभै ।
रम्य तु वनमालाभी रक्षामणिविभूषितम् ॥२३
सर्वं गोकुल वत्कार्यं गोपीजनसमाकुलम्।
घण्टामर्दलसङ्गीतमाङ्गल्यकलशान्वितम् ॥२४
यवार्धं स्वस्तिका कुड्यं शखवादित्रसकुलम्।
यद्धासुरा लोहखड्गं प्रियच्छागसमन्वितम् ॥२५
धान्ये विन्यस्य मुसल रक्षित रक्षपालकै ।
षष्ठ्या देव्या च सम्पूर्णैर्वेद्यैर्विविधै कृतै ॥२६
एवमादि यथाशेष कर्तव्य सूतिकागृहम्।
एतन्मध्ये प्रतिष्ठाप्या सा चाप्यष्टविधा स्मृता ॥२७
काचनी राजनी ताम्री पैत्तैली मृन्मयी तथा।
दार्वी मणिमयी चैव वर्णिका लिखिताथ वा ॥२८

इसके अनन्तर मध्याह्न में किसी नदी आदि तीर्थ एवं शुद्ध जलाशय के विमल जल में स्नान कर के फिर देवकी देवी का एक अत्यन्त शोभा युक्त सूतिका-गृह बनावे ॥२२॥ वह सूतिका गृह पद्म रागों से तथा शुभ पत्र नेत्रों से मण्डित एवं चर्चित करे और वनमालाओं से सुरम्य तथा रक्षा मणियों से भूषित करना चाहिए ॥२३॥ उसमें सभी गोकुल के समान ही गोपीजनों से उसे समाकुल बनाना चाहिए। जिसमें घण्टा, मर्दल-संगीत एवं मगल कलश भी विद्यमान होवें॥२४॥यवार्द्ध स्वस्तिका कुड्यों से युक्त तथा शंख वादित्र से संकुल वह सूतिका गृह होवे। बद्धा सुरा लोह खंग से संयुक्त एव प्रिय छाग से समन्वित उसे करे॥२५॥ धान्य मे मुसल का विन्यास करके रक्ष पालकों द्वारा उसे रक्षित रक्खे। षष्ठी देवी के सम्पूर्ण और विविध कृत्त नैवेद्यों से युक्त करे,इस प्रकार से जो कुछ भी शेष हो उस सब से युक्त सूतिका गृह को बना देवे। इसके मध्य में जो वह आठ प्रकार की बताई गई है उसको प्रतिष्ठापित करना चाहिए। वह सुवर्ण की हो—चांदी की—ताम्र की—पीतल की—मिट्टी की—काष्ठ की कणिका अथवा लिखित हो ॥२६-२८॥

सर्वलक्षणसम्पन्ना पर्यंकेचार्द्धसुप्तिका ।
प्रतप्तकांचनाभासा मया सह तपस्विनी ॥२६

प्रस्तुता च प्रसूता च तत्क्षणाच्च प्रहर्षिता ।
मा चापि बालकं सुप्तं पर्यंके स्तनपायिनम् ॥३०

श्रीवत्सवक्षसं पूर्णं नीलोत्पलदलच्छविम् ।
यशोदा चापि तत्रैव प्रसूता वरकन्यकाम् ॥३१

तत्र देवगृहं नागा यक्षविद्याधरानराः ।
प्रणताः पुष्पमालाग्रव्यग्रहस्ताः सुरासुराः ॥३२

संचरंत इवाकाशे प्राकारैरुदितोदितैः ।
वसुदेवोऽपि तत्रैव खड्गचर्मधरः स्थितः ॥३३
कश्यपो वसुदेवोयमदितिश्चापि देवकी ।
बलभद्रः शेषनागो यशोदादित्यजायत ॥३४

नन्द प्रजापतिर्दक्षो गर्गश्चापि चतुर्मुख ।
एषोवतारो राजेन्द्र कसोऽय कालनेमिज ।।३५
तत्र कसनियुक्ता ये दानवा विविधायुधा ।
ते च प्राहारिका सर्वे सुप्ता निद्राविमोहिता ।।३६

वह देवकी की प्रतिमा सब प्रकार के लक्षणो से सुसम्पन्न होनी चाहिए। एक पर्यङ्क पर अर्ध सुप्तिका दशा मे स्थित करे तो प्रकर्ष रूप से तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्ति वाली हो और तपस्विनी उसके साथ मुझ को भी विराजमान किया जावे ।।२६।। ऐसी प्रस्तुता और प्रसूता उसे वहा पर दिखलाया जावे जोकि उसी क्षण मे परम प्रहर्षित हो रही हो। बालक के स्वरूप म पर्यङ्क पर प्रसुप्त और स्तन का पान करने वाला मुझे भी दिखलाया जावे ।।३०।। मेरा स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसके वक्षस्थल में श्रीवत्स का चिह्न हो। पूर्ण नीलोत्पल दल की छवि वाला होना चाहिए। वही पर यशोदा भी एक श्रेष्ठ कन्या का प्रसव करने वाली होनी चाहिए ।।३१।। वहाँ पर उस देव गृह को नाग, यक्ष, विद्याधर, नरगण, सुर, असुर अपने हाथो म पुष्पो की मालाओ को ग्रहण किये हुए पणाम करने वाले थे ऐसा बनावे ।।३२।। उदितोदित प्रकारो से आकाश म सञ्चरण करने की भाति ही सब होरहे थे ऐसी रचना करे। वहा पर ही वसुदेव भी खग और चर्म को धारण किए हुए स्थित दिखलाने चाहिए ।।३३।। यह वसुदेव कश्यप और देवकी अदिति-बलभद्र शेष नाग-यशोदा दिति ने जन्म लिया था ।।३४।। नन्द प्रजापति दक्ष थे और चतुर्मुख गर्ग हुए थे। हे राजेन्द्र ! यह अवतार है और यह कस कालनेमिज है ।।३५।। वहा पर कस के द्वारा नियुक्त विविध आयुधो वाले जो दानव थे वे सभी प्राहरिक (पहरा देने वाले) थे। वे सभी निद्रा मे विमोहित होकर सो गये थे—यह भी वहाँ प्रदर्शित करना चाहिए ।।३६।।

गोधेनुकुञ्जराश्चास्य दानवा दण्डपाणय ।
नृत्यन्त्यप्सरसो हृष्टा गधर्वा गीततत्परा ।।३७

लेखनीयश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्रदे ।
रम्यमेव विधिं कृत्वा देवकी नवसूतिकाम् ॥३८
ता पार्थ पूजयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः फलैः ।
कुष्माण्डैर्नालिकेरैश्च खर्जूरैर्दाडिमीफलैः ॥३९
बीजपूरैः पूग फलैर्ल्लकुचैस्त्रपुसैस्तथा ।
कालदेशोद्भवैर्मृष्टैः पुष्पैश्चापि युधिष्ठिर ॥४०
ध्यात्वावतार प्रागुक्त मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥४१
गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता
वेणुवीणानिनादैर्भृङ्गारादर्शकुम्भ-
प्रमरकृतकरैः सेव्यमाना मुनीन्द्रैः ।
पर्यंके स्वास्तृते या मुदिततरमनाः
पुत्रिणी सम्यगास्ते सा देवी देवमाता
जयति सवदना देवकी कातरूपा ॥४२

जो धेनु कुञ्जर इसके और हाथो मे शस्त्र रखने वाले दानव थे। अप्सराऐं परम हृष्ट होती हुई नृत्य करती हैं– गन्धर्वगण गीतो के पायन मे परायण हैं, ऐसा दृश्य विरचित करे वहीं यमुना के ह्रद मे कालिय नाग भी लिखना चाहिए। इस प्रकार की अति रम्य विधि को करके फिर उस नवीन प्रसव करने वाली देवकी का पूजन हे पार्थ ! गन्ध पुष्पाक्षत फलादि के द्वारा भक्तिभाव से करे। फलो मे कूष्माण्ड, नालिकेर, खजूर और दाडिम होने चाहिए ॥३७-३९॥ बीजपूर–पूगफल–लकुच और त्रपुस भी होवें। हे युधिष्ठिर ! काल और देश के अनुसार समुत्पन्न हो तथा मृष्ट हो इसी भाँति पुष्प भी हो ॥४०॥ प्रथम वर्णित अवतार का ध्यान करके इस मन्त्र से अर्चन करना चाहिए ॥४१॥ निरन्तर गायन करने वाले किन्नरगण आदि से बराबर परिवृत रहने वाली–वेणु और वीणा के निनादो के द्वारा वे लोग गायन करने वाले हैं। भृंगार–आदर्श (शीशा) कुम्भ आदि जिनके करो मे विद्यमान हैं ऐसे मुनीन्द्रो के द्वारा सेव्यमान है–एक सुविस्तृत पर्यंक पर जो अत्यन्त मुदित मन

ाली–पुत्रिणी देव माता वह देवी भली भाँति सोई हुई है वह कान्त रूप ाली सुन्दर वदन वाली देवकी की जय हो ॥४२॥

पादावभ्यजयती श्रीर्देवक्याश्चारणांतिके ।
निषण्णा पङ्कजे पूज्या नमो देव्यै च मस्तः ॥४३
एवमादीनि नामानि समुच्चार्य पृथक्पृथक् ।
पूजयेयुर्द्विजाः सर्वे स्त्रीशूद्राणाममन्त्रकम् ॥४४
विध्यन्तरमपीच्छन्ति केचिदत्र द्विजोत्तमाः ।
चन्द्रोदये शशाङ्काय अर्घ्यं दद्याद्धरिं स्मरेत् ॥४५
अनघ वामन शौरिं वैकुंठ पुरुषोत्तमम् ।
वासुदेव हृषीकेश माधव मधुसूदनम् ॥४६
वाराह पुण्डरीकाक्ष नृसिंह ब्राह्मणप्रियम् ।
दामोदर पद्मनाभ केशव गरुडध्वजम् ॥४७
गोविन्दमच्युत कृष्ण मनतमपराजितम् ।
अधोक्षज जगद्वीज सर्वस्थित्यतवारणम् ॥४८
अनादिनिधन विष्णु संलोक्येश त्रिविक्रमम् ।
नारायण चतुर्बाहुं शखचक्रगदाधरम् ॥४९

देवकी देवी के चरणो के समीप मे उनके पादो का अभ्यंजन करती श्री पकज मे निषण्ण है और पूजन के योग्य है उस देवी के लिये से नमस्कार है ॥४३॥ ॐ देवकी के लिये नमस्कार है–इसी भाँति व, बलभद्र–श्रीकृष्ण–सुभद्रा–नन्द और यशोदा के नाम मे चतुर्थी क्ति लगाकर पूर्व मे प्रणव और अन्त मे 'नम ' का प्रयोग करे । इस र के नामों को अलग-अलग उच्चारण करके द्विजगण सब अर्चन सथा स्त्री और शूद्रो को इन मन्त्रों की पूजन में आवश्यकता नहीं ४४॥ यहाँ पर कुछ द्विजोत्तम दूसरी विधि को भी करना चाहते न्द्रोदय के समय मे शशाक को अर्घ्य समर्पित करके हरि का स्मरण ा चाहिए ॥४५॥ उस स्मरण मे अधोअंकित हरि के नामों का ारण करत हुए स्मरण करे—अनघ अर्थात् पाप से रहित–वामन– र–वैकुण्ठ–पुरुषोत्तम–वासुदेव–हृषीकेश अर्थात् विषयेन्द्रियों के ईश–

माधव–मधुसूदन–वाराह–पुण्डरीकाक्ष अर्थात् पुण्डरीक कमल दल के समान नेत्रों वाले–नृसिंह–ब्राह्मण प्रिय अर्थात् ब्राह्मणों से प्यार करने वाले–दामोदर–पद्मनाभ–केशव–गरुड़ध्वज–गोविन्द–अच्युत–कृष्ण–अनन्त –अपराजित–अधोक्षज–जगद्बीज अर्थात् इस जगत् के कारण स्वरूप –सर्ग (सृष्टि), स्थिति (संसार का पालन) और अन्त (संहार) के कारण –अनादि निधन अर्थात् आदि और अन्त से रहित–विष्णु–त्रैलोक्येश अर्थात् तीनों भुवनों के स्वामी–त्रिविक्रम–नारायण–चतुर्बाहु–शंख चक्र गदाधर ।।४६-४६।।

पीतांबरधर नित्य वनमालाविभूषितम् ।
श्रीवत्साङ्क जगत्सेतु श्रीधरं श्रीपति हरिम् ।।५०
योगेश्वराय योगेशभवाय योगपतये गोविन्दाय नमोनम ।
यज्ञेश्वराय यज्ञसभाय यज्ञ पतये गोविन्दाय नमोनम ।।५१
इत्यनुलेपनार्घ्याद्यर्चनधूपमन्त्र ।
विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वसंभवाय
विश्वपतये गोविन्दाय नमोनम. ।।५२
धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसंभवाय गोविन्दाय नमोनम. ।।५३
क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिनेत्रसमुद्भव ।
गृहाणार्घ्यं शशाकेन्दो रोहिण्या सहितो मम ।।५४
स्थंडिले स्थापयेद्देवं सचन्द्रां रोहिणीं तथा ।
देवकीं वसुदेवं च यशोदां नन्दमेव च ।।५५
बलदेवं तथा पूज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
अर्द्धरात्रे वसोर्द्धारां पातयेद्गुडसर्पिषा ।।५६

पीताम्बरधर–नित्य–वनमाला विभूषित–श्रीवत्साङ्क–जगत्सेतु–श्रीधर –श्रीपति–हरि–इन भगवन्नामों का स्मरण करते हुए ।।५०।। योगेश्वर योग भव–योग पति गोविन्द के लिये वारम्बार नमस्कार है–यह स्नान कराने का मन्त्र है । इसको कह कर स्नान करावे । योगेश्वर–यज्ञ सम्भव–यज्ञपति गोविन्द की सेवा में प्रणाम वारम्बार है । अनुलेपन और अर्घ्य आदि अर्चन धूप का मन्त्र है । यह समर्पित करने का मन्त्र है–इसको

पढ कर समर्पित करना चाहिए। विश्व–विश्वेश्वर–विश्व सम्भव–यह सभी विश्व के पति के लिये गोविन्द की सन्निधि मे बारम्बार नमस्कार है। यह नैवेद्य भेट करने का मन्त्र है। धर्म के ईश्वर–धर्म के पति–धर्म से समुत्पन्न गोविन्द प्रभु के लिये पुन:-पुन: प्रणाम है—यह दीपासन का मन्त्र है ॥५०-५३॥ हे क्षीर सागर से समुत्पन्न–अत्रि के नेत्र से समुद्भव वाले ! हे शशाकेन्दो ! रोहिणी के सहित आप मेरा यह अर्घ्य ग्रहण कीजिए ॥५४॥ स्थण्डिल मे देव को स्थापित करे तथा चन्द्र के सहित रोहिणी की भी स्थापना करे–देवकी–वसुदेव–यशोदा–नन्द–बलदेव की स्थापना करे और फिर पूजन करे तो वह सब पापो से मुक्त हो जाया करता है। आधीरात मे गुड और घृत से वसुधारा का पातन करना चाहिए ॥५५-५६॥

ततो वर्द्धापनं षष्ठीनामादिकरणं मम ।
कर्तव्यं तत्क्षणाद्रात्रौ प्रभाते नवमीदिने ॥५७
यथा मम तथा कार्यो भगवत्या महोत्सवः ।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥५८
हिरण्यं काञ्चनं गावो वासांसि कुसुमानि च ।
यद्यदिष्टतमं तत्तत्कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥५९
यमेव देवकी देवी वसुदेवादजीजनत् ।
भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥६०
सुजन्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा तु विसर्जयेत् ॥६१
एवं य कुरुते देव्या देवक्या. सुमहोत्सवम् ।
वर्षेवर्षे भगवतो मद्भक्तो धर्मनन्दन ॥६२
नरो वा यदि वा नारी यथोक्तफलमाप्नुयात् ॥६३

इसके अनन्तर वर्द्धापन और मेरा षष्ठी–नाम आदि का कर्म करना चाहिए जो कि उसी क्षण मे रात्रि मे ही सब करे फिर प्रभात मे नवमी के दिन मे जो करना चाहिए–उसे बतलाया जाता है ॥५७॥ जिस तरह मे यह मेरा उत्सव करे उसी भांति भगवती का महोत्सव भी करना

चाहिए । अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणो को भोजन करावे और उनको दक्षिणा देनी चाहिए ।।५८।। सुवर्ण—काञ्चन—गो—वस्त्र और कुसुम जो-जो भी अभीष्ट हो वह-वही देवे और कहे—भगवान् कृष्ण मुझ पर प्रसन्न होवें ।।५९।। जिसको देवी देवकी ने वसुदेव से जन्म दिया है और भौम ब्रह्मा की रक्षा करने के लिये समुत्पन्न किया है उस ब्रह्मात्मा के लिये नमस्कार है ।।६०।। सुजन्म वासुदेव के लिये और गौ तथा ब्राह्मणो के परम हितैषी के लिये शान्ति होवे शिव होवे—यह कह कर फिर विसर्जन करना चाहिए ।।६१।। इस तरह से जो भी कोई देवी देवकी का यह परम सुन्दर महान् उत्सव किया करता है और प्रति वर्ष करता है हे धर्मनन्दन ! वह भगवान् का मेरा भक्त होता है ।।६२।। चाहे वह कोई पुरुष हो या नारी हो उसे जैसा भी कहा गया है वह फल प्राप्त होता है ।।६३।।

पुत्रसतानमारोग्य धनधान्यादिसद्गृहम् ।
शालीक्षुयवसपूर्णमण्डल सुमनोहरम् ।।६४

तस्मिन्राष्ट्रे प्रभुर्भुंक्ते दीर्घायुर्मनसप्सितान् ।
परचक्रभय नास्ति तस्मिन्राज्येऽपि पाण्डव ।।६५

पर्जन्य कामवर्षी स्यादीतिभ्यो न भय भवेत् ।
यस्मिन्गृहे पाडुपुत्र क्रियते देवकीव्रतम् ।।६६

न तत्र मृत निष्क्रातिर्न गर्भपतन तथा ।
न च व्याधिभय तत्र भवेदिति मतिर्मम ।।६७

न वद्यजनसयोगो न चापि कलहो गृहे ।
सपर्केणापि य कश्चित्कुर्याज्जन्माष्टमीव्रतम् ।
विष्णुलोकमवाप्नोति सोऽपि पार्थ न सशय ।।६८

जन्माष्टमी जनमनोनयनाभिरामा
पपापहा सपदिनदितनदगोपा ।
यो देवकी सदयिता यजती ह तस्या
पुत्रानवाप्य समुपैति पद स विष्णो ।।६९

पुत्र सन्तान--आरोग्य--धनधान्य आदि से सुसम्पन्न गृह--शालि--इक्षु--यव आदि से सम्पूर्ण मण्डल जो वहुत ही मनोहर हो उसे प्राप्त हुआ करता है ॥६४॥ उस राष्ट्र मे प्रभु होकर दीर्घायु और मन के सभी अभीष्ट फलो का भोग किया करता है। हे पाण्डव ! उस राज्य मे फिर परचक्र का कोई भी भय नही हुआ करता है ॥६५॥ वहा पर मेघ इच्छा के अनुसार वर्षा के करने वाला होता है और ईतियो का कभी कोई वहा पर भय नही हुआ करता है जो कि छै प्रकार की अति वृष्टि--अनावृष्टि आदि मानी गयी हैं। हे पाण्डुपुत्र ! जिस घर मे यह देवकी व्रत को किया जाता है वहा पर किसी मृत पुरुष की सक्रान्ति--गर्भ का पतन--व्याधियो के उत्पन्न होने का भय कभी भी नही होते हैं--ऐसी मेरी मति या विचार है ॥६६-६७॥ न तो उस घर म वैधव्यो का सयोग ही होता है और न कोई किसी तरह का कलह होता है। जो कोई सपर्क से भी इस जन्माष्टमी के व्रत को कर लिया करता है हे पार्थ ! वह भी अन्त म विष्णु लोक को प्राप्त किया करता है--इसमें लेशमात्र भी सशय नही है ॥६८॥ यह श्रीकृष्ण जन्माष्टमी जनसमुदाय के मन और नेत्रो को अति अभिराम है। यह पापो का अपहरण करने वाली और तुरन्त ही नन्द गोपो को आनन्दित करने वाली है। जो व्यक्ति (वसुदेव) के सहित देवकी देवी का इसमे यजन किया करता है वह पुत्रपौत्रादि की प्राप्ति कर अन्त मे भगवान् विष्णु के पद को प्राप्त करता है ॥६९॥

॥ दशावतार चरित्र माहात्म्य ॥

पूर्वं कृतयुगस्यादौ भृगोर्भार्या महासती ।
दिव्यारामाश्रमे रम्या गृहकार्यैकतत्परा ॥१
बभूव सा भृगोर्नित्य हृदयेप्सितकारिणी ।
तस्या मुनिर्महातेजा अग्निहोत्र निधाय च ॥२
विष्णोस्त्रासाद्दानवाना कुलत्राणसमाकुलम् ।
मुक्त्वा युद्धस्थित पार्श्वं समभ्यर्च्य मुनिपु गव. ॥३

दत्वा निक्षपेक सर्व दिव्यार्यं सुमहातपाः ।
जगाम हिमवत्पार्श्वे हर तोपयितु रह ॥४
सजीवनीकृते नित्य कणधूं ममधोमुखः ।
पपौ दानवराजस्य विजयाय पुरोहितः ॥५
आजगाम गते तस्मिन्गरुडेनाश्रितो हरिः ।
अभ्येत्य जल्पन चक्रं चक्रेणोत्कृत्तकधरम् ॥६
गलद्रुधिरसपन्न लोहितार्णवसनिभम् ।
दृष्ट्वासुरबल सर्वं निहत विष्णुना तदा ।
दिव्या सशप्तुकामाभूद्विष्णु सास्राविलेक्षणा ॥७

श्रीकृष्ण ने कहा—पहिले कृत युग के आदि काल मे भृगु की भार्या जो महासती थी तथा दिव्य आरामाश्रम मे परम रम्य थी और गृह के सभी कार्यों मे परायण रहा करती थी ॥१॥ वह नित्य ही महर्षि भृगु के हृदय के इच्छित कार्यों के करने वाली थी। महान् तेजस्वी मुनि ने उस अपनी भार्या को अग्नि होत्र के कर्म मे नियुक्त कर दिया था ॥२॥ मुनि श्रेष्ठ ने जो महान् तपस्वी थे दानवो को विष्णु के त्रास से युक्त-कुल की रक्षा के लिये परम आतुर तथा युद्ध मे स्थित छोड कर पार्श्व मे सब कुछ समर्पित करके और दिव्या के लिये सब कुछ निक्षेप देकर हिमालय गिरि के पार्श्व मे एकान्त मे भगवान् शम्भु को प्रसन्न करने के लिये चले गये थे ॥३-४॥ नित्य ही दानवराज की सजीवनी एव विजय के लिये पुरोहित भृगु ने अधोमुख होकर कणों से धूम का पान किया था ॥५॥ उसके चले जाने पर गरुड पर समारूढ होकर भगवान् हरि आ गय थे और वहां आकर चक्र से उत्कृत्त (कटी हुई) कन्धरा का जल्पन किया था ॥६॥ बहते हुए रुधिर से युक्त लाल सागर के समान समस्त असुरो की सेना उस समय मे विष्णु के द्वारा निहित हो गई थी। उस समय मे आँसुओं से मलिन मुख वाली दिव्या विष्णु को शाप देने की इच्छा वाली हो गई थी ॥७॥

यावन्नोच्चरते वाच चक्रेण कृत्तकधरम् ।
तावन्निपातयामास शिरस्तस्याः महुण्डलम् ॥८

प्राप्य सजीवनो विद्या यावदायातयसौ मुनि ।
तावत्स दैत्याशापश्यत्पश्यति स्म निपातितम् ॥६
रोषाच्छ शाप च हरिं भ्रुकुटीकुटिलानन ।
अवश्यभावभावित्वाद्विश्वस्य हितकारणात् ॥१०
यस्मात्त्वया हता दैत्या ब्रह्मणो मत्परिग्रहा ।
तस्मात्त्व मानुपे लोके दश वारा गमिष्यसि ॥११
अतोऽयं मानुषे लोके रक्षार्थं च महीक्षिताम् ।
अवतार चकाराह भूयोभूय पृथग्विधम् ॥१२
पूर्वोक्तै कारणै पार्थ अवतीर्णं महीतले ।
मा नरा येऽर्चयिष्यति तेषा वासस्त्रिविष्टपे ॥१३

जब तक वह दिव्या शाप देने के लिये मुख से वचनो का उच्चारण नहीं कर पाती है तब तक तो विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा उसकी कन्धरा को काट डाला था और उसका कुण्डलों के सहित शिर काट कर नीचे गिरा दिया था ॥८॥ यह भृगु मुनि सजीवनी विद्या को प्राप्त करके जब तक वहा पर वापिस लौटकर आते हैं तब तक तो वहा पर उसने दैत्यो को नहीं देखा था और सब को निपातित देख पाये थे ॥६॥ उनको यह दशा दैत्यो की देखकर बड़ा रोष उत्पन्न हो गया था तथा टेढी भृकुटियो वाला मुख करके भृगु ने हरि को शाप दे दिया था जो कि अवश्य भाव से भावी विश्व के हित के कारण मे ही दिया था ॥१०॥ क्योकि तू ने मुझ ब्राह्मण के परिगृहीत दैत्यो का हनन कर डाला है इसलिये मैं यह शाप देता हू कि तुम मनुष्य लोक म दश बार जाओगे ॥११॥ इसी लिय मैंने मनुष्य लाक म राजाओ की रक्षा के लिये बारम्बार पृथक् २ प्रकार के अवतार किये थे ॥१२॥ इन पूर्व मे कथित कारणो म हे पार्थ ! मैं इस मही मण्डल म अवतीर्ण हुआ था । जो नर मेरी समर्चना किया करते हैं उनका निवास निश्चय ही त्रिविष्टिप म होता है ॥१३॥

व्रत दशावताराख्य कृष्ण ब्रूहि सविस्तरम् ।
समग्र सरहस्य च सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४

दत्वा निक्षपेक सर्व दिव्यायै सुमहातपा ।
जगाम हिमवत्पार्श्वे हर तोषयितु रह ॥४
सजीवनीकृते नित्य कणंधूमं ममघोमुख ।
पपौ दानवराजस्य विजयाय पुरोहित ॥५
आजगाम गते तस्मिन्गरुडेनाश्रितो हरि ।
अभ्येत्य जल्पन चक्रे चक्रेणोत्कृत्तकधरम् ॥६
गलद्रुधिरसपन्न लोहिताणवसनिभम् ।
दृष्ट्वासुरबल सर्वं निहत विष्णुना तदा ।
दिव्या सशप्तुकामाभूद्विष्णु सास्राविलेक्षणा ॥७

श्रीकृष्ण ने कहा—पहिले कृत युग के आदि काल मे भृगु की भार्या जो महासती थी तथा दिव्य आरामाश्रम म परम रम्य थी और गृह के सभी कार्यों मे परायण रहा करती थी ॥१॥ वह नित्य ही महर्षि भृगु के हृदय के इच्छित कार्यों के करने वाली थी। महान् तेजस्वी मुनि ने उस अपनी भार्या को अग्नि होत्र के कम म नियुक्त कर दिया था ॥२॥ मुनि श्रेष्ठ ने जो महान् तपस्वी थे दानवो को विष्णु के त्रास स युक्त-कुल की रक्षा के लिये परम आतुर तथा युद्ध मे स्थित छोड़ कर पार्श्व म सब कुछ समर्पित करके और दिव्या के लिये सब कुछ निक्षेप देकर हिमालय गिरि के पार्श्व म एकान्त मे भगवान् शम्भु को प्रसन्न करने के लिये चले गये थे ॥३ ४॥ नित्य ही दानवराज की सजीवनी एव विजय के लिये पुरोहित भृगु ने अधोमुख होकर कणों से धूम का पान किया था ॥५॥ उसके चले जाने पर गरुड पर समारूढ होकर भगवान् हरि आ गये थे और वहाँ आकर चक्र से उत्कृत्त (कटी हुई) कन्धरा का जल्पन किया था ॥६॥ बहते हुए रुधिर स युक्त लाल सागर के समान समस्त असुरों की सेना उस समय म विष्णु क द्वारा निहित हो गई थी। उस समय म आँसुओ स मलिन मुख वाली दिव्या विष्णु को शाप देने की इच्छा वाली हो गई थी ॥७॥

यावन्नोच्चरते वाच चक्रेण कृत्तकधरम् ।
तावन्निपातयामास शिरस्तस्या सकुण्डलम् ॥८

प्राप्य सजीवनी विद्या यावदायात्यसौ मुनि ।
तावत्स दैत्यान्नापश्यत्पश्यति स्म निपातितम् ॥६
रोपाच्छ शाप च हरिं भ्रुकुटीकुटिलानन ।
अवश्यभावभावित्वाद्विश्वस्य हितकारणात् ॥१०
यस्मात्त्वया हता दैत्या ब्राह्मणो मत्परिग्रहा ।
तस्मात्त्व मानुषे लोके दश वारा गमिष्यसि ॥११
अतोऽर्थं मानुपे लोके रक्षार्थं च महीक्षिताम् ।
अवतार चकाराह भूयोभूय पृथग्विधम् ॥१२
पूर्वोक्ते कारणे पार्थ अवतीर्णं महीतले ।
मा नरा येऽर्चयिष्यति तेषा वासस्त्रिविष्टपे ॥१३

जब तब वह दिव्या शाप देने के लिये मुख से वचनो का उच्चारण नही कर पाती है तब तक तो विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा उसकी कधरा को काट डाला था और उसका कुण्डलो के सहित शिर काट कर नीचे गिरा दिया था ॥८॥ यह भृगु मुनि सजीवनी विद्या को प्राप्त करके जब तक वहा पर वापिस लौटकर आते हैं तब तक तो वहा पर उसने दैत्यो को नही देखा था और सब को निपातित देख पाये थे ॥६॥ उनको यह दशा दैत्यो की देखकर बडा रोष उत्पन्न हो गया था तथा टेढी भृकुटियो वाला मुख करके भृगु ने हरि को शाप दे दिया था जो कि अवश्य भाव से भावी विश्व के हित के कारण से ही दिया था ॥१०॥ क्योकि तू ने मुझ ब्राह्मण के परिगृहीत दैत्यो का हनन कर डाला है इसलिये मैं यह शाप देता हू कि तुम मनुष्य लोक म दश बार जाओगे ॥११॥ इसी लिये मैंने मनुष्य लोक म राजाओ की रक्षा के लिये बारम्बार पृथक् २ प्रकार के अवतार किये थे ॥१२॥ इन पूर्व म कथित कारणो म हे पार्थ ! मैं इस मही मण्डल म अवतीर्ण हुआ था । जो नर मेरी समर्चना किया करते हैं उनका निवास निश्चय ही त्रिविष्टप म होता है ॥१३॥

प्रत दशावतारारव्य कृष्ण ब्रूहि सविस्तरम् ।
समग्र सग्रहस्य च सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४

करावे ॥१६॥ नवम वर्ष कर्णवेष्ट और दशवें मे शुभ खण्डक बनवावे। दश धेनु दशहरे दश विप्रो को दिलावे ॥२०॥ हे भरतर्पभ ! जो जिस प्रकार से बतलाया गया है उसे क्रम से खिला कर अर्द्ध का अर्द्ध पीस लेवे और अर्द्धार्द्ध द्विजाति के लिये देवे। स्वत भी अर्ध का अशन करे और किसी रम्य जलाशय मे जाकर करना चाहिए ॥२१॥

दशावतारा नभ्यर्च्य पुष्पधूपविलेपनैः ।
मन्त्रेणानेन मेधावी नरिमभ्युक्ष्य वारिणा ॥२२
मत्स्य कूर्म वराह च नरसिंह त्रिविक्रमम् ।
श्रीराम राम कृष्णौ च बुद्ध चैव सकल्किनम् ॥२३
गतोऽस्मि शरण देव हरिं नारायण प्रभुम् ।
प्रणतोऽस्मि जगन्नाथ स मे विष्णु प्रसीदतु ॥२४
छिनत्तु वैष्णवी माया भक्त्या जातो जनार्दन ।
श्वेतद्वीप नयत्वस्मान्समारमनि निवेदयेत् ॥२५
एव य कुरुते पार्थ विधिनानेन सुव्रत ।
दशावतारनामास्य तस्य पुण्यफल श्रृणु ॥२६
श्रूयते यास्त्विमालोच्य पुरणाणा दशा दश ।
तांश्छिनत्ति न संदेहः शक्रप्रहरणैर्हरिः ॥२७

दश अवतारों का अभ्यर्चन पुष्प धूप लेपन आदि से करे। मेधावी पुरुष को इस मन्त्र से जल के द्वारा हरि का अभ्युक्षण करना चाहिए ॥२२॥ मत्स्य--कूर्म--वराह--नरसिंह--त्रिविक्रम--श्रीराम--राम--कृष्ण--बुद्ध और कल्कि देव--हरि--नारायण प्रभु की मै शरणागति प्राप्त हो गया हूँ। जगत के नाथ के समक्ष मैं प्रणत होता हूँ। वह भगवान् विष्णु मुझ पर प्रसन्न होवें ॥२३-२४॥ भक्ति से जन्म-ग्रहण करने वाले जनार्दन प्रभु वैष्णवी माया का छेदन करें। हमको श्वेतद्वीप म ले जाते हैं। समारमा मे निवेदन करे ॥२५॥ हे पार्थ ! जो कोई इस प्रकार से करता है। हे सुव्रत ! इस वर्णित विधान से जो इस दशावतार नाम वाले व्रत को किया करता है अब उसके पुण्य के फलो का आप श्रवण कीजिए ॥२६॥ पुरणा के जो ये दश दशाऐं हैं उनका आलोचन करके जो वे

श्रवण की जाती हैं ये छेदन कर दिया करती हैं। जिस प्रकार शक्र प्रहरणों से हरि किया करते हैं—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥२७॥

संसारसागरे घोरे मज्जत तम् मां हरि ।
श्वेतद्वीप नयत्वाशु व्रतेनानेन तोषित ॥२८
किं तस्य न भवल्लोके यस्य तुष्टो जनार्दन ।
सोऽहं जनार्दनो राजन्कालरूपो धरासुत ।
मर्त्यलोके स्वयं पार्थ भूभारोत्तारकारणम् ॥२९
या स्त्रीव्रतमिदं पार्थ चरिष्यति मयोदितम् ।
सा लक्ष्म्याऽचलया युक्ता भर्तृपुत्रसमन्विता ॥३०
मर्त्यलोके चिरं स्थित्वा विष्णुलोके महीयते ।
विष्णुलोकाद्रुद्रलोकं ततो याति परं पदम् ॥३१
य पूजयति पुरुषा पुरुषोत्तमस्य
मत्स्यादिकांस्तु दशमीषु दशावतारान् ।
मर्त्या दशस्वपि दशासु सुखं विहृत्य
ते यांति यानमधिरुह्य सुरेशलोकान् ॥३२

इस व्रत के द्वारा सन्तुष्ट भगवान् हरि संसार सागर में डूबते हुए मुझको वहाँ श्वेत द्वीप में शीघ्र ही ले जावें ॥२८॥ भगवान् जनार्दन जिससे परम सन्तुष्ट हो जावें उसको इस लोक में क्या नहीं होता है ? अर्थात् सभी कुछ उसे प्राप्त हो जाया करता है। हे पार्थ ! इस मनुष्य लोक में भूमि के भार के उत्तारण के कारण से हे राजन् ! वह मैं काल रूपी धरासुत जनार्दन हूँ ॥२९॥ हे पार्थ ! जो सती मेरे द्वारा कथित इस व्रत को करेगी वह भी अचल लक्ष्मी से युक्त होकर भर्ता और पुत्रादि से समन्वित हुआ करती है ॥३०॥ मर्त्य लोक में चिरकाल तक स्थित रह कर वह अन्त में विष्णु लोक में प्रतिष्ठित हुआ करती है। विष्णु लोक से रुद्र लोक में और फिर परम पद को प्राप्त हो जाती है ॥३१॥ जो पुरुष इन मत्स्य आदि पुरुषोत्तम के दश अवतारों का दशमी तिथियों में पूजन किया करते हैं व मनुष्य दशों दशाओं में सुख का त्याग करके वे यान में अधिरोहण करके सुरेश लोकों को जाया करते हैं ॥३२॥

॥ गोवत्स-द्वादशी माहात्म्य ॥

अक्षौहिण्यो दशाष्टौ च मद्राज्यार्थे क्षय गता ।
तेन पापेन मे चित्ते जुगुप्सातीव वर्तते ॥१
तत्र ब्राह्मणराजन्यवैश्यशूद्रादयो हता ।
भीष्मद्रोणकलिंगादिकर्णशल्यसुयोधना ॥२
तेषा वधेन यत्पाप तन्मे मर्माणि कृतति ।
पापप्रक्षालन कश्चिद्धर्मं ब्रूहि जगत्पते ॥३
सुमहत्पुण्यजनन गोवत्सद्वादशीव्रतम् ।
अस्ति पार्थ महाबाहो पाडवाना धुरधर ॥४
केय गोद्वादशी नाम विधान तत्र कीदृशम् ।
कथमेषा समुत्पन्ना कस्मिन्काले जनार्दन ॥५
एतत्सर्वं हरे ब्रूहि पाहि मा नरकार्णवात् ॥६

युधिष्ठिर ने कहा—मेरे राज्य के प्राप्त करने के लिए अठारह अक्षौहिणी सेना क्षय को प्राप्त होगई थी। उस महापाप से चित्त में अत्यन्त जुगुप्सा वर्त्तमान रहा करती है ॥१॥ उस महायुद्ध में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रभृति सभी निहत हुए थे जिनमें पितामह भीष्म,गुरुद्रोण, कलिङ्गादि कर्ण,शल्य और सुयोधन थे ॥२॥ उन वध से जो पाप हुआ है वह मेरे मर्म स्थानों का कृन्तन किया करता है। हे जगत्पते ! पापों के प्रक्षालन करने वाला कोई धर्म बतलाइए ॥३॥ श्रीकृष्ण ने कहा—एक सुमहान् पुण्य को उत्पन्न करने वाला गोवत्स द्वादशी का व्रत होता है। हे महाबाहो ! हे पाण्डवों में धुरंधर हे पार्थ ! यह ऐसा ही व्रत है ॥४॥ युधिष्ठिर ने कहा—यह गोद्वादशी नाम वाली कौन सी है और उसका विधान किस प्रकार का होता है ? यह कैसे उत्पन्न हुई थी ? हे जनार्दन ! यह भी बतलाइये यह किस समय में समुत्पन्न हुई है ? हे हरे ! यह सभी मुझे आप बतलाइये और मुझको नरक रूपी सागर से बचाइए ॥५-६॥

पुरा कृतयुगे पार्थ मुनिकोटि समागता ।
तपश्चचार विपुल नामव्रतधरा गिरौ ॥७
हर्षेण महताविष्टा देवदर्शनकाक्षया ।
जबूमार्गे महापुण्ये नामतीर्थविभूषिते ॥८
पारयाने सिद्धपात्रे रम्ये तदुलिकाश्रमे ।
टटाविरिति विख्याते उत्तमे शिखरे नृप ॥९
तापसारण्यमतुल दिव्यकाननमडितम् ।
वशिष्ठशुक्राङ्गिरसक्रतुदक्षादिभिर्वृतम् ॥१०
वल्कलाजिनसवीतैर्भृगोराश्रममडलम् ।
नानामृगगणैर्जुष्टं शखामृगगणैर्युतम् ॥११
प्रशातसिहहरिण सर्ववस्तुगतद्रुमम् ।
गहन निर्झरं रम्य लतासतानसकुलम् ॥१२
सिंहव्याघ्रगजैर्भिन्न हरिणै शवरै शशै ।
वराहैरुरुभिश्चित्रैः समतादुपशोभितम् ॥१३
तपस्यता तत्र तेषा मुनीना दर्शनार्थिनाम् ।
व्याज चक्रे महीनाथ द्वादशार्धार्धलोचन ॥१४

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ ! पहिले कृतयुग मे मुनियो की कोटि समागत हुई थी जो नाम व्रत के धारण करने वाली थी उसने गिरि मे विपुल तपश्चर्या की थी । यह मुनि मण्डली महान् हर्ष से समाविष्ट थी और देव के दर्शन की आकाक्षा से ही तप किया था । एक महा पुण्य-मय जम्बूमार्ग मे जो नाम तीर्थ से विभूषित था ॥७ ८॥ वहा सिद्ध पात्र रम्य परियात्र तन्दुलिकाश्रम मे हे नृप ! एक टटावि—इस नाम से परम विख्यात उत्तम शिखर था ॥९॥ उसमे अनुपम तपोवन था जो दिव्य काननो से समलकृत था और उसमे वसिष्ठ—शुक्र—आङ्गिरस—क्रतु-दक्ष आदि सभी विममान थे ॥१०॥ ये सभी मुनिगण वल्कल और मृगचर्म क धारण करने वाले थे । भृगु का आश्रममण्डल अनेक मृगगणो के द्वारा सवित था तथा शाखामृगो से भी युक्त था ॥११॥ इसमे परम प्रशान्ति वाले सिह और हरिण रहा करते थे । तथा सब वस्तु गत द्रुम

थे। यह अति गहन—निर्झ त और सुन्दर था एव लताओ के विस्तार से संकुल था ॥१२॥ सिंह—गज और व्याघ्रो से भिन्न हरिण—शबर—शश-वराह—रुरु जो चित्र विचित्र भाँति के थे इन सब से यह आश्रम परम शोभित था ॥१३॥ वहा पर देव दर्शन के अर्थी उन मुनियो के तप करने पर द्वादशार्घार्ध लोचन महीनाथ ने एक व्याज(छद्म)किया था ॥१४॥

बभूव ब्राह्मणो वृद्धो जरापाडुरमूर्द्ध जः ।
श्लथच्चर्मतनुः कुब्जो यष्टिपाणि सवेपथुः ।
उमापि चक्रे गोरूप शृणु तत्पार्थ यादृशम् ॥१५

क्षीरोदतोयसभूता या. पुरामृतमंथने ।
पञ्च गावः शुभाः पार्थ पञ्चलोकस्य मातरः ॥१६

नन्दा सुभद्रा सुरभी सुशीला बहुला इति ।
एता लोकोपकाराय देवाना तर्पणाय च ॥१७

जमदग्निभरद्वाजवशिष्ठासितगौतमाः ।
जगृहु. कामदा. पञ्च गावो दत्ताः सुरैस्ततः ॥१८
गोमय रोचना मूत्र क्षीर दधि घृत गवाम् ।
षडगानि पवित्राणि सशुद्धिकरणानि च ॥१९
गोमयादुत्थितः श्रीमा्न्विल्ववृक्षः शिवप्रियः ।
तत्रास्ते पद्महस्ता श्री. श्रीवृक्षस्तेन स स्मृतः ।
बीजान्युत्पलपद्माना पुनर्जातानि गोमयात् ॥२०

गोरोचना च मागल्या पवित्रा सर्वसाधिका ।
गोमूत्राद्गुग्गुलुर्जातः सुगधि प्रियदर्शन ।
आहारः सवदेवाना शिवस्य च विशेषत. ॥२१

वह देवेश्वर एक अति वृद्ध ब्राह्मण हो गये थे। जिसकी वृद्धता के कारण समस्त केश पाण्डुर वर्ण के होगये थे। शरीर का चर्म श्लथ था—कुब्ज (कुबड़ा) था—हाथ मे एक यष्टि (लाठी) को ग्रहण करने वाला और कम्प युक्त था। उस समय मे उमा देवी ने भी गोरूप धारण किया था। हे पार्थ ! वह जिस प्रकार का था उसको तुम श्रवण करो ॥१५॥

पहिले अमृत के लिये मन्थन करने के समय मे क्षीर सागर के जल से जन्म ग्रहण करने वाली पाच गौऐ परम शुभ पाँच लोक की माताऐ हुई थी ॥१६॥ नन्दा–सुभद्रा–सुरभी–सुशीला–बहुला–ये उनके नाम है। ये लोको के उपकार क लिये और देवो के तपण के लिये ही समुत्पन्न हुई थी ॥१७॥ जमदग्नि–भरद्वाज–वशिष्ठ–असित–गौतम ने इन पाँच गौओ को ग्रहण किया था और सुरगण ने इनको दिया था ॥१८॥ गोमय–रोचना–मूत्र–क्षीर–दधि और गौओ का घृत ये छै अ ग परम पवित्र होते हैं तथा सशुद्धि के करने वाले भी हुआ करते हैं ॥१९॥ गोमय से श्रीमान् भगवान् शिव का प्रिय विल्व का वृक्ष समुत्थित हुआ था। वहाँ पर पद्म हाथ मे लेने वाली श्री विराजमाना रहती है अतएव उसे श्रीवृक्ष भी कहा गया है। फिर गोमय से उत्पल पद्मो के बीज उत्पन्न हुए थे ॥२०॥ गोरोचना मागलिक होती है–पवित्र है और सब की साधिका हुआ करती है। गोमूत्र गुलु उत्पन्न हुआ जो सुन्दर ग ध वाला और देखने मे प्रिय होता है। यह सभी देवो का आहार है तथा शिव का विशेष रूप से होता है ॥२१॥

यद्बीज जगत किञ्चित्तज्ज्ञे य क्षीरसभवम्।
दध्नु सर्वाणि जातानि मङ्गलान्यर्थसिद्धये।
घृतादमृतमुत्पन्न देवाना तृप्तिकारणम् ॥२२
ब्राह्मणाश्चै व गावश्च कुलमेक द्विधा कृतम्।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठ ति हविरन्यत्र तिष्ठति ॥२३
गोपु यज्ञा प्रवर्तते गोपु देवा प्रतिष्ठिता।
गोपु वेदा समुत्कीर्णा सपडगपदक्रमा ॥२४
शृङ्गमूले गवा नित्य ब्रह्मा विष्णुश्च सस्थितौ।
शृङ्गाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च ॥२५
शिवो मध्ये महा देव सवकारणकारणम्।
ललाटे सस्थिता गौरी नासावशे च पण्मुख ॥२६
कबलाश्वतरौ नागौ नासापुटसमाश्रितौ।
कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुर्भ्यां शशिभास्करौ ॥२७

दंतेषु वसव सर्वे जिह्वाया वरुण स्थित. ।
सरस्वती च कुहरे यमयक्षौ च गण्डयो. ॥२८

इस जगत् का जो कुछ भी बीज है वह सब क्षीर से ही सम्भूत होने वाला है। अर्थ की सिद्धि क लिए सभी मगलो को धारण किया था। घृत से अमृत उत्पन्न हुआ जो देवो की तृप्ति का कारण है ॥२२॥ ब्राह्मण और गौ यह एक ही कुल है जो दो प्रकार का कर दिया गया है। एक मे मन्त्र अपनी स्थिति रखा करते हैं और दूसरे मे हवि स्थित रहता है ॥२३॥ गौओ मे यज्ञ प्रवृत्त होते हैं और गौओ म देवता लोग प्रतिष्ठित रहते हैं—गौओं मे वेद समुत्कीर्ण हैं जो षडंग क्रम के सहित होते हैं ॥२४॥ गौओ के सीगो के मूल मे नित्य ही ब्रह्मा और विष्णु समवस्थित रहा करते हैं। शृग के अग्रभाग मे सम्पूर्ण तीर्थ स्थावर और चर विद्यमान हैं ॥२५॥ मध्य मे महान् देव शिव विराजमान हैं जो सब कारणो के भी कारण स्वरूप होते हैं। ललाट में जगदम्बा गौरी विद्यमान् हैं नासा वश म षण्मुख कार्त्तिकेय विराजते हैं ॥२६॥ कम्बलश्वतर दो भाग नासापुट म वर्त्तमान हैं। दोनो कानो मे अश्विनीकुमार देव रहते हैं और दोनो चक्षुओ मे शशि एव भुवन भास्कर समाश्रित हैं ॥२७॥ गौ के दाँतो मे सब वसुगण हैं एव जिह्वा मे वरुण स्थित रहते हैं। कुहर म सरस्वती तथा गण्ड स्थलो मे यम और यक्ष दोनों रहा करते हैं ॥२८॥

सध्याद्वय तयेष्टाभ्या ग्रीवाया च पुरदर ।
रक्षासि ककुदे द्यौश्च पार्ष्णिकाये व्यवस्थिता ॥२९
चतुष्पात्सकलो धर्मो नित्य जघासु तिष्ठति ।
खुरमध्येषु गन्धर्वा खुराग्रेषु च पन्नगा. ॥३०
खुराणा पश्चिमे भागे राक्षसा' सप्रतिष्ठिता ।
रुद्रा एकदश पृष्ठे वरुण. सवसन्धिषु ॥३१
श्रोणीतटस्था पितर कपोलेषु च मानवा ।
श्रीरपाने गवा नित्य स्वाहालकारमाश्रिता ॥३२

आदित्या रश्मयो वाला पिण्डीभूता व्यवस्थिता ।
साक्षाद्गगा च गोमूत्रे गोमये यमुना स्थिता ॥३३
त्रयस्त्रिंशद्देवकोटयो रोमकूपे व्यवस्थिता ।
उदरे पृथिवी सर्वा सशैलवनकानना ॥३४
चत्वार सागरा प्रोक्ता गवा ये तु पयोधरा ।
पर्जन्य क्षीरधारासु मेघा बिन्दुव्यवस्थिता ॥३५

इष्टो म दोनो म ध्याऐ रहती हैं और ग्रीवा मे इन्द्र देव विराजते हैं गौ के ककुद मे राक्षस तथा पार्ष्णिकाय में द्यौ व्यवस्थित है ॥२९॥ चारो पादो वाले सम्पूण धम नित्य ही गौ के जघाओ मे स्थित रहा करता है । खुरो के मध्य में ग धर्व और खुरा के अग्रभाग में पन्नग हैं ॥३०॥ खुरो के पश्चिम भाग म राक्षस सम्प्रतिष्ठित हैं । एकादश रुद्र पृष्ठभाग में तथा समस्त स धियो में वरुण देव रहा करते हैं । ॥३१॥ श्रोणी तट मे स्थित पितृगण हैं तथा कपालो में मानव रहते है स्वाहा के अलकार मे समाश्रित श्री गौओ के अपान म नित्य रहती हैं ॥३२॥ आदित्य रश्मियाँ पिण्डीभूत होकर वाल व्यस्थित है । गो मूत्र साक्षात् गगा विराजमान हैं । गोमय में यमुना विद्यमान हैं ॥३३॥ तेतीस करोड देवो की कोटियाँ रोम कूपो में विशप रूप से अवस्थित हैं । गौ के उदर में सम्पूण पथिवी है जिसमें शैल वन और कानन है ॥३४॥ जो ये गौ के चार स्तन हैं ये ही चार सागर कह जाते हैं । क्षीर की धाराओ में पर्ज य तथा बि दुओ म व्यवस्थित मेघ है ॥३५॥

जठरे गार्हपत्योऽग्निर्दक्षिणाग्निर्हृ दि स्थित ।
कठे आहवनीयोऽग्नि सभ्योऽग्निस्तालुनिस्थित ॥३६
अस्थिव्यवस्थिता शैला मज्जासु क्रतवस्थिता ।
ऋग्वेदोऽथर्ववेदश्च सामवेदो यजुस्तथा ॥३७
सुरक्तपीतकृष्णादी गवा वर्णे व्यवस्थिता ।
तासा रूपममुमा स्मृत्वा सुरभीणा युधिष्ठिर ॥३८
सस्मृत्य तत्क्षणाद्गौरी इयेष सदृशी तनुम् ।
आत्मान विदधे देवी धमराज शृणुष्व ताम् ॥३९

षडुन्नता पञ्चनिम्ना मडूकाक्षी सुवालधिम् ।
ताम्रस्तानी रौप्यकटि सुखुरी सुमुखी सिताम् ॥४०
सुशीला च सुतस्नेहा सुशीरा सुपयोधराम् ।
गोरूपिणीमुमा स्पृष्ट्वा स्वामिनी ता सवत्सिकाम् ॥४१
चर्चया प्रतरन्हृष्टो महादेव स्वचेतसि ।
शनै शनैर्ययौ पार्थ विप्ररूपी महाश्रमम् ॥४२

गौ के अठर मे गार्हपत्य अग्नि है और हृदय म दक्षिणाग्नि है । कण्ठ मे आह्वनीय अग्नि स्थित है तथा तालु मे सम्य अग्नि है ॥३६॥ गौ की अस्थियो मे सम्पूर्ण शैल व्यवस्थित हैं और मज्जाओ मे ऋतु विद्यमान हैं । ऋग्वेद—अथर्ववेद —सामवेद—और यजुर्वेद सुरक्त—पीत और कृष्ण आदि जो गौओ के वर्ण हैं उनमे ही व्यवस्थित रहते हैं । हे युधिष्ठिर ! उन सुरभियो के रूप को उमा देवी स्मरण किया करती हैं ॥३८॥ इस प्रकार से सस्मरण करके गौरी ने उसी क्षण मे सदृश रूप की इच्छा की थी । हे धर्मराज ! देवी ने जैसा अपने आप को बनाया था—उसे अब सुनलो ॥३९॥ षडुन्नत—पच निम्न मडूकाक्षी सुन्दर पूँछ और ताम्र के से स्तनो वाली—रौप्य की कटि से युक्त—सुन्दर खुरो वाली—सुमुखी—सित—सुशील—सुन्दर क्षीर वाली—सुत पर स्नेह करने वाली और सुन्दर पयोधरो वाली, रूप म स्थित वत्स से युक्त—स्वामिनी उमा का स्पर्श करके महादेव अपने चित्त मे प्रसन्न होकर प्रतार करते हुए हे पार्थ ! शनै-शनै वह उस महाश्रम म विप्र रूप वाले होकर गये थे ॥४० ४२॥

दत्वा कुलपते पार्श्वं भृगोस्ता गा न्यवेदयत् ।
तपस्विना महातेजास्ता च सर्वेषु पाडव ॥४३
न्यासरूपा ददौ धेनु रक्षित्वा ता दिनद्वयम् ।
यावत्स्नात्वा इतस्तीर्त्वा जम्बूमार्गं वियाम्यहम् ॥४४
रक्षिष्याम प्रतिज्ञाते मुनिभि सुरभीमिमाम् ।
अन्तर्द्धिमगमद्देव पुनर्व्याघ्रो बभूव ह ॥४५
वज्रचक्रनखो दर्वी ज्वलत्पिगललोचन ।
जिह्वाकरालवदनो जिह्वालागूलदारुण, ॥४६

सम्प्रायादाश्रमपद ता च धेनु सवत्सिकाम् ।
त्रासयामास ता देव मुनीना दिक्ष्ववस्थितः ॥४७
ऋषयोऽपि समाक्राता आर्तनाद प्रचक्रिरे ।
हाहेत्युच्चै. केचिद्हुहु हुकारैस्तथापरे ॥४८
तालास्फोटान्ददु. केचिद्व्याघ्र दृष्ट्वातिभैरवम् ।
सापि हम्भारवाश्चक्रे गौरुत्प्लुत्य सवत्सिका ॥४९

कुलपति भृगु के पार्श्व मे उस गो को देकर निवेदन किया था। हे पाण्डव ! वह सब तपस्वियो मे महान् तेजस्वी थे। दो दिन तक उसकी रक्षा करके उस धेनु को न्यास रूप मे दे दिया था। यह कहा था कि मैं जब तक यहा से उतर कर स्नान करके जम्बू मार्ग मे जाता हूँ इस गौ को आप रखिये ॥४३-४४॥ मुनियो के द्वारा इस सुरभी की हम रक्षा करेंगे—ऐसी प्रतिज्ञा करने पर वह देव अन्तर्धान हो गये थे और एक व्याघ्र बन गये थे ॥४५॥ वह वज्र चक्र के समान नखो वाला –दर्वी–जनते हुए पिंगल वर्ण के नेत्रो से युक्त–जिह्वा से कराल मुखाकृति वाला एव जीभ और लागूल से अत्यन्त दारुण था ॥४६॥ वह उसी आश्रम के स्थान मे आ गया था और वत्स के सहित उस धेनु को त्रास देने लगा था। देव मुनियो की दिशाओ मे अवस्थित हो गया था ॥४७॥ ऋषि गण भी समाक्रान्त हो गये थे और सब आर्त्तनाद करने लगे थे। उनमे कुछ तो 'हा–हा' यह कहने लगे और कुछ दूसरे हुंकार 'हुम–हुम्'–ऐसा मुख से कह रहे थे ॥४८॥ कुछ तालियो की ध्वनि कर रहे थे जिन्होने कि उस महा भैरव स्वरूप वाले व्याघ्र को देख लिया था। वह वत्स सहित गौ भी उत्प्लवन करके हम्भारव कर रही थी ॥४९॥

तस्या व्याघ्रभयार्ताया: कपिलाया युधिष्ठिर ।
पलायन्त्या शिलामध्ये क्षुण्ण खुरचतुष्टयम् ॥५०
व्याघ्रवत्सयोस्तत्र वदित खुररिश्वरै. ।
इदनैतन्नीय मुष्यक्त तदद्यापि चतुष्टयम् ॥५१
गजस्त लिङ्गसिग च वाम्भोम्नीर्थ तदुत्तमम् ।
यस्मस्पृशति राजेन्द्र स गोवध्या व्यपोहति ॥५२

तत्र स्नात्वा महातीर्थे जबूमार्गे नराधिप ।
ब्रह्महत्यादिभि· पापैर्मुच्यते नात्र सशयः ॥५३
ततस्ते मुनयः क्रुद्धा ब्रह्मदत्ता महास्वनाम् ।
जघ्नुर्घंटा सुरैर्दत्ता गिरिकन्दरपूरणीम् ॥५४
शब्दन तेन व्याघ्रोऽपि मुक्त्वा गाव सवत्सिकाम् ।
विप्रै स्तत्र कृत नाम ढुण्ढागिरिरिति श्रुतिः ।
त प्रपश्यति ये पार्थ ते रुद्रा नात्र सशय. ॥५५
अथ प्रत्यक्षता यद्रस्तेषा देवो महेश्वर. ।
शूलपाणिस्त्रिपुरहा कामघ्नो वृषभे स्थितः ॥५६

हे युधिष्ठिर ! व्याघ्र के भय से आर्त्त वह कपिला भाग रही थी तो एक ही क्षण मे शिला के मध्य मे उसके चारो खुर हो गये थे ॥५०॥ वहा पर सुरों और किन्नरो ने व्याघ्र वत्सक की वन्दना की थी । वह आज भी चतुष्टय अतीव सुव्यक्त दिखलाई देता है ॥५१॥ वह जल में शिवलिंग शम्भु का परमोत्तम तीर्थ है । हे राजेन्द्र ! जो भी कोई उसका सस्पर्श करता है वह बध्या का व्यपोहन कर दिया करता है ॥५२॥ उस महातीर्थ मे जम्बू मार्ग में हे नराधिप ! स्नान करके मनुष्य ब्रह्म-हत्यादि पापों स छुटकारा पा जाता है—इसम लेश मात्र भी सशय नही है ॥५३॥ इसके उपरान्त वे मुनिगण अति क्रुद्ध हो गये थे और उन्होंने ब्रह्मा की दी हुई महान् ध्वनि वाली घण्टा को बजाया था जो सुरों के द्वारा दी हुई और गिरि की कन्दराओं को भर देने वाली थी ॥५४॥ उस शब्द स वह व्याघ्र भी सवत्सा उस गौ को छोड गया था । वहा पर विप्रों ने ढुण्ढा गिरि—यह नाम कर दिया था—ऐसी श्रुति है । हे पार्थ ! जो उसको देखते हैं वे रुद्र ही होते हैं—इसमे सशय नहीं है ॥५५॥ इसके अनन्तर श्रेष्ठ देव महेश्वर उनको प्रत्यक्ष हो गये थे । उनके हाथ मे त्रिशूल था—त्रिपुर के हनन करने वाले तथा कामदेव को भस्म करने वाले वृषभ पर समारूढ थे ॥५६॥

उमामहत्यो वरदः सत्स्वामी गविनायक. ।
[illegible]

वीरभद्रा च चामुण्डा घंटाकर्णादिभिर्वृता ।
मातृभिर्भूतसंघातैर्यक्षराक्षसगुह्यकैः ।
देवदानवगन्धर्वमुनिविद्याधरोरगैः ॥५८

प्रणम्य देवदेवाय पत्नीभिः सहितैरुमा ।
गोरूपिणी सवत्सा च पूजिता ब्रह्मचारिभिः ॥५९

कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां नंदिनीव्रतम् ।
ततः प्रभृति राजेन्द्र अवतीर्णं महीतले ॥६०

उत्तानपादेन तथा व्रतं चीर्णमिदं शृणु ।
उत्तानपादनामासीत्क्षत्रियः पृथिवीपते ॥६१

तस्य भार्याद्वयं चासीद्रुचिशुघ्नीति विश्रुतम् ।
शुघ्नीजातो ध्रुवः पुत्रो वामपादधरोऽलसः ॥६२
रुच्याः समर्पितः शुघ्न्या ध्रुवोऽयं रक्ष्यतां सखि ।
अहं करिष्ये शुश्रूषां भर्तुस्तावत्सदा स्वयम् ॥६३

वह वरद प्रभु उमा के साथ थे–स्वामी के सहित–विनायक से संयुक्त–नन्दी के साथ–समकाल–शृंगी सहित और समनोहर थे ॥५७॥ वीरभद्रा चामुण्डा घण्टाकर्ण आदि से समावृत थी–मातृगण, भूत का संघात–यक्ष राक्षस और गुह्यकों के सहित थी एवं देव, दानव, गन्धर्व, मुनि–विद्याधर और उरगों के साथ थी अर्थात् इन सब से समावृत थी ॥५८॥ देवों के देव के लिये प्रणाम करके पत्नियों के सहित उमा देवी और ब्रह्मचारियों के द्वारा गो रूप वाली वत्स के सहित पूजी गई थी ॥५९॥ कार्त्तिक मास के शुक्ल पक्ष में द्वादशी तिथि के दिन यह नन्दिनी का व्रत होता है। हे राजेन्द्र ! तभी से लेकर यह इस महीतल में अवतीर्ण हुआ है ॥६०॥ उत्तान पाद राजा ने इस व्रत को जिस प्रकार से किया था उसका श्रवण करो। हे पृथिवीपते ! उत्तान पाद नाम वाला एक क्षत्रिय था ॥६१॥ उस राजा की दो भार्याऐं थी। उन दोनों के रुचि और शुघ्नी ये दो नाम विश्रुत थे। शुघ्नी से समुत्पन्न ध्रुव पुत्र वामपाद धर और अलस था ॥६२॥ शुघ्नी ने उसको रुचि को समर्पित कर

दिया था कि हे सखि ! तुम इस पुत्र की रक्षा करना। मैं तब तक सर्वदा स्वयं अपने स्वामी की शुश्रूषा करूंगी ॥६३॥

रुची रसवती नित्य प्रत्यह कुरुते गृहे ।
अकरोद्भर्तृ शुश्रूषा शुघ्नी नित्य पतिव्रता ।।६४
कदाचित्क्रोधमात्सर्यात्सापत्न्य दर्शित तया ।
स्वय रुच्या निहत्यासौ शिशुः खडलशः कृत ।।६५
तापिकाया तथा स्थाल्या पक्वसिद्ध सुसस्कृत ।
अन्नभोजनवेलाया ददाति नृपभाजने ।।६६
त वै भक्षयितु दुष्टा सामिष भोजन किल ।
अथ भोजनवेलाया वत्रे जीवित माप्तवान् ।।६७
तथैव प्रहस-बालो मातुरुत्सगजोऽभवत् ।
त दृष्ट्वा महदाश्चर्यं रुची पप्रच्छ विस्मिता ।।६८
किमेतद्ब्रू हि वृत्तात कस्येय व्युष्टिरुत्तमा ।
कि त्वयाचरित किञ्चिद्व्रत दत्त हुत तथा ।।६९
सत्यसत्य पुन सत्य येन जीवति ते सुत. ।
मयाय सप्त वारास्तु विशल्य शकली कृत ।।७०

रुचि नित्य ही रस वाली थी और प्रतिदिन घर मे ही आनन्द किया करती थी। पतिव्रता शुघ्नी नित्य स्वामी की शुश्रूषा किया करती थी ॥६४॥ किसी समय म क्रोध मात्सर्य से उसने सापत्नी होने का भाव दिखला दिया था और इसने स्वय रुचि के शिशु को मारकर टुकडे-टुकडे कर दिये थे ॥६५॥ फिर तापिका मे तथा स्थाली मे पका कर उसे सिद्ध किया था और भली-भांति सस्कार युक्त किया था। जिस समय मे अन्न के भोजन का समय समुपस्थित हुआ था उस समय मे नृप के पात्र म उसे दे दिया था ॥६६॥ दुष्टा उसने उस आमिष से युक्त भोजन के समय म बोला था कि वह जीवित को प्राप्त हो गया था ॥६७॥ उसी प्रकार से हँसता हुआ बालक माता के उत्सगज (गोद म जाने वाला) हो गया था। उसको देखकर महान् आश्चर्य हुआ और अत्यन्त विस्मित होते हुए रुचि ने पूछा था ॥६८॥ यह क्या वृत्तान्त है ? इसे बतलाओ।

यह किसकी उत्तम व्युष्टि है ? क्या तूने कुछ व्रत–हवन तथा दान किया है ? ।।६६।। सत्य-सत्य ओर पुन सत्य यही है जिससे तेरा पुत्र जीवित होता है । मैंने इसको सात बार विशल्य करके टुकडे २ किये थे ।।७०।।

पक्व स्वय कृत स्थाल्या व्यञ्जनै सह भोजनै ।
परिविष्यमाण स पुन कथ जीवितमाप्तवान् ।।७१
किं ते सिद्धा महाविद्या मृतसजीवनी शुभा ।
रत्न मणिर्महारत्न योगाञ्जनमहौषधम् ।।७२
कथयस्व महाभागे सत्यसत्य भगिन्यसि ।
एवमुक्ते रुचिस्तस्यै व्याचख्यौ वत्सगोव्रतम् ।।७३
कार्तिके चैव द्वादश्या यथा चानुष्ठित पुरा ।
व्रतस्यास्य प्रभावेण पनर्जीवति मे सुत ।।७४
वत्सो मे वत्सेवलाया मृतोऽर्थं लभते पुन ।
समागमश्च भवति व्रतै प्रवसितैरपि ।।७५
यथार्थमेतद्वयाख्यात ते च गोद्वादशीव्रतम् ।
तवापि रुचि तत्सर्वं भविष्यति शुभ प्रियम् ।।७६
एवमुक्त व्रतचीर्ण रुच्या पुना सुख धनम ।
सप्राप्ता जीविताते च ध्रुवस्थाने निवेशिता ।।७७
ब्रह्मणा सृष्टिकारेण रुचिर्भर्त्रा सहासिता ।
दशनक्षत्रसयुक्तो ध्रुव सोद्यापि दृश्यते ।
ध्रुवर्क्षे च यदा दृष्टे लोक पापै प्रमुच्यते ।।७८

मैंने इसका स्वय ही पाक किया था और स्थाली म व्यजनो के साथ इसका परिवेषण किया गया है वह फिर कैसे जीवित को प्राप्त हो गया है ।।७१।। क्या आपको कोई महाविद्या सिद्ध है या मृत सजीवनी है ? रत्न–मणि या कोई महारत्न तथा योगाजन एव महौषध है ? ।।७२।। हे महाभागे ! सत्य सत्य कहो आप मरी भगिनी हैं । इस प्रकार से कहने पर रुचि ने उसको वत्स गो व्रत बतलाया था ।।७३।। कार्तिक मास मे द्वादशी तिथि को पहिले मैंने इसका समाचरण किया था । इस व्रत के प्रभाव से मेरा पुत्र पुन जीवित हो गया है ।।७४।। वत्स वेला

मे मेरा मृत वत्स पुन अर्थ को प्राप्त करता है । व्रतो से जो प्रवसित होते हैं उनका भी समागम हो जाता है ॥७५॥ मैंने तुमको यह बिल्कुल यथार्थ गो द्वादशी व्रत की व्याख्या करदी है । तेरी भी रुचि हो तो सब प्रिय और शुभ हो जायगा ॥७६॥ इस प्रकार से कहे हुए व्रत को चीर्ण किया गया था और रुचि के पुत्र-सुख-धन सब प्राप्त हुए थे तथा जीवित के अन्त होने पर ध्रुव स्थान म निवेशित हुए थे ॥७७॥ दक्ष नक्षत्र से सयुक्त ध्रुव आज भी दिखलाई देता ही है और ध्रुव नक्षत्र के देख लने पर लोक पापो स प्रमुक्त हो जाया करता है ॥७८॥

कीदृश तद्विधान च तन्मे ब्रूहि जनार्दन ।
यत्कृत शुग्निवचनाद्रुच्या यदुकुलोद्भव ॥७९
सप्राप्ते कार्तिक मासि शुक्लपक्षे कुरूत्तम ।
द्वादश्या कृतसकल्प स्नात्वा पुण्ये जलाशये ।
नरो वा यदि वा नारी एकभक्त प्रकल्पयन् ॥८०
ततो मध्याह्नसमये दृष्ट्वा धेनु सवत्सिकाम् ।
सुशीला वत्सला श्वेता कपिला रक्तरूपिणीम् ॥८१
ब्राह्मणक्षत्रियविशा शूद्राणा स्त्रीजनेश्वर ।
यथाक्रमेण पूज्येना गन्धपुष्पजलाक्षतै ॥८२
कु कुमालक्तकैर्दीपैर्माषान्नवटकै शुभै ।
कुसुमैर्वत्सक चापि मन्त्रेणानेन पाडव ॥८३
"ॐ माता रुद्राणा दुहिता वसूना
स्वसादित्यनाममृतस्यनाभि ।
प्रनुवोच चिकितुषे जनाय मा
गामनागामदिति वधिष्ट" नमो नम स्वाहा ॥८४

युधिष्ठिर ने कहा—हे जनार्दन ! वह विधान किस प्रकार का है उसे ही मुझे बतलाइए । हे यदुकुलोद्भव ! शुग्नि के वचन से रुचि ने जिसको किया था ॥७९॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे कुरूत्तम ! कार्तिक मास क सम्प्राप्त होने पर शुक्ल पक्ष म द्वादशी तिथि में किसी परम पुण्यमय जलाशय म स्नान करके सकल्प करना चाहिए । नर हो

अथवा नारी हो एक वक्त भोजन करे ॥८०॥ इसके अनन्तर मध्याह्न समय मे वत्स के सहित धेनु का दर्शन करे। वह धेनु अति सुशीला–वत्सला–श्वेत वर्ण वाली–कपिला या रक्त रूप वाली होनी चाहिए।।८१।। हे स्त्री जनेश्वर ! ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य और शूद्रों को यथाक्रम से गन्ध पुण्य–जल और अक्षतो के द्वारा इसका पूजन कर ॥८२॥ हे पाण्डव ! पूजन मे कुकुम–अलक्तक–दीप–मापान्नवटक (उर्द के बटक) और परम शुभ कुसुमो से वत्सक का भी इस मन्त्र से अर्चन करना चाहिए ॥८३॥ मन्त्र यह है–अर्थात् ओं रुद्रो की माता–वसुगण की दुहिता–आदित्यो की स्वसा–अमृत की नाभि–करने की इच्छा वाले सेवक मुझको बोल दे। गौ अनाग अदिति का वधन कर। आपको वारम्वार नमस्कार है तुम्हारे लिये समर्पित है ॥८४॥

इत्थ सपूज्य गा पृष्ठा पश्चात्ता च क्षमापयेत् ।
ॐ सर्वदेवमये देवि लोकाना शुभनन्दिनि ।
मातर्ममाभिलषित सफल कुरु नन्दिनि ॥८५
एवमभ्यर्चयेदेका गामेतद्धि गवाह्निकम् ।
पर्युक्ष्य वारिणा भक्त्या प्रणम्य सुरभी तत ॥८६
तद्दिने तापिकापक्व स्थालीपाक च वर्जयेत् ।
भूमौ स्वय ब्रह्मचारी शयीत फलमाप्नुयात् ॥८७
यावति गात्रे रोमाणि गवा कौरवनन्दन ।
तावत्काल स वसति गोलोके नात्र सशय ॥८८
मेरो पुयष्टक रम्यमिद्राग्नियमरक्षसाम् ।
वरुणा निलयक्षाणा रुद्रस्य च युधिष्ठिर ।
तासामुपरि गोलोकस्तत्र याति स गोव्रती ॥८९
ऊर्जे सिते द्विदशतेऽह्नि गा सवत्सा
या पूजयति कुसुमैर्वटकैश्च हृद्यै ।
ता सर्वकामसुखभोगविभूतिभाजो
मर्त्ये वसति सुचिर बहुजीववत्सा ॥९०

इस प्रकार से भली भाँति पूजन करके गौ को पूछ कर पीछे उससे क्षमापन करना चाहिए। ओ सर्व देवो से परिपूर्ण देवि ! आप लोकों के परम शुभ नन्दिनी हो। हे नन्दिनि ! मेरे अभिलषित मनोरथ को सफल करिये ॥८५॥ इस तरह स एक गौ का अभ्यर्चन कर इस गवाह्निक को भक्ति की भावना म जन के द्वारा पर्युक्षण करके फिर सुरभी को प्रणाम करना चाहिए ॥८६॥ उस दिन म तापिका पाक और स्थाली पाक का वर्जन कर देवे । भूमि पर ब्रह्मचर्य व्रत के नियम स रहते हुए शयन करे तो फल की प्राप्ति कर लेता है ॥८७॥ हे कौरव नन्दन ! गौओं के गात्र म जितने भी रोम होते हैं तब तक वह गोलोक म निवास किया करता है—इसम तनिक भी सशय नहीं है ॥८८॥ मेरु के ऊपर इन्द्र–अग्नि–यम–राक्षसों का अष्टक पुर हैं। हे युधिष्ठिर ! वरुण–यक्ष और रुद्रो के निलय हैं—इन सब क भी ऊपर गोलोक है वहीं पर वह गो व्रत करने वाला पुरुष जाया करता है ॥८९॥ ऊर्ज मे सित पक्ष म द्वादशी के दिन म जो नारियाँ सवत्सा गौ का कुसुम और शुभ वटकों स पूजन किया करती हैं वे समस्त कामना—सुख भोग और और विभूतियो को प्राप्त कर मर्त्यलोक मे बहुत स जीव वत्स वाली चिरकाल पर्यन्त निवास किया करती हैं ॥९०॥

॥ भीष्मपञ्चक व्रत माहात्म्य ॥

यदेतदतुल पुण्य व्रतानामुत्तम व्रतम् ।
कर्तव्य कार्तिके मासि प्रयत्नाद्भीष्मपञ्चकम् ॥१
विधान कीदृश तस्य फल च यदुसत्तम।
कथयस्व प्रसादान्मे मुनीना हितमिच्छताम् ॥२
प्रक्ष्यामि व्रत पुण्य व्रतानामुत्तम व्रतम् ।
यथाविधि च कृत यत्फल चास्य यथोदितम् ॥
मयापि भृगवे प्रोक्त भृगुश्चोशनसे ददौ ।
उशनापि हि विप्रेभ्य प्रह्लादाय च धीमत ॥४

तेजस्विनांयथा वह्निः पवनः शीघ्रगामिनाम् ।
विप्रो यथा च पूज्यानां दानानां काञ्चनं यथा ॥५
भूलोकः सर्वलोकानां तीर्थानां जाह्नवी यथा ।
यथाश्वमेधो यज्ञानां मथुरा मुक्तिकांक्षिणाम् ॥६

युधिष्ठिर ने कहा—जो यह अनुपम पुण्य पूर्णा समस्त अन्य व्रतों में उत्तम व्रत भीष्म पञ्चक व्रत होता है जोकि कार्तिक मास में प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए ॥१॥ उस व्रत का किस तरह का विधान है? हे यदूत्तम ! उसका फल क्या हुआ करता है ? आप कृपाकर मुझे बतलाइये क्योंकि यह मुनियों का जो इच्छा रखते हैं परम हित प्रद है ॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा—यह वस्तुतः सब व्रतों में एक उत्तम व्रत है और पुण्य व्रत है इसको मैं बतलाता हूँ । जिस विधि से इस व्रत को करना चाहिए और जो इसका फल कहा गया है ॥३॥ मैंने भी इस व्रत को भृगु से कहा था और भृगु ने इसे उशना को दिया था । फिर उशना ने भी विप्रों को तथा धीमान् प्रह्लाद को दिया था ॥४॥ तेजस्वियों में जिस तरह अग्नि महा तेज से युक्त होता है—शीघ्र गामियों में वायु है—पूज्यवर्ग में विप्र—दानों में कञ्चन—समस्त लोकों में भूलोक—तीर्थों में गंगा—यज्ञों में अश्वमेध—मुक्ति की आकाङ्क्षा वालों के लिए मथुरा—शास्त्रों में वेद और सब देवों में जिस प्रकार से भगवान् अच्युत ही सर्वोत्तम देव हैं उसी भाँति अन्य समस्त व्रतों में सर्व श्रेष्ठ व्रत यह भीष्म पञ्चक व्रत होता है ॥५-६॥

वेदो सर्वेव शास्त्राणां देवानामच्युतो यथा ।
तथा सर्वव्रतानां तु वरोक्तं भीष्मपञ्चकम् ॥७
दुष्करं भीष्ममित्याहुर्न शक्यं तदिहोच्यते ।
यस्तत्करोति राजेन्द्र तेन सर्वं कृतं भवेत् ॥८
वशिष्ठभृगुगर्गाद्यैश्चीर्णं कृतयुगादिषु ।
नाभागांबरीषाद्यैश्चीर्णं त्रेतायुगादिषु ॥९
सीरभद्रादिभिर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैः कली युगे ।
दिनानि पंच पूज्यानि चीर्णमेतन्महाव्रतम् ॥१०

ब्राह्मणैर्ब्रह्मचर्येण जपहोमक्रियादिभि ।
क्षत्रियैश्च तथा शक्त्या शौचव्रतपरायणै ॥११
पराधि परिहतव्यो ब्रह्मचर्येण निष्ठया ।
मद्य मास परित्यज्य मैथुन पापभाषणम् ॥१२
शाकाहारपरैश्चैव कृष्णार्चनपरैर्नरै ।
स्त्रीभिर्वा भर्तृवाक्येन कर्तव्य सुखवर्द्धनम् ॥ १३
विधवाभिश्च कतव्य पुत्रपौत्रादिवृद्धये ।
सर्वकामसमृद्धयर्थं मोक्षार्थमपि पाडव ॥१४

यह व्रत दुष्कर व्रत है इसी कारण से इसको भीष्म कहा जाता है। यहाँ पर यही कहा जाता है कि यह किया नही जा सकता है। हे राजेन्द्र! जो भी कोई उसे कर लेता है उसने सभी कुछ कर लिया है ऐसा ही मान लेना चाहिए ॥८॥ कृतयुग आदि मे इस व्रत को वसिष्ठ भृगु और भर्ग आदि ने चीर्ण किया था। फिर त्रेता आदि युगो मे नाभाग–अक और अम्बरीष आदि ने इस व्रत को किया था ॥९॥ सीरभद्र आदि वैश्यो ने तथा अय शूद्रो ने कलियुग मे इस व्रत को किया है। ये पाँच दिन पूज्य होते हैं जिनमें यह महाव्रत चीर्ण होता है ॥१०॥ ब्राह्मणो के द्वारा ब्रह्मचय के नियमो का पालन करते हुए जप होम और क्रियादि के द्वारा इस व्रत को करना चाहिए। क्षत्रियो को शक्ति पूवक शौच व्रत में परायण होते हुए इसको करना चाहिए ॥११॥ दूसरो की मन की व्यथा का हरण करना चाहिए–ब्रह्मचर्य के नियमो का पालन और पूण निष्ठा से करना चाहिए। मद्य मास मैथुन-पाप भाषण का परित्याग कर देवें ॥१२॥ केवल शाक का आहार कर और श्रीकृष्ण के अचन मे तत्पर रहें। इस प्रकार पुरुषो को यह करना चाहिए। स्त्रियो को अपने स्वामी के वाक्य से इस सुख के वर्द्धन करने वाले व्रत को करना चाहिए ॥१३॥ पुत्र–पौत्रादि की वृद्धि के लिये विधवा स्त्रियो को भी इसके करने का विधान है। हे पाण्डव! समस्त कामनाओ की समृद्धि के लिए और मोक्ष की प्राप्ति के लिये भी इस महाव्रत को करे ॥१४॥

नित्य स्नानेन दानेन कार्तिकी यावदेव तु ।
प्रात स्नात्वा विधानेन मध्याह्ने च तथा व्रती ॥१५
नद्य निझरगर्तें वा समालभ्य च गोमयम् ।
यवव्रीहितिलै सम्यक्तर्पयेच्च प्रयत्नत ॥१६
देवानृषीन्पितृ श्चै व ततोन्यान्कामचारिण ।
स्नान मौन नर कृत्वा धौतवासा दृढव्रत. ॥१७
ततोऽनुपूजयेद्देव सर्वपापहर हरिम् ।
स्नापयेच्चाच्युत भक्त्या मधुक्षीरघृतेन च ॥१७
तथैव पञ्चगव्येन गधचदनवारिणा ।
चन्दनेन सुगधेन कु कुमेनाथ केशवम् ॥१८
कर्पूरोशीरमिश्रेण लेपयेद्गरुडध्वजम् ।
अर्चयेद्रुचिरै पुष्पैर्गधधूपसमन्वितै ॥२०
गुग्गुलु घृतसयुक्त दहेत्कृष्णाय भक्तित ।
दीपक च दिवा रात्रौ दद्यात्पचदिनानि तु ॥२१

जब तक कार्त्तिकी पूर्णिमा हो तब तक नित्य ही स्नान और दान करे। विधान पूर्वक प्रात काल में स्नान करे तथा व्रत ग्रहण करने वाले पुरुष को मध्याह्न में भी स्नान करना चाहिए ॥१५॥ नदिया हो या कोई निर्झरगर्त हो गोमय का समालभन करे तथा यव व्रीहि और तिलो से प्रयत्न पूर्वक भली भाति तर्पण करना चाहिये ॥१६॥ देवो का-ऋषियो का और पितृगण का तर्पण करे। स्नान करके मौन व्रत धारण करे—धुले हुए शुद्ध वस्त्रो को धारण करे और। दृढ व्रत वाला रहे ॥१७॥ इसके उपरान्त फिर सम्पूर्ण पापो के हरण करने वाले देव भगवान् हरि का पूजन करना चाहिय। भक्ति की भावना से मधु-क्षीर और घृत से अच्युत का स्नपन कराना चाहिए ॥१८॥ वहीं पर पञ्चगव्य स-ग ध एव चन्दन से युक्त जल से चन्दन सुगन्ध और कुकुम से केशव प्रभु का समनाचन करे ॥१९॥ कर्पूर और उशीर से मिश्रित चन्दन से गरुडध्वज प्रभु के अगो मे लेपन करना चाहिए। ग ध धूप स-समन्वित पुष्पो के द्वारा जो कि अति रुचिर हो अर्चन करे ॥२०॥ घृत

से सयुक्त गूगल का भक्तिभाव पूर्वक भगवान् कृष्ण के लिए दान करना चाहिए। दिन में और रात्रि में पाँच दिन पर्यन्त दीपको का दान करे ॥२१॥

नैवेद्य देवदेवस्य परमान्न निवेदयेत् ।
ॐ नमो वासुदेवायेति जपेदष्टोत्तर शतम् ॥२२
जुहुयाच्च घृताक्ताश्च तिलव्रीहीस्ततो व्रती ।
षडक्षरेण मन्त्रेण स्वाहाकारान्वितेन च ॥२३
उपास्य पश्चिमा सध्या प्रणम्य गरुडध्वजम् ।
जपित्वा पूर्ववन्मन्त्र क्षितिशायी भवेन्नर ॥२४
सर्वमेतद्विधान च कार्यं पचदिनेषु हि ।
सांवशेत्कवले चास्मिन्पदपूर्वं शृणुष्व मे ॥२५
प्रथमेऽह्नि हरे पादौ पूजयेत्कमलैर्नर ।
द्वितीये बिल्वपत्रेण जानुदेश समर्चयेत् ॥२६
पूजयेच्च तृतीयेऽह्नि नाभि भृ गरसेन च ।
मध्ये बिल्वजयाभिश्च तत सधौ प्रपूजयेत् ॥२७
ततोऽनुपूजयेच्छीर्षं मालत्या कुसुमैर्नवै ।
कार्त्तिक्या देवदेवस्य भक्त्या तद्गतमानस ॥२८

परमान्न नैवेद्य देवो के देव प्रभु की सेवा मे समर्पित करे। फिर "ॐ नमो वासुदेवाय"—इस मन्त्र का अष्टोत्तर शत जाप करे ॥२२॥ व्रतधारी पुरुष को फिर घृत मे अक्त तिल और व्रीहियो का 'स्वाहा' अन्त मे लगा कर 'ॐ नमो वासुदेवाय'—इस छै अक्षरो वाले मन्त्र से हवन करना चाहिए ॥२३॥ पश्चिम सन्ध्या की उपासना करके गरुड-ध्वज प्रभु को प्रणाम करे और पूर्व की भाँति मन्त्र का जाप करके व्रती मनुष्य को भूमि पर ही शयन करने वाला होना चाहिए ॥२४॥ यह सम्पूर्ण विधान पाँच दिनो म ही करना चाहिए। इसमे कम्बल पर बैठे। इसमे जो अपूर्व है उसका अब श्रवण करो ॥२५॥ मनुष्यो को प्रथम दिन मे कमलो के द्वारा हरि के चरणो का पूजन करना चाहिए। दूसरे दिन मे बिल्व पत्रो के द्वारा भगवान् के जानु भागो का अर्चन

करना चाहिए ॥२६॥ तीसरे दिन म भगवान् के नाभि देश म भृ ग रस से पूजन करना चाहिए । मध्य मे विल्व जया से करे और फिर सन्धि मे पूजन करना चाहिए ॥२७॥ इसके अनन्तर मालती लता के नवीन कुसुमो से भगवान् के शीर्ष का पूजन करे । कार्तिकी मे देव देव का पूजन भक्तिभाव मे तद्गत मन वाला होकर ही करे ॥२८॥

अर्चयित्वा हृषीकेशमेकदश्या समाहित ।
सप्राश्य गोमय सम्यड् मत्रवत्समुपावसेत् ॥२६
गोमूत्र मन्त्रवत्कृत्वा द्वादश्या प्राशयेद्व्रती ।
क्षीर तत्र त्रयोदश्या चतुर्दश्या तथा दधि ॥३०
सप्राश्य कायशुद्धचर्थं लघयेत् चतुर्दिनम् ।
पचमे तु दिने स्नात्वा विधिवत्पूज्य केशवम् ॥३१
भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।
तथोपदेष्टारमपि पूजयेद्वस्त्रभूषणै ॥३२
ततो नक्त समश्नीयात्पञ्चग०यपुर सरम् ।
एव समापयेत्सम्यग्यथोक्त व्रतमुत्तमम् ॥३३
सर्वपापहर पुण्य प्रख्यात भीष्मपञ्चकम् ।
मद्यपो यस्त्यजेन्मद्य जन्मनो मरणातिकम् ॥३४
तद्भीष्म पञ्चकत्यक्त्वा प्राप्नोत्यभ्यधिकफलम् ।
ब्रह्मचर्यं नरश्चीर्त्वा सुघोर नैष्ठिक व्रतम् ॥३५

एकादशी तिथि म पूर्णतया समाहित होकर हृषीकेश भगवान् का अचन करे और गोमय का सम्प्राशन करके मन्त्रवत् करके अच्छी तरह से उपवास करे ॥२६॥ फिर ब्रह्मचारी पुरुष को द्वादशी तिथि मे गोमूत्र को मन्त्र वाला करके उसका ही प्राशन करना चाहिए । इसी भाँति त्रयोदशी मे क्षीर को अभिमन्त्रित करे और चतुदशी मे दधि का अभिमन्त्रण करके अशन करना चाहिए ॥३०॥ अपने शरीर की शुद्धि के लिय उक्त रूप से सम्प्राशन करके चार दिन पयन्त लघन करे । पाचवें दिन मे स्नान करके विधि पूवक केशव भगवान् का पूजन करना चाहिए ॥३१॥ ब्राह्मणो को भक्तिभाव स भोजन करावे और उनको दक्षिणा

देनी चाहिए। तथा जो इसका उपदेश देने वाला हो उसका भी वस्त्र-भूषणों से पूजन करे ॥३२॥ इसके अनन्तर रात्रि मे पञ्चगव्य पूर्वक अशन करना चाहिए। इस प्रकार से यथोक्त इस अत्युत्तम व्रत को भली-भाँति समाप्त करना चाहिए ॥३३॥ यह भीष्म पचक सम्पूर्ण पापो के हरण करने वाला और परम पुण्यमय विख्यात है। जो मद्यपान करने वाला हो उसे जन्म से मरण तक मद्य का त्याग कर देना चाहिए ॥३४॥ उसका त्याग करके इस भीष्मपचक से अधिक फल की प्राप्ति होती है। मनुष्य ब्रह्मचर्य का चीर्ण करके इस सुघोर नैष्ठिक व्रत को करना चाहिए ॥३५॥

यत्प्राप्नोति महत्पुण्य तत्कृत्वा भीष्मपचकम् ।
गात्राभ्यग शिरोऽभ्यग मधु मास च मैथुनम् ॥३६
ब्रह्मलोकमवाप्नोति त्यक्त्वैक भीष्मपञ्चकम् ।
सवत्सरेण यत्पुण्य कार्त्तिकेन च यद्भवेत् ॥३७
यत्फल कार्त्तिकेनोक्त भवेत्तद्भीष्मपञ्चके ।
व्रतमेतत्सुरै सिद्धै किन्नरैर्नागगुह्यकै ॥३८
फल समीहित प्राप्य कृत्वाभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
पापस्य प्रतिमा कार्या रौद्रवक्त्रातिभीषणा ॥३९
खड्गहस्तातिविकृता सर्वलोकमयी नृप ।
तिलप्रस्थोपरि स्थाप्या कृष्णवस्त्राभिवेष्टिता ॥४०
करवीरकुसुमापीडा चलत्काञ्चनकुडला ।
ब्राह्मणाय प्रदातव्या कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥४१
अन्येषामपि दातव्य यत्कृत्वा वसु वाछितम् ।
कृतकृत्य स्थिरो भूत्वा विरक्त सयतो भवेत् ॥४२

गात्रो का अभ्यग—शिर का अभ्यग—मधु—मास और मैथुन का त्याग करके जो महान् पुण्य प्राप्त होता है वही इस भीष्म पचक व्रत के करने से होता है ॥३६॥ एक भीष्म पचक का त्याग करके ब्रह्म लोक को प्राप्त होता है। सम्वत्सर मे जो पुण्य होता है और कार्त्तिक मास मे जो पुण्य होता है जो फल कार्त्तिक मे बताया गया है वह भीष्म पचक

में होता है। सुरों के द्वारा–सिद्धों के द्वारा–किन्नर और नाग एवं गुह्यकों के द्वारा किया हुआ यह व्रत है। समीहित फल को प्राप्त करके जनार्दन का अभ्यर्चन करे। एक पाप की प्रतिमा बनवानी चाहिए जो अत्यन्त रौद्र–वक्र तथा अत्यन्त भीषण हो ॥३७-३९॥ हे नृप! उस प्रतिमा के हाथ में खड्ग होवे और अत्यन्त विकृत तथा सर्व लोकमयी होनी चाहिए। उसको एक प्रस्थ तिलों के ऊपर स्थापन करे और कृष्ण वस्त्र से वेष्ठित होनी चाहिए ॥४०॥ उसका आपीड करवीर के पुष्पों का होवे। चलायमान काञ्चन के कुण्डल धारण करने वाली होवे। उस प्रतिमा को किसी ब्राह्मण को दान कर देनी चाहिए। और दान के समय में भगवान् कृष्ण मुझ पर प्रसन्न होवें–यह कहना चाहिए ॥४१॥ अन्य लोगों को भी दान देना चाहिए जिसको जो भी धन या पदार्थ वाञ्छित हो फिर कृत-कृत्य होकर स्थिर होवे तथा विरक्त एवं समन होना चाहिए ॥४२॥

शकु कर्ण और महान् ध्वनि से युक्त—जटाधारी—दो जिह्वाओ वाला—तामस्य—मृगराज सिंह के चर्म से अर्थात् बाघम्बर से शरीर का छादन करने वाला ॥४४॥ ऐसे महादेव का चिंतन करना चाहिए जिनका कि कोई भी रूप नहीं होता है। यह पितामह भीष्म ने मुझ से कहा था जिस समय मे वे शरो की शय्या पर संस्थित थे ॥४५॥ यह ही यह दुष्कर भीष्म पचक व्रत मैंने तुमको बतला दिया है। हे राजाओ मे शार्दूल के तुल्य ! यह व्रत भीष्म पचक प्रवर व्रत होता है ॥४६॥ जो कोई पुरुष उसमे भक्ति की भावना से भगवान् अच्युत को परम तुष्ट कर लेता है उसको वे निश्चय मुक्ति का प्रदान कर दिया करते हैं। चाहे कोई ब्रह्मचारी हो—गृहस्थ हो—वानप्रस्थाश्रमी हो या यति हो ॥४७॥ भीष्म पचक को भली-भाँति कर करके फिर वह वैष्णव स्थान की प्राप्ति किया करता है। ब्रह्म हत्यारा—मद्यपान करने वाला—चोरी करने वाला—गुरुतल्प गामी और सदाकृती पापो से मुक्त हो जाया करता है ॥४८॥

॥ अनन्तचतुर्दशी व्रत माहात्म्य ॥

अनतव्रतमस्त्यन्यत्सर्वपापहर शिवम् ।
सर्वकामप्रद नृणा स्त्रीणा चैव युधिष्ठिर ॥१
शुक्लपक्षे चतुर्दश्या मासि भाद्रपदे शुभे ।
तस्यानुष्ठानमात्रेण सर्वपापै प्रमुच्यते ॥२
कृष्ण कोऽय त्वयाख्यातो ह्यनन इति विश्रुत ।
कि शेषनाग आहोस्विदनतस्तक्षक स्मृत ॥३
परमात्माथ वानत उताहो ब्रह्म उच्यते ।
क एषोऽनतसज्ञो वै तथ्य ब्रूहि केशव ॥४
अनत इत्यह पार्थ मम नाम निबोधय ।
आदित्यादिषु वारेषु य काल उपपद्यते ॥५
कलाकाष्ठामुहूर्तादिदिनरात्रिशरीरवान् ।
पक्षमासर्तुवर्षादियुगकल्पव्यवस्थया ॥६

हे धर्म धारियो म श्रेष्ठ ! जो यह काल मैंने आपको बतलाया है वह मैं काल यहाँ पर भूमि के भार के उतारने के लिये ही अवतीर्ण हुआ हूँ ॥७॥ युधिष्ठिर बोले—हे हरे ! इस प्रकार से इस सम्पूर्ण अनन्त के व्रत को विस्तार के साथ मुझे बतलाइये। श्रीकृष्ण ने कहा–पहिले कृत-युग म सुमन्त नाम वाला एक द्विज था ॥८॥ वह वसिष्ठ गोत्र मे समुत्पन्न हुआ था और यह बहुत ही सुन्दर रूप वाला था। इसने भृगु की दीक्षा नाम वाली पुत्री के साथ अपना विवाह किया था जो कि वेदोक्त विधि से ही किया गया था ॥९॥ समय उपस्थित होने पर उसके एक अनन्त लक्षणो से सम्पन्न कन्या पैदा हुई थी। उसका नाम तो शीला था किन्तु यह थी भी बहुत सुशील और वह पिता के घर म वृद्धि को प्राप्त होने लगी थी ॥१०॥ उसकी माता ज्वरदाह काल से पीडित होकर एक नदी के तीर म विनाश को प्राप्त हो गई थी और मृत होकर वह स्वर्ग को चली गयी थी ॥११॥ सुमन्त ने भी फिर एक अन्य धर्म प्रमाद की पुत्री के साथ विवाह विधान से ही कर लिया था। उसका नाम भी कर्कशा थी और वैसे भी पूर्ण कर्कशा ही थी ॥१२॥

दु शीला कर्कशा चडी नित्य कलहकारिणीम् ।
सापि शीला पितुर्गेह गृहार्चनरता विभो ॥१३
कुड्यस्तम्भतुलाधारदेहलीतोरणादिषु ।
चातुर्वर्णकर वंदयनील्पीतसितासितं ॥१४
स्वस्तिकं शङ्खपद्मं च अर्चयन्ती पुन पुन ।
पित्रा दृष्टा सुमन्तेन स्त्रीचिह्ना यौवने स्थिता ॥१५
कस्मै देयामया शीला विचार्यैवमदु खिन ।
पिता ददौ मुनी द्राय कौण्डिन्याय शुभे दिन ॥१६
स्मृत्युक्तशास्त्रविधिना विवाहमकरोत्तदा ।
निवर्त्यो द्वाहिक सर्वं प्रोक्ता या कर्कशा द्विज ॥१७

आदि में वैश्य नीलासित और असित वर्णों से चातुर्वर्ण कर तथा स्वस्तिक और शख पद्यों से बारम्वार अर्चना किया करती थी। पिता सुमन्त ने उसको एक बार देखा था कि उसके पूर्ण यौवन में स्थित स्त्री के समस्त चिह्न विद्यमान हो गये हैं ॥१४-१५॥ यह शीला कन्या अब मैं किसको दूं—ऐसा विचार करके परम दुःखित हो गया था। फिर पिता ने किसी शुभ दिन में मुनीन्द्र कौण्डिन्य के लिये उसका दान कर दिया था ॥१६॥ उस समय में स्मृतियों में बताये हुए शास्त्र की विधि-विधान से उसका विवाह कर दिया था। उद्वाहिक सब कृत्य से निवृत्त होकर फिर द्विज ने उस अपनी पत्नी कर्कशा से कहा था ॥१७॥

किञ्चिदायादिक देय जामातुः पारितोपिकम् ।
तच्छ्रुत्वा कर्कशा क्रुद्धा प्रोद्धृत्य गृहमण्डपम् ॥१८
कपाटे सुस्थिरं कृत्वा गम्यतामित्युवाच ह ।
भोज्यावशिष्टचूर्णेन पाथेयं च चकार सा ॥१६
कौडिन्योपि विवह्यैनां पथि गच्छञ्छनैःशनैः ।
शीला सुशीलामादाय नवोढां गोरथेन हि ॥२०
मध्याह्ने भोज्यवेलायां समुत्तीर्य सरित्तटे ।
ददर्श शीला सा स्त्रीणां समूहं रक्तवाससाम् ॥२१
चतुर्दश्यामर्चयन्तं भक्त्या देवं पृथक्पृथक् ।
उपगम्य शनैः शीला पप्रच्छ स्त्रीकदंबकम् ॥२२
नार्यः किमेतन्मे ब्रूत किंनाम व्रतमीदृशम् ।
ता ऊचुर्योपितः सर्वा अनन्तो नाम विश्रुतः ॥२३
साब्रवीदहमप्येवं करिष्ये व्रतमुत्तमम् ।
विधान कीदृशं तत्र किंनदानं कस्य पूजनम् ॥२४

इस जमाई के लिये कुछ आयादिक पारितोपिक देना चाहिए। यह सुन कर वह कर्कशा अत्यन्त क्रुद्ध हो गई और उसने गृह–मण्डप को प्रोद्धृत करके किवाड़ों को सुस्थिर कर लिया था और कहा था—जाइये। भोज्य से अवशिष्ट जो चून था उसका उसने पाथेय (मार्ग का भोजन) कर दिया था ॥१८-१६॥ कौण्डिन्य भी इसके साथ विवाह करके मार्ग

थादि से अनन्तानन्त भगवान् का अभ्यर्चन करना चाहिए ।।२५-२६।। धूप–पुष्प–नैवेद्य और उनके आगे पीतालक्त चतुशत से दृढ कुंकुमाक्त सदोरक सूत्र करे ।।२७।। चौदह ग्रन्थियों से युक्त वाम भाग मे स्त्री और दक्षिण भाग मे पुरुष हे राजेन्द्र ! इस मन्त्र स वध जब तक समाप्त होता है रक्खे ।।२८।। हे वासुदेव ! इस अनन्त ससार रूपी महा सागर म मग्न होते हुए हमारा उद्धार करो । अनन्त रूप म विनियोजित आत्मा वाले अनन्त रूप आपके लिये बारम्बार नमस्कार है ।।२९।। यही मन्त्र है इससे हरेक को बद्ध करक स्वस्थ मन वालो को अनन्त विश्व रूपी नारायण देव का ध्यान कर भोजन करना चाहिए ।।३०।। भोजन करक अन्त मे घर में चल जावें–यही व्रत है जो तुमको बतला दिया गया है । उसने भी इसका श्रवण करके शीला ने सुदोरक को बद्ध करके इस व्रत को सविधि किया था ।।३१।।

भर्ता तस्या समागत्य ता ददर्श महाधनम् ।
पाथेयशेष विप्राय दत्वा भुक्त्वा तथैव च ।।३२

पुनर्जगाम सा हृष्टा गोरथेन स्वमाश्रमम् ।
भर्त्रा सहैव शवकं प्रत्यक्ष तत्क्षणादभूत् ।
तेनानतप्रभावेण शुभगोधनसकुल ।।३३

गृहाश्रम श्रिया युक्तो धनधान्यसमायुत ।
आकुलो व्याकुलो रम्य सर्वत्रातिथिपूजन ।।३४
सापि माणिक्यकाञ्चीभिर्मुक्ताहारविभूषिता ।
दिव्यागवस्त्रसछन्ना सावित्रीप्रतिमाभवत् ।।३५
कदाचिदुपविष्टेन दृष्ट बद्ध सुदोरकम् ।
शीलाया हस्तमूले तु साक्षेप त्रोटित रुषा ।।३६
तेन य म विपाकेण तस्य सा श्री क्षय गता ।
गोधन तस्करैर्नीत गृह चाग्निविदाहितम् ।।३७
यद्यदेवागत गहे तत्तन्नश्य नश्यति ।
स्वजनै कलहो मित्रैर्जन न जनैस्तथा ।।३८

उसके स्वामी ने आकर उस महान् धन वाली को देखा था। जो पाथेय का शेष भाग था उसको विप्र के लिए देकर तथा स्वयं भोजन किया था ॥३२॥ फिर वह उसी गोरथ के द्वारा परम प्रसन्न होती हुई अपने आश्रम को चली गयी थी। वह भर्त्ता के साथ प्रत्यक्ष उसी क्षण शावकों के साथ ही हो गयी थी। उस अनन्त भगवान् के प्रभाव से वह शुभ गोधन से सकुल हो गया था ॥३३॥ वह उसका गृहाश्रम श्री से युक्त तथा धन-धान्य से समायुत-आकुल-व्याकुल-सर्वत्र अतिथियों के पूजन वाला अतीव रम्य बन गया था ॥३४॥ वह शीला भी माणिक्य की कान्तियों से युक्त-मोतियों के हार से विभूषित और परम दिव्य अंग वस्त्रों से सच्छन्न सावित्री की प्रतिमा के तुल्य हो गई थी ॥३५॥ किसी समय में उपविष्ट ने वह सुडोरक बंधा हुआ देखा था जो शीला के हस्त के मूल में बद्ध था। शाप से आक्षेप के सहित उसको तोड़ दिया था ॥३६॥ उस कर्म विपाक से उसकी वह श्री क्षय को प्राप्त होगई थी। गोधन को तस्करों ने ले लिया था। घर अग्नि से दग्ध हो गया था। ३७॥ जो भी घर में आया था वह वहीं पर विनष्ट होगया था। स्वजनों के साथ कलह होने लगा था और मित्रजनों के साथ उस प्रकार का प्रेमपूर्ण बात चीत का व्यवहार नहीं रहा था ॥३८॥

अनताक्षपदोषेण दारिद्य पतित गहे ।
न कश्चिद्वदते लोकस्तेन साद्धं युधिष्ठिर ॥३६
ततो जगाम कौंडि यो निर्वेदाद्वनगह्वरम् ।
मनसा ध्यायतेनत कदा द्रक्ष्यामि केशवम् ॥४०
व्रत निरशन गहच ब्रह्मचर्य जप हरिम् ।
विह्वल प्रययौ पाथ अरण्य जनवर्जितम् ॥४१
तत्रापश्य महावृक्ष फलित पुष्पित तथा ।
तमपृच्छरवयानत कच्चिद्दृष्टो महाद्रुम ।
तदव्रूहि सोप्युवाचेद नानत वेक्यह द्विज ॥४२
एव निराक्षितस्तन गा सवत्सकम् ।
तृणमध्ये प्रधावन्तीमितश्च तश्च पाडव ॥४३

सोऽब्रवीद्धेनुके ब्रूहि यद्यनतस्त्वयेक्षित ।
गौरुवाचाथ कौडिन्य नानत वेद्म्यह विभो ॥४४
ततो जगामाथ वने गोवृष शाद्वले स्थितम् ।
दृष्ट्वा पप्रच्छ गोस्वामिन्ननतो लक्षितस्त्वया ॥४५

भगवान् अनन्त के ऊपर आक्षेप करने के प्रभाव से घर मे दरिद्रता आगयी थी । हे युधिष्ठिर ! ऐसी उस की दशा होगई थी कि उससे कोई भी बात नही करता था ॥३६॥ इसके अनन्तर वह कौण्डिल्य निर्वेद होने के कारण किसी गह्वर वन मे चला गया था । मन से अनन्त प्रभु का ध्यान करते हुए कि केशव का मैं कब दर्शन करूँगा ॥४०॥ बिना अशन वाला व्रत ग्रहण करके ब्रह्मचर्य धारण किया था और हरि का जाप करता था । हे पार्थ ! परम विह्वल होकर जनहीन अरण्य मे वह चला गया था ॥४१॥ वहा पर उसने एक महान् वृक्ष को देखा था जो फलित और पुष्पित था । उससे उसने पूछा था—हे महाद्रुम ! क्या आपने भगवान् अनन्त को देखा है ? यही मुझे बतला दो । वह भी बोला—हे द्विज ! मैं अनन्त को नही जानता हूँ ॥४२॥ इस प्रकार से वत्स के सहित एक गौ को उसने देखा । हे पाण्डव ! जो कि तृण के मध्य मे इधर से उधर दौड लगा रही थी ॥४३॥ उसने कहा—हे धेनुके ! यह बतलाओ कि क्या आपने अनन्त प्रभु को देखा है ? उस गौ ने कौण्डिन्य स कहा—हे विभो ! मैं अनन्त को नही जानती हू ॥४४॥ इसके अनन्तर वह और आगे वन म गया तो उसने शाद्वल पर स्थित गो वृप का दर्शन किया था और उसे देख कर पूछा था—हे गोस्वामिन् क्या आपने अनन्त को देखा है ? ॥४५॥

गोवृपस्तमुवाचाथ नानन्तो वीक्षितो मया ।
ततो व्रजन्ददर्शाग्रे रम्य पुष्करिणीद्वयम् ॥४६
अन्योन्यजलकल्लोलवीचिभि परिशोभितम् ।
छन्न कुमुदकह्लारै कुमुदोत्पलमडितम् ॥४७
सेवित भ्रमरैर्हंसैश्चक्रै कारडवैर्बकै ।
ते अपृच्छद्द्विजोनन्तो भवद्भ्या नोपलक्षित ॥४८

ऊचतु पुष्करिण्यो त नानन विद्वहे द्विज ।
ततो ब्रह्मन्ददर्शाग्रे गर्दभ कुञ्जर तथा ॥४९
तावप्युक्तौ सुमतेन तस्यापि विनिवेदितम् ।
नावाभ्या वीक्षितोनतस्तच्छ्रुत्वा निपसाद ह ॥५०
तस्मिन्क्षणे मुनिवरे कौण्डिन्ये ब्राह्मणोत्तमे ।
कृपयानतदेवोपि प्रत्यक्ष समजायत ॥५१

गावृष ने उससे कहा—मैंने अनन्त को नहीं देखा है । इसके आगे जाते हुए उसने परम रम्य दो पुष्करिणियो को देखा था ॥४६॥ वे दोनो परस्पर म जल की तरगो से जो अत्यन्त चचल थी परम शोभा से युक्त हो रही थी । कुमुद और कल्हार के पुष्पों से एकदम छन्न थी तथा कुमुदोत्पलों से मण्डित थीं ॥४७॥ भ्रमर और हसो के द्वारा चक्रवाक कारण्डव और वकों के द्वारा सेवित थी । द्विज ने उनसे पूछा था—क्या आपने अनन्त प्रभु को नहीं देखा है ? ॥४८॥ दोनों पुष्करिणियो ने कहा—हे द्विज ! हम उस अनन्त को नहीं जानती हैं । इसके उपरान्त फिर ब्राह्मण ने आगे एक गर्दभ और कुञ्जर को देखा था ॥४९॥ सुमन्त ने उन दोनो से भी कहा था और उनने भी उसको यह निवेदन किया था कि हम दोनों ने अनन्त को नहीं देखा है । यह श्रवण करके वह बैठ गया था ॥५०॥ उसी क्षण मे ब्राह्मणो मे उत्तम मुनिवर कौण्डिन्य पर कृपा करके अनन्त देव स्वय ही प्रत्यक्ष हो गये थे ॥५१॥

विभूतिभेदेश्चानन्तमनन्त परमेश्वरम् ।
त दृष्ट्वा तु द्विजोनन्तमुवाच परया मुदा ॥५२
अद्य मे सफल जन्म जीवित च सुजीवितम् ।
चूतवृक्षो वृष कस्तु का गौ पुष्करिणीद्वयम् ।
गर्दभ कुञ्जर चैव देव मे ब्रूहि तत्त्वत ॥५३
चूतवृक्षा हि विप्रोसौ विद्वान्यो वेदगर्वित ।
विद्यादान नोपकुर्वञ्छिष्यम्यस्तरुता गत ॥५४

विभूतियो के भेद से अनन्त एव उस परम ऐश्वर्य वाले परमेश्वर का दर्शन कर परम प्रसन्नता से वह द्विज अनन्त से बोला ॥५२॥

हे प्रभो ! आज मेरा यह जीवन सफल हो गया है और मेरा यह जीवित भी सुन्दर जीवित बन गया है। आम का वृक्ष-वृप-कौन है ? गौ तथा ये दोनों पुष्करिणियाँ कौन हैं ? गर्दभ और कुञ्जर कौन हैं ? हे देव ! यह मुझे आप तत्त्व पूर्वक बतला दीजिए ॥५३॥ अनन्त भगवान् ने कहा—यह आम्र का वृक्ष वह विप्र है जो परम विद्वान था और वेदों का इसको बहुत गर्व था। यह विद्या का दान करते हुए ही रहा था। अतएव वृक्ष योनि को प्राप्त हुआ है ॥५४॥

सा गौर्वसुन्धरा दृष्टा निष्फला या त्वयेक्षिता ।
स हर्षो वृषभो दृष्टो लाभार्थं यस्त्वया वृतः ॥५५
धर्माधर्मव्यवस्थानं तच्च पुष्करिणीद्वयम् ।
खरः क्रोधस्त्वया दृष्टः कुंजरो धर्मदूषकः ।
ब्राह्मणोसावनतोहं गुहाससारगह्वरे ॥५६
इत्युक्तं ते मया सर्वं विप्र गच्छ पुनर्गृहम् ॥५७
चरानंतव्रतं तत्त्वं नव वर्षाणि पंच च ।
ततस्तुष्टः प्रदास्यामि नक्षत्रस्थानमुत्तमम् ॥५८
भुक्त्वा च विपुलान्भोगान्सर्वान्कामान्यथेप्सितान् ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतस्ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥५६
इति दत्वा वरं देवस्तत्रैवांतर्हितोऽभवत् ।
कौडिन्योप्यागतो गेहं चचारानंतसद्व्रतम् ॥६०

वह गौ वसुन्धरा देखी थी जो निष्फला आपके द्वारा देखी गयी थी। वह हर्ष वृषभ देखा गया था जो लाभ के लिए आपने वरण किया था ॥५५॥ धर्म और अधर्म की व्यवस्था ही वे दोनों पुष्करिणियाँ थीं। खर क्रोध था और कुञ्जर धर्म का दूषक था जो तुमने देखे थे। यह ब्राह्मण मैं ही अनत हूँ जो गुहा ससार गह्वर में है ॥५६॥ हे विप्र ! मैंने यह सब तुमको बतला दिया है। अब पुनः तुम अपने घर को जाओ ॥५७॥ अनन्त के व्रत को चौदह वर्ष तक निरन्तर आप करो। इसके पश्चात् मैं प्रसन्न होकर उत्तम नक्षत्रों का स्थान तुम को देदूँगा ॥५८॥ वहां पर विपुल भोगों का सुखोपभोग करके समस्त यथेप्सित कामनाओं

की प्राप्ति करता है। पुत्र पौत्रों से परिवृत्त होकर फिर अन्त मे मोक्ष की प्राप्ति करोगे ॥५९॥ इस प्रकार से यह वरदान प्रदान करके वही पर अन्तर्धान होगये थे। कौण्डिन्य भी गृह मे आगया था और उसने अनन्त के व्रत का समाचरण किया था ॥६०॥

॥ ग्रन्थ परिचय और समाप्ति ॥

व्यासानुगमन पूर्वं ब्रह्माण्डस्य समुद्भव ।
माया च वैष्णवी यस्मात्ससारे दोषकीर्तनम् ॥१
पापभेदस्ततस्तस्माच्छुभाशुभविनिर्णयः ।
शकटव्रतमाहात्म्य तिलकव्रतकीर्तनम् ॥२
अशोककरवीराख्य व्रत तस्माच्च कोकिलम् ।
वृहत्तपोव्रत नाम रुद्रोपोषणमेव च ॥३
द्वितीयाव्रतमाहात्म्यमशून्य शयन तथा ।
कामाख्या तु तृतीया च मेघपालीव्रत तथा ॥४
पचाग्निसाधना रम्या तृतीयाव्रतमुत्तमम् ।
त्रिरात्र गोष्पद नाम हरकाली व्रत तथा ॥५
ललिताख्या तृतीया च योगाख्या च पथापरा ।
उमामहेश्वर नाम तथा रम्भातृतीयकम् ॥६
सौभाग्याख्या तृतीया च आर्द्रानदनकरी तथा ।
चैत्रे भाद्रपदे माघे तृतीयाव्रतमुच्यते ॥७

इस अध्याय में ग्रन्थ की समाप्ति का वर्णन किया जाता है। जो वृत्तान्त इसमें आये हैं उनका विवरण दिया जाता है। सबसे प्रथम व्यास का अनुगमन है। ब्रह्माण्ड का समुद्भव का वर्णन है। फिर यह बताया गया है कि इसी ब्रह्माण्ड से वैष्णवी माया होती है। इसके पश्चात् ससार में जो दोष हैं उनका कीर्तन किया गया है ॥१॥ इसके अनन्तर पापो में बहुत से भेद तथा प्रभेदो का वर्णन किया जाता है। इसके पश्चात् शुभ और अशुभ का विशेष निर्णय बताया गया है। शकट व्रत

हे प्रभो ! आज मेरा यह जीवन सफल हो गया है और मेरा यह जीवित भी सुन्दर जीवित बन गया है। आम का वृक्ष-वृप-कौन हैं ? गौ तथा ये दोनों पुष्करिणियाँ कौन हैं ? गर्दभ और कुञ्जर कौन हैं ? हे देव ! यह मुझे आप तत्त्व पूर्वक बतला दीजिए ॥५३॥ अनन्त भगवान ने कहा—यह आम्र का वृक्ष वह विप्र है जो परम विद्वान था और वेदों का इसको बहुत गर्व था। यह विद्या का दान करते हुए ही रहा था। अतएव वृक्ष योनि को प्राप्त हुआ है ॥५४॥

सा गौर्वसुन्धरा दृष्टा निष्फला या त्वयेक्षिता ।
स हर्षो वृषभो दृष्टो लाभार्थं यस्त्वया वृतः ॥५५
धर्माधर्मव्यवस्थानं तत्र पुष्करिणीद्वयम् ।
खरः क्रोधस्त्वया दृष्टः कुंजरो धर्मदूषकः ।
ब्राह्मणोसावनंतोहं गुहासंसारगह्वरे ॥५६
इत्युक्तं ते मया सर्वं विप्र गच्छ पुनर्गृहम् ॥५७
चरानंतव्रतं तत्त्वं नव वर्षाणि पंच च ।
ततस्तुष्टः प्रदास्यामि नक्षत्रस्थानमुत्तमम् ॥५८
भुक्त्वा च विपुलान्भोगान्सर्वान्कामान्यथेप्सितान् ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतस्ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥५९
इति दत्त्वा वरं देवस्तत्रैवांतर्हितोऽभवत् ।
कौडिन्योप्यागतो गेहं चचारानंतसद्व्रतम् ॥६०

वह गौ वसुन्धरा देखी थी जो निष्फला आपके द्वारा देखी गयी थी। वह हर्ष वृषभ देखा गया था जो लाभ के लिए आपने वरण किया था ॥५५॥ धर्म और अधर्म की व्यवस्था ही वे दोनों पुष्करिणिया थीं। खर क्रोध था और कुञ्जर धर्म का दूष कथा जो तुमने देखे थे। यह ब्राह्मण मैं ही अनत हूँ जो गुहा ससार गह्वर मे है ॥५६॥ हे विप्र ! मैंने यह सब तुमको बतला दिया है। अब पुनः तुम अपने घर को जाओ ॥५७॥ अनन्त के व्रत को चौदह वर्ष तक निरन्तर आप करो। इसके पश्चात् मैं प्रसन्न होकर उत्तम नक्षत्रों का स्थान तुम को देदूँगा ॥५८॥ यहां पर विपुल भोगों का सुखोपभोग करके समस्त यथेप्सित कामनाओं

की प्राप्ति करता है। पुत्र पौत्रों से परिवृत्त होकर फिर अन्त मे मोक्ष की प्राप्ति करोगे ॥५६॥ इस प्रकार से यह वरदान प्रदान करके वही पर अन्तर्धान होगये थे। कौण्डिन्य भी गृह मे आगया था और उसने अनन्त के व्रत का समाचरण किया था ॥६०॥

॥ ग्रन्थ परिचय और समाप्ति ॥

व्यासानुगमन पूर्वं ब्रह्माण्डस्य समुद्भव ।
माया च वैष्णवी यस्मात्ससारे दोषकीर्तनम् ॥१
पापभेदस्ततस्तस्माच्छुभाशुभविनिर्णय ।
शकटव्रतमाहात्म्य तिलकव्रतकीर्तनम् ॥२
अशोककरवीराख्य व्रत तस्माच्च कोकिलम् ।
बृहत्तपोव्रत नाम रुद्रोपोषणमेव च ॥३
द्वितीयाव्रतमाहात्म्यमशून्य शयन तथा ।
कामाख्या तु तृतीया च मेघपालीव्रत तथा ॥४
पचाग्निसाधना रम्या तृतीयाव्रतमुत्तमम् ।
त्रिरात्र गोष्पद नाम हरकाली व्रत तथा ॥५
ललिताख्या तृतीया च योगाख्या च पथापरा ।
उमामहेश्वर नाम तथा रम्भातृतीयकम् ॥६
सौभाग्याख्या तृतीया च आर्द्रानन्दकरी तथा ।
चैत्रे भाद्रपदे माघे तृतीयाव्रतमुच्यत ॥७

इस अध्याय म ग्रन्थ की समाप्ति का वर्णन किया जाता है। जो वृत्तान्त इसम आये हैं उनका विवरण दिया जाता है। सबसे प्रथम व्यास का अनुगमन है। ब्रह्माण्ड का समुद्भव का वर्णन है। फिर यह बताया गया है कि इसी ब्रह्माण्ड से वैष्णवी माया होती है। इसके पश्चात् ससार म जो दोष हैं उनका कीर्तन किया गया है ॥१॥ इसके अनन्तर पापो म बहुत से भेद तथा प्रभेदो का वर्णन किया जाता है। इसके पश्चात् शुभ और अशुभ का विशेष निर्णय बताया गया है। शकट व्रत

के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। इसके अनन्तर तिलक व्रत के विषय मे उसका विधान तथा फल आदि का कीर्त्तन आता है ॥२॥ अनन्तर अशोक व्रत का विधान है और उसके पश्चात् करवीर नामक व्रत का वर्णन किया गया है,इसके अनन्तर कोकिल व्रत के विषय मे कहा गया है। इसके बाद मे वृहत् तपोव्रत का विधान बताया गया है। फिर रुद्रोपोपण नामक व्रत का वर्णन इस ग्रन्थ मे बताया गया है ॥३॥ फिर द्वितीया के व्रत का माहात्म्य वर्णित किया गया है। तथा अशून्य शयन बताया गया है। कामाख्या और तृतीया तथा मेघपाली व्रत का वर्णन इस ग्रन्थ मे किया गया है ॥४॥ इसके अनन्तर रम्य पञ्चाग्नि साधना के विषय मे वर्णन है और उत्तम तृतीया के व्रत का माहात्म्य कहा गया है। इसके पश्चात् तीन रात्रि का गोष्पद नाम व्रत एव हर काली व्रत का वर्णन किया गया है ॥५॥ ललिताख्या तृतीया तथा दूसरी योगाख्या का वर्णन किया गया है इसके अनन्तर उमा महेश्वर नाम वाला तथा रम्भा तृतीया व्रत का वर्णन इस ग्रन्थ म किया है इसके पश्चात् इस ग्रन्थ म सौभाग्या नाम वाली तृतीया तथा आर्द्रानन्द करी का व्रत का वर्णन किया गया है। तृतीया का व्रत चैत्र–भाद्रपद और माघ मास म कहा जाता है ॥६ ७॥

अनतरी तृतीया च गणशातिव्रत तथा।
सारस्वतव्रत नाम पचमीव्रत मुच्यते ॥८

तथा श्रीपचमी नाम षष्ठी शोकप्रणाशिनी।
फलषष्ठी च मदारषष्ठीव्रतमथोच्यत ॥९

ललिताव्रतषष्ठी च षष्ठी कार्तिकसज्ञिता।
महत्तप सप्तमी च विभूपा सप्तमी तथा ॥१०

आदित्यमडपविधिमरुयोदशोनि सप्तमी।
शुभकृष्णवन्द्रा च तथैवाभयसप्तमी ॥११

कल्याणसप्तमी नाम सर्वरासप्तमीव्रतम्।
सप्तमी कमलाख्या च तथान्या शुभसप्तमी ॥१२

स्नपनव्रतसप्तम्यौ तथैवाचल सप्तमी ।
बुधाष्टमीव्रत नाम तथा जन्माष्टमीव्रतम् ॥१३
दूर्वाकृष्णाष्टमी प्रोक्ता अनघाव्रतमष्टमी ।
अष्टम्यर्काष्टमी चाथ श्रीवृक्षनवमीव्रतम् ॥१४

इसके पश्चात् अनन्तरी तृतीया का व्रत तथा गण शान्ति व्रत का वर्णन किया गया है। फिर सारस्वत व्रत और फिर पञ्चमी व्रत कहा जाता है। फिर श्री पञ्चमी नामक व्रत का वर्णन है तथा शोक प्रणाशिनी षष्ठी–फलषष्ठी और मन्दार षष्ठी के व्रतो का सविधान इस ग्रन्थ मे वर्णन किया गया है ॥८ ६॥ फिर ललिता व्रत षष्ठी तथा कार्त्तिक संज्ञिता षष्ठी क विषय मे बताया गया है। इसके उपरान्त महत्तप–सप्तमी तथा विभूपा सप्तमी का वर्णन हुआ है। इसके पश्चात् आदित्य मण्डप की विधि त्रयोदशी का वर्णन है। फिर ससमी कुक्कुटावुस्लवगा और अभय सप्तमी का वर्णन किया गया है ॥१०-११॥ कल्याण सप्तमी और शर्करा सप्तमी के व्रतो का वर्णन दिया गया है। इसके उपरान्त कमला नाम वाली सप्तमी के व्रतों के विषय में विधि–विधान सहित पूर्ण विवेचन बताया गया है ॥१२॥ स्नपन सप्तमी व्रत सप्तमी-और अचल सप्तमी क व्रत का सांगोपांग वर्णन दिया गया है। सप्तमी व्रतो के अनन्तर फिर इस ग्रन्थ म बुधाष्टमी व्रत का वर्णन दिया है। जन्माष्टमी और दूर्वा कृष्णाष्टमी के व्रत के विषय मे वर्णन किया है। अनघाष्टमी व्रत और अर्काष्टमी व्रत का वर्णन दिया गया है। अष्टमी व्रतों के पश्चात् इस विशाल ग्रन्थ मे नवमी के व्रत का वर्णन किया गया है ॥१३-१४॥

ध्वजाख्या नवमी चैव उल्काख्या नवमी तथा ।
दशावतारव्रतक तथाशादशमीव्रतम् ॥१५
रोहिणीद्रहरिशभुब्रह्मसूर्यावियोगकम् ।
गोवत्सद्वादशी नाम व्रतमुक्त तत परम् ॥१६
नीराजनद्वादशी च भीष्मपञ्चकमेव च ।
मल्लिकाख्या द्वादशी च भीमा द्वादशीवोत्तमा ॥१७

श्रवणद्वादशी नाम सम्प्राप्तिद्वादशीव्रतम् ।
गोविन्दद्वादशी नाम व्रतमुक्त तत परम् ॥१८
अखडद्वादशी नाम तिलद्वादश्यत परम् ।
सुकृतद्वादशी नाम धरणीव्रतमेव च ॥१९
विशोकद्वादशी नाम विभूतिद्वादशीव्रतम् ।
पुण्यर्क्षद्वादशी चैव द्वादशी श्रवणर्क्षगा ॥२०
अनगद्वादशी चैव अङ्कपादव्रत तथा ।
निम्बार्ककरवीराथ यमा दर्शत्रयोदशी ।
अनगद्वादशी चापिपालिरम्भाव्रते तथा ॥२१

ध्वजा नाम वाली नवमी–उल्का नाम से कही जाने वाली नवमी के व्रतो का सविवरण वर्णन दिया गया है । इसके अनन्तर दशावतारक व्रत का वर्णन किया है तथा आशा दशमी व्रत का उल्लेख किया गया है । इसके पश्चात् रोहिणीन्द्र–हरि–शम्भु–ब्रह्मा–सूर्य वियोगक का वर्णन है । इसके अनन्तर गोवत्स द्वादशी व्रत का कथन किया गया है ॥१५-१६॥ नीराजन द्वादशी भीष्म-पावक मल्लिका नाम वाली द्वादशी-भीमा द्वादशी उत्तमा द्वादशी-श्रवण द्वादशी और सम्प्राप्ति द्वादशी व्रतो का वर्णन है । गोविन्द द्वादशी नाम वाले व्रत का वर्णन इन सब के पश्चात् दिखाया गया है ॥१७-१८॥ अखण्ड द्वादशी–तिल द्वादशी-सुकृत द्वादशी के व्रत तथा धारणी व्रत का उल्लेख किया गया ॥१९॥ फिर विशोक द्वादशी विभूति द्वादशी–पुण्यर्क्ष द्वादशी और श्रवणर्क्षगा द्वादशी के व्रतो का उल्लेख इस ग्रन्थ मे किया गया ॥२०॥ इसके अनन्तर अनग द्वादशी अगपाद व्रत-निम्बार्क करवीरा-यमा और दर्शत्रयोदशी के व्रतों का वर्णन किया गया है । अनगद्वादशी भी पालि-रम्भा व्रत मे बताई गई है ॥२१॥

चतुर्दशीव्रत प्रोक्त ततोऽनन्तचतुर्दशी ।
श्रावणीव्रतनक्त च चतुर्दश्यष्टमीदिने ॥२२
व्रत शिवचतुर्दश्या फाल्गुनचतुर्दशी ।
वैशाखी कार्तिकी माघीव्रतमनन्तरम् ॥२३

कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे कृत्तिकाव्रतमीरितम् ।
फाल्गुने पूर्णिमाया तु व्रत पूर्णमनोरथम् ॥२४
अशोकपूर्णिमा नाम अनतव्रतमेव च ।
व्रत हि साभरायिण्य नक्षत्रपुरुषव्रतम् ॥२५
शिवनक्षत्रपुरुष संपूर्णं येन मुच्यते ।
कामदानव्रत नाम वृन्ताकविधिरेव च ॥२६
आदित्यस्य दिने नक्त सक्रात्युद्यापने फलम् ।
भद्रावतमगस्त्यार्घो नवचन्द्रार्कमेव च ॥२७
अर्घः शुक्रबृहस्पत्योः पचाशीति व्रतानि च ।
माघस्नान नित्यस्नान रुद्रस्नानविधिस्तथा ॥२८

इसके पश्चात् चतुर्दशी व्रतो का वर्णन किया गया है। अनन्त चतुर्दशी व्रत—श्रावणी व्रत नक्त और चतुर्दशी अष्टमी दिन मे व्रत—शिव चतुर्दशी व्रत—फल त्याग चतुर्दशी—वैशाखी—कार्तिकी और माघी व्रत का वर्णन दिया गया है । फाल्गुन मास की पूर्णिमा मे जो व्रत होता है वह पूर्ण मनोरथ वाला व्रत होता है । कार्तिकी मे कृत्तिका नक्षत्र के योग मे कृत्तिका व्रत कहा गया है ॥२२-२४॥ अशोक पूर्णिमा नाम वाला व्रत तथा अनन्त व्रत—सामरा यिण्य व्रत—नक्षत्र पुरुष व्रत—शिव नक्षत्र पुरुष व्रत सम्पूर्ण बताये गये हैं जिनसे मानव मुक्त हो जाता है । कामदान नामक व्रत तथा वृन्ताक विधि वाला व्रत का वर्णन दिया गया है ॥२५-२६॥ आदित्य के दिन मे रात्रि मे सक्रान्ति के उद्यापन मे फल होता है । भद्रा व्रत—अगस्त्यार्घ—नव चन्द्रार्क—शुक्र और बृहस्पति का अर्घ इस प्रकार से पिच्यासी व्रतो का वर्णन माघ मास के स्नान—नित्य स्नान और रुद्र स्नान की विधि का वर्णन किया है ॥२७-२८॥

चन्द्रार्कग्रहणे स्नान विधिश्चाप्राशने तथा ।
वापीकूपतडागानामुत्सर्गो वृक्षयाजनम् ॥२९
देवपूजादीपदानवृषोत्सर्गविधिस्तथा ।
फाल्गुन्युत्सवक नाम तथान्यः मदनोत्सवः ॥३०

भूतमाता च श्रावण्या रक्षा बधविधिस्तथा ।
विधिस्तथा नवम्यास्तु तथा चन्द्रमहोत्सव ॥३१
दीपमालिकाया तु होमो लक्षहोमविधिस्तथा ।
कोटिहोमो महाशीतिगणनाथस्य शातिका ॥३२
तथा नक्षत्रहोमोथ गोदानविधिरेव च ।
गुडधेनुघृतधेनु तिलधेनुव्रत तथा ॥३३
जलधेनुविधि प्रोक्तो लवणस्य तथा परा ।
धेनु कार्या सम ज्ञात्वा नवनीतस्य चापरा ।
सुवर्णधेनुश्च तथा देवकार्यं चिकीर्पुभि ॥३४

चन्द्र ग्रहण और सूर्य ग्रहण म स्नान तथा अन्न के अशन की विधि का वणन किया गया है। बावडी–कूआ–तालाब इनका उत्सर्ग और वृक्षो का याजन भी इस ग्रन्थ में वर्णित किया गया है ॥२९॥ देवताओ का पूजन—दीपो का दान—वृपो का उत्सर्ग–इन सब की जो कि परम पुण्य के कार्य हैं, विधि विधान का वणन इस ग्रन्थ म किया गया है जिनके करने से महापापो का क्षय होता है। फाल्गुनी का उत्सव तथा अन्य मदनोत्सव–श्रावणी म भूत माता तथा रक्षा सूत्र के बन्धन की विधि–नवमी की विधि एव चन्द्र महोत्सव का पूर्ण विवरण के सहित इस महाग्रन्थ म वणन किया गया है ॥३० ३१॥ दीप मालिका म होम तथा लक्ष होम की विधि–कोटि होम–महाशीति–गण नाथ की शान्ति का वणन पूर्णतया किया गया है ॥३२॥ नक्षत्र होम का वणन तथा गोदान की विधि का वणन दिया गया है। गुड धेनु–घृत धेनु–तिल धेनु व्रतो का वणन भी इस ग्रन्थ म बड़े महत्वपूर्ण से दिया गया है जिनके करने से बहुत से पापों का क्षय होजाता है ॥३३ ३४॥

—✿—